THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182490
UNIVERSAL
LIBRARY

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास-कृत

विनयपत्रिका

आगरा-निवासी

पण्डित रामेश्वर भट्ट

कृत

सरला टीका-सहित

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

१९३१

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनी अलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

चतुर्थ बार]

सर्वाधिकार रक्षित

[मूल्य

Printed and published by K. Mittra, at the Indian Press, Ltd., Allahabad.

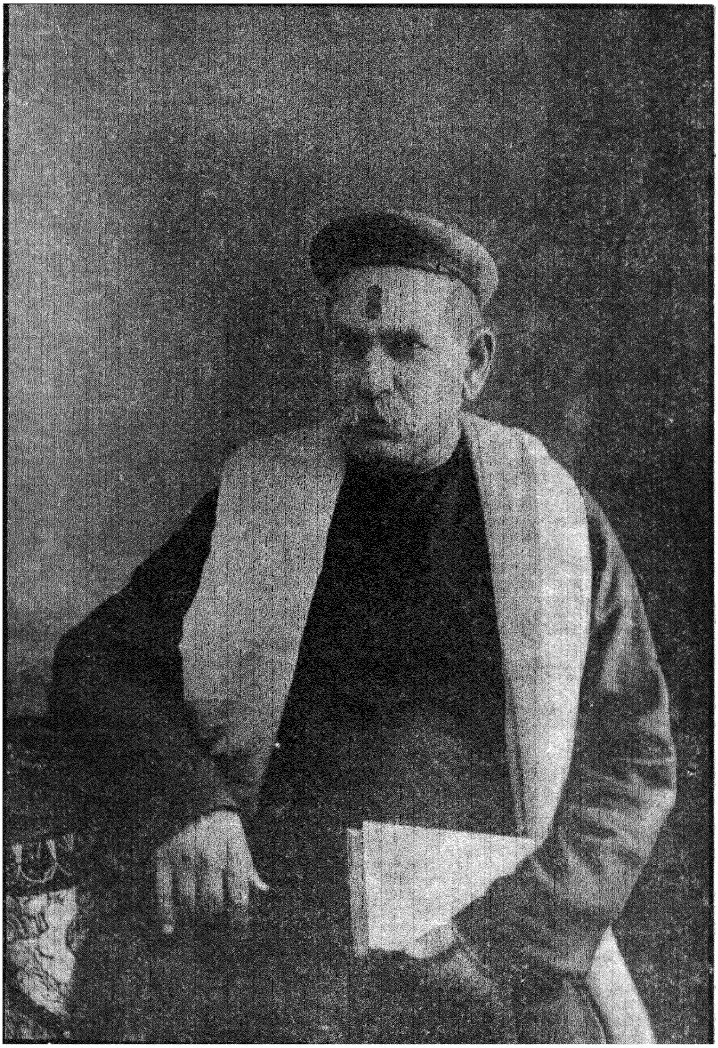

आगरानिवासी
पण्डित रामेश्वर भट्ट

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

श्रीसीताराम की जय।

समालोचना।

(गज़ल)

मुकुटमणि भक्तकुल भूषन, गुसाईं की विनय बानी।
मधुर मंजुल, सरस सुन्दर, अनूपम प्रेम रस-सानी ॥१॥
छिपी शब्दों के पर्दे में झलक अपनी दिखाती थी।
छटा मुखचंद्र की पूरन मगर पड़ने न पाती थी ॥२॥
घनत्तर की सियाही में तड़ित द्युति सी दमकती थी।
प्रभा चष पूतरी उसकी, न खुलकर देख सकती थी ॥३॥
ढकी फानूस में इक ज्योति अद्भुत झिलमिलाती थी।
सनेही सन्त परवानों के दिल लुर लुर लुभाती थी ॥४॥
रसिक जन दूरही से नूर आनन का निरखते थे।
स्वयं टपके हुए रसकन कोई विरले ही चखते थे ॥५॥
रसिकवर आगरावासी शिरीयुत भट्ट रामेश्वर।
कृपाकर हो गये उद्यत अनोखी छबि दिखाने पर ॥६॥
सरस रसना से टीका कर बहाई गंग की धारा।
घटा घनघोर बरसा कर किया शरबोर जग सारा ॥७॥
उठा कर शब्द का चिलमन दिखाई अर्थ की झाँकी।
सलोनी मोहिनी मूरत हँसन हेरन अदा बाँकी ॥८॥
जयतिजय, हे दयामूरति, जयतिजय हे सुयशसागर।
जयति भारत-रतन, साहित्य-भूषन, भट्ट गुन आगर ॥९॥
गुसाईं की गिरा चमका रही थी चाँदनी छनकर।
चुआया आपने ससिरस शरद की यामिनी बनकर ॥१०॥
गहन गंभीर आशय आपने इस रंग झलकाया।
मनोभावों का गोस्वामी के इक फोटो नज़र आया ॥११॥

अमल अनुवादरूपी सैरबीं में देख गुलकारी ।
सरल रंगीन रचना पर खिले यूरोपियन भारी ॥१२॥
प्रियाप्रीतम शरन पुष्पांजुली यह पेश करता है ।
युगल सन्तों के पद पंकज की रज निज सीस धरता है ॥१३॥

देवीप्रसाद "प्रीतम"

ता० १२-६-१३ बिजावर (बुंदेलखंड)

भूमिका

हिन्दी-भाषा का कोई ऐसा रसिक न होगा कि जिसने हिन्दी-साहित्य-गगन-मण्डल के मार्तण्ड प्रातःस्मरणीय महात्मा गोस्वामी तुलसीदास का नाम न सुना हो। गुसाईंजी की सर्वाङ्ग-सुन्दरी कविता देश देश में, नगर नगर में, गाँव गाँव में, घर घर में अपनी मनमोहिनी छटा दिखा कर लोगों को चकित और कृतार्थ कर रही है। क्या राजा, क्या रङ्क सब इसका आदर करते हैं और अपनी अपनी रुचि के अनुसार इसके आनन्द में मग्न होकर अपने को धन्य और जीवन्मुक्त मानते हैं। गुसाईंजी की कविता में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि इसका निर्मल यश स्वदेश में ही नहीं किन्तु द्वीपान्तरों में भी छा गया है। इँगलैंड आदि के निवासी भी इससे मोहित और चकित होकर मुक्त-कण्ठ से इसकी प्रशंसा करते हैं।

रामायण में तो गुसाईंजी ने प्रसङ्गवश कहीं कहीं संक्षिप्त रूप से भक्ति-ज्ञान का दिग्दर्शन-मात्र ही करा दिया है परन्तु 'विनयपत्रिका' को तो भक्ति और ज्ञान की साक्षात् मूर्ति कहना भी अत्युक्ति न होगा। गुसाईंजीकृत पुस्तकों में यह सर्वोत्तम है। इसकी रचना में उन्होंने अपनी लेखनी का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। ज्ञान और भक्तिविषयक भजनों में वेदान्त के बड़े बड़े गूढ़ रहस्य भरे हैं। कहने को तो यह भाषा है पर कहीं कहीं इसका भाव इतना कठिन है कि उसके समझने में बड़े बड़े वेदान्तियों की बुद्धि चकरा जाती है। वास्तव में विनयपत्रिका से ही गुसाईंजी की विलक्षण बुद्धि का परिचय मिलता है। इसे गुसाईंजी ने किसी विशेष पुस्तक के आधार पर नहीं बनाया, इसके किसी किसी भजन का कोई कोई भाग तो गीता आदि के किसी किसी श्लोक से मिलता है, जिसके प्रमाण में मैंने कहीं कहीं श्लोक दे दिये हैं, बाक़ी इसमें गुसाईंजी ने अपने हृदयङ्गत भक्ति और ज्ञान का चित्र उतार कर सबके सामने धर दिया है। गुसाईंजी का यही उद्देश्य था कि प्राणी किसी प्रकार भवसागर से तर कर मोक्ष के अधिकारी बनें। मोक्ष के साधनों में उन्होंने भक्ति को ही मुख्य माना है। उपास्य उपासक भाव को भुलाकर उपास्य को ही सर्वत्र देखना—यही भक्ति का लक्ष्य है। भक्ति नौ प्रकार की है। यथाः—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥"

जब मनुष्य भक्ति के द्वारा अपने इष्टदेव को पहचान लेता है तब वह उसी में लीन हो जाता है । यथा गीतायाम्ः—

"भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।"

भक्ति के सब अधिकारी हैं । उसमें जाति पाँति ऊँच नीच का बखेड़ा नहीं है ।

"जाति पाँति पूछै नहिं कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ।"

परन्तु भक्ति निष्काम और अनन्य होनी चाहिए, बिना ऐसी भक्ति के विशेष फल नहीं होता । भगवान् से किसी बात की इच्छा प्रकट नहीं करना निष्काम भक्ति है और एकाग्रचित्त होकर एक देवता का ही भजन करना अनन्य भक्ति कहाती है । बहुत से देवताओं की शरण जाना भक्ति नहीं कहाती । जो निष्काम और अनन्य भक्ति से भगवान् की सेवा करते हैं उनके सब कार्य भगवान् सिद्ध करते हैं । यथा गीतायाम्ः—

"अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।"

परन्तु भक्ति सगुण में ही होती है, निर्गुण में नहीं हो सकती और सगुण के द्वारा निर्गुण की प्राप्ति सुगमता से हो सकती है । इसलिए गुसाईंजी ने भक्ति को ज्ञान का आधार अर्थात् साधन माना है । देहादि में आत्मबुद्धि का अभाव और सबको आत्मस्वरूप देखना—ज्ञान का लक्ष्य है । जैसे पात्र, ईंधन, जल इत्यादि के होने पर भी अग्नि के बिना पाक नहीं हो सकता उसी प्रकार जप, तप आदि कर्मों से केवल अन्तःकरण निर्मल हो जाता है परन्तु ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती । अन्यान्य कर्मों के फल से तो स्वर्ग नरक भोगने पड़ते हैं पर ज्ञानाग्नि कर्मों को ऐसे नष्ट कर देती है जैसे जलती हुई अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है । यथा गीतायाम्ः—

"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।"

भगवान् को भी ज्ञानी बहुत प्यारा है । यथा गीतायाम्ः—

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्॥"

परन्तु ज्ञान बड़ा कठिन है, जैसा गुसाईंजी ने कहा है।

"ज्ञान के पन्थ कृपाण के धारा। परत खगेश न लागै बारा।
जो निर्विघ्न पन्थ निर्वहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥"

अनन्य भक्ति और अभेद ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं है। यथाः—

"ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।"

जैसे ज्ञानी को ब्रह्म से पृथक् कुछ नहीं भासता ऐसे ही भक्त को सब जगत् ईश्वररूप प्रतीत होता है। जैसा गुसाईंजी ने लिखा है, यथाः—

"सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग पानी॥"
पुनि—"नाम चतुर्गुण पञ्चयुत द्विगुणित वसुहृत शेष।
रम्यो राम सब जगत में तुलसी यह मतिलेख॥"

यहाँ जीवन्मुक्ति का आनन्द भोग कर स्वस्वरूप में लीन हो जाना ही सब ज्ञान और भक्ति का निचोड़ है।

यद्यपि गुसाईंजी ने किसी देवता की निन्दा नहीं की और ग्रन्थारम्भ में गणेश सरस्वती की वन्दना की पुरानी परिपाटी भी नहीं छोड़ी परन्तु वास्तव में तो वे रामजी के ही निष्काम और अनन्यभक्त थे। जैसा उन्होंने लिखा हैः—

"नाहिने नाथ अवलम्ब मोहि आन की। कर्म मन वचन प्रण सत्य करुणानिधे एक गति राम भवदीय पदत्राण की।"

उनका यह आन्तरिक भाव उनकी पुस्तकों से स्पष्ट है। राम-मंत्र पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी और यथार्थ में राम-नाम बड़ा उत्कृष्ट मन्त्र है। यह नाम अनादि है। रकार, मकार इन दो अक्षरों का एक साथ उच्चारण करने से अन्तःकरण में ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है कि जिससे तीन प्रकार के सन्ताप दूर होकर चित्त शांत और

निर्मल हो जाता है। यद्यपि भगवान् के नारायण आदि अनेक नाम हैं तथापि राम-नाम सबका आत्मरूप है जैसा शिवजी ने पार्वतीजी से कहा है। यथाः—

"परमेश्वरनामानि सन्त्यनेकानि पार्वति !।
परन्तु रामनामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥१॥
नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥२॥

इसलिए गुसाईंजी ने राम-नाम को ही अपना मूलसूत्र ठहरा कर मुमुक्षु लोगों के लिए मोक्ष का एक बड़ा सीधा मार्ग बता दिया है।

गुसाईंजी की विनयपत्रिका जैसी सुन्दर बनी है वैसा उसका प्रचार नहीं हुआ, क्योंकि एक तो इसमें अधिकतर वेदान्त विषय भरा है, दूसरे पूर्व के स्तुति-भाग में सन्धियों का संघट्ट और समासों का ठट्ट ऐसा जुड़ा है कि साधारण मनुष्य को पढ़ना भी कठिन पड़ता है। इसमें उपमा, रूपक आदि अलङ्कार, अप्रचलित हिन्दी और प्राकृत शब्दों के सिवाय अरबी, फ़ारसी के शब्द भी जहाँ तहाँ अपनी छटा दिखा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि गुसाईंजी सरीखे महात्मा भी अरबी, फ़ारसी में दखल रखते थे। अरबी*फ़ारसी† के शब्द जो इस विनयपत्रिका में दीख पड़ते हैं वे पाठकों के संदर्शनार्थ टिप्पणी में लिखे जाते हैं।

विनयपत्रिका की दो तीन टीकायें प्रस्तुत होने पर भी इस टीका के लिखने का सौभाग्य मुझे क्योंकर मिला इसमें मूल कारण एक अपरिचित हिन्दी-भाषा के परमतत्त्वज्ञ और लंदन मिशन सोसायटी के अध्यक्ष पादरी एडविन् ग्रीफ़्स साहब की गुणग्राहकता है। पादरी साहब ने मेरे पास जो पत्र भेज कर मुझे परम अनुगृहीत किया था उस पत्र की प्रति तथा उसका अनुवाद पाठकों के विनोदार्थ यहाँ देता हूँ।

---

* अरबी—लायक़, साहिब, वसीला, सदी, तकिया, ग़रीब, ग़ुलाम, फहम, कबूल, सूम, मुक़ाम, गनी, दिवान, शतरञ्ज, मालूम, सई, कुल, ख़ास, ख़लल, मनशा, हाल, ख़याल, ख़ास, मिसकीन इत्यादि।

† फ़ारसी—निशामी, इयार, निवाज, निशान, दिरमानी, शरम, दाद, पील, बाज़ीगर, कूँच, दरबार, जहान, ज़ोर, बुलन्द, गुल इत्यादि।

FROM

REV. EDWIN GREAVES.

LONDON MISSION,
BENARES U. P.
November 9th, 1908.

DEAR SIR,

Has it ever occurred to you to get out a paraphrase of Tulsi Das's "Vinaya Patrika" on the lines on which you have carried out your work on his Ramayan? I cannot but think that it would prove a most valuable book for Hindi students.

I regard your work on the Ramayan as a *very* valuable book, it gives just what a student needs, *viz.,* the simple meaning of what Tulsi Das wrote. Most commentators run off into windy disquisitions about sundry and possible (and impossible) meaning, and leave the student quite in the dark as to what the simple text really stands for, grammatically and etymologically.

Excuse the liberty I am taking in thus writing to you but I am deeply interested in Hindi, and believe that if you would get out and publish such a book on the "Vinaya Patrika" as you have on the Ramayan, you would reap the thanks of many who, like myself, greatly value Tulsi Das's poetry, but find it by no means easy to understand it, the "Vinaya Patrika" seems far more difficult than the Ramayan, and so is far less well-known, though Dr. Grierson has, I believe, told me that he regards it as Tulsi Das's very best work.

I am,
Dear Sir,
Yours Sincerely,
(Sd.) EDWIN GREAVES.

लंदन मिशन, बनारस, यू, पो,
ता० ९ नवम्बर १९०८

प्रिय महाशय,

क्या आपने कभी तुलसीदास की विनयपत्रिका की भाषा उसी रीति पर बनाने का विचार किया है कि जिस पर आपने उनकी रामायण की भाषा बनाई है? मैं यह विचार किये बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी-जिज्ञासुओं के लिए यह एक अत्यन्त

अमूल्य पुस्तक होगी। रामायण पर जो आपने टीका की है उसे मैं बहुत ही अनमोल समझता हूँ। एक जिज्ञासु को जितनी बात की आवश्यकता है ठीक ठीक उतना ही यह प्रकट करती है अर्थात् जो तुलसीदासजी ने लिखा है उसका सीधा सीधा अर्थ। बहुत से टीकाकार नाना प्रकार के और सम्भव (तथा असम्भव) अर्थों के विचार में पड़ जाते हैं और व्याकरण और शब्दव्युत्पत्ति के अनुसार सीधे मूल का जो ठीक ठीक अर्थ है उसके समझने में जिज्ञासु को महाघोर अन्धकार में छोड़ देते हैं।

इस भाँति आपको जो मैं स्वतन्त्रतापूर्वक लिख रहा हूँ उसे आप क्षमा करें। परन्तु मैं हिन्दी का बड़ा रसिक हूँ और मेरा विश्वास है कि जैसी आपने रामायण पर टीका की है ऐसी ही एक पुस्तक विनयपत्रिका की बना कर जो आप छपवावें तो आपको मेरे समान बहुत से मनुष्य धन्यवाद देंगे कि जो तुलसीदासजी की कविता को बहुत गौरवान्वित समझते हैं किन्तु उसका समझना किसी भाँति भी सहज नहीं देखते। विनयपत्रिका रामायण की अपेक्षा बहुत कठिन दीखती है इसी कारण यह बहुत कम प्रसिद्ध है। यद्यपि मुझे विश्वास है कि डाक्टर ग्रियर्सन ने मुझसे कहा था कि वे इसको तुलसीदास का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ समझते हैं।

आपका हितैषी
(ह०) एड्विन् ग्रीफ़्स

इस पत्र से स्पष्ट है कि हमारे यहाँ की उत्तम उत्तम पुस्तकों पर एक विदेशी और अन्य धर्मावलम्बी सज्जन की कैसी श्रद्धा है। पादरी महाशय कैसे गुणग्राहक और हिन्दी-भाषा के प्रेमी हैं इस बात का साक्ष्य उनके पत्र का शब्द शब्द दे रहा है। यदि पादरी महाशय इस विनयपत्रिका की टीका की चर्चा न उठाते तो मुझे इसको हाथ में लेने का अवसर भी कदाचित् न आता। इसलिए पादरी साहब ही इस कार्य में प्रथम धन्यवाद के पात्र हैं। आप बहुत वर्षों से नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासद हैं और तन, मन, धन से सदा उसकी उन्नति में दत्तचित्त रहते हैं।

विनयपत्रिका की टीका लिखते समय दो तीन पुस्तकें मेरे दृष्टिगोचर हुईं परन्तु मेरा चित्त उनकी समालोचना करने की गवाही नहीं देता, कारण जिन भक्तजनों ने परिश्रम कर अपना अमूल्य समय रामचर्चा में लगाया उनकी पुस्तकों की समालोचना करना मुझे किसी प्रकार अभिमत नहीं है। क्योंकि मुझे अपनी टीका पर भी भरोसा नहीं है कि लोग इसे न जाने कैसा समझें और क्या कहें। इसका यश

अपयश स्वर्ग में विधाता के और यहाँ पाठकों के हाथ है। मेरी अल्पबुद्धि में पुस्तक की समालोचना करने से नई टीका बना कर अपने अन्तःकरण के विचारों को सर्व-साधारण के सामने धरना बहुत अच्छा है क्योंकि समालोचकों के गूढ़ विचार पत्रों में छप कर और थोड़े से पठित लोगों के एक बार दृष्टिगोचर होकर रह जाते हैं और प्रत्येक मनुष्य के भिन्न भिन्न विचार होने के कारण एक व्यक्ति की की हुई समालोचना को सर्वसाधारण स्वीकार भी नहीं करते, इसलिए हिन्दी-भाषा के साहित्य-सेवी लोगों से सविनय निवेदन करता हूँ कि समय समय पर नवीन नवीन टीकायें बनावें कि जिससे रामयश अधिक फैले और इसके नये नये गूढ़तत्त्वरूपी सुन्दर मणि स्पष्ट दीख पड़ें क्योंकि सुवर्ण जितना जितना तपाया जाय उतना ही उतना उत्तम निकलता है। मेरा अभिमत किसी टीकाकार पर कटाक्ष करने का नहीं है इसलिए सब टीकाकारों को हार्दिक धन्यवाद देकर पुस्तकों की उत्तमता को पाठकों की रुचि पर छोड़ता हूँ, जो जिसको रुचे उसके लिए वही उत्तम है। एक कवि ने कहा है:—

"मीठी मीठी वस्तु हैं मीठी जाकी चाह।
अमली मिसरी छाँड़ के आफू खात सराह॥"

प्रिय पाठकगण! आज-कल एक बात और स्पष्ट दीख रही है कि समय में परि-वर्त्तन हुआ है, हिन्दी-साहित्य का सूर्य, जो बदली में हो रहा था, अब चमका है। शुद्ध गद्य, पद्य लेख में एक होनहार उन्नति हो रही है। बड़े बड़े बी० ए०, एम० ए० नवशिक्षित लोगों ने भी इस कार्य में भाग लिया है। गुण, अवगुण की परीक्षा होना आरम्भ हो गया है। ऐसे अवसर पर मुझ सरीखे अल्पज्ञ को विनयपत्रिका के छन्दों की जटिलता, गंभीरता और अर्थगौरवता देख कर भी लेखनी चलाने का साहस करना केवल उपहास कराना है। आज-कल पुरानी शैली के लेखकों के पुनः संस्कार का समय है, इतना मैं अच्छी भाँति जानता हूँ परन्तु पाठक सोच सकते हैं कि मैंने किया ही क्या है? यह कोई कविता या सुन्दर लेख की बानगी तो है नहीं कि कोई सुलेखक इसमें शुद्ध भाषा का रङ्ग-रूप टटोले और मुझे भी अपने लेख का अधिक भय हो, यह तो केवल रामचर्चा है, सीधी सीधी रीति से अपने प्यारे रामभक्तों को अपनी तुच्छ भाषा में केवल भजनों का अक्षरार्थ समझा देने का यत्न कर देना—इतना ही तो मेरा अभिमत है।

इस भाषा-टीका के बनाने में वे प्रचलित और सरल शब्द दिये गये हैं कि जिनको सर्वसाधारण समझ सकें और अनुवाद ऐसा अविकल करने का यत्न किया गया है कि मूल से अर्थ बराबर मिलता चला जाय, तिस पर भी जो कहीं कठिन शब्द जान पड़े हैं वे अर्थ-सहित मूलार्थ के नीचे दे दिये गये हैं और अन्त में गूढ़ार्थकोश लगा दिया गया है। टीका में कहीं उर्दू फ़ारसी शब्द आ गया हो तो आश्चर्य नहीं, कारण मूल में भी ऐसे शब्दों की कमी नहीं है।

जो शब्द समासान्त हैं उनका समास-विग्रह न करके सन्धि-विभाग कर दिया है कि जिससे हर एक शब्द अलग अलग दीख पड़े और अर्थ समझने में सुगमता हो।

रामायण, गीता आदि से कहीं कहीं प्रसंगानुकूल श्लोक और प्रसंगोत्थित इतिहास भी लिख दिये गये हैं।

जिन लोगों ने रामायण, भागवतादि सुन रक्खी हैं उन्हें तो प्रह्लादि आदि भक्तों की कथा विदित ही है पर जो इन कथाओं से अनभिज्ञ हैं उनके लिए अन्त में एक छोटा सा भक्त-मालसार लगा दिया है।

पुस्तक के प्रूफ़ जहाँ तक हो सका शुद्ध किये गये हैं तिस पर भी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है। आशा है कि छापे की ऐसी त्रुटियों को पाठक क्षमा कर मुझे दोष न देंगे।

प्रिय पाठकगण! विनयपत्रिका के छन्दों का अर्थ जैसा गूढ़ और गम्भीर है सो विदित ही है और जैसा मैं हूँ सो भी सब प्रकट है कि पण्डित कहा कर वृथा ही पण्डित शब्द को निरर्थक और लज्जित कर रहा हूँ, परन्तु राम-नाम का बड़ा माहात्म्य है और मुझे सिवाय राम-नाम के भरोसे के कुछ विद्याबल नहीं है, इसलिए भगवान् के उस नाम को लेकर (कि जिसकी कृपा से प्राणी भवसागर से पार हो जाते हैं और जिसकी कृपा से पाषाण तक जल में तैरने लगे थे) इस टीका को आपके समर्पण करता हूँ। आप इसे सहर्ष स्वीकार कीजिए और समझ लीजिए कि छोटी से छोटी वस्तु भी जो भेंट की जाती है वह अमूल्य हो जाती है। सुदामा के तण्डुल और शबरी के बेरों में क्या ऐसा अनोखा स्वाद था जिन्हें भगवान् ने रीझ कर खाया और बड़ाई के पुल बाँध दिये। छोटे बड़ों के सहारे सदा से प्रतिष्ठा पाते आये हैं। यथाः—

"कीटोऽपि सुमनःसंगादारोहति सतां शिरः।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितम्॥"

ऐसा समझ कर और पुस्तक में राम-नाम का महत्त्व विचार कर भक्ति-पक्ष से यदि आप लोग इसका अवलोकन करेंगे तो मेरा परिश्रम सफल होगा और मैं अपने को बड़ा कृत-कृत्य और भाग्यशाली समझूँगा।

अब उपसंहार में मैं श्रीयुत बाबू चिन्तामणि घोष महाशय को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने इस विनयपत्रिका को सटीक छाप कर पादरी एडविन् ग्रीफ़्स साहब का और मेरा मनोरथ पूर्ण किया है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उनको दीर्घायु करें।

फाल्गुन शुक्ल १३ गुरो
संवत् १९६६

रामचरणकमलानुरागी
रामेश्वर भट्ट

ग्रन्थ-प्रबन्ध

विघनहरन तारनतरन मंगल वरनअमन्द ।
सिद्धिकरन असरनसरन द्रवहु सो गौरीनन्द ॥ १ ॥
बुधिबानीदानी जगत जानी मानी माइ ।
सरसानी सुख संपदा बानी होहु सहाइ ॥ २ ॥
सीसगंग अरधंगतिय भूषनभूतिभुजंग ।
उर उमंग वर दैन की वन्दौं वयरि अनंग ॥ ३ ॥
हितवाली आलीनिकट जगप्रतिपाली जोइ ।
तुरत निहाली करत जन वंदौं काली सोइ ॥ ४ ॥
दिनकरकुलपावनकरन हरन सकल भवफंद ।
सघनस्यामघनवरनतन द्रवहु सो दशरथनंद ॥ ५ ॥
सीसमुकुट कटिपीतपट निपट अटपटीचाल ।
सो झटपट मो मन बसो नटवर श्रीनँदलाल ॥ ६ ॥
कनकभूधराकारतनु लूम घूमि रहि छाइ ।
रामभक्त मारुततनय वंदौं तिहि जस गाइ ॥ ७ ॥
भक्तशिरोमणि राम तजि किय न काहु की आस ।
कवितानभमंडलमिहिर वंदौं तुलसीदास ॥ ८ ॥
तरनि-तनूजा तटनि तट निकट निपट सुखधाम ।
बसत सरस चहुँ ओर वर नगर "आगरा" नाम ॥ ९ ॥

नागरकुल नागर सकल गुनआगर निरद्वंद ।
तहाँ बसत हैं मोदयुत बुधवर बालमुकुन्द ॥ १० ॥

राजकीय कालेज महँ राजजीविका पाय ।
पण्डित संस्कृत के प्रथम सोहे सरलसुभाय ॥ ११ ॥

रामेश्वर तिनकर तनय अज्ञानी मतिमन्द ।
विनयतिलक किय जगत हित सुमिरि हृदय रघुचन्द ॥ १२ ॥

आये यूरप देस तें साहिब सुघर अनेक ।
निखिलनागरीरसरसिक गनौं ग्रीफ़्स कहँ एक ॥ १३ ॥

विनयपत्रिकातिलक की तिनु अभिलासा कीन ।
तिहि हित मम प्रति लेख लिखि अमित बड़ाई दीन ॥१४॥

तासन सासन पाय करि धरि हरिपद कर ध्यान ।
कियउ तिलक अक्षरन कर अरथ कोस परमान ॥ १५ ॥

जिते ग्रन्थ तुलसी रचे इकते इक सुखदानि ।
निज चतुराई काढ़ि सब धरी विनय महँ आनि ॥ १६ ॥

ज्ञान भगति वैराग की भरी विनय मृदुवानि ।
तुलसी निरगुन सगुन की रची अनूपम खानि ॥ १७ ॥

निरगुन सरगुन रूप कौ यह है निडर निकेत ।
नेम प्रेम सों पढ़त छन मन वांछित फल देत ॥ १८ ॥

तुलसी कविता सामुहें होय अन्यकृत हास ।
नीकीहू फीकी लगै वेदव्यास की भास ॥ १९ ॥

विनयपत्रिका कौ करै जो प्रभात नित पाठ ।
चार पदारथ कर लहैं भरैं सदन सिधि आठ ॥ २० ॥

हुओ न है ह्वै है नहीं कहूँ सत्य करि आन ।
सेवक आन न राम कौ तुलसीदास समान ॥ २१ ॥

सुजन सिरोमनि सरलचित श्रीचिन्तामणि घोष ।
विनयपत्रिका छाप दिय भक्त जनन सन्तोष ॥ २२ ॥

भूल चूक जहँ होय तहँ सोधि सुजन जस लेहु ।
करौं विनय कर जोरि जुग दोस दीठ जनि देहु ॥ २३ ॥

रस ऋतु निधि विधु वरन महँ रामचरन चित लाइ ।
संपूरन टीका करी हरि भगतन सुखदाइ ॥ २४ ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृत विनयपत्रिका के

भजनों का सूचीपत्र ।

विषय	पृष्ठांक
अकारन को हितू	३१५
अजहुँ आपने राम के	२७०
अतिआरत	४६
अब चित चेति	३१
अबलौं नसानी	१५३
अस कछु समुझि	१७६
आपनो कबहूँ करि	२०८
आपनो हित रावरे	३२२
इहै कह्यो सुत	१३२
इहै जानि चरनन्ह	३२७
इहै परमफल	१०३
ईस सीस	२५
एक सनेही साँचिलो	२६७
एकै दानि सिरोमनि	२३१
ऐसी आरती	६७
ऐसी कौन प्रभु की रीति	२९७
ऐसी तोहि न बूझिए	४६
ऐसी मूढ़ता या मन की	१३६
ऐसी हरि	१४४
ऐसेउ साहब	११६
ऐसे राम दीनहितकारी	२२५
ऐसेहि जनम समूह	३१९
ऐसो को उदार जग	२२०
और कहँ ठौर	२३३
और काहि माँगिये	१२७
और मेरे को है	३१५
कछु ह्वै न आय	१३१
कटु कहिये गाढ़े परे	५०
कबहुँ देखाइहौ	२०१
कबहुँक अम्ब	४१
कबहुँक हौं येहि	२४२
कबहुँ कृपा करि	३६४
कबहुँ रघुबंसमनि	२९४
कबहुँ समय सुधि	५८
कबहूँ मन बिस्राम	१३४
कबहूँ सो करसरोज	१९८
करिय सँभार	३०४
कलि नाम कामतरु	२२४
कस न करहु	१५८
कस न दीन पर	७
कहाँ जाउँ का सों	२१५
कहाँ जाउँ कासों कहौं	२५०
कहु केहि कहिये	१२९
कहा न कियो कहाँ	३६९
कहे बिनु रह्यो न	२४६
कहौं कौन मुँह	२१४
कहौ न परत	२५४
काज कहा नरतनु	२८०
काहे को फिरत मन	२७३
काहे को फिरत मूढ़	२७७

विषय	पृष्ठांक
काहे ते हरि	१४०
काहे न रसना	३२१
कीजै मोको जगजातना	२४१
कृपासिन्धु जन दीन	२०६
कृपासिन्धु ताते रहौं	२१२
कृपा सो धौं	१३६
केसव कहि न जाइ	१६१
केसव कारन कौन	१६२
केहू भाँति कृपासिन्धु	२५२
कैसे देउँ नाथहि खोरि	२२६
को जाचिये	३
कौसलाधीस	७८
कौन जतन विनती	२५६
खोटो खरो	१२१
गरैगी जीह	३१४
गाइये गनपति	१
जनमु गयो बादिहि	३१८
जमुना ज्यों ज्यों	२६
जय जय जगजननि	२१
जयति अंजनीगर्भ	३३
जयति जय सत्रुकरिकेसरी	५६
जयति जय सुरसरी	२३
जयति निर्भरानन्द	४२
जयति भूमिजारवन	५४
जयति मङ्गलागार	३६
जयति मर्कटाधीस	३६
जयति राजराजेन्द्र	६१
जयति लछमनानंत	५३
जयति वातसंजात	४०
जयति सच्चितव्यापकानंद	५८
जाउँ कहाँ तजि	१४६
जाऊँ कहाँ ठौर है	३६७
जाके गति है हनुमान की ...	४४
जाकें प्रिय न राम	२४४
जाको हरि दृढ़	३२३
जागु जागु जीव जड़	११६
जाचिये गिरिजापति	७
जानकीजीवन	१५२
जानकीजीवन जग	१२४
जानकीनाथ	७५
जानकीस की कृपा	१२०
जानत प्रीति रीति	२३२
जानि पहिचानि मैं	३४८
जिय जब ते हरि	११०
जै जै भगीरथनंदिनि	२२
जैसो हौं तैसो	३६४
जो अनुराग न राम	२७२
जौ निज मन	१७७
जौं पै कृपा	१६७
जो पै चेराई राम	२१७
जो पै जानकीनाथ सों	२६६
जो पै जिय धरिहो	१४२
जो पै दूसरो कोऊ	३००
जो पै रहनि राम	२४५
जो पै रामचरन	२३८
जो पै हरि जन के	१४३
जो तुम त्यागो राम	२४७
जो मन भज्यो चहै	२८६
जो मन लागै	२८६
जौं पै जिय जानकी	३२०
जौं पै मोहिँ राम लागते	२३६
ज्यौं ज्यौं निकट भयो	३६०
तऊ न मेरे	१४१
तन सुचि मन रुचि	३५८
तांबे सो पीठि	२७६
ताकि है तमकि	४४
ताते हौं बार बार	१८६
ताहि ते आयो सरन	२६०
तुम अपनायो तब	३६२
तुम जनि मनु मैलो	३६५

विषय	पृष्ठांक
तुम तजि हौं कासों	३६७
तुम्ह सम दीनबन्धु	३२७
तू दयालु दीन हौं	१२६
ते नर नरकरूप	२०२
तोसों हौं	१८५
तो तुम मोहूँ से	३२५
तौ तू पछितैहै	१३१
तोसो प्रभु जोपै	२२९
तौ हौं बार बार	३३७
दनुजसूदन	९८
दानी कहुँ संकर	४
द्वार द्वार दीनता कही	३६८
द्वारे हौं भोर ही को आज	३०२
दीनउद्धरन	९६
दीन को दयालु	१२५
दीनदयालु दिवाकर	२
दीनदयालु दुरित	१९९
दीनबन्धु दूरि किये	३४७
दीनबन्धु दूसरो कहँ	३१६
दीनबन्धु सुखसिन्धु	१२८
दुसह दोष	१९
देखो देखो	१८
देव दूसरो कौन	२२२
देव बड़े दाता	८
देव ! दनुज-बनदहन	७०
देव ! मोहतमतरनि	१०
देव ! भीषनाकार भैरव	१३
देव ! संवरं संप्रदं	१५
देहि अवलम्ब	९२
देहि सतसंग	९०
नाचतही नि से दिवस	१३७
नाथ कृपहि को पंथ	३०६
नाथ गुनगाथ सुनि	२५३
नाथ नीके कै जानिबी	३५६
नाथ सौं कौन	२८९
नाम राम रावरोई	३१२
नाहिंन आवत आन	२४३
नाहिं न और कोऊ	२८७
नाहिं न चरनरति	२७५
नाहिं नै नाथ अवलम्ब	२९१
नौमि नारायनं	९८
पवन सुवन रिपुदमन	३७२
पनु करिहौं हठि	३६१
पावन प्रेम	१८३
पाहि पाहि राम पाहि	३३४
प्रिय राम नाम ते	३१३
बलि जाउँ हौं राम	२७३
बलि जाउँ और कासों	३०७
बाप आपने	३४०
बारक विलोकि बलि	२५१
बावरौ रावरौ	५
भजिबे लायक	२८८
भये हूँ उदास राम	२४८
भरोसो औरु आइहै	३०९
भरोसो जाहि दूसरो	३१०
भली भाँति	३३६
भलो भलीभाँति है	११५
भानुकुलकमल	७३
मंगलमूरति मारुतनन्दन	५१
मन इतनोई	१०६
मन पछितैहै	२७६
मन माधौ कौ	१३२
मन मेरे मानहि	१७९
मनोरथ मन को	३१७
महाराज रामादर्यौ	१५४
माधव अब न द्रवहु	१६३
माधव असि तुम्हारि	१६७
माधव जू मो सम	१३७
माधव मोहि समान	१६४
माधव मोहपास	१६५

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
मारुति मन रुचि	३७३	राम राम राम	१८२
मेरो न बने बनाये	३६३	रामराय बिन	३७०
मेरे रावरीए	२२३	राम रावरो नामु	३४३
मेरो कह्यो सुनि	३५७	राम रावरो नाम साधु	३४५
मेरो भलो कियो	११८	राम रावरो सुभाउ	३३६
मेरो मन हरि जू हठ	१३५	राम सनेही	१८७
मैं केहि कहों	१७८	राम से प्रीतम	१८४
मैं जानी हरिपदरीति	१८०	रावरी सुधारी	३५०
मैं तो अब जान्यो	२६१	रुचिर रसना तू	१८१
मैं हरि पतितपावन	२२६	लाज लागत	२५८
मैं हरि साधन	१७४	लाभ कहा मानुष	२७६
मोहजनित मल	१२६	लाल लाड़िले	५२
मोहिँ मूढ़ मन	३३०	लोक वेदहुँ विदित	३३१
यह विनती रघुवीर	१५१	बन्दों रघुपति	१०८
याहि ते मैं हरि	३२८	विरदु गरीबनिवाजु	१४६
यों मन कबहूँ तो	२४०	वीर महा अवराधिये	१५७
रघुपति भक्ति करत	२३७	विस्वविख्यात	८२
रघुपति विपति दवन	२६५	विस्वास एक राम-नाम को	२२३
रघुवर रावरी इहै	२३४	श्री रघुवीर की यह	२६८
रघुवरही कबहुँ मन	३०६	श्रीरामचन्द्र कृपालु	६४
राख्यो राम सुस्वामी	२४६	श्रीहरिगुरुपद कमल	२८१
राम कबहुँ प्रिय	३६३	सकलसुखकन्द	१०१
राम कहत चलु	२६३	सकल सौभाग्यप्रद	८०
राम को गुलाम	१२२	सकुचत हैं। अति	२०४
रामचन्द्र रघुनायक	२०३	सदा रामजपु	६५
राम जपु जीह	३३२	सन्तसन्तापहर	८५
राम जपु	१११	सब सोच विमोचन	२६
राम-नाम के जपे	२५५	समरथ सुअन समीर	४७
राम राम जपु	११२	सहज सनेही राम सों	२६५
राम प्रीति की रीति	२५५	साहब उदास भये	३५१
राम भद्र मोहि आपनो	२१६	सिव सिव होइ	६
राम भलाई आपनी	२१६	सुनु मन मूढ़	१३३
राम राखिए	३४२	सुनत सीतापति	१४७
राम राम रमु	१०६	सुनहु राम रघुवीर	२०६
राम राम राम	११३	सुमिरु सनेह	११४

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
सुमिरु सनेह सहित	१८१	हरि सम आपदाहरन	२१६
सेइय सुसाहब राम	२२५	हे हरि कवन जतन	१६६
सेइय सहित सनेह	२७	हे हरि कवन जतन भ्रम	१७०
सेवहु सिव	१७	हे हरि कस न हरहु	१७२
सोइ सुकृती	३२४	हे हरि कवन दोष	१६८
सो धों को जो नाम	२०८	हे हरि यह भ्रम की	१७३
हरनि पाप	२५	हैं नीको मेरो	१५६
हरति सब आरती	६६	हैं प्रभु मेरोई	२२७
हरि तजि और भजिये	२६६	हौं सब विधि	२१०
हरि तुम बहुत	१५०		

परम पूजनीय रामभक्तशिरोमणि
श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी

इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत

विनयपत्रिका

राग बिलावल।

गणेश-स्तुति।

[१]

गाइये गनपति जगबंदन। संकर सुवन भवानी-नंदन ॥ १ ॥
सिद्धिसदन गजवदन विनायक। कृपासिंधु सुंदर सब लायक ॥ २ ॥
मोदकप्रिय मुदमंगलदाता। विद्यावारिधि बुद्धिविधाता ॥ ३ ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहु रामसिय मानस मोरे ॥ ४ ॥

संसार जिनकी वन्दना करता है ऐसे गणेशजी का भजन करो। वह शिव-पार्वती के पुत्र और उनको आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥ सिद्धियों के स्थान (अर्थात् अष्ट सिद्धियों के देनेवाले), जिनका मुख हाथी का सा है और जो विघ्नों के स्वामी हैं (अर्थात् जो उनका ध्यान करता है उसके यहाँ विघ्न नहीं होने देते), कृपा के समुद्र (अर्थात् सब पर कृपा करनेवाले), सुन्दर (अर्थात् जिनका हर एक अंग बड़ा मनोहर है) और जो सब भाँति लायक हैं (अर्थात् सुन्दर गुणों से युक्त हैं) ॥२॥

जिनको लड्डू प्यारा है और जो आनन्द-मङ्गल के दाता और विद्या के समुद्र हैं और बुद्धि के (सुधारने के लिए दूसरे) विधाता हैं (अर्थात् चाहे जैसी मोटी बुद्धि हो उसे निर्मल कर देते हैं) ॥ ३ ॥ (ऐसे गणेशजी से) मैं तुलसीदास हाथ जोड़ कर माँगता हूँ कि मेरे हृदय में सीतारामजी निवास करें (मुझे ऋद्धि, सिद्धि, विद्या, बुद्धि, आदि कुछ नहीं चाहिए) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गनपति = शिवजी के गणों के स्वामी । सुवन = पुत्र । (शङ्कर और भवानी के बीच में सुवन शब्द आया है इसलिए देहलीदीपक न्याय से (अर्थात् जैसे देहली पर दिया रखने से भीतर बाहर दोनों ओर चाँदना हो जाता है ऐसे ही) शिव पार्वती के पुत्र ऐसा अर्थ हुआ नहीं तो सुवन और नन्दन दोनों शब्द एकार्थी होने से पुनरुक्ति दोष आता है ।) नन्दन = प्रसन्न करनेवाले । सदन = घर । वदन = मुख । वारिधि = समुद्र । अष्टसिद्धि = १ अणिमा (छोटा रूप धरना), २ महिमा (बड़ा रूप धरना), ३ गरिमा (भारी हो जाना), ४ लघिमा (हलका हो जाना), ५ प्राप्ति (चाहे जहाँ चले जाना), ६ प्राकाम्य (मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेना), ७ ईशित्व (प्रभुता होना), ८ वशित्व (जिसको चाहे वश में कर लेना) ।

सूर्य-स्तुति ।

[२]

दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥ १ ॥
हिमतमकरिकेहरि करमाली । दहन दोषदुखदुरितरुजाली ॥ २ ॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥ ३ ॥
सारथि पंगु दिव्य रथ गामी । हरिसंकरविधिमूरति स्वामी ॥ ४ ॥
वेद पुरान प्रगट जसु जागै । तुलसी रामभगति वरु माँगै ॥ ५ ॥

हे दीनों पर दया करनेवाले सूर्यदेव ! मुनि, मनुष्य, देवता और दैत्य सब तुम्हारी सेवा करते हैं (क्योंकि जिस लोक में प्रकाश न हो उसके ही प्राणी दुख पाते हैं) ॥१॥ पाला और अंधकार-रूपी हाथियों के (मारने के लिए तुम) सिंह-रूप हो (अर्थात् जैसे सिंह अपने नख और दाँतों से हाथी का नाश कर देता है ऐसे ही तुम अपनी किरणों से पाले और अंधकार को दूर कर देते हो), तुम किरणों की माला धारण किये हो और अपराध, दुःख, पाप और रोग इनके समूह का नाश करनेवाले हो ॥२॥ चकवा चकवी, कमल और संसार इनका प्रकाश करनेवाले हो (अर्थात् जब तुम्हारा प्रकाश होता है तब चकवा चकवी का विरह दूर होता है, कमल खिलते हैं और संसार अपने काम धन्धे में लगता है), तुम तेज, प्रताप, रूप और रस की राशि

हो (अर्थात् तुममें तेज ऐसा है कि जिसे कोई सह न सके; प्रताप ऐसा कि जिससे अन्धकार का नाश हो जाय; रूप ऐसा कि जिसके बिना नेत्र काम नहीं दे सकते और रस ऐसा कि जहाँ तुम्हारी किरणें न पड़ें वहाँ अन्न फल आदि कुछ उत्पन्न न हों) ॥ ३ ॥ तुम्हारा लूला (१) सारथि है और तुम दिव्यरथ (२) पर जानेवाले हो । हे स्वामी ! तुम साक्षात् ब्रह्मा (३), विष्णु और महेश हो (अर्थात् उदय में ब्रह्मा, मध्याह्न में शिव और अस्त समय विष्णु रूप हो) ॥ ४ ॥ तुम्हारा यश वेदों और पुराणों में प्रकट है । तुमसे तुलसीदास रामजी की भक्ति का वरदान माँगता है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—दिवाकर = सूर्य । हिम = पाला । तम = अँधेरा । करि = हाथी । केहरि = सिंह । करमाली = किरणों की माला धारण किये । दहन = अग्नि । दुरित = पाप । रुज = रोग । अली = पंक्ति, क़तार । कोक = चकवा-चकवी । कोकनद = कमल ।

शिव-स्तुति ।

[३]

को जाचिये संभु तजि आन ।
दीन-दयालु भगत-आरत-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥ १ ॥
कालकूट-जुर-जरतसुरासुर, निजपन लागि कियो विषपान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक, जार्‌यौ त्रिपुर एकही बान ॥ २ ॥
जो गति अगम महामुनिदुरलभ, कहत सन्त स्रुति सकल पुरान ।
सो गति मरनकाल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥ ३ ॥
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारवती-पति परमसुजान ।
देहु कामरिपु रामचरनरति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥ ४ ॥

हे शिवजी ! तुम्हें छोड़ कर और किससे भीख माँगनी चाहिए । हे भगवन्, तुम ग़रीबों पर दयालु, भक्तों के दुःखनाशक, और सब भाँति से समर्थ हो (अर्थात् सब कुछ कर सकते हो) ॥ १ ॥ (ऊपर कही हुई बात को अब प्रमाण से पुष्ट करते हैं कि

(१) पंगु सारथि रखने से तुम्हारी दीन-दयालुता प्रकट है ।

(२) रथ का दिव्यपन यही है कि उसका लूला तो सारथि और उसमें एक पहिया, तिस पर भी एक पल में अनेक योजन जाता है ।

(३) जैसा भविष्यपुराण में कहा है—"उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥"

समुद्र मथते समय जब) कालकूट (१) विष निकला और उसके ताप से सब देवता और दैत्य जलने लगे तब (सबको दुखी देख और दीनदयालुता का) अपना प्रण रखने के लिए तुमने उस विष को पी लिया। (फिर भक्तों का दुःख दूर करने में कैसे कि) जब महा दुष्ट दनु का पुत्र (त्रिपुर) संसार को दुखदायी हुआ (और उससे घबरा कर देवता तुम्हारी शरण गये) तब तुमने उस त्रिपुर को एकही बाण से जला दिया ॥ २ ॥ (फिर समर्थ कैसे कि) जिस कठिन गति अर्थात् मुक्ति को सन्त, वेद और सब पुराण बड़े बड़े मुनियों को भी दुर्लभ बताते हैं उसी को हे सदाशिव ! तुम मरते समय (राम नाम के उपदेश से) अपनी (काशी) पुरी में सब (नर, कीट, पतंग आदि) को एक सी देते हो (अर्थात् जो यहाँ मरता है उसकी मुक्ति (२) हो जाती है—धर्मी अधर्मी का विचार नहीं है) ॥ ३ ॥ सेवा करने से सहज में मिलनेवाले हो (अर्थात् जल का लोटा और आक धतूरा चढ़ाया कि प्रसन्न हुए), और दानी (कैसे कि) कल्पवृक्ष के समान हो (जो माँगा जाय सो मिले), तुम पार्वती के पति और बड़े भारी ज्ञाता (अर्थात् घट घट की जाननेवाले) हो, इसलिए हे कामदेव के भस्म करनेवाले शिवजी ! मुझ तुलसीदास को रामजी के चरणों की भक्ति दो; क्योंकि तुम दया के स्थान हो (अर्थात् तुममें दया ही दया भर रही है) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आरत = दुख। कालकूट = हलाहल विष। दारुन = कठिन। स्रुति = वेद। उदार = दानी। परम = बहुत।

राग धनाश्री।

[५]

दानी कहुँ संकर से नाहीं।
दीन-दयालु दिबोई भावत, जाचक सदा सोहाहीं ॥ १ ॥

---

(१) जब विष्णु भगवान् ने कच्छावतार लेकर समुद्र मथा तब उसमें से १४ रत्न निकले। उनको तो अन्य देवताओं ने बाँट लिया पर जब विष निकला और उसकी उष्णता से देवता जलने लगे तब वे हाहाकार कर पुकारे कि हे शङ्कर ! हमारी रक्षा करो नहीं तो हम भस्म हुए जाते हैं। निदान शिवजी ने दया विचार राम का नाम ले उस विष को पी लिया कि जो कंठ में पहुँचते ही राम की कृपा से अमृत हो गया।

(२) अध्यात्मरामायण में शिवजी ने रामचन्द्रजी से कहा है—"अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥ १ ॥ अर्थात् हे राम ! मैं आपका नाम जपता हुआ पार्वतीजी सहित काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी को मुक्ति के लिए तुम्हारे नाम का उपदेश करता हूँ।

मारिकै मारु थप्यो जग में, जाकी प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुर कौ रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मोहिपाहीं ॥ २ ॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं ।
वेदविदित तेहि पद पुरारिपुर, कीट पतङ्ग समाहीं ॥ ३ ॥
ईसु उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं ।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥ ४ ॥

शिवजी के समान कोई दानी नहीं है। जो ग़रीबों पर दया करनेवाले हैं, जिनको देना ही देना अच्छा लगता है और माँगनेवाले सदा सुहाते हैं ॥१॥ जिसकी संसार के योधाओं में पहली गिनती थी ऐसे कामदेव को (पहले अपनी समाधि छुड़ाने पर तो) भस्म कर दिया (पर जब रति के विलाप करने पर दया आई तब फिर) उसे जिला दिया, सो उस स्वामी का रीझ कर कृपा करना मुझसे कैसे पूरा पूरा कहा जा सकता है ॥२॥ (क्योंकि) मुनीश्वर करोड़ों योग कर जिस गति को भगवान् से माँगने में सकुचाते हैं (कि हम कैसे माँगें) उसी पद (मुक्ति) को (कैसा सुलभ कर रक्खा है कि) काशी के कीट-पतंग तक उसमें समा जाते हैं (अर्थात् सबकी मुक्ति हो जाती है) यह बात वेद में प्रकट है (यथा काश्यां मरणान्मुक्तिः) ॥ ३ ॥ ऐसे दानी पार्वती-पति शिवजी को छोड़ कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं (अर्थात् और देवताओं की सेवा करते हैं) उन मूर्ख मँगताओं का (माँगते माँगते) कभी पेट नहीं भरेगा (अर्थात् वे सदा भूखे ही बने रहेंगे) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मार = कामदेव । भट = योधा । पुरारिपुर = पुरदैत्य के शत्रु अर्थात् शिवजी का पुर (काशी) । माँगने = भिखारी ॥

[५]

बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, वेद बड़ाई भानी ॥ १ ॥
निज घर की वर बात विलोकहु, हौ तुम्ह, परमसयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्रीसारदा सिहानी ॥ २ ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन्ह राँकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकवानी ॥ ३ ॥

दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीखि भली मैं जानी ॥ ४ ॥
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंगिजुत, सुनि विधि की वर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगतमातु मुसुकानी ॥ ५ ॥

एक समय ब्रह्माजी ने देखा कि शिवजी तो थोड़ी सी सेवा से प्रसन्न हो बिना विचारे हर किसी को संपत्ति दे देते हैं इससे हमने जो कर्मानुसार ललाट पर लिखा है वह वृथा हो जाता है और हमारी बात में बट्टा लगता है। यह सोच कर वे कैलास पर्वत पर गये कि जहाँ शिव-पार्वती आनन्द में मग्न बैठे थे और पार्वतीजी से बोले किः—

हे पार्वतीजी ! तुम्हारा पति बावला है, क्योंकि वह बड़ा दानी है बिना दिये भी नित्य देता है (भाव--जिसने कभी कुछ दान नहीं किया उसे भी बराबर देता है) सो इसने वेद की मर्यादा को भी भान डाला अर्थात् तोड़ दिया (क्योंकि वेद में ऐसा लिखा है कि पूर्व-जन्म में जिसने दिया है उसे मिलता है पर जिसने नहीं दिया उस पर भी यह भोलानाथ
वेद का जाननेवाला) है ।
प्रसन्न होकर उसे कठिन से कठिन वरदान और धन-धान्यादि दे देता है) ॥१॥ (फिर वेद की मर्यादा तो दूर रही) तुम तो आपही बड़ी चतुर हो, अपने घर की सुन्दर बात को ही देखो (रावण और बाणासुर आदि को तो वह सम्पत्ति दे दी है कि जो इन्द्र आदि देवताओं को भी दुर्लभ है और अपने घर में भूँजी भाँग नहीं है; धतूरे और मसान की राख के ढेर लगा रक्खे हैं—इससे बढ़ कर और क्या बावला होगा)। इस शिव की दी हुई सम्पत्ति को देख कर लक्ष्मी और सरस्वती भी सराहना करती हैं (अर्थात् व्यंग भाव से हँसी उड़ाती हैं कि पार्वती का अच्छे से पाला पड़ा है) ॥२॥ (देखो और सिड़ीपन दिखाऊँ कि) जिनके माथे पर मेरे लिखे अंक सुख की निशानी नहीं है (अर्थात् जिनको कर्मानुसार मैंने सुख नहीं लिखा उनको पूर्वजन्म के अनुसार दुःख ही मिलना चाहिए और अन्त में स्वर्ग न मिलना चाहिए सो उनसे आक धतूरा ले लेकर ऐसे फल दे दिये हैं कि) उन कंगालों के लिए (बहीखातों में नरक काट काट कर) स्वर्ग बनाते बनाते मेरा तो नाक में दम आ गया ॥३॥ (अधिक क्या कहूँ) दीनता और दुःख तक भी दुखी हो रहे हैं (वे कहते हैं कि शिवजी ने हमारा ऐसा सत्यानाश किया है कि हमें रहने को जगह नहीं रही क्योंकि सब लोग धनी और सुखी हो रहे हैं) और इनके दुःख से भीख भी (रहने की जगह न देख) घबरा रही है (अर्थात् कोई याचक नहीं रहा फिर मैं कहाँ रहूँ) सो इस (ब्रह्मत्व) के अधिकार को किसी दूसरे को सौंपो (मैंने छोड़ा यह

काम), मैंने समझ लिया कि इससे तो भीख माँगना ही अच्छा है ॥४॥ इस भाँति ब्रह्माजी की प्रीति, बड़ाई और विनती से युक्त सुन्दर व्यंग वाणी को सुन कर शिवजी तो मन ही मन प्रसन्न हुए और जगत् की माता पार्वतीजी मुसकुरा कर रह गईं ॥५॥

शब्दार्थ—रावरो = तुम्हारा । नाह = पति । श्री = लक्ष्मी । सारदा = सरस्वती । नाक = स्वर्ग । व्यंग = जो सीधा अर्थ है उसे छोड़ कर कुछ और ही दूसरा भाव समझ पड़े वही व्यंग कहाता है जैसे ब्रह्माजी ने पार्वतीजी से कहा कि तुम्हारा पति बावला है यहाँ भीतरे भाव से समझना कि तुम्हारा पति अच्छा है बावला नहीं है इत्यादि और इसमें व्याज-स्तुति अलंकार है क्योंकि यहाँ निन्दा के बहाने स्तुति की है ।

राग रामकली ।

[६]

जाचिये गिरिजापति कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी॥ १ ॥
औढरदानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन करजोरें ॥ २ ॥
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥ ३ ॥
गे जे सरन आरति के लीन्हे। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हे॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक जसु गावै। विमल भगति रघुपति की पावै॥ ५ ॥

पार्वती के पति शिवजी से याचना करनी चाहिए। जिनका स्थान काशी है जहाँ अणिमा आदि (अष्ट सिद्धियाँ उनकी) दासी होकर रहती हैं ॥ १ ॥ (शिवजी) औढरदानी हैं (अर्थात् पात्र कुपात्र का विचार न करके देनेवाले हैं), फिर थोड़े ही (भजन) से कृपा करते हैं। और गरीबों को हाथ जोड़ते हुए नहीं देख सकते (अर्थात् हाथ जोड़ते ही निहाल कर देते हैं) ॥ २ ॥ सुख, सम्पत्ति, बुद्धि, मोक्ष और सुन्दरता ये सब शिवजी की सेवा से सुलभ हैं (अर्थात् सहज में मिल सकते हैं) ॥३॥ जो दुखी होकर उनकी शरण में गये उनको देख कर उन्होंने पल भर में निहाल कर दिया ॥ ४ ॥ भिखारी तुलसीदास भी (शिवजी का) यश गाता है कि (जिससे) रघुनाथजी की निर्मल भक्ति को पावे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—द्रवत = कृपालु होते हैं । आरत = दुखी । निमिष = पल ।

[७]

कस न दीन पर द्रवहु उमावर। दारुनविपति हरन करुनाकर ॥ १ ॥
वेद पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयहु कृपनतर ॥ २ ॥

कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज।
होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥ ३॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तुम्र पुर कीट पतंगहु पावहिं॥ ४॥
देहु कामरिपु रामचरन रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेदमति॥ ५॥

हे पार्वतीपति! (तुम मुझ) ग़रीब पर दया क्यों नहीं करते हो? तुम तो कठिन विपत्ति के नाशक और दया करनेवाले हो (फिर मुझे दुखी देख क्यों चुपके बैठे हो)॥ १॥ वेद पुराण तो कहते हैं कि शिवजी बड़े दानी हैं फिर हमारी विरियाँ ऐसे अधिक कंजूस क्यों हो गये हो॥ २॥ (जो कहो कि तूने मेरी कौन सी सेवा की है जो तेरे ऊपर कृपा करूँ तो) गुणनिधि (१) नाम ब्राह्मण ने तुम्हारी कौनसी भक्ति की थी जो तुमने प्रसन्न होकर उसे अपना शिवलोक दे दिया था॥३॥ जिस गति को बड़े बड़े मुनि बखानते हैं कि कठिन है उस गति अर्थात् मोक्ष को तुम्हारी (काशी) पुरी के कीड़े, पक्षी भी पाते हैं॥ ४॥ सो हे कामदेव के शत्रु! तुलसीदास को रामचन्द्रजी के चरणों की प्रीति दो और भेदबुद्धि को दूर करो (क्योंकि) तुम समर्थ हो॥ ५॥

शब्दार्थ—भेदमति = जीव ब्रह्म में भेद मानना। प्रभु = समर्थ। वर = पति।

[८]

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबन के, जिन जिन कर जोरे॥ १॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत थोरे।
दइ जग जहँ लगि संपदा, सुख गज रथ घोरे॥ २॥
गाँव बसत मैं वामदेव, कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥ ३॥
वेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूंध्यो चहैं, सठ साखि सिहोरे॥ ४॥

---

(१) गुणनिधि नाम ब्राह्मण चोर था—शिवजी के ऊपर चढ़ कर मंदिर का घंटा उतार रहा था। पुजारियों ने देख उसे ऐसा मारा कि वह मर गया; परन्तु शिवजी ने उस पर दया विचार उसे कैलास-वास दिया।

हे शिवजी ! तुम देवताओं में बड़े दानी, बड़े कल्याणकारी और भोले हो (अर्थात् सहज में प्रसन्न हो जाते हो) । जिस जिसने तुम्हें हाथ जोड़े उसके दुःख तुमने दूर कर दिये ॥१॥ जिसने (तुम्हारी) सेवा की, तुम्हारा स्मरण किया और थोड़े से अक्षत तथा बेलपत्रों से पूजन किया, उसे तुमने संसार में जहाँ तक दौलत और हाथी, घोड़े, रथ आदि का सुख है (सब ही) दिया ॥२॥ हे शिवजी ! मैं आपके गाँव (अर्थात् काशीपुरी) में रहता हूँ (मुझे भी आपसे माँगना उचित है) परन्तु मैंने कभी (किसी बात का) निहोरा नहीं किया (कि मुझे अमुक वस्तु दो) । पर अब (काम क्रोध आदि) भूतों ने शरीर में बाधा कर रक्खी है (अर्थात् उन्होंने बड़ा सता रक्खा है) और वे तुम्हारे दास हैं ॥३॥ मैं बलि जाता हूँ कि उन्हें जल्दी बुला कर डाट दो (कि मुझे न सतावें) क्योंकि उनका कर्तब बड़ा दुष्टपने का है । वे मूर्ख तुलसी को उखाड़ कर सहोरे के वृक्ष की बाड़ी बनाना चाहते हैं (अर्थात् मेरे हृदय से आपकी भक्ति को मिटाकर विषय-वासना का प्रचार किया चाहते हैं) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आषत = चावल । वामदेव = शिवजी । अधिभौतिक = शरीर की बाधा—(यहाँ काम क्रोधादि से आशय है) । साखि = वृक्ष । सहोरा = थूअड़, सेहुड़ ।

[६]

सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया ।
करुनामय उदारकीरति बलि, जाउँ हरहु निज माया ॥ १ ॥
जलजनयन गुनअयन मयनरिपु, महिमा जान न कोई ।
बिनु तुअ कृपा रामपदपंकज, सपनेहुँ भगति न होई ॥ २ ॥
ऋषिय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर, अपर जीव जगमाहीं ।
तुअ पद बिमुख न पार पाव कोउ, कलपकोटि चलि जाहीं ॥ ३ ॥
अहिभूषन दूषनरिपुसेवक, देवदेव त्रिपुरारी ।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन-सोक-भयहारी ॥ ४ ॥
गिरिजामन-मानसमराल, कासीस मसान-निवासी ।
तुलसिदास हरिचरनकमल वर, देहु भगति अविनासी ॥ ५ ॥

हे कल्याणस्वरूप शिवजी ! प्रसन्न होकर दया करो । तुम दया की मूर्ति हो और तुम्हारा बड़ा यश है । मैं बलि जाता हूँ । तुम अपनी माया को हर लो ॥१॥ तुम्हारे कमल-

समान नेत्र हैं, तुम (शांति, क्षमा आदि) गुणों के स्थान और कामदेव के शत्रु हो, तुम्हारी महिमा को कोई नहीं जानता और, तुम्हारी कृपा बिना रामजी के चरण-कमलों की भक्ति स्वप्न में भी नहीं हो सकती है ॥२॥ ऋषि (जो तपस्या, यज्ञ, हवन आदि करते हैं), सिद्ध (जो अष्टांगयोग, अष्टसिद्धियों को वश कर लेते हैं), मुनि (जो मन में ही सच्चिदानन्द का ध्यान करते हैं) और मनुष्य, दैत्य, देवता, और संसार में जितने जीव हैं तुम्हारे चरणों के विमुख होने से कोई भी (इस संसार का) पार नहीं पा सकते। (भले ही) करोड़ों कल्प बीत जायँ ॥३॥ तुम सर्पों के भूषण धारण किये हो, दूषण राक्षस के शत्रु रघुनाथजी तुम्हारे सेवक हैं, तुम देवों के देव और त्रिपुरासुर के शत्रु हो। तुम अज्ञानरूपी पाले के लिए सूर्य हो; (अर्थात् जैसे सूर्य पाले का नाश कर देते हैं ऐसे ही तुम अज्ञान को दूर कर देते हो) तुम कल्याण के कर्ता, और शरणागत के शोक और भय के दूर करनेवाले हो ॥४॥ पार्वतीजी का मन सोई हुआ मानसरोवर उसमें तुम हंस-रूप होकर (वास करनेवाले) हो। काशी के पति और स्मशान-वासी हो। (हे शिवजी !) तुलसीदास को भगवान् के सुन्दर चरण-कमलों की अटल भक्ति का वरदान दो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—जलज = कमल । अयन = घर । मयन = कामदेव । दनुज = दैत्य । अहि = सर्प । नीहार = बरफ़, पाला ।

राग धनाश्री ।

[१०]

देव ! मोहतमतरनि हर रुद्र संकर सरन, हरन भय सोक लोकाभिरामं ।
बाल-ससि-भाल, सुविसाल-लोचन-कमल, काम-सत-कोटि-लावन्यधामं ॥ १ ॥
कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह-रुचिर, तरुन रवि कोटि तन-तेज भ्राजै ।
भस्मसर्वांग अरधांगसैलात्मजा, व्यालनृकपालमाला विराजै ॥ २ ॥
मौलिसंकुलजटामुकुट विद्युतछटा, तटिनिवरवारि हरिचरनपूतं ।
स्रवनकुंडल गरलकंठ करुनाकंद, सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं ॥ ३ ॥
सूलसायकपिनाकासिकर सत्रुवनदहनइव धूमध्वज वृषभजानं ।
व्याघ्र-गज-चर्म्म-परिधान विज्ञान-घन, सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं ॥ ४ ॥

ताँडवित-नृत्यपर डमरु डिंडिमप्रवर, असुभ इव भाँति कल्यान-रासी।
महाकल्पांत ब्रह्मांडमंडलदवन, भवनकैलास आसीनकासी ॥ ५ ॥
तज्ञ सरवज्ञ जज्ञेस अच्युत विभो, विस्व भवदंससंभव पुरारी।
ब्रह्मेंद्र चंद्रार्क वरुनाग्नि वसु मरुत जम, अर्च्य भवदंघ्रि सर्वेऽधिकारी ॥ ६ ॥
अकल निरुपाधि निरगुन निरंजन ब्रह्म, कर्म पथमेकमजनिर्विकारं।
अखिलविग्रह उग्ररूप सिव भूप सुर सर्वगत सर्वसर्वोपकारं ॥ ७ ॥
ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्य सुख, सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसारपथि, भ्रमत भव विमुख तवपादमूलं ॥८॥
नष्टमति दुष्ट अति, कष्टरत खेदगत, दास तुलसी संभु सरन आया।
देहि कामारि श्रीरामपदपंकजे, भक्तिमनवर्त गतभेदमाया ॥ ९ ॥

हे शिवजी! तुम अज्ञानरूपी अँधेरे के (दूर करने के) लिए सूर्यरूप हो। (अर्थात् तुम्हारे दर्शन करते ही अज्ञान दूर हो जाता है)। हे रुद्र! हे कल्याणकारी! मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम भय शोक के हरनेवाले और संसार को प्रसन्न करनेवाले हो। बाल चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये, कमल समान सुन्दर बड़े बड़े नेत्रवाले और सौ करोड़ कामदेवों के समान सुन्दरता के स्थान हो ॥१॥ (१) शङ्ख, कुंद, चन्द्रमा और कर्पूर के समान तुम्हारा सुन्दर (गौर) शरीर है, और करोड़ों तरुण सूर्यों के समान उस शरीर का तेज चमकता है, सब अंग में भस्म रमाये हो, तुम्हारे (२) आधे अंग में

(१) शरीर की उपमा शंख, कुंद, चन्द्रमा और कर्पूर से इसलिए दी है कि एक तो इन चारों का गौर वर्ण है; दूसरे भीतरी भाव यह है कि शिवजी का शरीर शंख समान चिकना, कुंद समान कोमल, चन्द्र समान शीतल और कर्पूर समान सुगंधित है।

(२) एक दिन जब शिवजी भोजन करने बैठे उस समय उन्होंने पार्वतीजी को बुलाया कि आओ तुम भी भोजन कर लो। यह सुन उन्होंने कहा कि मैंने अभी विष्णुसहस्रनाम का पाठ नहीं किया है; पाठ करके आऊँगी। शिवजी ने कहा कि, "राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने" अर्थात् हे सुन्दरमुखी! राम का नाम एक बार लेना विष्णु के हज़ार नाम के बराबर है। यह सुन पार्वतीजी राम का नाम लेकर भोजन करने लगीं। शिवजी ने उन्हें अपने वचन पर आरूढ़ देख बड़ी प्रीति से अपने अर्द्धाङ्ग में स्थान दिया।

पार्वतीजी (शोभायमान) हैं और तुम्हारे (गले में) सर्प तथा नरमुंडों की मालाएँ विराजमान हैं ॥ २ ॥ शिर पर जटा-जूटों का मुकुट पहिरे (उसके ऊपर) बिजली के समान चमकती हुई गंगाजी को धारण किये (कि जिनका) सुन्दर जल भगवान् के चरणों से (निकलने के कारण) पवित्र है। कानों में (सर्पों के) कुंडल पहने, गले में विष धरे, दया के मूल (अर्थात् करनेवाले), सच्चिदानन्दस्वरूप, योगी का वेश धारे (ऐसे) तुमको प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ तुम त्रिशूल, बाण, धनुष और तलवार इनको हाथों में लिये, शत्रुरूपी वन को जलाने के लिए अग्निरूप (अर्थात् तुरन्त भस्म करनेवाले), नादिये पर चढ़े हुए, व्याघ्र और गज के चर्म के वस्त्र धारण किये, ब्रह्मज्ञान के मेघरूप अर्थात् बड़े ब्रह्मज्ञानी और सिद्ध, देवता, मुनि और मनुष्यों से सेवा करने योग्य हो ॥४॥ तुम तांडवनृत्य करते हुए, अति सुन्दर डमरू को डिम डिम बजाते हुए, भयंकर भेस किये, कल्याण की राशि, महाप्रलय में ब्रह्मांड भर के नाशक, कैलास के वासी, काशी में (आसन लगाये) बैठे हुए हो ॥५॥ तुम ईश्वर के जाननेवाले, सबके ज्ञाता, यज्ञों के स्वामी और अविनाशी हो और यह संसार का वैभव तुम्हारे ही अंश से उत्पन्न हुआ है, और तुम त्रिपुरासुर के शत्रु हो। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र सूर्य, वरुण, अग्नि, वसु, वायु और यम सबने तुम्हारे ही चरणों का पूजन कर अपना अपना अधिकार पाया है ॥ ६ ॥ तुम कलारहित हो (अर्थात् चन्द्रमा के समान कभी घटते बढ़ते नहीं हो), उपाधिरहित (अर्थात् शुद्धस्वरूप) हो, निर्गुण (कहिए सत, रज, और तम से रहित) हो, निरंजन (माया-मोह-शून्य), परब्रह्म और कर्म के मार्ग में एक ही हो, तुम अजन्मा, और विकार-रहित (अर्थात् निर्मलरूप) हो। सब ब्रह्मांड तुम्हारा ही विराटरूप है, तुम भयंकर होने पर भी मंगलरूप हो, देवताओं के राजा हो, सबमें रम रहे हो, और सबका सब भाँति भला करनेवाले हो ॥ ७ ॥ ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, मोक्ष, सुख और सुन्दर सौभाग्य (ये सब) हे शिव ! तुम्हारे प्रसन्न होने से मिलते हैं, तो भी मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि तुम्हारे चरणों के आश्रय से विमुख होकर और संसारी मार्ग में प्रवृत्त होकर संसार में भ्रमते फिरते हैं (अर्थात् ८४ योनि भुगतते हैं) ॥८॥ हे शिवजी ! मैं बुद्धिहीन, दुष्ट तुलसीदास बड़े कष्ट में पड़ कर और दुखी होकर तुम्हारी शरण में आया हूँ सो हे कामारि ! श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों में भेद-माया-रहित अविचल भक्ति दो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—लोक + अभिराम (प्रसन्नकारक)। कुंद + इन्दु। सर्व + अंग। अर्द्ध + अंग। सैल + आत्मजा (पुत्री)। सत् + चित् + आनन्द। वन्दे + अवधूतं (योगी)। पिनाक + असि (तलवार)। जज्ञ + ईस। भवत् (तुम्हारा) + अंस। ब्रह्म + इन्द्र। चन्द्र + अर्क। वरुन + अग्नि। भवत् + अंघ्रि (चरण)। सर्व + अधिकारी। पथं + एकं + अज। सर्व + उपकारं। तत् + अपि। काम + अरि। भक्तिं + अनवरत (सदा)।

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य । लावन्य = सुन्दरता । विग्रह = शरीर । नृ = मनुष्य । कपाल = मुंड । मौलि = शिर । संकुल = व्याप्त । तटिनी = नदी (गंगाजी) । पूत = पवित्र । स्रवन = कान । धूमध्वज = अग्नि । यान = सवारी । परिधान = वस्त्र । घन = पूर्ण वा मेघ । प्रवर = बड़ा सुन्दर । आसीन = बैठे हुए । अर्घ्य = पूजन करके । विभव = वैभव । कैवल्य = मुक्ति । अनवरत = अटल ।

[११]

देव ! भीषनाकार भैरव भयंकर भूतप्रेतप्रमथाधिपति विपतिहरता ।
मोहमूषकमार्जार संसारभयहरन तारनतरन अभयकरता ॥ १ ॥
अतुलबल विपुलविस्तार विग्रह गौर, अमल अतिधवल धरनीधराभं ।
सिरसि संकुलित-कल-जूटपिंगलजटा, पटल-सत-कोटि विद्यु-तछटाभं ॥ २ ॥

भ्राज विबुधापगा आपपावनपरम मौलिमालेव सोभाविचित्रं ।
ललित लल्लाटपर राज रजनीस-कल-कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं ॥ ३ ॥

इंदुपावकभानुनयन, मर्दनमयन, ज्ञानगुनअयन विज्ञानरूपं ।
रवन गिरिजा, भवन-भूधराधिप सदा, स्रवन-कुंडल वदन-छविअनूपं ॥ ४ ॥

चर्म असि सूल धर, डमरु सर चाप कर, जानवृषभेस, करुना-निधानं ।

जरत सुर-असुर नर-लोक सोकाकुलं, मृदुल-चित अजित कृत-गरल-पानं ॥ ५ ॥

भस्मतनुभूषनं व्याघ्रचर्मांबरं, उरगनरमौलि उरमाल-धारी ।
डाकिनी साकिनी खेचरं भूचरं, यंत्र मंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी ॥६॥
कालअतिकाल कलिकाल-व्यालाद-खग त्रिपुर-मर्दन भीम कर्मभारी ।

सकल-लोकांत-कल्पांत-सूलाग्र-कृतदिग्गजाऽव्यक्तगुन नृत्यकारी ॥ ७ ॥

पाप-संताप-घन-घोर-संसृति दीन, भ्रमत जगजोनि नहिं कोपि त्राता।

पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र बंधु, गुरु जनक जननी विधाता ॥ ८ ॥

यस्य गुन-गन गनति विमल-मति सारदा, निगम-नारद-प्रमुख ब्रह्मचारी।

सेस सर्वेस आसीन आनंदवन, दासतुलसी प्रनत त्रास-हारी ॥ ९ ॥

अब काशी के क्षेत्रपाल भैरवरूप शिवजी की स्तुति करते हैं—

हे भयानकमूर्त्ति! भैरवनाथ! तुम (सहज ही) भय दिखानेवाले, भूत-प्रेत और शिवगणों के स्वामी और दुख के हरनेवाले हो। मोहरूपी मूषक (कि जो बड़े बड़े ज्ञानियों के जप-तपरूपी वस्त्रों को कतर डालता है और उनकी भक्तिरूपी खेती को खा जाता है उस) के लिए तुम बिलावरूप हो (अर्थात् उसे सहज में भक्षण कर जाते हो), संसार के भय (अर्थात् आवागमन) के छुड़ानेवाले, (दूसरों को) तारनेवालों के भी तारनेवाले और स्वयं तरण (मुक्तरूप) हो, और (भक्तों को) अभय करनेवाले हो ॥ १ ॥ तुम्हारा बल अतोल है, तुम्हारे शरीर का बड़ा विस्तार है (और वह शरीर) गौर और बड़ा निर्मल है और बड़े श्वेत पर्वत (हिमालय) की सी उसकी प्रभा है। तुम्हारे शिर पर घनी पीली जटाओं का सुन्दर जूट बँधा है और (उन पीली जटाओं की) पाँति की छटा सौ करोड़ बिजली की छबि के समान चमक रही है ॥ २ ॥ तुम्हारे माथे पर बड़े पवित्र जलवाली, गंगाजी माला के समान विराजमान हैं और उनकी शोभा बड़ी अनोखी है। तुम अपने सुन्दर मस्तक पर रात्रि-पति चन्द्रमा की कला को धारण किये हो और कुबेर के मित्र हो। हे शिवजी! ऐसे तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ चन्द्रमा, अग्नि, और सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं, तुम काम के भस्म करनेवाले हो, ज्ञान और (क्षमा, दया आदि) गुणों के स्थान और आत्मज्ञान के स्वरूप हो। पार्वती के साथ विहार करनेवाले, पर्वतों का स्वामी (कैलास) तुम्हारा सदा वास-स्थान है, कानों में (सर्पों के) कुण्डल पहिरे हो, और तुम्हारे मुख की छबि उपमारहित है ॥ ४ ॥ ढाल, तलवार,

त्रिशूल, डमरू, बाण और धनुष को हाथ में धारण किये और नादिये पर सवारी किये हो, (ऐसे भयङ्कर रूप होने पर भी) दया के स्थान (अर्थात् करनेवाले) हो क्योंकि (समुद्र मथते समय) जब देवता और दैत्य जले जाते थे और मनुष्य-लोक शोक से व्याकुल था तब कोमल चित्तवाले और किसी से जीते जाने योग्य नहीं ऐसे तुमने ही विष को पी लिया था ॥ ५ ॥ (फिर विरक्त कैसे कि) शरीर में आभूषणों की जगह भस्म रमाये, व्याघ्र चर्म का वस्त्र पहिरे, गले में सर्प और मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहिरे, डाकिनी, शाकिनी, खेचर, भूचर और यंत्र मंत्र इनका नाश करने में बड़े बली और पाप के शत्रु अर्थात् नाशक हो ॥ ६ ॥ तुम काल के भी काल हो और कलि कालरूपी सर्प के भक्षण करने को गरुड़रूप हो, त्रिपुरासुर के नाशकर्ता, और बड़े भयंकर कर्म करनेवाले हो (वह क्या भयंकर कर्म है कि) सब लोकों का नाश करनेवाला जो प्रलयकाल उसमें त्रिशूल की नोक पर दिशाओं के हाथियों को छेद कर (नहीं है प्रकट गुण जिसमें ऐसे) निर्गुणरूप को धारण कर नृत्य करते हो ॥ ७ ॥ मैं पाप और सन्तापों से भरे हुए इस भयंकर संसार में दुखी होकर जगत् की (अनेक) योनियों में भ्रमता फिरता हूँ और कोई मेरा रक्षक नहीं है । हे भैरवरूप ! हे रामरूपी रुद्र ! मेरी रक्षा करो, क्योंकि तुम ही मेरे बन्धु, गुरु, पिता, माता और विधाता हो ॥ ८ ॥ (जिनके कृपा उदारता आदि) गुणों के समूहों को निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती वेद और नारद आदि ब्रह्मचारी तथा शेषनाग वर्णन करते हैं ऐसे सबके स्वामी, आनन्दवन (काशी) में बैठे हुए और भय के दूर करनेवाले (शिवजी) को मैं तुलसीदास प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—भीषन + आकार । प्रमथ(शिवगण) + अधिपति । धरनीधर (पर्वत) + आभं । विबुध (देवता) + आपगा (नदी) । माला + इव । भूधर + अधिप । वृषभ (बैल) + ईस । सोक + आकुल । कल्मष (पाप) + अरि (शत्रु) । चर्म + अंबर । । लोक + अंत । कल्प + अंत । सूल + अग्र । दिग्गज + अव्यक्त ।

शब्दार्थ—आभं = कांति । कल = सुन्दर । पटल = पाँति । रजनीस = रात्रि का स्वामी । कलाधर = चन्द्रमा । आप = जल । धनद = कुबेर । मयन = काम । चर्म = ढाल । असि = तलवार । जान (यान) = सवारी । खेचर = आकाशचारी । संसृति = संसार । खग = गरुड़ । भूचर = भूमिचर । अव्यक्त = अप्रकट । प्रमुख = आदि ।

[१२]

देव ! संकरं संप्रदं सज्जनानंददं, सैलकन्या-वरं परमरम्यं ।
काम-मद-मोचनं तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ॥ १ ॥
कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-गौरं सिवं, सुंदरं सच्चिदानंदकंदं ।
सिद्धसनकादिजोगींद्रवृंदारका, विष्णुविधिवंद्यचरनारविंदं ॥ २ ॥

ब्रह्मकुल-वल्लभं सुलभमति-दुर्ल्लभं, विकटवेषं विभुं वेदपारं ।
नौमि करुनाकरं गरलगंगाधरं, निर्गुनं निर्मलं निर्विकारं ॥ ३ ॥
लोकनाथं सोकसूलनिर्मूलिनं, सूलिनं मोह-तम-भूरि-भानुं।
कालकालं कलातीतमजरं हरं, कठिनकलिकालकाननकृसानुं ॥ ४ ॥
तज्ञमज्ञानपाथोधिघटसंभवं, सर्वगं सर्वसौभाग्यमूलं ।
प्रचुरभवभंजनं प्रनतजनरंजनं, दासतुलसीसरन सानुकूलं ॥ ५ ॥

कल्याण करनेवाले, सुख के दाता, सज्जनों के आनन्द देनेवाले, पार्वती के पति, बड़े सुन्दर, कामदेव के मद को छुड़ानेवाले, कमल से नेत्रवाले और भक्तिभाव से मिलनेवाले शिवजी को भजता हूँ ॥ १ ॥ वे शंख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौरवर्ण, मङ्गलकर्ता, बड़े मनोहर और सच्चिदानन्द की जड़ अर्थात् मूर्ति हैं। सिद्ध, सनकसनन्दन, योगियों में इन्द्र (अर्थात् याज्ञवल्क्य आदि), देवता, विष्णु, और ब्रह्मा ने उनके चरण-कमलों की वन्दना की है ॥ २ ॥ वे ब्राह्मण-कुल के प्यारे हैं (अथवा उन्हें ब्राह्मण-कुल प्यारा है), (भक्तों को) सहज में प्राप्त होनेवाले, (दुष्टों को) बड़े दुःख से मिलनेवाले, भयंकर भेषवाले (अर्थात् मुण्डमाल सर्प आदि धारण किये), समर्थ और वेद से परे अर्थात् जिनका पार वेद भी नहीं पाते। ऐसे दया की खान, (कंठ में) विष और (शिर पर) गंगा को धारण किये, शुद्धस्वरूप (सत, रज, और तम तीनों) गुणों से रहित और (काम आदि) विकार से शून्य (ऐसे शिवजी) को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ लोक की रक्षा करनेवाले, शोक और पीड़ा का जड़ से नाश करनेवाले, (हाथ में त्रिशूल लिये और मोहरूपी बड़े अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्यरूप। काल के भी काल (अर्थात् काल जो सबको भक्षण करता है उसके भी काल), कला से परे (अर्थात् सदा एकरस), वृद्धावस्था-रहित, संहारकर्ता, कठिन कलिकाल-रूपी वन को अग्निरूप (अर्थात् भस्म करनेवाले) हैं ॥ ४ ॥ ईश्वर के जाननेवाले, अज्ञान-रूपी समुद्र के (सोखने के) लिए अगस्त्यरूप, सबमें व्याप्त, सब सौभाग्य की जड़ (अर्थात् सब भूषण, वसन, धन, यान आदि के दाता), अपार संसार के नाशक, भक्त जनों के प्रसन्न करनेवाले ऐसे कृपालु शिवजी की शरण तुलसीदास है ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—सज्जन + आनंददं । कुंद + इंदु । योगी + इंद्र । चरन + अरविंदम् । सुलभं + अति दुर्लभम् । कलातीतं + अजरं (वृद्धावस्था-रहित) । तज्ञम् + अज्ञान ।

शब्दार्थ—सं = कल्याण । सैलकन्या = पर्वत की पुत्री पार्वती । वर = पति । तामरस = कमल । कंद = जड़ । इंदु = चन्द्रमा । वृंदारक = देवता । अरविंद = कमल । भूरि = बहुत । अतीत = दूर, परे । कानन = वन । कृसानु = अग्नि । पाथोधि = समुद्र । घटसम्भव = अगस्त्य । प्रचुर = बहुत । सानुकूल = कृपालु ।

राग वसन्त।

[१३]

सेवहु सिवचरनसरोजरेनु। कल्यान अखिलप्रद कामधेनु ॥ १ ॥
कर्पूरगौर करुनाउदार। संसारसार भुजगेन्द्रहार ॥ २ ॥
सुखजन्मभूमि महिमाअपार। निर्गुन गुननायक निराकार ॥ ३ ॥
त्रयनयन मयनमर्दन महेस। अहँकारनिहारउदितदिनेस ॥ ४ ॥
वरबालनिसाकरमौलिभ्राज। त्रैलोकसोकहर प्रमथराज ॥ ५ ॥
जिन्हकहँ विधि सुगति न लिखी भाल।
तिन्ह की गति कासीपति कृपाल ॥ ६ ॥
उपकारी कोऽपर हर समान। सुर असुर जरत कृत गरलपान ॥ ७ ॥
बहु कलप उपाय करिय अनेकु। विनु संभु कृपा नहिं भव विवेकु ॥ ८ ॥
विज्ञानभवन गिरिसुतारमन। कह तुलसिदास मम त्राससमन ॥ ९ ॥

शिवजी के चरण-कमलों की रज का सेवन करो। (कैसी रज है सो आगे कहते हैं) जो संपूर्ण कल्याण देने के लिए कामधेनु के समान (अर्थात् सब फल देनेवाली) है ॥ १ ॥ (शिवजी कैसे हैं कि) कपूर के समान गौर-वर्ण, दया के दाता (अर्थात् करनेवाले), संसार के सार (अर्थात् सबके तत्त्व) और सर्पराज का हार पहिरे हुए हैं ॥ २ ॥ वे सुख की जन्मभूमि (अर्थात् सुखों के उत्पन्न करनेवाले हैं), उनकी महिमा का पार नहीं, (वे सत, रज, तम) गुणों से रहित (अर्थात् उनके वश में नहीं, और कृपालुता उदारता आदि) गुणों के नायक हैं, और निराकार (अर्थात् आकार जो पंचभौतिक माया उससे रहित शुद्ध आत्मस्वरूप) हैं ॥ ३ ॥ वे तीन नेत्र-वाले, कामदेव के नाशक, बड़े समर्थ और अहंकाररूपी कोहिरे को दूर करने के लिए उदय हुए सूर्यरूप हैं ॥ ४ ॥ वे सुन्दर बाल-चन्द्रमा को शिर पर धारण किये, त्रिलोकी का शोक हरनेवाले और प्रमथ आदि गणों के राजा हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा ने जिनके माथे में सुगति (मुक्ति) नहीं लिखी उनको भी शरण देनेवाले ऐसे दयालु और काशी के पति हैं ॥ ६ ॥ शिवजी के समान दूसरा कौन उपकार करनेवाला है क्योंकि (समुद्र मथते समय जब) देवता, दैत्य जले जाते थे तब वे विष (१) पी गये ॥ ७ ॥ अनेक कल्पों तक बहुत से (शम,

(१) तीसरे भजन की पहली टिप्पणी देखो।

दम आदि) उपाय करके भी शिवजी की दया बिना संसार का ज्ञान (अर्थात् संसार झूठा है वा सच्चा) नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्मानन्द के भवन अर्थात् मूर्ति ऐसे पार्वती-रमण, मेरे भय के दूर करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अखिल = सब। अयन = काम। निहार = बरफ़, पाला। मौलि = सिर।

[१४]

देखो देखो वन बन्यो आजु उमाकंत।
मनो देखन तुमहिं आई रितु वसन्त ॥ १ ॥
मनो तनुदुति चम्पक कुसुम-माल।
वर वसन नील नूतन तमाल ॥ २ ॥
कलकदलि-जंघ पद कमल लाल। सूचत कटि केहरि गति मराल ॥
भूषन प्रसून बहु विविध रंग। नूपुर किंकिनि कल रव विहंग ॥४॥
कर नवल बकुल पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल ॥५॥
आनन सरोज, कच मधुप पुंज। लोचन विसाल नवनील कंज ॥६॥
पिक वचन चरित वर बरहि कीर। सित सुमन हास, लीलासमीर ॥७॥
कहि तुलसिदास सुनु सिवसुजान। उर बसि प्रपंच रचै पंचबान ॥८॥
करि कृपा हरिय भ्रमफंदु कामु। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि रामु ॥

गुसाईंजी पहले शिवजी की विनय तो कर चुके अब पार्वतीयुक्त शिवजी की प्रार्थना करते हैं। यहाँ मानो पद के होने से (१) उत्प्रेक्षा अलंकार है।

हे शिवजी ! देखो देखो आज तुम वन बने हो। और (तुम्हारे अर्द्धांग में पार्वती क्या है) मानो वसंत ऋतु तुम्हें देखने को आई है ॥ १ ॥ पार्वती के शरीर की कांति मानो चंपा के फूलों की क़तार है। सुन्दर नील वस्त्र मानो नये तमाल के पत्ते हैं ॥ २ ॥ जंघा मानो सुन्दर कदली हैं और चरण मानो लाल कमल हैं। कमर सिंह को और गति हंस को जताती है अर्थात् सिंह की सी पतली कमर है और हंस की सी सुन्दर चाल है ॥ ३ ॥ भूषण मानो अनेक प्रकार के रंग के फूल हैं और पायज़ेब और करधनी

---

(१) उत्प्रेक्षा अलंकार वह है जहाँ उपमेय में उपमान का भेद होने पर भी कुछ कल्पित आरोप कर लिया जावे। मानता हूँ, जानता हूँ, इत्यादि शब्द से उत्प्रेक्षा समझी जाती है।

मानो पत्तियों के शब्द हैं ॥ ४ ॥ हाथ मानो नवीन बकुल और आम के पत्ते हैं। (अर्थात् उनके गुद्दे बाहु और कोमल पत्ते हथेलियाँ हैं) कुच मानो श्रीफल हैं और चोली मानो लताओं का जाल है ॥ ५ ॥ मुख मानो कमल है, बाल मानो भौंरों का पुञ्ज है। विशाल नेत्र मानो नवीन (खिले) नीले कमल हैं ॥ ६ ॥ वचन मानो कोयल के शब्द हैं, सुन्दर चरित्र मानो मोर और तोते हैं (कि जो नाच कूद रहे हैं), हास्य मानो सुन्दर श्वेत पुष्प हैं और लीला मानो (शीतल, मन्द, सुगन्ध) पवन है ॥ ७ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि हे चतुर शिवजी! सुनो। (वसंत ऋतु में कामोद्दीपन बहुत होता है इसलिए) यह कामदेव मेरे हृदय में बस कर बड़ा फरफन्द रचता है (अर्थात् मन को इन्द्रियों के द्वारा विषयों में लगाता है सो कामदेव ने जो झूठे संसार को सच्चा दिखाने के लिए भ्रमरूपी फंदा गेरा है) उस भ्रमफंद को तुम कृपा कर दूर करो (क्योंकि तुम कामदेव के शत्रु हो) कि जिससे सुख की राशि रामजी हृदय में वास करें ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—कल = सुन्दर। सूचत = जताती है। केहरि = सिंह। मराल = हंस। रव = शब्द। रसाल = आम। कच = बाल। कंज = कमल। बरहि = मोर। पंचबान = कामदेव।

राग मारू।

देवी-स्तुति।

[१५]

दुसह-दोष-दुखदलनि करु देवि दाया।
बिस्वमूलाऽसि जनसानुकूलाऽसि करसूलधारिनि महामूलमाया ॥
तडितगर्भांगि सर्वांगसुंदरलसत दिव्यपट भव्यभूषन बिराजै।
बालमृगमंजुखंजनविलोचनि चन्द्र-वदनि लखि कोटि रति-मार लाजै ॥ २ ॥
रूप सुख सील-सीमाऽसि भीमाऽसि रामाऽसि वामाऽसि वरबुद्धि बानी।
छमुखहेरंब-अंबासि जगदंबिके संभु-जायाऽसि जै जै भवानी ॥ ३ ॥
चंड भुजदंडखंडनि बिहंडनि महिष मुंड मदभंगकर अंग तोरे।

सुंभ निःसुंभकुंभीस रनकेसरिनि क्रोधवारिधि बैरि बृंद बोरे ॥४॥
निगम आगम अगम गुर्वि तव गुन कथन, उर्विधर करत जेहि सहसजीहा।
देहि मा मोहि पनु प्रेम यहु नेमु निजु राम घनस्याम तुलसी पपीहा ॥ ५ ॥

हे देवि! हे दुःसह दोषों और दुःखों का नाश करनेवाली! (मेरे ऊपर) दया करो। तुम संसार की मूल (उत्पत्तिस्थान) हो, भक्तों के ऊपर अनुकूल हो, (दुष्टों के लिए) बाण और त्रिशूल धारण किये हो और माया की मुख्य जड़ हो (अर्थात् उसे उत्पन्न करनेवाली हो) ॥ १ ॥ जिनके प्रत्येक भाग में बिजली भरी है ऐसे तुम्हारे सब सुन्दर अंग शोभायमान हैं, (उनमें) दिव्य वस्त्र और परम सुन्दर आभूषण धारण किये हो। मृगछौना और खंजन के से तुम्हारे सुन्दर नेत्र हैं और चन्द्रसमान मुख है और तुम्हें देख सौ करोड़ रति और कामदेव लजाते हैं ॥ २ ॥ तुम रूप, सुख और शील की सीमा हो (अर्थात् तुमसे बढ़ कर किसी में रूप आदि नहीं और दुष्टों के डराने के लिए) भयंकररूप (अर्थात् काली) हो, तुम ही लक्ष्मी हो, तुम ही शिव की पत्नी हो और तुम ही सुन्दर बुद्धिवाली सरस्वती हो। तुम स्वामिकार्तिक और गणेशजी की माता हो और हे जगत् की माता! तुम शिवजी की स्त्री हो सो हे भवानी! तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ तुम चंड राक्षस के भुजदंडों को तोड़नेवाली, और महिषासुर नाम असुर का नाश करनेवाली हो। तुमने मुंड के घमंड का नाश कर उसके अंगों को तोड़ा है। तुम शुंभ निशुंभरूपी मतवाले हाथियों के रण में (उनके फाड़ने के लिए) सिंहनीरूप हो और तुमने अपने क्रोधरूपी समुद्र में शत्रुओं के समूह को डुबो दिया है ॥ ४ ॥ वेद, शास्त्र और जिनके हज़ार जीभ हैं ऐसे शेषनाग तुम्हारे गुणों का वर्णन करते हैं पर तुम्हारा गुण-वर्णन (उनके लिए) बड़ा भारी कठिन है (अर्थात् उनसे भी हो नहीं सकता)। हे माता! मुझ तुलसीदास को अपने मेघसमान श्याम-स्वरूप रामजी में ऐसा प्रण, प्रेम और नेम दो कि जैसा चातक का प्रण, प्रेम और नेम श्याम मेघ में होता है (अर्थात् प्राण भले ही जाते रहें पर प्रेम के नेम का प्रण न छूटे) ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—मूल + असि। अनुकूला + असि। सीमा + असि। भीमा (भयंकर) + असि। रामा + असि। वामा + असि। अम्बा + असि। जाया (स्त्री) + असि ॥

शब्दार्थ—मूल = जड़, उत्पत्तिस्थान। असि = हो। भव्य = सुन्दर। मार = काम। छमुख = स्वामिकार्तिक। हेरंब = गणेश। वृंद = समूह। चंड, सुंभ, निसुंभ ये सब राक्षस थे इनको देवी ने मारा है। इनकी कथा मार्कण्डेयपुराण में है। गुर्वि = भारी। उर्विधर = शेषनाग। सहस-जीहा = हज़ार जीभवाला।

राग रामकली।

[१६]

जय जय जगजननि देवि सुरनरमुनिअसुरसेवि, भक्तिमुक्ति-दायनि भयहरनि कालिका।

मंगल मुद सिद्धि सदनि पर्वसर्वरीस-बदनि तापतिमिरतरुनतरनि-किरनमालिका॥ १॥

वर्मचर्म करकृपान सूलसेलधनुषबान धरनि दलनि दानवदल, रन-करालिका।

पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका॥ २॥

जय महेसभामिनी अनेकरूपनामिनी समस्तलोकस्वामिनी हिमसैलबालिका।

रघुपतिपद परम प्रेम तुलसी चह अचलनेम देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका॥ ३॥

हे जगत् की माता! हे देवि! तुम्हारी जय जय। देवता, मनुष्य, मुनि और दैत्य तुम्हारी सेवा करते हैं और तुम भक्तों को मोक्ष देनेवाली और उनका भय हरने के लिए कालिका हो। तुम आनन्द-मंगल और सिद्धियों की स्थान (अर्थात् देने-वाली) हो, पूर्णिमा की रात्रि के चन्द्रमा के समान तुम्हारा मुख है और (कायिक, वाचिक, मानसिक) तापरूपी अंधकार को तरुण (मध्याह्न के) सूर्य की किरणों की माला अर्थात् समूह हो (भाव—जैसे सूर्य से अँधेरा नहीं रहता वैसे ही तुम्हारी कृपा से ताप नष्ट हो जाता है)॥ १॥ तुम बख़्तर (पहरे) और हाथों में ढाल, तलवार, त्रिशूल, सांगी, धनुष और बाण धारण किये हो और दैत्यों की सेना का नाश करने-वाली और युद्ध में भयानकरूप हो और पूतना, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी समेत भूत, ग्रह, वैतालरूपी खगों और मृगों की पाँति के (पकड़ने के) लिए

जालरूप हो ॥ २ ॥ हे पार्वतीजी ! तुम्हारी जय हो। तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं। तुम सब संसार की स्वामिनी और हिमाचल की पुत्री हो। मैं तुलसीदास रघुनाथजी के चरणों में भारी प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ; (सो हे माता !) प्रसन्न होकर दो और हे भक्तजनों की पालन करनेवाली ! मेरी रक्षा करो ॥ ३ ॥

सन्धिविभाग—मृगालि = मृग + अलि (पंक्ति)। सर्वरीस = सर्वरी (रात्रि) + ईस (स्वामी)।
शब्दार्थ—पर्व = पूनो। सर्वरीस = चंद्र। तरनि = सूर्य। वर्म = बख्तर। चर्म = ढाल। सेल = सांगी।

राग रामकली।

गंगा-स्तुति।

[१७]

जै जै भगीरथनंदिनि मुनिचयचकोरचंदनि नर-नाग-विबुध-वंदिनि जय जह्नुबालिका।
विष्णुपदसरोजजासि, ईससीस पर बिभासि, त्रिपथगासि पुन्य-रासि पापछालिका ॥ १ ॥
विमल विपुल बहसि वारि, सीतल त्रयतापहारि, भवँरवरविभंगतर तरङ्गमालिका।
पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवलधार, भंजनि भवभार, भक्ति-कल्प थालिका ॥ २ ॥
निजतटवासी विहंग जल थल चर पसु पतंग, कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवंस-वीर विचरत मति देहि मोहमहिषकालिका ॥ ३ ॥

हे भगीरथ की पुत्री ! तुम्हारी जय हो। तुम मुनियों के समूहरूपी चकोरों को (आनन्द देने के लिए) चाँदनी रूप हो ! मनुष्य, नाग, और देवता तुम्हें माथा नवाते हैं। हे जह्नु की पुत्री ! तुम्हारी जय हो। तुम विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न हुई हो, शिवजी के मस्तक पर शोभायमान हो, (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन) तीन मार्गों से गई हो, पुण्य की राशि और पापों की धोनेवाली हो ॥ १ ॥ तुम गहरे और

निर्मल जल को धारण किये हो, जो कि शीतल और तीनों (१) तापों का हरनेवाला है। और तुम सुन्दर भँवर और बड़ी चंचल तरंगों की माला धारण किये हो (अर्थात् तुम्हारे जल में सुन्दर भँवरें पड़ रही हैं और चंचल तरंगें उठ रही हैं)। नगर के रहनेवालों ने जो पूजा के समय (चन्दन, फूल, दूध, आदि वस्तु) भेंट चढ़ाई है उससे तुम्हारी चन्द्रमा के समान उजली धारा शोभायमान हो रही है। तुम संसार के भार (आवा-गमन) का नाश करनेवाली हो (अर्थात् जो तुममें स्नान करता है वा तुम्हारा जल पीता है वह मुक्त हो जाता है) और तुम भक्तिरूपी कल्पवृक्ष के लिए थाँवला रूप हो (अर्थात् तुम्हारे सेवन से रामभक्ति सदा बनी रहती है)॥ २॥ तुम अपने तट के रहनेवाले पक्षी, जलचारी, थलचारी, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी सबका एक सा पालन करती हो (अर्थात् सबको मुक्त कर देती हो)। हे मोहरूपी महिषासुर को (मारने के लिए) काली रूप! मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं तुलसीदास तुम्हारे किनारे किनारे रघुवंश के वीर (श्रीरामचन्द्रजी) का स्मरण करता हुआ फिरता रहूँ॥ ३॥

सन्धिविभाग—सरोज (कमल से) + जा (उत्पन्न हुई) + असि (हो)। त्रिपथगा + असि।

शब्दार्थ—चय = समूह। जह्नु = एक ऋषि (जह्नु ऋषि गंगा-तट पर रहते थे। एक बार गंगाजी ऐसी चढ़ीं कि ऋषि का आश्रम डूब गया। यह देख ऋषि गंगाजी का पान कर गये। परन्तु जब भगीरथजी ने बड़ी विनय की तब फिर उन्हें प्रकट कर दिया इसलिए गंगा जह्नु की पुत्री कहलाती हैं)। विपुल = बहुत। विभंगतर = बड़ी चंचल। थालिका = थाँमला। सरिस = बराबर।

[१८]

जयति जय सुरसरी जगदखिल पावनी।
विष्णुपदकंज-मकरंद इव अंबुवर वहसि, दुख दहसि अघवृंद-विद्रावनी॥ १॥
मिलित जलपात्र अज जुक्त हरिचरनरज विरजवरवारि त्रिपुरारि सिर धामिनी।
जह्नुकन्या धन्य पुन्यकृतसगरसुत, भूधरद्रोनि विद्दरनि बहुनामिनी॥ २॥

---

(१) तीन ताप अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुतकामिनी ।

स्वर्गसोपान विज्ञानज्ञानप्रदे मोह मद मदन पाथोज हिमजामिनी ॥

हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीर बर, मध्यधाराविसद विस्व-अभिरामिनी ।

नीलपरजंककृतसयनसर्पेस जनु, सहससीसावलीस्रोत सुरस्वामिनी ।

अमित-महिमा अमित रूप भूपावलीमुकुटमनिवंदिते लोकत्रय-गामिनी ।

देहि रघुवीरपद प्रीति निरभर मातु, दास तुलसी त्रासहरनि भवभामिनी ॥ ५ ॥

हे गंगाजी ! तुम्हारी जय हो ! तुम सब संसार की पवित्र करनेवाली हो । विष्णु के चरण-कमल के पराग के समान सुन्दर जल को धारण कर रही हो, दुःखों को भस्म करती हो और पापों के झुंड की भगानेवाली हो ॥ १ ॥ ब्रह्माजी के कमण्डलु में भगवान् के चरणों की रज जिसमें मिली हुई है ऐसा तुम्हारा सुन्दर, निर्मल जल भर रहा है और तुम शिवजी के शिर पर रहनेवाली हो । हे जह्नु की कन्या, तुम्हें धन्य है, तुमने सगर के पुत्रों को पवित्र किया है, तुम पर्वत की घाटी का विदारण करनेवाली हो और तुम्हारे बहुत से नाम हैं ॥ २ ॥ जो यक्ष, गंधर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य अपनी स्त्रियों समेत स्नान करते हैं वे पुण्य के समूह (अर्थात् बड़े पुण्यात्मा) हो जाते हैं । तुम स्वर्ग की निसेनी हो (अर्थात् पापियों का पाप दूर कर उन्हें स्वर्ग में पहुँचा देती हो) और आत्मज्ञान तथा ज्ञान की देनेवाली हो और मोह, मद, काम-रूपी कमल (जो हृदय-तड़ाग में खिल रहे हैं उनका नाश करने) के लिए हिम ऋतु की रात्रि हो (अर्थात् सब विकारों को मिटा कर अन्तःकरण को शुद्ध कर देती हो) ॥ ३ ॥ हरे और घने बेंत तुम्हारे सुन्दर दोनों तीरों पर लग रहे हैं और उनके बीच में संसार को सुख देनेवाली तुम्हारी निर्मल धारा (बह रही) है (सो उसकी कैसी शोभा हो रही है) मानो नील रंग के पलँग पर शेषनाग सो रहे हैं और हे देवताओं की स्वामिनी !

तुम्हारे (जो हज़ारों) सोते (इधर उधर बह रहे हैं सोई मानों) शेषजी के हज़ार फनों की पंक्तियाँ हैं ॥ ४ ॥ तुम्हारी महिमा की सीमा नहीं है, तुम्हारे अनगिनत रूप हैं और राजाओं के समूह अपने मुकुट-मणियों से तुम्हें प्रणाम करते हैं। तुम तीनों लोकों के मार्ग से गई हो। हे माता! (मुझ) तुलसीदास को रघुनाथजी के चरणों की गाढ़ी प्रीति दो, (क्योंकि) तुम भय के हरनेवाली और शिवजी की पत्नी हो (कि जो सबका दुःख हरनेवाले हैं) ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—किन्नर + उरग (सर्प)। सीस + अवली (पाँति)। भूप + अवली।

शब्दार्थ—अंबु = जल। वृन्द = समूह। अज = ब्रह्मा। विरज = निर्मल। पाथोज = कमल। जामिनी = रात्रि। वानीर = बेंत। स्रोत = सोता। निर्भर = गाढ़ी, बहुत। त्रास = भय। भव = शिव।

[१९]

हरनि पाप त्रिविधताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्पबेलि मुदमनोरथ फरित ॥ १ ॥
सोहत ससिधौलधार सुधासलिलभरित।
विमलतर तरङ्ग लसत रघुवर के से चरित ॥ २ ॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित।
घोर भव अपार सिंधु तुलसी किमि तरित ॥ ३ ॥

हे गंगाजी! स्मरण करते ही तुम पापों और तीन प्रकार के तापों की हरनेवाली हो और पृथ्वी पर कल्पवेलि के समान शोभायमान हो और आनन्द और मनोरथों को सफल करती हो ॥ १ ॥ तुम्हारी धारा चन्द्रमा के समान श्वेत शोभायमान है, उसमें अमृत समान जल भर रहा है और (निर्मल) रामचरित्र के समान बड़ी निर्मल तरंगें उठ रही हैं (भाव यह है कि जैसे रामजी के चरित्र, काम क्रोधादि रहित निर्मल हैं वैसी ही तुम्हारी तरंगें निर्मल हैं) ॥ २ ॥ हे जगत् की माता गंगाजी! तुम्हारे बिना (अर्थात् जो तुम पृथ्वी पर न आतीं तो न जाने) कलियुग क्या क्या करता और भयंकर संसार-रूपी अपार समुद्र से तुलसीदास कैसे तरता ॥ ३ ॥

[२०]

ईससीस बससि त्रिपथ लससि नभपतालधरनि।
सुर नर नाग मुनि सिद्ध सुजन मंगल करनि ॥ १ ॥

देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि।
सगर-सुवन साँसतिसमनि जलनिधिजल भरनि॥ २॥
महिमा की अवधि करसि बहु विधि हरि हरनि।
तुलसी करु बानि विमल, विमल-बारि-बरनि॥ ३॥

(हे गंगे!) तुम शिवजी के शिर पर निवास करती हो, आकाश, पाताल और पृथ्वी (ये तुम्हारे) तीन मार्ग शोभित हैं (अर्थात् एक मार्ग से आकाश को, एक से पाताल को और एक से पृथ्वी पर गई हो इसलिए) देवता, मनुष्य, मुनि, नाग, सिद्ध और हरि-भक्त (इन सब) का मङ्गल करनेवाली हो॥ १॥ तुम अपने दर्शनमात्र से दुःख, दोष, पाप, (तीन प्रकार का) ताप और दरिद्रता का नाश करनेवाली हो। तुमने सगर के पुत्रों की (कि जो कपिल मुनि के शाप से भस्म हो गये थे और जिन्हें नरक होना चाहिए था) यम-यातना को दूर कर दिया, और तुम अपने जल से समुद्र को भी भरनेवाली हो (अर्थात् ऐसे बड़े और गंभीर समुद्र को भी याचक बना रक्खा है)॥ २॥ तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश की बड़ी महिमा की मर्यादा रख रही हो (अर्थात् ब्रह्मा के कमंडलु में तुम्हारा जल रहने से ब्रह्मा की, विष्णु के चरणों से निकलने के कारण विष्णु की, और शिवजी की जटा में रहने से शिव की महिमा तुमने बढ़ा रक्खी है इसलिए) तुलसी की वाणी को भी ऐसा निर्मल कर दो कि जैसा तुम्हारे निर्मल जल का रंग है॥ ३॥

शब्दार्थ—दुरित = पाप, सांसति = यम-यातना। अवधि = हद, मर्यादा।

राग बिलावल।

यमुना-स्तुति।

[२१]

गरमी के दिनों में जब यमुनाजी में थोड़ा सा जल रह गया तब कलियुग प्रसन्न होने लगा कि अच्छा है सब सूख जाय तो मेरा राज्य हो, पुण्य को निकाल पाप फैलाऊँगा। परन्तु वर्षा का जल पाकर :—

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं, निदरि लगे वहि काढ़न॥ १॥
ज्यों ज्यों जलु मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़ न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ लागे डाढ़न॥ २॥

यमुनाजी ज्यों ज्यों बढ़ने लगीं, त्यों त्यों पुण्यरूपी योधा कलिरूपी राजा को निरादर से (गरदन पकड़ कर) बाहर निकालने लगे (भाव—यमुना के बढ़ने से पुण्य की वृद्धि हुई और कलियुगरूपी अधर्मी राजा नष्ट हुआ) ॥१॥ (गरमी में यमुना का थोड़ा जल देख यमदूतों का भी मुख प्रसन्न था, कारण न यमुना में जल होगा और न कोई स्नान कर स्वर्ग जायगा, सबको हमही बाँध कर ले जायँगे) पर जैसे जैसे (वर्षा होने से यमुनाजी बढ़ीं और उनका) जल गँदला होता गया त्यों त्यों यम के दूतों का मुख काला होता गया, (अन्त में) कोई सहारा नहीं रहा (अर्थात् लाचार हो गये) और जगत् में पापरूपी जवासे को पुण्यरूपी मेघ जलाने लगे (इस पद का भाव यह है कि जैसे गरमियों में जवासा हरा होता है और वर्षा का जल पड़ते ही जल जाता है ऐसे ही कलिरूपी ग्रीष्म पाकर जो पापरूपी जवासा बढ़ा था उसे यमुना के बढ़ते ही पुण्य-रूपी मेघों ने जला दिया अर्थात् जब यमुना बढ़ीं तब अधर्म का नाश हुआ और धर्म बढ़ा ॥ २ ॥

सन्धिविभाग—जगदघ = जगत् + अघ = पाप।
शब्दार्थ—आढ़ = आड़, सहारा। डाढ़ना = जलाना।

राग भैरव।

काशी-स्तुति।

[२२]

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक सन्ताप पाप रुज, सकलसुमंगलरासी ॥ १ ॥
मरजादा चहुँ ओर चरनवर, सेवत सुरपुरवासी।
तीरथ सब सुभअंग रोम सिवलिंग अमित अविनासी ॥ २ ॥
अन्तरअयनु अयनु भल थनु फल, बच्छ वेद-बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु, लूम लसति सरितासी ॥ ३ ॥
दंडपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदासी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी ॥ ४ ॥
मनिकरनिका बदन ससिसुंदर, सुरसरि सुख सुखमा सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा सी ॥ ५ ॥

विस्वनाथ पालक, कृपालचित, ललति नित गिरिजा सी।
सिद्धि सची सारद पूजहिँ मन, जुगवत रहति रमा सी॥ ६॥
पञ्चाच्छरी प्रान, मुदमाधव, गव्य सुपंचनदासी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग, आखर विस्वविकासी॥ ७॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंचउदासी॥ ८॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी।
तुलसी वसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी॥ ९॥

प्रेम-समेत जन्म भर इस कलियुग में कामधेनु-रूप काशी का सेवन करना चाहिए। वह शोक, (तीन प्रकार के) संताप, पाप और रोग का नाश करनेवाली है और सब सुन्दर मंगलों की राशि है॥ १॥ (कामधेनु के चार चरण होते हैं, यहाँ) चारों दिशाओं की जो सीमा है सो ही (काशी के) सुन्दर चरण हैं। (कामधेनु का) देवता सेवन करते हैं और (काशी की) सेवा पुरवासी करते हैं (और जैसे कामधेनु के सिर, कंधा, पीठ, कोख आदि अंग और रोम होते हैं ऐसे ही) काशी के सब तीर्थ उसके अंग हैं और अनगिनत और विनाशरहित जितने शिवलिंग हैं वे ही उसके रोम हैं॥ २॥ (जैसे कामधेनु के ऐन, चार थन, बछड़ा, गल-कंबल और पूँछ होती है ऐसे ही काशी के) अंतरगृही ही ऐन है; (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार प्रकार के) फल ही सुन्दर थन हैं और वेद पर विश्वास करनेवाले ही बछड़े हैं। सुन्दर वरुण नदी ही गल-कंबल है और असी नदी मानो पूँछ शोभायमान है॥ ३॥ (कामधेनु के सींग और नेत्र होते हैं और गले में घंटा बँधा रहता है सो यहाँ काशी के) दंडपाणि और भैरव ही दोनों सींग हैं उनसे वह पाप में जिनकी रुचि है ऐसे दुष्टों के समूह को भय देनेवाली (अर्थात् माननेवाली) है। लोलार्क (कुंड) और त्रिलोचन तीर्थ (उसके दोनों) नेत्र हैं और कर्ण-घंटा-तीर्थ ही घण्टा है॥ ४॥ (कामधेनु के मुख से उसकी शोभा और महिमा होती है यहाँ काशी का) मणिकर्णिका ही चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है और गंगाजी का सुख (अर्थात् वहाँ स्थिरता से बहना सो ही) शोभा है और स्वार्थ (स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि का सुख) और परमार्थ (मोक्ष) से परिपूर्ण (अर्थात् देनेवाला) पंचकोसी तीर्थ ही उसकी महिमा है॥ ५॥ (धेनु के साथ

पालक, प्यार करनेवाला पूजक और देखनेवाला भी होता है सो यहाँ काशी के) विश्वनाथजी ही पालक हैं (सो कैसे हैं कि) चित्त में बड़े दयालु । पार्वती सरीखी उसका नित्य दुलार करती रहती हैं, अष्टसिद्धि, इन्द्राणी और सरस्वती (मनोकामना पाने के लिए उस धेनु का) पूजन करती हैं और लक्ष्मीजी सरीखी उसके मन कहिए रुख को देखती रहती हैं (कि जो आज्ञा करे उसे तुरन्त करूँ) ॥ ६ ॥ (गौ के (१) पाँच प्राण और अन्तःकरण में आनन्द होता है और यहाँ काशी के) पंचाक्षरी मंत्र ही पाँच प्राण हैं और बिन्दुमाधव ही आनन्द है । धेनु के पंचगव्य होता है कि जिसे पीकर मनुष्य पवित्र होता है, यहाँ काशी के) पंच नदी तीर्थ ही पंचगव्य (२) हैं । (फिर गाय के भीतर ब्रह्मजीव रहते हैं सो यहाँ काशी के) ब्रह्मजीव के समान संसार को प्रकाश करनेवाले राम नाम के दो अक्षर हैं (अर्थात् रकार ब्रह्म और मकार जीव) ॥ ७ ॥ (धेनु घास चरती है यहाँ काशी के लिए) बुरे भले कर्म करके मरनेवाले जो जीव-गण हैं वही घास हैं । (जो कोई इस काशी का सेवन करता है वह) परम पदरूपी पवित्र दूध पाता है कि जिसको संसार से विरक्त रहनेवाले चाहा करते हैं । (भाव यह है कि शुभ कर्म का फल स्वर्ग और अशुभ का फल नरक है परन्तु यहाँ काशी में मरनेवाले को कुछ नहीं होता क्योंकि काशी में मरने से प्राणी के सब शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और उसकी मुक्ति हो जाती है) ॥ ८ ॥ पुराण कहते हैं कि भगवान् ने अपने हाथ से (काशी को नमूने के तौर पर) रच कर अपनी कारीगरी की बानगी दिखाई है । सो हे तुलसीदास ! जो तू सुखी अथवा संसार से निश्चिन्त हुआ चाहे तो काशी में रह कर राम नाम को जपा कर ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—रुज = रोग । गलकंवल = जो गाय के गले में लटकता है । अंतरअयन = अंतर-गृही (काशी के तीर्थों की परिक्रमा) । लूम = पूँछ । सरिता + असी (नाम की नदी) । विषान = सींग । सुखमा = शोभा ।

राग बसन्त ।

चित्रकूट ।

[२३]

सब सोचविमोचन चित्रकूट । कलिहरन करनकल्यान बूट ॥ १ ॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन विचित्र बारीबिसाल ॥
मंदाकिनिमालिनि सदासींच । बरवारि विषम नर नारि नीच ॥ २ ॥

---

(१)—(२)—गूढ़ार्थ कोश में देखो ।

साखा सुस्टंग, भूरुहु सुपात। निरझर मधु वर, मृदु मलय वात॥४॥
सुक पिक मधुकर मुनिवर विहारु।
साधन प्रसून फल चारि चारु॥ ५॥
भवघोर घामहर सुखद छाँह। थप्यो थिर प्रभाव जानकीनाह॥६॥
साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ॥७॥
रस एक, रहितगुनकरमकाल। सिय राम लषन पालक कृपाल॥८॥
तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम। सेइय गिरि करु निरुपाधि नेम॥९॥

अब चित्रकूट की महिमा कहते हैं:—

चित्रकूट सब शोक का दूर करनेवाला है। कलि का नाशक और कल्याण करनेवाला हरा वृक्ष है॥ १॥ (वृक्ष थाँवले में रहता है सो चित्रकूट की) पवित्र भूमि ही इसका सुन्दर थाँवला है। (जैसे हरा वृक्ष बगीचे में लगाया जाता है ऐसे ही भाँति भाँति के फूलों के खिलने से यह) बड़ा अनोखा वन (ही इसका) बगीचा है। ॥ २॥ (जहाँ वृक्ष होता है वहाँ उसे पानी से सींचने के लिए माली चाहिए सो) मंदाकिनीरूपी मालिन इसे अपने सुन्दर (पवित्र) जल से सदा सींचती है और आसपास रहनेवाले नीच स्त्री पुरुष ऊँची नीची बाड़ो है॥ ३॥ (वृक्ष में शाखा और सुन्दर पत्ते होते हैं ऐसे ही यहाँ) सुन्दर शृंग ही शाखा हैं (और ऊपर लगे) वृक्ष ही सुन्दर पत्ते हैं। (वृक्ष में मधु होता है सो यहाँ जो) झरना (झिरता) है सो ही सुन्दर मकरंद है (वृक्ष में कोमलता होती है सो यहाँ जो) चन्दन की सुगन्ध से युक्त पवन चलती है वही इसकी कोमलता है॥ ४॥ (जैसे वृक्ष के ऊपर पक्षी रहते हैं वैसे ही यहाँ जो) श्रेष्ठ मुनि विहार करते हैं वे ही तोता, कोकिल, और भौंरे हैं (वृक्ष पर फूल फल होते हैं सो यहाँ जो मुनि योग जप आदि) साधन करते हैं सो ही फूल हैं और (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये) चार सुन्दर फल हैं॥ ५॥ (वृक्ष की छाया ताप को हरती है और इसकी) छाया संसार के (जन्म-मरण आदि) कठिन संतापों का नाश कर सुन्दर सुख देती है। (चित्रकूट का प्रभाव तो सदा से सिद्ध है परन्तु) रघुनाथजी ने इसके प्रभाव को और भी स्थिर कर दिया है॥ ६॥ (वृक्ष की छाया में रास्तेगीर बैठते हैं सो धर्म अर्थ आदि के) साधनेवाले ही सुन्दर पथिक हैं जो सुन्दर बड़े भाग्य से इसे पाते हैं और पाते ही अनेक (प्रकार के) मनोरथों से

अघा जाते हैं (अर्थात् फिर उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं रहती) ॥ ७ ॥ (वृक्ष की छाया सदा एक सी नहीं रहती परन्तु इस चित्रकूट की छाया सदा) एक सी रहती है और (जो इसकी सेवा करते हैं वे) गुण, काल और कर्म से रहित हो जाते हैं (अर्थात् उन्हें रज आदि गुण, अच्छे बुरे कर्म और कलि-काल ये नहीं व्यापते हैं क्योंकि) कृपालु सीताराम लक्ष्मण इसके पालक हैं ॥ ८ ॥ हे तुलसीदास ! जो तू रामजी के चरणों में प्रेम चाहता है तो (चित्रकूट) पर्वत का सेवन ऐसे नियम से कर कि जिसमें कोई विघ्न वा खटका न हो ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—बृट = हरा वृक्ष । आलवाल = थाँवला । वारी = सींची । वारि = बाड़ी, घेरा । भूरुह = वृक्ष । प्रसून = फूल । विषम = छोटे बड़े । निरुपाधि = जिसमें विघ्न वा खटका न हो ।

राग कान्हरा।

[२४]

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।
कोपित कलि, लोपित मंगल मगु, विलसत बढ़त मोहमायामलु ॥ १ ॥
भूमि विलोकु रामपद अंकित, वन विलोक रघुवरविहारथलु ।
सैलस्रृंग भवभंगहेतु लखु, दलन कपटपाखंडदंभदलु ॥ २ ॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, विधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु ।
सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम, विगत विषाद भये पारथ नलु ॥ ३ ॥
न करु विलंब विचारु चारुमति वरष, पाछिले सम अगिलेपलु ।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु ॥ ४ ॥
राम नाम जप जाग करत नित, मज्जन पय पावन पीवत जलु ।
करिहैं राम भावतो मन को सुख, साधन अनयास महाफलु ॥ ५ ॥
कामदमनि कामता कल्पतरु, सो जुग जुग जागति जगती तलु ।
तुलसी तोहिं विसेषि बूझिए, एक प्रतीत प्रीति एक बलु ॥ ६ ॥

(गुसांईजी अपने चित्त से कहते हैं कि) हे चित्त ! अब तो चेत और चित्रकूट को चल । कलियुग ने क्रोध करके (जप, तप, दया, ज्ञान, भक्ति इत्यादि धर्म के) मंगल

मार्गों का लोप कर दिया इससे अज्ञान, माया और पाप बढ़ते जाते हैं और वह प्रसन्न होता है ॥ १ ॥ (चित्रकूट की) भूमि जो रामजी के चरणों से अंकित है (अर्थात् जिसमें रामजी के चरणों के चिह्न बने हुए हैं) उसे देख (अहिल्या की भाँति तू भी तर जायगा) और रघुनाथजी के विहार के स्थान वन को देख (इससे तेरे तीन प्रकार के सन्ताप दूर हो जायँगे) फिर पर्वत के शिखरों को देख जो संसार (अर्थात् जन्म-मृत्यु आदि) के नाश का (मुख्य) कारण हैं (उनके दर्शन करने से तू मुक्त हो जायगा)। ये कपट, पाखंड, दंभ के दल का नाश करनेवाले हैं ॥ २ ॥ उस (चित्रकूट) में जगत् के पिता और संसार के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु, महेश (संसार के) प्रपंच (१) (अर्थात् उत्पत्ति, पालन, नाश) और छल (२) छोड़ कर जनमे हैं और उस आश्रम में एक बार प्रवेश करते ही युधिष्ठिर (३) आदि और नल (४) का दुःख दूर होगया था ॥ ३ ॥ अब देर मत कर और (अपनी) सुन्दर बुद्धि से पिछले वर्षों को तो वर्ष और आनेवाले वर्षों को पल के समान विचार (अर्थात् मूर्खता से बीते हुए वर्षों को जो तू पल के समान गिनता है और आनेवाले पलों को वर्ष मानता है कि अभी बहुत जीना है सो तुझे यह सोचना चाहिए कि जितनी आयु बीत गई सो तो वर्ष बीत गये और जो आयु बाक़ी है उसे पल मान कर यह समझ कि मृत्यु पास है और जो करना है उसे जल्दी कर ले) और (वहाँ जाकर) उस (राम) मंत्र को जप कि जिसके जपने से शिवजी अजर अमर हो गये और हलाहल (विष) को पी गये ॥ ४ ॥ (जब तू वहाँ) राम नाम का जपरूपी यज्ञ और (पयस्विनी नदी के) पवित्र जल में नित्य स्नान करता रहेगा और उसके जल को पीता रहेगा तब रामजी तेरे मन

(१) चित्रकूट में अत्रि मुनि और अनुसूया के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने दर्शन दिया और कहा कि वर माँगो—उन्होंने कहा कि हमारे वायु समान पुत्र हों। शिवजी ने कहा कि तुम्हारे ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और मेरे अंश से दुर्वासा ये तीन पुत्र होंगे। इसी वरदान को पूरा करने के लिए ब्रह्माजी ने जगत् की रचना, विष्णु ने पालन और शिवजी ने संहार को छोड़ कर वहाँ जन्म लिया।

(२) ब्रह्माजी ने और शिवजी ने बहुत से दैत्यों को वरदान दे दिया पर जब वे दुःख देने लगे तब भगवान् के हाथ से उनको मरवा दिया—विष्णु ने कच्छ मच्छ आदि अवतार लेकर छल के बहुत से काम किये; ऐसी कथायें पुराणों में भरी पड़ी हैं।

(३) जब दुर्योधन ने छल करके पाण्डवों का राज्य ले लिया तब उन्होंने चित्रकूट में आकर तप किया और उसके प्रभाव से फिर राज्य पाया।

(४) जब राजा नल का राज्य भी जुए के कारण छिन गया और दमयन्ती का वियोग हुआ तब उसका दुःख भी चित्रकूट का सेवन करने से दूर हो गया और उसने फिर राज्य पाया।

का मनोरथ पूरा करेंगे और इस सुखपूर्वक साधन से बिना ही परिश्रम के बड़े बड़े (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) फल देंगे ॥५॥ (जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष स्वर्ग में हैं वैसे ही यहाँ चित्रकूट में) कामतानाथ जो पर्वत है वही कामदमणि (अर्थात् चिन्तामणि) और कल्पवृक्ष है सो युग युग में पृथ्वीतल पर प्रकाशित रहता है और (यों तो चित्रकूट का फल सबको ही समझना चाहिए पर) हे तुलसी, तुझे विशेष करके केवल उसी का विश्वास, प्रेम और एक बल समझना चाहिए (इसी से रामजी प्रसन्न होंगे) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सकृत = एक बार। चारु = सुन्दर। कामदमनि = जो सब मनोरथों को दे ऐसा रत्न। अजर = जो बूढ़ा न हो। जगती = पृथ्वी।

राग धनाश्री।

हनुमानजी की स्तुति।

[२५]

जयति अंजनीगर्भअम्भोधिसंभूतविधुविबुधकुलकैरवानन्दकारी।
केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद, लोकगनसोकसन्तापहारी॥
जयति जय बाल कपि केलि कौतुक उदित चंडकरमंडल ग्रासकर्त्ता।
राहु-रवि-सक्र-पविगर्वखर्वीकरन सरनभयहरन जय भुअनभर्त्ता॥
जयति रनधीर रघुवीरहित देवमनि रुद्र अवतार संसारपाता।
बिप्रसुरसिद्धमुनिआसिषाकारवपु विमलगुनबुद्धिवारिधिबिधाता॥
जयति सुग्रीव सिच्छादि रच्छननिपुन बालिबलसालिवधमुख्यहेतू।
जलधिलंघन सिंहसिंहिकामदमथन रजनिचरनगरउत्पातकेतू॥ ४॥
जयति भूनंदिनी सोचमोचन विपिनदलन घननादवस विगतसंका।
लूमलीला अनलज्वालमालाकुलित होलिकाकरन लंकेसलंका॥
जयति सौमित्ररघुनन्दनानन्दकर रिच्छकपिकटकसंघटविधाई।
बद्धवारिधसेतु अमरमंगलहेतु भानुकुलकेतुरनविजयदाई॥ ६॥
जयति जय वज्रतनु दसन नख मुख विकट, चंड भुजदंड तरु-
सैल पानी।

समर तैलिकजंत्र तिलतमीचरनिकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥
जयति दशकंठघटकरनवारिदनाद कदनकारन, कालिनेमिहन्ता ।
अघटघटनासुघट सुघटविघटन विकटभूमिपातालजलगगन-
गन्ता ॥ ८ ॥
जयति विस्वविख्यात बानैत विरदावली विदुष, बरनत वेद विमल-
बानी ।
दासतुलसी त्रासससमन सीतारमनसंगसोभितरामराजधानी ॥ ९ ॥

हे हनुमानजी! तुम्हारी जय हो, तुम अंजनी के गर्भरूपी समुद्र से चन्द्ररूपी उत्पन्न होकर देवताओं के कुलरूपी कुमुदों को आनन्द देनेवाले हो, (अर्थात् जैसे समुद्र से चन्द्रमा उत्पन्न होकर कुमुदों को खिलाता है ऐसे ही तुमने अंजनी के गर्भ से उत्पन्न होकर देवताओं को आनन्द दिया)। केसरी के सुन्दर नेत्ररूपी चकोरों को सुख देने-वाले हो (अर्थात् जैसे चन्द्रमा को देख चकोर सुख पाता है वैसे ही तुम्हारा पिता केसरी तुम्हें देख सुखी होता है) और तुम लोकगण (अर्थात् तीनों लोकों) के शोक और संताप के दूर करनेवाले हो ॥ १ ॥ हे महावीर! बालकपन (१) में तुमने अपनी लीला से ऐसा खेल किया था कि उदय हुए प्रचण्ड किरणोंवाले (सूर्य) के मंडल को लीलने गये थे और (उस समय तुमने) राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्र इनके घमण्ड को नष्ट (२) कर दिया था। तुम्हारी जय हो, जय हो। हे शरणागत के भय के दूर करनेवाले और

(१) एक दिन हनुमानजी बालकपन में अमावस के दिन सूर्य को लाल फल जान उसे खाने के लिए उसके पास पहुँच गये उसी समय ग्रहण होने के कारण सूर्य को राहु ग्रसने आया और हनुमानजी के तेज को न सह कर सीधा इन्द्र के पास जाकर कहने लगा कि तुमने तो हमें सूर्य, चन्द्रमा भोजन के लिए दिये थे सो सूर्य को तो कोई और बड़ा तेजस्वी खाने आया है। यह सुन इन्द्र हाथी पर सवार हो राहु के साथ सूर्य के पास आये। आते ही हनुमानजी राहु को भक्षण करने के लिए दौड़े पर वह तो डर के मारे दूर से ही भाग गया फिर यह इन्द्र पर लपके सो उसने इनकी ठोढ़ी में ऐसा वज्र मारा कि वह चपटी हो गई और यह मूर्च्छित होकर गिर पड़े और वज्र की भी धार कुण्ठित पड़ गई। इसकी पूरी कथा वाल्मीकिरामायण में लिखी है।

(२) सूर्य को घमंड था कि मेरा तेज कोई नहीं सह सकता; उसे सहा। राहु को घमंड था कि मैं सूर्य का भक्षण करनेवाला हूँ सो वह इन्हें देख डर कर भागा; इन्द्र को गर्व था कि मेरे वज्र से कोई नहीं बच सकता सो भी वृथा हुआ और उसकी धार बिगड़ी। इस प्रकार इन सबका गर्व दूर कर दिया।

संसार के स्वामी! तुम्हारी जय हो ॥ २ ॥ तुम युद्ध में बड़े धीर, रामजी के हितकारी, देवताओं के शिरोमणि रुद्र का अवतार और संसार के रक्षक हो। तुम्हारा शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनि इनके आशीर्वाद की मूर्त्ति है, (अर्थात् जब इन्द्र ने तुम्हारे वज्र मारा था और पवन ने कोप कर सबका श्वास बन्द कर दिया था तब घबरा कर सबने जाकर तुम्हें आशीर्वाद दिया था) तुम निर्मल-गुण और बुद्धि के समुद्र और विधाता हो, तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम शिक्षा आदि से सुग्रीव की रक्षा करने में चतुर हो (अर्थात् सुग्रीव राज्य पाकर जब सीताजी की सुध भूल गया था तब तुमने जाकर उसे शिक्षा दी थी), बालि जो बल से शोभित था अर्थात् बड़ा बली था उसके मारे जाने में तुम ही मुख्य कारण हो, तुम समुद्र के लाँघते समय सिंहिका (१) राक्षसी के घमंड को तोड़ने के लिए सिंह के समान (शूर-वीर) और राक्षस (रावण) के नगर (लंका) में उत्पात करने को केतुरूप थे (अर्थात् पुच्छल-तारे के समान कि जहाँ वह उदय हो वहाँ का ही नाश करे) ऐसे तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ तुम जानकीजी को शोक से छुड़ानेवाले और (रावण की अशोक) वाटिका का विध्वंस करनेवाले हो। तुम मेघनाद के वश होने पर भी (अर्थात् जब मेघनाद ने तुम्हें ब्रह्मास्त्र में बाँध लिया था तब भी) भयरहित रहे। और तुम पूछ की लीला से (फैली हुई) अग्नि की लपटों की माला से घबराये हुए रावण की लंका की होली करनेवाले हो। तुम्हारी जय हो ॥ ५ ॥ लक्ष्मण और रघुनाथजी को आनन्द देनेवाले, रीछ बन्दरों की सेना को इकट्ठा करके समुद्र का पुल बाँधनेवाले, देवताओं के मङ्गल के कारण (अर्थात् करनेवाले) और सूर्य-कुल के पताका (रघुनाथजी) को युद्ध में विजय देनेवाले हो तुम्हारी जय हो ॥ ६ ॥ तुम्हारा शरीर, दाँत और नख वज्र के समान हैं, (कि जिनमें चोट नहीं लगती) भयंकर मुख है (कि जिसे देख राक्षस डर जायँ), तुम्हारे भुजदंड चंड (अर्थात् बड़े पुष्ट और बली) हैं, तुम हाथों में वृक्ष और पर्वतों को उठानेवाले हो। और तुमने संग्रामरूपी तेल के यन्त्र में राक्षसों के झुंड और बड़े बड़े योद्धारूपी तिलों को गेर कर घानी की तरह पेल डाला है ऐसे तुम्हारी जय हो ॥ ७ ॥ तुम रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद का नाश करने में मुख्य कारण (अर्थात् उपाय करनेवाले) और कालनेमि के (२)

(१) सिंहिका राक्षसी समुद्र में रहती थी और जीवजन्तु की परछाईं पकड़ उसे खा जाती थी। जब हनुमान ने समुद्र फाँदा तब उसने इनसे भी वही छल किया परन्तु इन्होंने उसका गर्व नष्ट कर दिया।

(२) कालनेमि राक्षस था। जब लक्ष्मणजी के शक्ति लगी और हनुमानजी संजीवनी बूटी लेने गये तब कालनेमि ने हनुमानजी के साथ भी छल करना चाहा था पर उन्होंने पूछ में लपेट उसे मार डाला।

नाशक हो। जो घटना (बात) अघट है अर्थात् नहीं हो सकती है उसके सहज में करनेवाले हो (जैसे कि समुद्र का लाँघना कठिन था उसे सहज में पार कर गये) और सुघट (बनी बनाई बात) को विघटन अर्थात् बिगाड़नेवाले हो (जैसे बालि और रावण का ऐश्वर्य धूल में मिला दिया)। तुम बड़े भयंकर और भूमि, पाताल, जल और आकाश में जानेवाले हो; ऐसे तुम्हारी जय हो ॥ ८॥ तुम संसार में विख्यात वीरता का बाना कसे हो; तुम्हारी विरदावली का पण्डित और वेद निर्मल वाणी से वर्णन करते हैं। तुम तुलसीदास के भय को दूर करनेवाले और सीतापति (रामजी) के संग रामजी की राजधानी (अयोध्या) में शोभायमान हो; तुम्हारी जय हो ॥ ९ ॥

संधिविभाग—कैरव (कुमोदिनी) + आनन्द। आसिप + आकार। माला (समूह) + आकुलित। रघुनन्दन + आनन्दकर।

शब्दार्थ—चंडकर = चंड अर्थात् तेज़ हैं कर कहिये किरणें जिसकी ऐसा सूर्य। पवि = वज्र। भूनन्दिनी = पृथ्वी की पुत्री सीता। लूम = पूँछ। पानी = हाथ। दसन = दाँत। घटकरण = कुम्भकर्ण। वारिदनाद = मेघनाद। विदुष = पण्डित। माला = समूह।

[२९]

जयति मर्कटाधीस मृगराजविक्रम महादेव मुदमङ्गलालय कपाली।
मोहमदकोहकामादिखलसंकुलाघोरसंसार निसिकिरनमाली ॥ १ ॥
जयति लसदञ्जनादितिजकपिकेसरी, कस्यपप्रभव जगदार्तिहर्त्ता।
लोकलोकपकोककोकनदसोकहर हंस, हनुमान कल्यानकर्त्ता ॥ २ ॥
जयति सुविसालविकरालविग्रह वज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी।
कुलिसनखदसनवर लसत, बालधिबृहद, वैरि सस्त्रास्त्रधर, कुधर-धारी ॥ ३ ॥
जयति जानकीसोचसन्तापमोचन, रामलछमनानन्दवारिज-विकासी।
कीसकौतुककेलि, लूमलंकादहन, दलन कानन तरुनतेजरासी ॥४॥
जयति पाथोधिपाषानजलजानकर, जातुधानप्रचुरहरषहाता।
दुष्टरावनकुम्भकरनपाकारिजित्, मर्मभित् कर्मपरिपाकदाता ॥ ५ ॥
जयति भुवनैकभूषन, विभीषनवरद, विहित कृत रामसंग्रामसाका।

पुष्पकारूढ़सौमित्रसीतासहित भानुकुलभानुकीरतिपताका ॥ ६ ॥
जयति परजन्त्रमन्त्राभिचारग्रसन, कारमन कूटकृत्यादिहन्ता।
साकिनीडाकिनीपूतनाप्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथजन्ता ॥ ७ ॥
जयति वेदान्तविद विविधविद्याविसद, वेदवेदांगविद ब्रह्मवादी।
ज्ञानवैरागविज्ञानभाजन विभो, विमलगुनगनत सुक नारदादी ॥
जयति कालगुनकर्म्ममायामथन, निसचल ज्ञानव्रत सत्यरत धर्म्मचारी।
सिद्धसुरवृन्दजोगीन्द्रसेवित सदा दासतुलसी प्रनत-भयतमारी ॥

हे हनुमानजी! तुम वानरों के राजा, सिंह के समान पराक्रमी, देवों में श्रेष्ठ, आनन्द-मंगल के स्थान (अर्थात् करनेवाले) और कपालधारी (रुद्र का अवतार) हो। मोह, मद, क्रोध, और काम आदि रूपी खलों से भरे हुए भयंकर संसाररूपी रात्रि का (नाश करने को) सूर्य रूप हो। ऐसे तुम्हारी जय॥ १ ॥ (अब सूर्य का रूपक दिखाते हैं कि जैसे देवताओं की माता अदिति और पिता कश्यप हैं कि जिनसे सूर्य उत्पन्न हुए हैं वैसे ही) तुम सुन्दर अंजनीरूपी अदिति से और वानर केशरीरूपी कश्यप से (हनुमानरूपी सूर्य) उत्पन्न हुए हो (कैसे हो कि) संसार के दुःख के हरनेवाले हो (अर्थात् जैसे सूर्य संसार में प्रकाश करता है ऐसे ही तुमने दुष्ट राक्षसों को मार के संसार का दुःख दूर किया) लोक और लोकपालरूपी चक्रवाकों और कमलों का शोक हरने को सूर्यरूप हो (अर्थात् जैसे सूर्य उदय होकर चक्रवाकों को सुख देता है और कमलों को खिलाता है ऐसे ही तुमने उत्पन्न होकर लोकों और इन्द्रादि लोकपालों को प्रसन्न किया) हे हनुमान! तुम कल्याण करनेवाले हो; तुम्हारी जय॥ २ ॥ तुम्हारी देह बड़ी भारी और बड़ी भयंकर है; और वज्र के सार के समान, (नख से शिखा तक देह के) सब अंग, बड़े भारी भुजदंड और कुलिश के समान नख और दाँत शोभायमान हैं, तुम्हारी पूछ बड़ी लम्बी है, तुम शत्रुओं के (नाश के) लिए शस्त्र-अस्त्र धारण किये हो और (द्रोण) पर्वतधारी हो (ऐसे तुम्हारी) जय॥ ३ ॥ तुम श्रीजानकीजी के शोक और सन्ताप के दूर करनेवाले, राम-लक्ष्मण के आनन्दरूपी कमल को खिलानेवाले (सूर्यरूप) हो। बन्दरों का जो खेल अर्थात् कूद-फाँद तोड़-फोड़ इत्यादि उसकी लीला करनेवाले, पूछ से लंका को भस्म करनेवाले, वन (अशोकवाटिका) को उजा-

ड़नेवाले और तरुण (भभकते हुए) तेज की राशि हो। तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ तुमने समुद्र पर पाषाणों का पुल बना दिया, और तुम राक्षसों के परम आनन्द के नाशक हो। और दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के मर्म-स्थान को तोड़ कर उनके कर्मों का फल देनेवाले हो। तुम्हारी जय ॥ ५ ॥ तुम संसार के एक ही (मुख्य) आभूषण हो, विभीषण को वर देनेवाले हो और तुमने विशेष हित के लिए रामजी के साथ संग्राम में उनके बड़े बड़े साके (भलाई के काम) किये हैं। पुष्पक विमान पर लक्ष्मण और सीता सहित बैठे हुए, सूर्यकुल के सूर्य (रामजी) की कीर्तिरूपी पताका के समान तुम (शोभायमान) हुए थे। ऐसे तुम्हारी जय ॥ ६ ॥ तुम शत्रु के किये यंत्र मंत्र और अभिचार के ग्रसनेवाले और मारण और गुप्त जीव-हिंसक तामसी देवताओं के नाशक हो। शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, बैताल, भूत और प्रमथ इनके झुंडों को दंडवाले ऐसे तुम्हारी जय ॥ ७ ॥ तुम वेदान्त के जाननेवाले हो; अनेक प्रकार की जो विशद (सतोगुणी) विद्या और (चारों) वेद तथा वेदांग इनके ज्ञाता हो और ब्रह्मवादी (अर्थात् परमात्मा के रूप के कहनेवाले) हो। ज्ञान, वैराग्य और आत्मज्ञान के पात्र हो (अर्थात् ये सब तुममें भर रहे हैं); तुम समर्थ हो और तुम्हारे निर्मल गुणगणों को शुक और नारद आदि गाते हैं। ऐसे तुम्हारी जय ॥ ८ ॥ तुम (दिन, घड़ी, पल आदि) काल, (सत आदि) गुण, (शुभ अशुभ) कर्म और माया (जो आत्मरूप को भुलाकर जीव को इन्द्रिय सुख में लगाती है) इनके नाशक हो। तुम ज्ञान और व्रत में दृढ़ हो, सत्यव्रत में तुम्हारी प्रीति है और धर्म पर चलनेवाले हो। सिद्ध और देवताओं के समूह और बड़े बड़े योगी सदा तुम्हारी सेवा करते हैं (ऐसे तुम्हें) तुलसीदास प्रणाम करता है तुम (उसके) भयरूपी अँधेरे के लिए सूर्य रूप हो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—मर्कट + अधीस। मंगल + आलय (स्थान)। काम + आदि। लसत् + अंजना + अदिति। जगत् + आर्ति (दुःख)। सस्त्र + अस्त्र। लछमन + आनन्द। भुवन + एक। पुष्पक + आरूढ़। मन्त्र + अभिचार। कृत्या + आदि। नारद + आदि।

शब्दार्थ—संकुल = व्याप्त, भरा हुआ। किरनमाली = (किरणों की है माला जिनके) सूर्य। कोकनद = कमल। हंस = सूर्य। विग्रह = देह। बालधी = पूछ। कुधर = (कु नाम पृथ्वी को धारण करनेवाला) पर्वत। पाथोधि = समुद्र। जलजान = जहाज़, पुल। प्रचुर = बहुत। पाकारिजित् = पाक राक्षस का शत्रु इन्द्र उसका जेता, इन्द्रजीत। पर = शत्रु। अभिचार = उच्चाटन आदि। कारमन = जंत्र, मंत्र से मारना (संस्कृत शब्द कार्मण है)। कृत्या = जीवहिंसक देवता आदि। साकिनी = जोगिनी, पिसाचनी। पूतना = बालकों पर खोड़ करनेवाली। बैताल = भूत। प्रमथ = शिव के गण। विभु = समर्थ।

[२७]

जयति मंगलागार संसारभारापहर वानराकारविग्रह पुरारी ।
रामरोषानल-ज्वालमालामिसध्वांतचरसलभसंहारकारी ॥ १ ॥
जयति मरुदञ्जनामोदमन्दिर, नतग्रीवसुग्रीव-दुःखैकबन्धो ।
जातुधानोद्धतक्रुद्धकालाग्निहर सिद्धसुरसज्जनानन्दसिन्धो ॥ २ ॥
जयति रुद्राग्रनी विस्ववंद्याग्रनी विस्वविख्यात भट चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रनी कामजेताग्रनी रामहित रामभक्तानुवर्ती ॥ ३ ॥
जयति संग्रामजय रामसन्देसहर कौसलाकुसलकल्यानभाषी ।
रामविरहार्कसन्तप्तभरतादिनरनारिसीतलकरन कल्पसाषी ॥
जयति सिंघासनासीनसीतारमन निरखि निरभरहरषनृत्यकारी ।
रामसम्राजसोभासहित सर्वदा तुलसिमानसरामपुरविहारी ॥ ५ ॥

हे हनुमानजी ! तुम्हारी जय । तुम मंगलों के स्थान, और संसार के भार (जन्म मरण आदि) के नाशक हो, वानर के आकार के समान तुम्हारा शरीर है और तुम शिव-स्वरूप हो । और, रघुनाथजी के क्रोधरूपी अग्नि की लपटों की माला के बहाने राक्षसरूपी पतंग (तीतरी आदि) के नाश करनेवाले हो (भाव यह है कि जैसे अग्नि की लपट पतंग आदि को भस्म कर देती है ऐसे ही रघुनाथजी के क्रोधित होने पर तुमने ही राक्षसों को मारा था) ॥ १ ॥ पवन और अंजनी के आनन्द के मंदिर अर्थात् देनेवाले तुम, (बालि के डर के मारे) सुग्रीव ने जो नीची गरदन कर रक्खी थी उसके दुःख में मुख्य बन्धु के समान (सहायक) हुए । और तुम राक्षसों के बढ़े हुए क्रोधरूपी प्रलय-काल की अग्नि को हरनेवाले, और सिद्ध देवता और सज्जनों को आनन्द के समुद्र हो । तुम्हारी जय ॥ २ ॥ तुम (ग्यारह) रुद्रों में श्रेष्ठ, संसार भर के पूजनीयों में मुख्य, संसार भर में विख्यात और वीरों में चक्रवर्ती हो । तुम सामवेद के गानेवालों में श्रेष्ठ, कामदेव के जीतनेवालों में मुख्य (अर्थात् सबसे बढ़ कर जितेन्द्रिय), रघुनाथजी के हितकारी और रामभक्तों के पीछे पीछे (रक्षा करने के लिए) रहनेवाले हो । तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम युद्ध जीतनेवाले, रामजी के संदेसे को (सीता और भरतजी के पास) ले जानेवाले और अयोध्या की कुशल-मंगल (रघुनाथजी से) कहनेवाले हो । और तुम रामजी के वियोगरूपी सूर्य से तपते हुए भरत आदि (अयोध्यावासी) स्त्री-पुरुषों

को शीतल करने के लिए कल्पवृक्षरूप हो (भाव—जैसे सूर्य से तपे हुए को वृक्ष की छाया शीतल करती है ऐसे ही तुमने रघुनाथजी के आने का संदेसा कह कर भरतजी आदि की विरहाग्नि को हर लिया था); तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ तुम रामजी को सिंहासन पर बैठा हुआ देखकर बड़े भारी आनन्द से नृत्य करनेवाले हो सो जैसे रामजी शोभा अर्थात् ठाटवाट से (सिंहासन पर) विराजमान हुए थे वैसे ही तुम सदा तुलसी के मनरूपी अयोध्या में विहार करो ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—मंगल + आगार (स्थान) । भार + अपहार । वानर + आकार । रोष + अनल । मरुत् + अंजना । दुःख + एक + बन्धो । जातुधान + उद्धत । काल + अग्नि । रुद्र + अग्रनी (श्रेष्ठ) । विद्या + अग्रनी । गाता + अग्रनी । जेता + अग्रनी । भक्त + अनुवर्ती । विरह + अर्के । सिंहासन + आसीन ।

शब्दार्थ—पुरारी = (पुर दैत्य के शत्रु) शिव । माला = समूह । मिष = बहाना । ध्वान्तचर = ध्वान्त कहिये अँधेरे में चलनेवाला, राक्षस । साषी (शाखी) = वृक्ष । निरभर = अत्यन्त ।

[२८]

जयति वातसञ्जात विख्यातविक्रम बृहद्बाहु बलविपुल बालधिविसाला ।
जातरूपाचलाकारविग्रह लसल्लोमविद्युल्लताज्वालमाला ॥ १ ॥
जयति बालार्कवरवदन, पिंगलनयन, कपिस-कर्कसजटा जूटधारी ।
विकटभ्रुकुटी वज्रदसन नखवैरिमदमत्तकुंजरपुंजकुंजरारी ॥ २ ॥
जयति भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर, धनंजयरथत्रानकेतू ।
भीषमद्रोनकरनादिपालितकालदृकसुजोधनचमूनिधनहेतू ॥ ३ ॥
जयति गतराजदातार हरतार, संसारसंकट दनुजदर्पहारी ।
ईति भीति ग्रहप्रेतचौरानलव्याधि बाधासमन घोरमारी ॥ ४ ॥
जयति निगमागम व्याकरनकरनलिपि, काव्यकौतुककलाकोटि-सिन्धो ।
सामगायक भक्तकामदायक वामदेव, श्रीराम प्रिय प्रेमबन्धो ॥५॥
जयति घर्मांसुसन्दग्धसंपाति नवपच्छलोचनदिव्यदेहदाता ।
काल कलिपापसन्तापसंकुलसदा, प्रनत तुलसीदास तात माता ॥

हे वायुपुत्र! तुम्हारी जय—तुम्हारा पराक्रम विख्यात है, तुम्हारी बड़ी बड़ी बाहु हैं, तुम बड़े बली हो और तुम्हारी पूछ बड़ी लंबी है। सोने के पर्वत (सुमेरु) के आकार के समान तुम्हारा शरीर शोभायमान है और तुम्हारे रोमों में बिजली की लता के समान बड़ी भारी चमक (झकझका रही) है॥ १॥ तुम्हारा मुख बाल-सूर्य के समान सुन्दर है, पीले नेत्र हैं और तुम (शिर पर) भूरे और कठोर जटाजूट को धारण किये हो। तुम्हारी टेढ़ी भृकुटी हैं, वज्र के समान दाँत हैं और नख, शत्रु के मदरूपी मतवाले हाथियों के झुंड को (फाड़ने के लिए) सिंहरूप हैं। तुम्हारी जय॥ २॥ तुम भीम (१) अर्जुन (२) और गरुड़ (३) के घमंड के हरनेवाले और अर्जुन के रथ की पताका में (बैठ कर) उसकी रक्षा करनेवाले हो। तुम भीष्म (पितामह), द्रोणाचार्य्य और कर्ण आदि से रक्षा की गई और काल के समान दृष्टिवाली (अर्थात् देखते ही मानो शत्रु को खा जाय ऐसी) दुर्योधन की सेना के नाश करने में कारण हो (अर्थात् तुमने अर्जुन की ध्वजा में बैठ कर उससे दुर्योधन की सेना को हरवा दिया); तुम्हारी जय॥ ३॥ (तुम सुग्रीव, विभीषण के) गये हुए राज्य को दिलानेवाले, संसार के

---

[१] जब पांडव वन में गये तब भीमसेन ने देखा कि एक भारी बूढ़ा बन्दर पूछ से मार्ग रोके हुए सो रहा है। भीम निडर होकर उसके पास गये और ऐसे ज़ोर से गरजे कि बानर की नींद खुल गई और उसने भीम से कहा कि तूने मुझे क्यों जगा दिया? भीम ने कहा कि हमको रास्ता दो। वानर ने कहा कि हम बूढ़े हैं इससे उठना नहीं चाहते; तुम पूछ हटा कर चले जाओ। भीम ने पूछ हटाने के लिए बहुतेरा यत्न किया पर पूछ न सरकी। फिर भीम ने हाथ जोड़े तब हनुमान्‌जी ने मार्ग दिया। यह कथा महाभारत के वन-पर्व में है।

[२] कौरव-पांडवों के युद्ध में भगवान् ने हनूमानजी को अर्जुन के रथ की पताका में बैठा दिया था। जब कर्ण और अर्जुन का संग्राम हुआ तब अर्जुन को यह अभिमान हुआ कि मेरे बाण से तो कर्ण का रथ कोसों दूर जा पड़ता है और उसके बाण से मेरा रथ थोड़ा सा सरक जाता है। इस अभिमान को दूर करने के लिए भगवान् ने हनुमान्‌जी से कह दिया कि तुम ध्वजा पर से अलग हो जाओ और जब वे हट गये तब कर्ण के बाण से भी अर्जुन का रथ दूर जा पड़ा। यह देख अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि यह क्या हुआ कि मेरा रथ इतनी दूर आपड़ा। भगवान् ने कहा कि तेरे रथ के झंडे पर हनुमान्‌जी बैठे थे सो वे उतर गये और वह तो मैं त्रिलोकी का स्वामी तेरे पास बैठा हूँ तब इतना सरका है नहीं तो न जाने क्या होता। इसलिए तेरा अभिमान वृथा है।

[३] एक बार भगवान् ने गरुड़जी से कहा कि तुम हनुमान्‌जी को बुला लाओ। गरुड़जी हनुमान्‌जी के पास पहुँचे और कहा कि भगवान् ने आपको बुलाया है सो मेरे साथ चलिए। हनुमान्‌जी ने कहा कि तुम चलो; मैं पीछे से आता हूँ और तुमसे पहिले पहुँचूँगा। यह सुन गरुड़जी को बड़ा घमंड हुआ और अधिक शीघ्र चले परन्तु हनुमान्‌जी उनसे बहुत पहिले भगवान् के पास आ पहुँचे और गरुड़जी का घमंड दूर किया—यह कथा स्कंदपुराण की है।

संकट को दूर करने वाले और राक्षसों के घमंड के नाशक हो। और ईति, बड़े बड़े भय, ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि और बड़ी भयंकर महामारी आदि बीमारियों की बाधा को दूर करनेवाले हो (अर्थात् तुम्हारा नाम लेते ही ये सब बाधायें भाग जाती हैं)। तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ तुम वेद, शास्त्र और व्याकरण (इनको सूर्य से पढ़कर उन) पर (टीका आदि) लिखने वाले हो और काव्य का जो कौतुक (अर्थात् अलंकार, उपमा, विचित्रता आदि) और (चतुरता की जो) करोड़ों कला हैं उनके समुद्र हो। तुम साम के गानेवाले, भक्तों के मनोरथों के दाता, शिवस्वरूप और प्यारा है प्रेम जिनको ऐसे श्रीरामजी के बन्धु (समान हित करने वाले) हो। तुम्हारी जय ॥ ५ ॥ तुम सूर्य से जले हुए संपाति (१) को नये पंख, नेत्र और सुन्दर देह के देनेवाले हो और कलिकाल के पापों और संतापों से सदा भरे हुए इस दीन तुलसीदास के माता-पिता हो। तुम्हारी जय ॥ ६ ॥

सन्धिविभाग—जातरूप (सोना) + अचल (पर्वत) + आकार। बाल + अर्क। कुंजर (हाथी) + अरि (शत्रु)। भीम + अर्जुन। कर्ण + आदि। चौर + अनल। निगम (वेद) + आगम (शास्त्र)।

शब्दार्थ—कुंजरारि = सिंह। व्यालसूदन = गरुड़। ईति = अति वृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टीड़ी, तोते और राजाओं का पास होना। घर्म (गरम) + अंशु (किरणें) जिसकी = सूर्य्य। संकुल = व्याप्त, भरा।

[२६]

जयति निर्भरानंदसंदोह कपिकेसरी केसरीसुअन भुवनैकभरता।
दिव्य भूम्यंजनामंजुलाकरमने भक्तसंतापचिंतापहरता ॥ १ ॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादिवैभवविरागी।
वचन मानसकर्मसत्यधर्मव्रती जानकीनाथचरनानुरागी ॥ २ ॥
जयति विहगेसबलबुद्धिवेगातिमदमथन मनमथ-मथन ऊर्धरेता।
महानाटकनिपुन कोटिकविकुलतिलक गानगुनगरवगन्धर्वजेता ॥
जयति मंदोदरीकेसकर्षन विद्यमानदसकंठ भट मुकुट मानी।
भूमिजादुःखसंजातरोषांतकृतजातना जंतुकृत जातुधानी ॥ ४ ॥

(१) संपाती जटायु का भाई था। तरुण अवस्था में ये दोनों उड़ कर सूर्य के पास गये। जटायु तो तेज न सहने के कारण पीछे लौट आया और संपाती अभिमान के मारे सूर्य के बहुत ही पास चला गया सो उसके सब पंख जल गये और वह नीचे गिर पड़ा। जब हनुमान्‌जी सीता की सुध लेने गये तब समुद्र पर संपाती ने सीता की सुध बताई और हनुमान्‌जी ने उसको नवीन पंख, नेत्र आदि देकर कृतार्थ किया।

जयति रामायन स्त्रवनसंजातरोमांच लोचनसजल सिथिलबानी ।
रामपदपद्ममकरंदमधुकर पाहि दास तुलसी सरन सूलपानी ॥

(हे हनुमान्जी! तुम) पूर्ण आनन्द के समूह, वानरों में सिंह-समान (पराक्रमवाले), केशरी के पुत्र और संसार के मुख्य स्वामी हो। (और जैसे मणि भूमि से निकलती है ऐसे ही तुम) अंजनीरूपी दिव्य भूमि की (उदररूपी) सुन्दर खान के मणि हो, (इसलिए) भक्तों के सन्ताप और चिन्ता के दूर करनेवाले हो (भाव यह है कि जिसके पास मणि होगी उसके पास चिन्ता और सन्ताप का क्या काम)। तुम्हारी जय ॥ १ ॥ तुम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के देनेवाले और समर्थ हो, और ब्रह्मलोक आदि के वैभव से प्रीति तोड़नेवाले और मन, वचन, कर्म से सत्य धर्म का व्रत करनेवाले हो और श्रीजानकीनाथ के चरणों के प्रेमी हो। तुम्हारी जय ॥ २ ॥ तुम गरुड़जी के बल, बुद्धि और वेग के बड़े भारी घमंड (१) को तोड़नेवाले, (अर्थात उनसे भी अधिक बली, बुद्धिमान् और वेग से जानेवाले हो और शिवरूप होने से) कामदेव के नाशक और जितेन्द्रिय हो। तुम बड़े बड़े नाटक (बनाने और करने) में चतुर हो और (वाल्मीकि आदि) करोड़ों कवियों के समूहों के शिरोमणि, और गाने के गुण से गंधर्वों के घमंड को जीतनेवाले (अर्थात् गंधर्वों से भी बढ़ कर गानेवाले) हो। तुम्हारी जय ॥ ३ ॥ तुम रावण के होते हुए मन्दोदरी के झोंटे खींचनेवाले, वीरों के शिरोमणि और मानी हो। और जानकीजी के दुःख से उत्पन्न हुए क्रोध के कारण तुमने राक्षसियों को ऐसा दुःख दिया जैसा कि यमराज जीवों को देता है। तुम्हारी जय ॥ ४ ॥ रामायण सुनने से तुमको रोमांच हो जाता है, नेत्रों में आँसू भर आते हैं और वाणी शिथिल हो जाती है (अर्थात् तुमसे बोला नहीं जाता) और तुम रामजी के चरण-कमलों के रस के लिए भ्रमररूप हो; तुलसीदास तुम्हारी शरण है (उसकी कलि से) रक्षा करो; (क्योंकि) तुम शिवस्वरूप हो और तुम्हारे हाथ में त्रिशूल है। तुम्हारी जय ॥ ५ ॥

सन्धिविभाग—निर्भर + (अत्यन्त) आनन्द। भुवन + एक। भूमि + अंजना। मंजुल (सुन्दर) + आकर। चिंता + अपहर्ता। धर्म + अर्थ। काम + अपवर्ग (मोक्ष)। लोक + आदि। चरन + अनुरागी। वेग + अति। रोष + अंतकृत (यमराज)।

शब्दार्थ—विहगेस = (पक्षियों के स्वामी) गरुड़। मन्मथ = कामदेव। ऊर्धरेता = ऊर्ध्व है रेत (वीर्य्य) जिसका, जितेन्द्री। भूमिजा = (पृथ्वी से उत्पन्न) जानकीजी। जातुधानी = राक्षसियां। मकरन्द = पुष्परस।

---

[१] २८ वें भजन की [३] टिप्पणी देखो।

राग सारंग।

[३०]

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥ १॥
अघटितघटनि सुघट विघटनि ऐसी विरुदावली नहिं आन की।
सुमिरत संकटसोचविमोचनि मूरति मोदनिधान की॥ २॥
तापर सानुकूल गिरिजा हर लषनु रामु अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपाविलोकनि खानि सकल कल्यान की॥ ३॥

जिसको हनुमान्‌जी की शरण है, उसकी पैज पूरी हुई। यह वज्र और पत्थर की लकीर है अर्थात् पक्की है, कभी नहीं मिट सकती॥ १॥ (क्योंकि) नहीं होनेवाली बात को तो बनाना (जैसे सुग्रीव का बालि से अभय होना और विभीषण को राज्य मिलना कहाँ सम्भव था सो इनकी ही कृपा से हुआ) और अच्छी बनी बनाई बात को बिगाड़ देना (जैसा बालि और रावण का राज्य बिगाड़ना) ऐसी यश की पाँति (अर्थात् ऐसा भारी बाना) दूसरे का नहीं है। आनन्द-निधान हनुमान्‌जी की मूर्ति स्मरण करते ही संकट और सोच का नाश करनेवाली है॥ २॥ उस पर शिव-पार्वती, राम-लक्ष्मण, और जानकीजी कृपालु हैं जिस पर हे तुलसी! हनुमान्‌जी की सब कल्याणों की खान कृपादृष्टि है॥ ३॥

शब्दार्थ—पैज = प्रण। अघटित = नहीं होनेवाली। घटन = बनाना। सुघट = अच्छी बनी बनाई। विघटनि = बिगाड़नी।

राग गौरी।

[३१]

ताकि है तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोर को॥ १॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन-खल बलजोर को।
वेदपुरानप्रगटपुरुषारथ सकल-सुभट-सिरमौर को॥ २॥
उथपै थपन, थपे उथपन, पन विबुधवृंद-वंदि छोर को।
जलधिलाँघि दहि लंक प्रबलबल दलन निसाचर घोर को॥ ३॥

जाको बालविनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुकचोट चूरन किय रदमद कुलिसकठोर को ॥ ४ ॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन कोर को।
सदा अभय जय मुदमंगलमय जो सेवक रनरोर को ॥ ५ ॥
भगतकामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारों करतल जसु, गावत गई बहोर को ॥ ६ ॥

समझ कर उसकी ओर कौन ताकेगा कि, जिसे सब भाँति केशरीनन्दन हनुमान्‌जी का भरोसा है ॥ १ ॥ दासों को प्रसन्न करनेवाला, शत्रुगणों का नाशक, दुष्टों का मुख तोड़नेवाला बड़ा बली कौन है ? (अर्थात् इनको छोड़ कोई दूसरा नहीं है) और (इनका ऐसा) पुरुषार्थ वेदों और पुराणों में प्रकट है। फिर सब बड़े बड़े योद्धाओं का शिरोमणि दूसरा कौन है (अर्थात् येही हैं क्योंकि) ॥ २ ॥ जो (सुग्रीव विभीषण) निकाल दिये गये थे उनको तो (राजा बना कर) रक्खा और जो (बालि, रावण सिंहासन पर) बैठे थे उनको निकाल बाहर किया। जो देवताओं के समूह बन्दीखाने में पड़े थे उन्हें प्रण करके किसने छुड़ाया और समुद्र को फाँद कर, लंका को फूँक कर बड़े बड़े बली और भयंकर राक्षसों का नाश किसने किया ॥ ३ ॥ जिनकी बाललीला समझ कर प्रातःकाल के सूर्यदेव जी में (१) डरते हैं (कि कहीं फिर मेरा ग्रास न कर लें) और जिनकी ठोड़ी की चोट ने (इन्द्र के) कठिन वज्र के दाँतों के मद का चूर कर दिया (अर्थात् वज्र की धार के भी दाँत खट्टे कर दिये ऐसी कठिन थी) ॥ ४ ॥ (इन्द्रादि) लोकपाल इनके नेत्रों की कोर को सीधी देखना चाहा करते हैं, (अर्थात् हमारे ऊपर इनकी सीधी दृष्टि बनी रहे क्योंकि) युद्ध में कठिन (ऐसे हनुमान्‌जी) का जो सेवक है वह सदा निडर (रहता है) और (संग्राम में) जय पाता है और उसके आनन्द-मङ्गल होते हैं ॥ ५ ॥ रामजी मानो पूरे (पूर्णमासी के) चन्द्रमा हैं उनको चकोर के समान (इकटक देखनेवाले हनुमान्‌जी) का नाम भक्तों को कल्पवृक्ष के समान (सब मनोरथों का देनेवाला) है। हे तुलसी ! चारों (२) फल उसकी हथेली पर हैं कि जो (मनुष्य) गई हुई (वस्तु) को फिर (दिलानेवाले हनुमान्‌जी) का यश गाता है ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—किसोर = लड़का। बंदि = जेलखाना। चिबुक = ठोड़ी। रद = दाँत।

---

(१) २५ वें भजन में देखो। (२) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

इस भजन से यह स्पष्ट होता है कि गुसाईंजी को जब सेवा करते करते बहुत दिन हो गये और काम क्रोध लोभ मोह अधिक सताने लगे और किसी भाँति चित्त की शान्ति न हुई तब उन्होंने तंग होकर हनुमान्‌जी को भी दो चार बुरी भली सुना दीं:—

राग बिलावल।

[३२]

ऐसी तोहि न बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से, तोसे न वसीले ॥ १ ॥
तेरे देखत सिंघ के सिसु मेढ़क लीले।
जानत हौ कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ॥ २ ॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बलु गयो किधौं भयो अब गरबगहीले ॥ ३ ॥
सेवक को परदा फटे तू समरथ सीले।
अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही ले ॥ ४ ॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे रामरँगीले ॥ ५ ॥

हे हनुमान्! तुझे ऐसा नहीं चाहिए। तू तो बड़ा हठ करनेवाला है (अर्थात् जिस बात की तू हठ करता है उसे पूरा करके छोड़ता है और मेरी विनती नहीं सुनता। यह ठीक नहीं, ऐसी बातों से तेरे यश में कलंक लग जायगा), रामजी सरीखे (समर्थ तो) कहीं स्वामी नहीं हैं और तुझ सरीखा (मेरा कोई दूसरा) वसीला नहीं है ॥ १ ॥ सो तेरे देखते देखते सिंह के बच्चे को मेंढ़क लीले जाता है (अर्थात् तू सिंह समान है और मैं तेरा शरणागत बालक हूँ और तेरे लिए कलियुग मेंढ़क समान है सो मुझे खाये जाता है अर्थात् राम के चरणकमलों से विमुख किया चाहता है और तू तमाशा देख रहा है सो) ऐसा जानता हूँ कि कलियुग ने मानो तेरे भी (दया, उदारता आदि) गुणसमूहों को कील दिया है (क्योंकि जो गुण, मन्त्र आदि कील दिये जाते हैं उनमें शक्ति नहीं रहती सो देख लिया तुझमें भी सिंह का सा पराक्रम नहीं रहा) ॥ २ ॥ (तेरे एक दिन वे थे कि लंका-दहन के समय) तेरी हुंकार सुनते ही रावण के बन्धन (अर्थात् अंग अंग के जोड़) ढीले पड़ गये थे (भाव—तेरे भय के

मारे उसके पेट में पानी हो गया था) सो तेरा वह (पहिला सा) बल कहाँ गया (जो चुप साधे बैठा है) अथवा अब तू घमंडी हो गया है (अर्थात् रामराज्य में दयाशील था और अब कलियुग में अभिमानी हो गया कि मेरी सुध नहीं लेता) ॥ ३ ॥ और (जो पहला सा ही बल है और अभिमान भी नहीं है तो मुझ) सेवक का जो परदा फट रहा है (अर्थात् पोल खुलने के कारण मेरी बात जाती है और मेरे सेवकपन में बट्टा लगता है) उसे सीं दे (अर्थात् मेरे सेवकपन में बट्टा मत लगने दे) क्योंकि तू सब (भाँति से) समर्थ है (अर्थात् कलि और उसके चेले काम, क्रोध, लोभ, मोह सब तेरे कहे में हैं । और पहले तेरा यह स्वभाव था कि) अपने से अधिक अपने (सेवक) की सुनता मानता और सहता था (अब क्या हो गया) ॥ ४ ॥ तुलसीदास की पीड़ा को सुन कर तू ही सुन्दर यश ले और यों तो तीनों काल उनका भला ही होता है जो राम के रंग में रँग रहे हैं (भाव यह है कि रामभक्त होने से मेरा तो भला हो हीगा पर तुझे भी जो बहती गंगा में हाथ धोना है तो धो ले) ॥ ५ ॥

संकेत—गुसाईंजी के जीवन-चरित्र में ऐसा लिखा है कि इनके अनेक सिद्धाई के काम सुन कर एक बार बादशाह ने इन्हें बुलाया और कहा कि हमें भी कोई चमत्कार दिखाओ । गुसाईंजी ने उत्तर दिया कि मैं तो केवल राम का नाम जानता हूँ, मेरे पास कोई चमत्कार नहीं । यह सुन बादशाह ने कहा कि राम को ही दिखाओ और इन्हें जेलखाने में भेज दिया । उस समय गोस्वामीजी ने यह पद बनाया था । इस भजन के दूसरे और चौथे पद का अर्थ जो बादशाह के पक्ष में लगता है उसी को लिखे देते हैं । बाक़ी सब एक सा है ।

२—तेरे लिए बादशाह मेंढ़क के समान है सो मुझे बन्दीख़ाने में तङ्ग कर रहा है ।

४—मुझ सेवक का जो परदा फट रहा है अर्थात् लोग कह रहे हैं कि राम का सेवक होकर भी गुसाईं बादशाह को कुछ चमत्कार नहीं दिखाता कि जिसमें बन्दीख़ाने से छूटे । सो तू उस परदे को सीं दे अर्थात् बादशाह को कुछ ऐसा कौतुक दिखा दे कि मेरी बात में बट्टा न लगे । क्योंकि तू समर्थ है अर्थात् सब कुछ कर सकता है ।

[३२]

समरथ सुअन समीर के रघुबीर पिआरे
मो पर कीबी तोहि जो करिलेहि भिया रे ॥ १ ॥
तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनीचिँआ रे ।
अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवनउजियारे ॥ २ ॥

केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे॥ ३॥
खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल बलि आज लौं जग जागि जिया रे॥ ४॥
जो तोसों हो तो फिरो मेरो हेतु हिया रे।
तौ क्यौं बदन दिखावतो कहि बचन इया रे॥ ५॥
तोसों ज्ञान-निधान को सरवज्ञ बिया रे।
हौं समुझत साईं द्रोह की गति छार छिया रे॥ ६॥
तेरे स्वामी राम से—स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे॥ ७॥

हे समर्थ वायुपुत्र! हे रामजी के प्यारे! तुझे मुझ पर जो कुछ करना हो सो हे भइया! कर ले॥ १॥ (जो कहे कि मैं तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता हूँ तो तू तो ऐसा समर्थ है कि) तेरी महिमा से इमली के चियें भी (रुपये, अशरफ़ी की जगह) चल सकते हैं। (भाव यह है कि मैं इमली के चियें समान तुच्छ हूँ और भगवान् के भक्त रत्न के समान हैं यदि तू कृपा करेगा तो मेरी गिनती भी भक्तों में हो सकती है और जैसे रत्न को जौहरी आदर से रखता है वैसे भगवान् भी मुझे अपने चरणों में रख लेंगे)। तूने तीनों लोकों में तो (रावणादि शत्रुओं को मरवा कर चन्द्रसमान) उजेला कर दिया (अर्थात् तीनों लोकों को शान्त कर दिया) फिर मेरी बिरियाँ अँधेरा क्यों कर रक्खा है (अर्थात् कलियुग मेरी बुरी दशा कर रहा है उससे मुझे क्यों नहीं बचाता)॥ २॥ किस कारण से तो तूने मुझे अपना भक्त जान कर आदर किया था और अब किस पाप और औगुन से मुझे अपना बना कर भी त्याग दिया (जो कहे कि कब तुझे भक्त जान कर मैंने आदर किया था तो जब मैं तेरा पूजन करता था तब लोग कहते थे कि तुलसी-दास पर हनुमानजी की कृपा है इसी से मुझे ज्ञान होगया था कि तेरी मुझ पर कृपा थी पर अब सुनाई नहीं होती)॥ ३॥ मैंने सदा चुकटी माँग कर खाया और तेरा नाम लिया। और बलि जाऊँ तेरे ही बल से आज तक जगत् में प्रसिद्ध होकर जिया॥ ४॥ (जो कहे कि पहले तेरी हम पर प्रीति थी अब नहीं है तो) जो मेरा प्रेम—मेरा मन—विमुख हो गया तुम्हारे होते तो मैं क्यों मुँह दिखाता और क्यों

ऐसा (बुरी भली) बातें सुनाता ॥ ५ ॥ (जो कहै कि ऊपर के मन से बातें मारता है तहाँ कहते हैं कि) अरे तुझ सरीखा ज्ञान की खान और सबके मन की जाननेवाला दूसरा कौन है (अर्थात् स्वयं समझ ले कि मेरे हृदय में तुझसे प्रीति है या नहीं) और मैं भी समझता हूँ कि स्वामी से द्रोह करने की गति राख का नरक और विष्ठा का नरक है (अर्थात् उनमें पड़ना होता है) ॥ ६ ॥ तेरे स्वामी रामजी और स्वामिनी सीताजी सरीखी हैं सो वहाँ (उनके यहाँ) तुलसी को कौन पूछता है और उसका कौन है और उसको किसका सहारा है (भाव यह है कि मेरा तू ही है और मुझे तेरा ही सहारा है । तू ही मुझे रघुनाथजी के पास पहुँचा) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—खेंची = भीख । बिया = दूसरा । तकिया = सहारा । छार = खाक का नरक । छिया - विष्ठा का नरक ।

[३४]

अतिआरत अतिस्वारथी अतिदीन दुखारी ।
इनको बिलग न मानिए बोलहिं न बिचारी ॥ १ ॥
लोक-रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी ।
अतिबरषे अनबरषेऊँ देहिं दैवहिं गारी ॥ २ ॥
नाकहि आयो नाथ सों साँसति भय भारी ।
कहि आयो कीबी छमा निज ओर निहारी ॥ ३ ॥
समै साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी ।
सो सब बिधि ऊपर करै अपराध बिसारी ॥ ४ ॥
बिगरी सेवक की सदा साहबहि सुधारी ।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ॥ ५ ॥

पहले जो कठोर वचन कहे थे उनका अपराध क्षमा कराते हैं । क्योंकि ऐसा मालूम होता है कि हनुमानजी ने गुसाईंजी का कष्ट दूर कर दियाः—

(हे हनुमान !) (राजदंड आदि से) अति पीड़ित, बड़ा मतलबी, बड़ा दरिद्र और दुखी, इनका बुरा न मानना चाहिए । ये विचार कर नहीं बोलते (क्योंकि इनकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती) ॥ १ ॥ संसार में ऐसी रीति देखी और सुनी है कि

दण्डक ।

लक्ष्मणजी की स्तुति ।

[३७]

लाल लाड़िले लषन हितु हौ जन के ।
सुमिरे संकटहारी सकलसुमंगलकारी पालक कृपाल अपनेपन के ॥
धरनीधरनहार, भंजन भुवनभार; अवतार साहसी सहसफन के ।
सत्यसंध सत्यव्रत, परमधरमरत, निरमल करमवचनमन के ॥ २ ॥
रूप के निधान, धनु-बान-पानि तूनकटि महावीर विदित, जितैया बड़े रन के ।
सेवक-सुख-दायक सबल सबलायक गायक जानकीनाथगुन-गन के ॥ ३ ॥
भावते भरत के, सुमित्रासीता के दुलारे चातक चतुर राम स्यामघन के ।
वल्लभ उर्मिला के, सुलभसनेहवस धनी धन तुलसी से निरधन के ॥

हे प्यारे ! लखनलाल ! तुम (रामभक्त) जनों का हित करनेवाले हो । स्मरण करने से तुम संकट को हरते हो । हे कृपाल, तुम सब मंगलों के करनेवाले, और अपने प्रण के पालनेवाले हो ॥ १ ॥ पृथ्वी को धारण करनेवाले, संसार के भार के दूर करने वाले; बड़े साहसी और शेषनाग का अवतार हो । सत्य प्रतिज्ञा और सत्य नियमवाले हो, धर्म में तुम्हारी बड़ी प्रीति है और तुम मन, वचन, कर्म से निर्मल (अर्थात् शुद्ध अन्तःकरणवाले) हो ॥ २ ॥ तुम रूप के स्थान अर्थात् बड़े सुन्दर, हाथ में धनुष-बाण धारण किये, कटि में तरकस बाँधे, बड़े बड़े वीरों में विख्यात और बड़े बड़े युद्धों के जीतनेवाले हो । सेवक को सुख देनेवाले, बली, सब योग्य और रामजी के गुणों के समूह के गानेवाले हो ॥ ३ ॥ तुम भरतजी के प्यारे, सुमित्रा और सीता के दुलारे और राम-रूपी-श्याम-मेघ के चतुर चातक, उर्मिला के पति, प्रेम के वश सहज में मिलने-वाले और तुलसी सरीखे कंगाल को (रामभक्ति-रूपी) धन देने के लिए धनी के समान हो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—चातक = पपीहा । घन = मेघ । उर्मिला = लक्ष्मणजी की स्त्री का नाम । वल्लभ = पति । धरनी = पृथ्वी । संध = प्रतिज्ञा । पानि = हाथ । तून = तरकस ।

राग धनाश्री ।

[३८]

जयति लछमनानंत भगवंत भूधरभुजगराज भुवनेस भूभारहारी ।
प्रलैपावकमहाज्वालमालावमन, समनसंताप लीलावतारी ॥
जयति दासरथि समर-समरथ सुमित्रा-सुवन सत्रुसूदन रामभरत बंधो ।
चारु चंपकवरन, वसनभूषनधरन, दिव्यतर भव्य लावन्यसिंधो ॥
जयति गाधेयगौतमजनकसुखजनक विस्वकंटककुटिलकोटिहंता ।
वचन-चय-चातुरीपरसुधरगरवहर सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥ ३ ॥
जयति सीतेससेवासरस विषयरसनिरस निरुपाधिधुरधर्मधारी ।
विपुलवलमूल सार्दूलविक्रम जलदनादमर्दन महावीर भारी ॥ ४ ॥
जयति संग्रामसागरभयंकरतरन रामहितकरनवरबाहुसेतू ।
उरमिला-रवन कल्यानमंगलभवन दासतुलसीदोषदवनहेतू ॥ ५ ॥

लक्ष्मणजी की जय—जो अनन्त, ऐश्वर्ययुक्त, पृथ्वी के धारण को शेषनाग, संसार के स्वामी, (दुष्टों को मार कर) पृथ्वी के भार को दूर करनेवाले, (क्रोध के समय) प्रलय की अग्नि की बड़ी भयंकर लपटों के समूह के उगलनेवाले और लीला से अवतार लेकर (जगत् के) संताप को दूर करनेवाले हैं ॥ १ ॥ दशरथ के पुत्र की जय—जो युद्ध में बड़े योग्य, सुमित्रा के पुत्र, शत्रुनाशन, और राम तथा भरत के भाई हैं। सुन्दर चंपे के फूल समान जिनका रंग है, बड़े सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण किये, बड़े मनोहर, शोभा के समुद्र ॥ २ ॥ विश्वामित्र, गौतम, और जनक को सुख उत्पन्न करनेवाले (अर्थात् सुबाहु आदि राक्षसों को मार विश्वामित्र को, अहिल्या को रामजी के द्वारा तरवा कर गौतम को और धनुष-भंग के समय जनक को सुख देनेवाले) संसार को काँटे के समान जो करोड़ों कुटिल (राक्षस) उनके मारनेवाले। वचनों के समूहों की चतुराई से (अर्थात् चतुराई की बहुतसी बातों से) परशुराम के घमंड

के दूर करनेवाले और सदा रघुनाथजी के पीछे पीछे चलनेवाले ऐसे लक्ष्मणजी की जय ॥ ३ ॥ सीतापति रामजी की सेवा में प्रीति करनेवाले, विषय के रस से अलग, कामनारहित हो कर (रामजी की सेवारूपी) धर्म की धुरी को धारण करनेवाले, बहुत से बल के आधार, सिंह-समान पराक्रमवाले, जिन्होंने मेघनाद का वध किया, बड़े योधा और भारी (अर्थात् शक्ति लगने के समय मेघनाद आदि करोड़ा योधाओं से नहीं उठे) ऐसे लक्ष्मणजी की जय ॥ ४ ॥ संग्रामरूपी भयंकर समुद्र से तरकर, रामजी के हित के लिए अपनी सुन्दर भुजाओं का पुल बना दिया (अर्थात् समुद्र के समान मेघनाद-संग्राम के पार जाना कठिन था सो उसे मारकर मानो रामजी को आगे जाने के लिए अपनी भुजाओं से मार्ग साफ़ कर दिया) ऊर्मिला के पति, कल्याण और मंगल के स्थान (अर्थात् करनेवाले) और तुलसीदास के पापों के दूर करने में कारण (अर्थात् दूर करनेवाले) ऐसे लक्ष्मणजी की जय ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—लछमन + अनंत । भुवन + ईस । रामभद्र + अनुगन्ता । सीता + ईस ।

शब्दार्थ—भुजग = सर्प । ज्वाला = लपट । वमन = उगल । चारु = सुन्दर । दिव्य = सुंदर । लावन्य = शोभा । गाधेय = विश्वामित्र । विपुल = बहुत । जलदनाद = मेघनाद । उरमिला = लक्ष्मणजी की स्त्री का नाम ।

भरतजी की स्तुति ।

[३९]

जयति भूमिजारवनपदकंजमकरंदरसरसिकमधुकर भरत भूरिभागी ।
भुवनभूषन भानुवंसभूषन भूमिपालमनि रामचंद्रानुरागी ॥ १ ॥
जयति विबुधेसधनदादिदुर्लभमहा राजसम्राजसुखप्रदविरागी ।
खड्गधाराव्रतीप्रथमरेखाप्रगट सुद्धमतिजुवतिपतिप्रेमपागी ॥ २ ॥
जयति निरुपाधिभक्तिभावजंत्रितहृदय बंधुहितचित्रकूटाद्रि-चारी ।
पादुकानृपसचिवपुहुमिपालक परमधरमधुरधीर वरवीरभारी ॥३॥
जयति संजीवनीसमय संकटहनूमान धनुबान महिमा बखानी ।

बाहुबलविपुलपरिमित पराक्रमअतुल गूढ़गति जानकीजानि-जानी ॥ ४ ॥
जयति रनअजिरगंधर्वगन गरवहर फेरिकिये राम गुनगाथगाता।
मांडवी चित्तचातक नवांबुदवरन सरन तुलसीदास अभयदाता ॥

रामचन्द्रजी के चरण-कमलों के मकरंदरस के रसिक भौंरे के समान, बड़े भाग्यवाले भरतजी की जय। संसार के भूषण, सूर्य के आभूषण, राजाओं के शिरोमणि और रामचन्द्रजी से प्रेम करनेवाले ॥ १ ॥ इन्द्र, कुबेर आदि को महाकठिन ऐसे सुख के देनेवाले चक्रवर्ती राज्य से प्रीति न करनेवाले भरतजी की जय—खड्गधार के समान (कठिन) व्रत करनेवालों में जिनकी प्रथम रेखा प्रकट है, जिनकी शुद्धमतिरूपी कामिनी उनके स्वामी (रामचन्द्रजी) के प्रेम में लग रही है ऐसे भरतजी की जय ॥ २ ॥ जो (रामजी के) निष्काम भक्ति-भाव से अपने हृदय को वश में कर भाई (रघुनाथजी) के लिए चित्रकूट पर्वत पर फिरते फिरे। और जिन्होंने पादुकारूपी राजा के मंत्री बन कर पृथ्वी का पालन किया और जो परमधर्म (अर्थात् रामजी की सेवा) के भार को (धारण करने में) धीर और बड़े सुन्दर वीर हैं—ऐसे भरतजी की जय ॥ ३ ॥ (लक्ष्मणजी के जब शक्ति लगी तब)—संजीवनी बूटी लाने के समय (भरतजी के खाली बाण से) जब हनुमान को संकट हुआ (अर्थात् बाण लगते ही मूर्छित हो गिर पड़े) तब उन्होंने (भरतजी के) धनुष-बाण की बड़ी बड़ाई की (अर्थात् भरतजी के थोथे बाण का यह प्रताप कि मैं इतना बली उसके लगते ही तुरन्त गिर पड़ा।) जिनकी भुजाओं का बड़ा भारी असीम बल है, पराक्रम भी अतोल है और जिनकी गूढ़ गति को जानकीपति (रघुनाथजी) ही जानते हैं ऐसे भरतजी की जय ॥ ४ ॥ जिन्होंने युद्ध के आँगन में गन्धर्वों के समूह का घमंड दूर किया और फिर उन्हें रामजी के गुणों की कथा का गानेवाला बनाया। मांडवी के चित्तरूपी चातक को नवीन मेघरूप (भाव जैसे चातक नवीन मेघ को देख प्रसन्न होता है, ऐसे ही मांडवी को अपने रूप से प्रसन्न करने वाले) और अभय के देनेवाले ऐसे भरतजी की जय हो; तुलसीदास उनकी शरण है ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—रामचन्द्र + अनुरागी। धनद (कुबेर) + आदि। चित्रकूट + आदि। नव + अंबुद।

शब्दार्थ—भूमिजा = जानकी। रवन = पति। मधुकर = भौंरे। भूरि = बहुत। विबुधेस = देवताओं का स्वामी, इन्द्र। सम्राज = चक्रवर्ती। जंत्रित = वश में हुआ। सचिव = मन्त्री। पुहिमि = पृथ्वी। परिमित = असीम। अजिर = आँगन। गाथ = कथा। मांडवी = भरतजी की स्त्री का नाम। अंबुद = मेघ। बरन = रूप।

राग धनाश्री ।

शत्रुघ्नजी की स्तुति ।

[४०]

जयति जय सत्रुकरिकेसरी सत्रुहन सत्रुतमतुहिनहरकिरनकेतू ।
देव महिदेव महि धेनु सेवक सुजन सिद्ध मुनि सकल कल्यानहेतू ॥
जयति सर्वांगसुंदर सुमित्रा-सुवन भुवन-विख्यात भरतानुगामी ।
वर्मचर्मासिधनुबानतूनीरधर सत्रुसंकटसमन यत्प्रनामी ॥ २ ॥
जयति लवनांबुनिधिकुंभसंभव महादनुजदुर्जनदवन दुरितहारी ।
लछमनानुज भरतरामसीताचरनरेनुभूषितभालतिलकधारी ॥
जयति स्रुतिकीर्तिवल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद भक्तमुक्ति-
दाता ।
दास तुलसी चरनसरन सीदत विभो पाहि दीनार्त्तसन्तापहाता ।

शत्रुरूपी हाथी को सिंहरूप शत्रुघ्नजी की जय, जय । जो शत्रुरूपी अंधकार और पाले के हरने को सूर्य के समान हैं । देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी, गौ, भक्त, सेवक, सिद्ध और मुनि इन सबके कल्याण के कारण अर्थात् करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जिनके सब अंग सुन्दर हैं, जो सुमित्रा के पुत्र, संसार में विख्यात और भरतजी के पीछे पीछे चलनेवाले, बखतर, ढाल, तलवार, धनुष, बाण और तरकस को धारण किये हैं और जिनको प्रणाम करने से शत्रु से किये गये संकट दूर होजाते हैं उन्हें प्रणाम करता हूँ; उनकी जय हो ॥ २ ॥ लवणासुररूपी समुद्र को अगस्त्य-रूप (अर्थात् सोखनेवाले), बड़े बड़े दैत्य और दुष्टों के नाशक और पापों के हरनेवाले, लक्ष्मणजी के छोटे भाई, भरत, और सीतारामजी के चरणों की रज जिस पर शोभायमान है ऐसे अपने माथे पर तिलक धारण किये ऐसे शत्रुघ्नजी की जय ॥ ३ ॥ श्रुति कीर्ति के पति, (विमुख को) बड़े दुर्लभ और (भक्तों को) सुलभ, प्रणाम करनेवाले को सुख के और भक्तों को मुक्ति के दाता (शत्रुघ्नजी) की जय । तुलसीदास चरणों की शरण होकर भी दुःख पा रहा है उसकी रक्षा करो क्योंकि तुम समर्थ और दीनदुखियों के सन्ताप के हरनेवाले हो ॥ ४ ॥

संधिविभाग—सर्व + अंग। भरत + अनुगामी। चर्म (ढाल) + असि (तलवार)। लवन (लवणासुर) + अंबुनिधि (समुद्र)। लछमन + अनुज। दीन + आर्त (दुखी)।

शब्दार्थ—किरनकेतु = सूर्य। करि = हाथी। केसरी = शेर। तम = अँधेरा। तुहिन = पाला। वर्म = बखतर। तूनीर = तरकस। कुंभसंभव = अगस्त्य। दुरित = पाप। स्रुतिकीर्ति = शत्रुघ्न की स्त्री का नाम। नर्मद = सुख के दाता।

राग केदारा।

जानकीजी की स्तुति।

[४१]

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरीऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥ १॥
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नामु लै भरै उदर एक प्रभु दासि दास कहाइ॥ २॥
बूझि हैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरि बिगरिऔ बनिजाइ॥ ३॥
जानकी जग-जननि जनकी किये वचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गन गाइ॥ ४॥

हे माता! कभी अवसर पाकर और कुछ करुणा की बात चला कर (रघुनाथजी को) मेरी भी याद दिला देना॥१॥ (क्या याद दिलाना कि) हे प्रभो! एक ग़रीब सब साधनों से रहित, दुर्बल, मलीन और पूरा पापी तुम्हारी दासी (तुलसी) का दास कहला कर और तुम्हारा नाम लेकर पेट भरता है॥ २॥ (इतनी सुनकर जब रामजी) पूछेंगे कि वह कौन है तब मेरा नाम लेकर (ऊपर की कही) दशा जता देना (जो कहो कि वे सुन कर कुछ न करेंगे तो मेरा कहना वृथा होगा तहाँ कहते हैं कि कृपालु रघुनाथजी के सुनते ही मेरी बिगड़ी बात सुधर जायगी॥ ३॥ हे जगत् की माता जानकीजी! जो इस जन की सहायता वचनमात्र से कर दोगी तो तुम्हारे स्वामी का गुण-गण गाकर यह तुलसीदास संसार (सागर) से पार हो जायगा॥ ४॥

शब्दार्थ—अम्ब = माता। छीन = दुबला। मलीन = मैला। अघी = पापी। अघाय = पूरा, पेटभरा।

[४२]

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी ।
जनु कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों प्यास प्रेम पानकी ॥
सरलप्रकृति आपु जानिये करुनानिधान की ।
निज गुन अरिकृत अनहितो दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की ॥ २ ॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की ।
तुलसिदास न बिसारिए मन करम बचन जाके सपनेहुँ गति न आनकी ॥ ३ ॥

हे जानकीमाता ! कभी समय पाकर (रघुनाथजी को) मेरी सुध दिला देना । उनका दास कहला कर उनका नाम लेता हूँ । मैं चातक का सा प्रण किये हूँ (अर्थात् उसे स्वाति का जल मिले तो पिये नहीं पियासा रहे) मुझे उनके प्रेम के जल की प्यास है ॥ १ ॥ (जो कहो कि कदाचित् वे रिस हो जायँ कि ऐसे पापी की बात हमसे क्यों कहती हो सो शंका न कीजिए क्योंकि) कृपानिधान (रामजी) का स्वभाव बड़ा सीधा है उसे तुम जानती ही हो, (वे अवश्य कृपा करेंगे) क्योंकि अपना गुण, शत्रु की की हुई बुराई, दास का दोष और जो वरदान देते हैं इन बातों की याद उनके चित्त में नहीं रहती ॥ २ ॥ और भगवान् की ऐसी टेव है कि जिनका कहीं मान न हो उनका मान करके भी उसे भूल जाते हैं सो हे माता, (तुम कहना कि) तुलसीदास को न भूलिए कि जिसको मन, कर्म, वचन से सुपने में भी दूसरे (किसी देवता) का सहारा नहीं है ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति ।

[४३]

जयति सच्चितव्यापकानंद परब्रह्म विग्रह व्यक्तलीलावतारी ।
विकलब्रह्मादि सुर सिद्धसंकोचवस विमलगुनगेह नरदेहधारी ॥१॥
जयति कौसलाधीस कल्यान कोसलसुताकुसल कैवल्यफल चारु चारी ।

वेदबोधित कर्म-धर्म-धरनी-धेनु-बिप्र-सेवक-साधु-मोदकारी ॥ २ ॥
जयति रिषिमखपाल समनसज्जनसाल सापवसमुनिवधूपापहारी ।
भंजि भवचाप दलिदापभूपावली सहितभृगुनाथ नत माथभारी ॥
जयति धार्मिकधुरधीर रघुवीर गुरु मातु पितु बंधुवचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रिविंध्याद्रि दंडकविपिन धन्यकृत पुन्यकाननविहारी ॥
जयति पाकारिसुतकाककरतूतिफलदानि खनि गर्त्त गोपित बिराधा ।
दिव्यदेवीवेप देखि लखि निसिचरी जनु बिडंवितकरी बिस्वबाधा ॥
जयति खरत्रिसिरदूषनचतुर्दससहससुभटमारीचसंघारकरता ।
गीधसबरीभगतिबिवस करुनासिंधु चरितनिरुपाधि त्रिविधार्ति-हरता ॥ ६ ॥
जयति मदअंध कुकबंधवध बालि बलसालि बध करन सुग्रीव राजा ।
सुभटमरकटभालुकटकसंघटसजत नमतपदरावनानुज निवाजा ॥
जयति पाथोधि-कृत-सेतु कौतुकहेतु काल-मन-अगम लइ ललकि लंका ।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन, लोकलोकप किए रहितसंका ॥ ८ ॥
जयति सौमित्रि सीतासचिवसहित चले पुष्पकारूढ निज राज-धानी ।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल राम भे भूप वैदेहि रानी ॥ ६ ॥

सत् अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप, चित् (चेतन) और व्यापक अर्थात् (अन्तर्यामी रूप से) चर अचर में रहनेवाले और आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द परब्रह्म शरीर धारण कर, (संसार में) लीला करने के लिए प्रकट हुए हैं। जब ब्रह्मा आदि सब

देवता और सिद्ध (रावण की अनीति से) व्याकुल हो गये तब उनके संकोच के वश (अर्थात् उनके दबाव से रूप, तेज, बल, वीर्य आदि) निर्मलगुणों का स्थान नर-शरीर धारण किया ॥ १ ॥ मंगलस्वरूप, अयोध्यापति (राजा दशरथ) और कल्याण-रूप कौशल्या के यहाँ मोक्ष के (सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य रूप) सुन्दर चार फल हुए (उनमें से) वेद में कहे हुए (यज्ञ आदि) कर्म, (सत्य आदि) धर्म करने-वाले और पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण, भक्त और साधु इनको आनन्द देनेवाले रघुनाथजी की जय ॥ २ ॥ (विश्वामित्र) ऋषि के यज्ञ के रक्षक, सन्तजनों के दुःखनाशक और शाप के वश (पाषाणरूप) मुनिवधू (अहल्या) के पाप के हरनेवाले, जिन्होंने महादेवजी का धनुष तोड़ कर परशुरामजी समेत बहुत से राजाओं के घमंड का नाश कर दिया और (जिनके सामने परशुरामजी ने) अपना भारी माथा नवाया—(अर्थात् जो माथा बल-वीर्य के घमंड से भारी हो रहा था और किसी के सामने नहीं झुका था (उसे झुकाया) ऐसे रामजी की जय ॥ ३ ॥ धर्म के भार को धारण करने में धीर, रघुकुल के वीर, और गुरु, माता, पिता और भाई इनके कहने में चलनेवाले; चित्रकूटपर्वत, विन्ध्याचल पर्वत और दंडक वन में विचर कर (जिन्होंने) उन्हें धन्य कर दिया ऐसे रामजी की जय ॥ ४ ॥ इन्द्र के पुत्र को काक रूप की करनी का फल देनेवाले (अर्थात् दंडक वन में जब जयन्त ने सीताजी के चरण में चोंच मारी थी तब उसके शरण आने पर उसे काणा कर दिया) और विराध राक्षस को (जो वर के प्रभाव से नहीं मर सकता था) गड्ढा खोद कर उसमें गाड़ दिया। फिर (पंचवटी में) बड़ा सुन्दर देवांगना का वेष की हुई (शूर्पणखा) को देखकर और उसे राक्षसी (और रावण की बहिन) पहचान कर (जिन्होंने उसके नाक, कान काट उसे कुरूप कर दिया) मानो संसार की बाधा (रावण) का तिरस्कार किया (अर्थात् उसे चिनोती दी) ऐसे रामजी की जय ॥ ५ ॥ (शूर्पणखा के सहायक) खर, त्रिशिरा और चौदह हज़ार बड़े योद्धाओं का तथा मारीच राक्षस का नाश करनेवाले; गिद्ध और शबरी की भक्ति से उनके अधिक वश में होनेवाले (अर्थात् गिद्ध की पिता समान क्रिया करी और शबरी को तारा) ऐसे दया के समुद्र, निष्कलंक चरित्रवाले और तीन प्रकार के तापों के हरनेवाले रामजी की जय ॥ ६ ॥ जिन्होंने मद के अन्धे दुष्ट कबन्ध को मारा और बड़े बली बाली को मार सुग्रीव को राजा बनाया। और बड़े बड़े वीर बन्दर और रीछों की सेना इकट्ठी कर सजाई और चरणों में नवते ही रावण के छोटे भाई (विभीषण) को निहाल कर दिया (अर्थात् प्रसन्न हो लंका का

राज दिया) ऐसे रामजी की जय ॥ ७ ॥ कौतुक के लिए समुद्र का पुल बाँध कर, काल के मन को भी अगम (अर्थात् जहाँ काल तो क्या उसका मन भी न जा सके) ऐसी लंका को ललकार कर ले लिया। और कुलसहित, भाईसहित और सेना-समेत रावण का रण में नाश करके (तीनों) लोकों और (इन्द्र आदि) लोकपालों को भयरहित कर दिया। ऐसे रामजी की जय ॥ ८ ॥ और फिर लक्ष्मण, सीताजी और (सुग्रीव, हनुमान आदि) मन्त्रियों सहित पुष्पक विमान पर चढ़ कर अपनी राजधानी (अयोध्या) को चले और राम के राजा होने से और जानकीजी के रानी होने से सब अवधवासी प्रसन्न हो गये। ऐसे रामजी की जय ॥ ९ ॥

संधिविभाग—व्यापक + आनन्द। लीला + अवतारी। ब्रह्मा + आदि। कोसल + अधीस। भूप + अवली (क़तार, समूह)। वचन + अनुसारी। चित्रकूट + अद्रि (पर्वत)। विन्ध्य + अद्रि। त्रिविध + आर्ति (दुःख)। रावन + अनुज। स + अनुज। पुष्पक + आरूढ़।

शब्दार्थ—व्यक्त = प्रकट। मख = यज्ञ। कैवल्य = मुक्ति। पाकारि = इन्द्र। साल = दुःख। गर्त = गड्ढा। गोपित = छुपा दिया, गाड़ दिया। दिव्य = बड़ा सुन्दर। विडंबित = तिरस्कृत। निरुपाधि = निष्कलंक। पाथोधि = समुद्र। दशकंठ = रावण।

[४४]

जयति राजराजेंद्र राजीव-लोचन रामनाम कलि-कामतरु सामसाली।
अनयअंभोधिकुंभज निसाचर-निकर-तिमिर-घन-घोर-खर किरन-माली ॥ १ ॥
जयति देव मुनिदेवनरदेव दसरत्थ के देवमुनि वंद्य किए अवधवासी।
लोकनायककोकसोकसंकटसमन, भानुकुलकमलकानन विकासी ॥
जयति सिंगारसरतामरसदामदुतिदेह गुनगेह विस्वोपकारी।
सकलसौभाग्यसौंदर्य सुखमारूप मनोभवकोटिगरवापहारी ॥ ३ ॥
जयति सुभग सारंग सु-निखंग सायक सक्ति चारु चर्मासि वरवर्मधारी।

धरमधुरधीर रघुवीर भुजबल अतुल हेलयादलितभूभार भारी ॥ ४ ॥
जयति कलधौतमनिमुकुट कुंडल तिलकझलकभलिभाल विधुवदनसोभा ।
दिव्यभूषनवसन पीत उपवीत किय ध्यान कल्यान-भाजन न को भा ॥ ५ ॥
जयति भरत सौमित्रि सत्रुहन सेवित सुमुख सचिवसेवकसुखद सर्वदाता ।
अधम आरत दीन पतित पातकपीन सकृत नतमात्र कहे पाहि पाता ॥ ६ ॥
जयति जय भुवनदसचारिजसजगमगत पुन्यमय धन्य जय राम राजा ।
चरितसुरसरित कविमुख्यगिरिनिःसरित, पिवत मज्जत मुदित सत-समाजा ॥ ७ ॥
जयति बरनास्रमाचार पर नारि नर सत्य सम दम दया दानसीला ।
बिगतदुखदोष संतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत रामराजलीला ॥
जयति वैराग्यविज्ञानवारांनिधे नमतनर्मद पापतापहर्त्ता ।
दासतुलसी चरन सरन संसयहरन देहि अवलम्ब वैदेहिभर्त्ता ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्र की जय। राजाओं के राजाओं में भी इन्द्र के समान, कमल समान नेत्रवाले, जिनका नाम राम है, कलियुग में कल्प-वृक्ष और साम उपाय का प्रयोग करनेवाले, अनीतिरूपी समुद्र (सोखने) को कुम्भज-ऋषि, और राक्षसों के समूहरूपी घने और भयानक अँधेरे के लिए तेज सूर्य के समान ॥१॥ मुनि, देवता और मनुष्यों के स्वामी दशरथनन्दन ने अवधवासियों को ऐसा कर दिया कि देवता और मुनि उनकी वंदना करने लगे। (इन्द्र आदि) लोकपालरूपी कोकों के शोक और संकट के दूर करनेवाले और सूर्यकुलरूपी कमल-वन के खिलानेवाले रामजी की जय ॥ २ ॥ शृंगार (रस) रूपी सरोवर में (खिले हुए) कमलों की माला के समान जिनके

देह की शोभा हो रही है, (सुशीलता आदि) गुणों के स्थान, और संसार के उपकार करनेवाले और सम्पूर्ण सौभाग्य, सुन्दरता और परम शोभायुक्त (अपने) रूप से करोड़ों कामदेवों के घमंड को दूर करनेवाले रामजी की जय ॥ ३ ॥ सुन्दर सारंग धनुष, सुन्दर तरकस, बाण, शक्ति, सुन्दर ढाल, तलवार और सुन्दर बख़तर धारण किये, धर्म का भार धारण करने में धीर, रघुवंश में वीर, जिनकी भुजाओं का बल अतोल है, पृथ्वी के भारी भार (अर्थात् राक्षस-समूह) का खेल में नाश कर देनेवाले रामजी की जय ॥ ४ ॥ सुवर्ण का (बना हुआ) और जिसमें (हीरे, पन्ने, लाल आदि) मणि जड़े हैं ऐसा मुकुट (शिर पर धारण किये) (कानों में मकराकृत) कुण्डल पहिरे, माथे पर (केसर के) तिलक की सुन्दर झलक हो रही है और चन्द्रमा के समान मुख की शोभा है। (शरीर में) सुन्दर भूषण वस्त्र पहिरे, (गले में) पीला जनेऊ डाले, ऐसा ध्यान करने से कौन कल्याण का पात्र नहीं हुआ अर्थात् किसका भला नहीं हुआ। ऐसे रामजी की जय ॥ ५ ॥ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न (तीनों भाइयों) से सेवा किये गये, प्रसन्न-मुख, (सुग्रीव आदि) मन्त्री और भक्तों को सुखदाई और सब (वस्तुओं) के देनेवाले; नीच, दुखी, ग़रीब, पतित (चांडाल आदि) तथा महापापी इनके एक ही बार प्रणाम-मात्र से "रक्षा करो" ऐसा कहने पर रक्षा करनेवाले, ऐसे रामजी की जय ॥ ६ ॥ चौदहों भुवन में जिनका यश जगमगा रहा है, बड़े पुण्यात्मा और धन्य अर्थात् प्रशंसा किये गये ऐसे राजा रामचन्द्रजी की बार बार जय—जिनकी कथारूप गंगाजी कवियों में मुख्य वाल्मीकि रूपी पर्वत से निकली है जिसे पी कर अर्थात् कानों से सुन कर और उसमें स्नान कर अर्थात् मनन करके संत-समाज प्रसन्न होता है ऐसे रामजी की जय ॥ ७ ॥ (राम-राज्य में) स्त्री-पुरुष वर्णाश्रम आचार पर चलनेवाले थे और उनका सत्य, दम, शम, दया और दान का स्वभाव था। और (जो अब) रामजी के राज्य की लीला सुनते और गाते हैं उनके दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं और वे सदा सन्तोष और सुख पाते हैं। ऐसे रामजी की जय ॥ ८ ॥ वे वैराग्य और आत्मज्ञान के समुद्र (अर्थात् संसारी विषयों से अलग और ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करनेवाले) हैं जो कोई उनको प्रणाम करता है उसे सुख देते हैं और पाप तथा (तीनों) तापों के हरनेवाले हैं। (ऐसा समझ) तुलसीदास भी उनके चरणों की शरण (आया) है सो हे संशय के दूर करनेवाले जानकीनाथ, उसे सहारा दो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—राजा + इन्द्र। विश्व + उपकारी। गर्व + अपहारी। चर्म + असि। बरनास्रम + आचारि।

धर्मकल्पद्रुमाराम हरिधामपथिसंबलं मूलमिदमेव मेकं।
भक्तिवैराग्यविज्ञानसमदानदम नामआधीन साधन अनेकं॥ ७॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामाऽमृतंपानकृतमनिसमनवद्यमवलोवयकालं ॥८॥
स्वपचखलभिल्लजमनादिहरिलोकगत नामबल विपुल मति मलन परसी।
त्यागि सब आस संत्रास भवपास असि निसित यह नाम जपु दासतुलसी॥ ९॥

हे मूर्ख मन! सदा बारम्बार राम राम जप। हे मूर्ख! "वह सब सौभाग्य और सुख की खानि है" ऐसा जी में जानकर और "वह वेद का सार है" ऐसा विश्वास मान कर उसे (बार बार) कह॥ १॥ (रामजी) अयोध्या के राजा हैं, हाल के खिले हुए नील कमल के समान उनके शरीर की छवि है और वे शिवजी के हृदय-कमल में भौंरे होकर निवास करते हैं (अर्थात् देवों के देव महादेवजी भी उनका ध्यान करते हैं)। जानकीजी के साथ विहार करनेवाले, सुख के स्थान, (सब) भुवनों के एक ही स्वामी और संग्राम में (दुष्टों के) नाशक और बड़े दयावान् हैं॥ २॥ राक्षसों के वन के लिए अग्नि के समान, मोटे और घुटनों तक के लंबे भुजदंडों में सुन्दर धनुष और तीखे बाणों को धारण किये; उनके हाथ, चरण, मुख और नेत्र लाल कमल के समान हैं; वे (दया, उदारता आदि) गुणों के स्थान और बहुत से कामदेवों की शोभा के निधान हैं॥ ३॥ (धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि की संसारी) वासना का समूह जो कुमोदनी हुआ उसको (बन्द करने के लिए) सूर्य-रूप और काम, क्रोध, मद-रूपी कमलों के वन को मारने के लिए तुषाररूप (अर्थात् जिनका नाम लेते ही काम क्रोधादि नष्ट हो जाते हैं) और लोभरूपी बड़े मतवाले उत्तम हाथी के लिए सिंह-रूप (अर्थात् जिनके ध्यान-मात्र से लोभ नष्ट हो जाता है) और भक्तों के हित के लिए संसार के भार (रावण आदि राक्षस) का नाश करनेवाले॥ ४॥ जिनका केशव नाम है, क्लेश के नाशक, ब्रह्मा और महादेव ने जिनके दोनों चरणों को प्रणाम किया (कि जो चरण) गंगाजी की उत्पत्ति के स्थान हैं। सदा आनन्द के समूह, मोह के नाशक और भयानक संसाररूपी समुद्र से (तरने के) लिए जहाज़रूप हैं॥ ५॥ शोक और

संदेह-रूपी मेघों के समूह के हटाने के लिए वायु-रूप, और पापरूपी कठिन पर्वत को तोड़ने के लिए वज्र-रूप ॥ ६ ॥ वे संतजनरूपी कामधेनु को विश्राम के स्थान अर्थात् देनेवाले हैं और उनका नाम कलियुग के पापों का ऐसा नाशक है कि जिसकी उपमा नहीं। यह (नाम) धर्मरूपी कल्पवृक्ष को (लगाने के लिए) वाटिका-रूप और विष्णुधाम के (जानेवालों के लिए) मार्ग में कलेवे के समान है और यही (नाम भगवान् से मिलने की) एक जड़ है। और भक्ति, वैराग्य, आत्मज्ञान, शम, दान और दम ये अनेक साधन नाम के ही अधीन हैं अर्थात् नाम के बिना ये नहीं हो सकते ॥ ७ ॥ उसी ने तप, होम और सबही दान कर लिये और उसी ने सब कर्मजाल—यज्ञादि—किये कि जिसने कलिकाल को देखकर पवित्र राम नाम-रूपी अमृत-पान रात दिन किया ॥ ८ ॥ दुष्ट, श्वपच, भील और यवन आदि भी नाम के बड़े बल से विष्णुधाम को गये और उनकी बुद्धि का मलिनता ने स्पर्श नहीं किया (इसलिए) हे तुलसीदास ! सब आशा, संत्रास अर्थात् नरक आदि की पीड़ा और संसाररूपी बन्धन को काटने के लिए पैनी तलवार के समान इसी नाम को जप ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—कंज + आभ (छवि) । भुअन + एक । क (ब्रह्मा) + ईस (शिव) । सर्वदा + आनन्द । मोह + अपहं । पटल + अनिलं (वायु) । कल्पद्रुम + आराम (बाग़) । वृत्तं + एव (ही, भी) + अखिलं (सब) । नाम + अमृतं । कृतं + अनिसं (सदा) । अनवद्यं (पवित्र) + अवलोक्य (देखकर) । जमन + आदि ।

शब्दार्थ—मदनरिपु = कामदेव के शत्रु (शिव) । धूमधुज = अग्नि । ऐन = घर । मैन = कामदेव । कैरव = कुमोदनी । तुषार = पाला । नागेन्द्र = उत्तम हाथी । पंचानन = सिंह । मूलभूत = उत्पत्ति-स्थान । पाथोधि = समुद्र । पोत = जहाज । पाथोद = मेघ । पटल = समूह । कुलिस = वज्र । आराम = वाटिका, बगीची । संवल = कलेवा । पास = फन्दा । असि = तलवार । निसित = पैनी ।

[४७]

ऐसी आरती राम रघुवीर की करहि मन ।
हरनदुखद्वंद्व गोविंद आनंदघन ॥ १ ॥
अचरचररूपहरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै ।
दीप निजबोध गतकोहमदमोहतम प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै ॥ २ ॥

भाव अतिसै विसद प्रवर नैवेद्यसुभ श्रीरमनपरमसंतोषकारी।
प्रेम तांबूल गतसूलसंसयसकल विपुलभववासनाबीजहारी ॥३॥
असुभसुभकर्मघृतपूर्नदसवर्तिका त्यागपावकसत्वगुनप्रकासं।
भक्तिवैराग्यविज्ञान दीपावली अर्चि नीरांजनं जगनिवासं ॥ ४ ॥
विमलहृदिभवन कृतसांतिपर्जंकसुभ सयन विस्राम श्रीरामराया।
छमाकरुनाप्रमुष तत्र परिचारिका जत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥ ५॥
इहैआरती निरत सनकादिसुक सेष सिव देव रिषि अखिल-
मुनितत्त्वदरसी।
जोइ करै सोइ तरै परिहरै कामादिमल वदति इति अमलमति दास
तुलसी ॥ ६ ॥

हे मन! रघुकुल के वीर रामचन्द्रजी की ऐसी आरती कर। वे द्वन्द्व (अर्थात् रागद्वेष आदि) दुःख के नाशक, इन्द्रियों के चेतन करनेवाले और आनन्द के बरसाने वाले हैं ॥ १ ॥ "भगवान् चर और अचररूप, सर्वव्यापक और सर्वदा (अर्थात् तीनों कालों में) रहनेवाले हैं" इस वासना की धूप दे (भाव यह है कि जैसे गूगुल आदि की धूप देने से दुर्गन्धि जाती रहती है ऐसे ही इस वासना से सब चर अचर में से भेदभाव जाता रहेगा) फिर धूप के आगे दीपक होता है सो कहते हैं कि अपने आत्मज्ञान का दीपक जलाकर उससे क्रोध, मद, मोह के अंधकार का नाश कर। इससे भारी अभिमान की चित्तवृत्तिरूपी बत्ती धीरे धीरे जल जायगी ॥ २ ॥ (अब दीपक के पीछे नैवेद्य कहते हैं) अत्यन्त निर्मल (अर्थात् निष्कपट) जो बड़ा सुन्दर भाव है उसी का श्रेष्ठ नैवेद्य लगा, वह लक्ष्मीपति भगवान् को बड़ा संतोष देनेवाला है। (अब नैवेद्य के पीछे ताम्बूल चाहिए सो कहते हैं कि भगवान् में जो) प्रेम है सोई हुआ तांबूल उससे सब संशयरूपी शूल का नाश कर क्योंकि वह संसार की बड़ी भारी वासना के बीज का नाश करनेवाला है ॥ ३ ॥ (अब तांबूल के पीछे आरती कहते हैं कि) शुभ और अशुभ कर्मरूपी घृत में डूबी हुई दश (इन्द्रियरूपी) बत्तियों को त्यागरूपी अग्नि से जला कर (शरीररूपी दीपक में) सतोगुणरूपी (१)

---

(१) तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। अर्थात् तीनों गुणों में सतोगुण निर्मल होने से प्रकाशक और शान्त है। गीता।

प्रकाश कर। और भक्ति, वैराग्य, ज्ञान की दीपावली की आरती भगवान् के अर्पण कर ॥ ४ ॥ (आरती के पीछे शयन कराते हैं सो) निर्मल हृदयरूपी मन्दिर में शान्तिरूपी सुन्दर पलंग पर श्रीराजा रामचन्द्रजी को सुला कर विश्राम करा। (जहाँ महाराज का शयन होता है वहाँ दासियाँ रहती हैं सो यहाँ) क्षमा, करुणा आदि को दासियाँ बना। जहाँ भगवान् हैं वहाँ भेद (करानेवाली) माया नहीं होती। (भाव यह है कि भगवान् सुखपूर्वक सोते हैं) ॥ ५ ॥ इस आरती में सनक आदि, शुकदेवजी, शेषनाग, शिवजी, देवता, ऋषि और तत्त्व के जाननेवाले सब मुनि लगे रहते हैं और जो करता है सोई तर जाता है और काम आदि मल से छूट जाता है। यह (सनक आदि) निर्मल मतिवालों का दास तुलसी कहता है ॥ ६ ॥

इसका आशय यह है कि जब चराचर में भेद-भाव नहीं रहे और ईश्वर को सर्वव्यापी समझा जाय तब आत्म-ज्ञान का उदय होता है जिससे क्रोध, मद, मोह और अभिमान का नाश हो जाता है। निर्मल भाव से चित्त में संतोष होता है और भगवान् में अनन्य प्रेम उत्पन्न होता है जिससे सब संशय और वासना आदि का कारण ही नष्ट हो जाता है। दश इन्द्रियाँ, जो भले बुरे कामों में लगी रहती हैं, त्याग के होने से अपने सब विषय छोड़कर सतोगुणी वृत्ति धारण करती हैं और भक्ति, वैराग्य और विज्ञान में लीन हो जाती हैं। इससे हृदय के निर्मल हो जाने पर वहाँ सर्वतोभाव से शान्ति व्यापती है तब ब्रह्म का प्रकाश होता है। ब्रह्म का प्रकाश होने पर क्षमा, करुणा आदि सद्गुण ही रह जाते हैं तथा भेद, माया का नाश हो जाता है। यथाः—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥

शब्दार्थ—बोध = आत्मज्ञान। तम = अँधेरा। वासना = इच्छा। विसद = निर्मल। विपुल = सब। नीरांजन = आरती। पर्जंक = पलँग। परिचारिका = दासी। आरती = छः उपचार अर्थात् धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, आरती और शयन।

[४८]

हरति सब आरती आरती राम की।
दहन दुख दोष निर्मूलिनी काम की ॥ १ ॥
सुभगसौरभधूपदीपवरमालिका।
उड़त अघ बिहँग सुनि ताल करतालिका ॥ २ ॥

भक्तहृदिभवन अज्ञानतमहारिनी ।
विमलविज्ञानमय तेज विस्तारिनी ॥ ३ ॥
मोहमदकोहकलिकंजहिमजामिनी ।
मुकुति की दूतिका देहदुतिदामिनी ॥ ४ ॥
प्रनतजनकुमुदवन इंदुकरजालिका ।
तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥ ५ ॥

रामजी की आरती सब पीढ़ा को हरती है, दुःख और पापों को जलाती है और काम को जड़ से उखाड़ डालती है ॥ १ ॥ वह सुन्दर सुगंधियुक्त धूप और सुन्दर दीपकों की माला है, (उस आरती के समय) हाथ की ताली की ताल सुनकर पापरूपी पत्ती उड़ जाते हैं ॥ २ ॥ भक्त के हृदयरूपी मन्दिर के अज्ञानरूपी अँधेरे की हरनेवाली है । और निर्मल आत्मज्ञान के प्रकाश को बढ़ानेवाली है ॥ ३ ॥ मोह, मद, क्रोध और क्लेश-रूपी कमलों का (नाश करने के लिए) जाड़े की रात्रि है और मुक्ति (रूपी नायिका) की दूती है और उसके देह की चमक बिजली के समान है ॥ ४ ॥ प्रणाम करते हुए भक्तजन ही हुए कमलिनी के वन उनको (खिलाने के लिए) चन्द्रमा की किरणों की माला है और तुलसी के अभिमान-रूपी महिषासुर के लिए बहुत सी कालिकाओं का रूप है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—आरती = दुःख, और आरती (दो अर्थ) हैं । सौरभ = सुगंध । अघ = पाप । विहग = पत्ती । कंज = कमलिनी । जामिनी = रात । दामिनी = बिजली । कर = किरण । महिषेस = महिषासुर ।

[४६]

हरिशंकरी पद ।

देव ! दनुज-बनदहन गुनगहन गोविंद नंदादिआनंददाताऽविनासी ।
संभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर तेजायतन क्रोधरासी ॥ १ ॥
अनंत भगवंत जगदंत अंतक त्रास समन श्रीरमन भुवनाभिरामं ।
भूधराधीस जगदीस ईसान विज्ञान घन ज्ञानकल्यानधामं ॥ २ ॥

वामनाव्यक्त पावन परावरविभो प्रगट परमातमा प्रकृतिस्वामी।
चन्द्रसेषर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेस-
गामी ॥ ३ ॥
नीलजलदाभतनु स्याम बहु कामछवि राम राजीवलोचन कृपाला।
कंबुकर्पूरवपुधवल निर्मल मौलि जटा सुरतटिनि सित सुमनमाला ॥
वसनकिंजल्कधर चक्रसारंगदरकंजकौमोदकी अतिविसाला।
मारकरिमत्तमृगराज त्रैनैन हर नौमि अपहरनसंसारजाला ॥
कृष्ण करुनाभवन दवनकालीय खल बिपुलकंसादि निरवंसकारी।
त्रिपुरमदभंगकर मत्तगजचरमधर अंधकोरग-ग्रसनपन्नगारी ॥ ६ ॥
ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परमहित ज्ञानगोतीत गुनवृत्ति
हरता।
सिंधुसुतगर्वगिरि वज्र गौरीस भव दच्छमखअखिलविध्वंसकरता ॥
भक्तिप्रिय भक्तजनकामधुकधेनु हरि हरनदुर्घटविकट विपति
भारी।
सुखद नर्मद वरद, विरज अनवद्याखिल, विपिन आनंदवीथिन-
विहारी ॥ ८ ॥
रुचिर हरिसंकरी नाममन्त्रावली द्वंद्वदुखहरनि आनंदखानी।
विष्णुसिवलोकसोपानसम सर्वदा वदत तुलसीदास विसदवानी ॥

यह पद हरिशंकरी है। इसके आधे पद में भगवान् का और आधे में शिव का वर्णन है—

(भगवान् कैसे हैं कि) दैत्यरूपी वन को (भस्म करने के लिए) अग्निरूप, (शील आदि) गुणों के वन अर्थात् बड़े गुणी, इन्द्रियों को चेतन करनेवाले, नन्द आदि को आनन्द के दाता और जिनका विनाश न हो। (शिवजी कैसे हैं कि) शंभु, शिव, शंकर

(कल्याणकारी जिनके नाम हैं), भयङ्कर जो काल आदि उनसे भी भयङ्कर, भारी तेज के स्थान (अर्थात् बड़े तेजस्वी) और (प्रलय के समय) क्रोध की राशि हैं ॥ १॥ (भगवान् कैसे हैं कि) जिनका अंत नहीं, छः ऐश्वर्ययुक्त, संसार के नाशक, यमराज के दिये हुए भय के दूर करनेवाले, लक्ष्मीपति और सब भुवनों को आनन्द के दाता हैं। (शिवजी कैसे हैं कि) कैलाश पर्वत के पति, संसार के स्वामी, ईशान (है नाम जिनका), बड़े आत्मज्ञानी और ज्ञान तथा कल्याण के स्थान हैं ॥ २॥ (भगवान् कैसे हैं कि) वामन रूप धरनेवाले, अप्रकट, पवित्र, परावर (अर्थात् जड़ चेतन के स्वामी), साक्षात् परमात्मा और माया के स्वामी हैं। (शिवजी कैसे हैं कि) शिर पर चन्द्रमा को धारण किये, हाथ में त्रिशूल लिये, हर, निष्पाप, जन्मरहित, जिनका परिमाण नहीं, पूर्णरूप, नाँदिये पर (बैठकर) जानेवाले ॥ ३॥ (भगवान् कैसे हैं कि) नील मेघ की छवि के समान जिनका श्याम शरीर है, बहुत से कामदेवों की सी शोभावाले, जिनके नेत्र कमल समान हैं, जो कृपालु हैं और जिनमें योगी रमते हैं। (शिवजी कैसे हैं कि) जिनका शरीर शंख और कपूर के समान स्वेत (अर्थात् शंख-समान चिकना और कपूर के समान सुगंधित) तथा निर्मल है, और जिनके शिर पर जटाजूट में गंगाजी विराजमान हैं और जो स्वेत पुष्पों की माला पहिरे हैं ॥ ४॥ (भगवान् कैसे हैं कि) कमल की केसर के समान पीताम्बर धारे, (हाथों में) सुदर्शन चक्र, शारंगधनुष, शंख, कमल और बड़ी भारी कौमोदकी धारण किये हैं। (शिव कैसे हैं कि) कामरूपी मतवाले हाथी को (विदारने के लिए) सिंहरूप, जिनके तीन नेत्र हैं और जो संसार के जाल को दूर करनेवाले हैं। ऐसे शिवजी को प्रणाम करता हूँ ॥ ५॥ (भगवान् कैसे हैं कि) श्याम-स्वरूप, दया के स्थान, कालीनाग का दमन करनेवाले और कंस आदि बहुत से दुष्टों को निर्वंश करनेवाले हैं। (शिवजी कैसे हैं कि) त्रिपुरासुर का मद भंग करनेवाले, मतवाले हाथी का चर्म धारण किये, अंधक नाम दैत्यरूपी सर्प को ग्रसने के लिए गरुड़ रूप हैं ॥ ६॥ (भगवान् कैसे हैं कि) ब्रह्म, (चराचर में) व्यापक, कलारहित, सबसे परे (अर्थात् श्रेष्ठ), बड़े हितकारी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे (अर्थात् भिन्न) और रजोगुण आदि की वासना के हरनेवाले हैं। शिवजी (कैसे हैं कि) जलंधर के (१) गर्वरूपी पर्वत को (तोड़ने के लिए) वज्र-रूप, पार्वती के पति, मंगलरूप

(१) एक बार जब जलंधर से सब देवता हार गये तब उन्होंने शिवजी के पास जाकर विनय की। शिवजी ने जलंधर से बड़ा भारी युद्ध किया परन्तु वह बड़ा बली था; मारा ही न मरे। क्योंकि जलंधर की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उसके प्रताप से जब शिवजी उसे नहीं जीत सके तब भगवान् साधु का वेश बनाकर जलंधर के घर पर जा बैठे। उसकी स्त्री उनसे युद्ध का समाचार पूछने लगी। इतने ही में भगवान्

और दक्ष के संपूर्ण यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ (भगवान् कैसे हैं कि) जिनको भक्ति प्यारी है, भक्तजनों को कामधेनु के समान और कठिन और भयानक भारी विपत्ति के हर्ता हैं। (शिव कैसे हैं कि) सुख के दाता, आनन्द देनेवाले, वर के दाता, रजोगुणरहित, सब विकारशून्य और आनन्द-वन (काशी) की गलियों में विहार करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ हरिशंकरी नाम (यह) सुन्दर मंत्रों की (दुहरी) पंक्ति द्वन्द्व (राग-द्वेष आदि) के दुःख की हरनेवाली, आनन्द की खान और सदा विष्णु और शिव-लोक की सीढ़ी के समान है यह तुलसीदास स्पष्ट वाणी से कहता है ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—नन्द + आदि । दाता + अविनासी । तेज + आयतन (स्थान) । भुवन + अभिराम । भूधर + अधीस । जगत् + ईस । वामन + अव्यक्त (निराकार) । जलद + आभ (छवि) । कंस + आदि । अंधक + उरग । गो (इन्द्रियां) + अतीत (परे) । अनवद्य (पाप वा विकाररहित) + अखिल । गौरी + ईस । मन्त्र + आवली (पंक्ति) ।

शब्दार्थ—भीम = भयङ्कर । जगदन्त = संसार के नाशक अंतक = यमराज । प्रकृति = माया । अविछिन्न = जो कटा हुआ न हो, पूर्ण । वृषभेस = बैलों का स्वामी, नन्दी । राजीव = कमल । कंबु = शंख । सुरतटनि = देवताओं की नदी, गंगा । किंजल्क = कमल की केसर । सारंग = विष्णु का धनुष । कौमोदकी = विष्णु की गदा । दर = शंख । मार = कामदेव । पन्नगारि = गरुड़ । सिन्धुसुत = जलन्धर । नर्म = आनन्द । बीथिन = गलियां । सोपान = सीढ़ी ।

[५०]

भानुकुलकमलरवि कोटिकंदर्पछवि कालकलिव्यालमिव वैनतेयं ।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंडधर तूनवर विसिष बलमप्रमेयं ॥ १ ॥
अरुनराजीवदलनैन सुखमाअयन स्यामतनकांति वर वारिदाभं ।
तप्तकांचनवस्त्र सस्त्रविद्यानिपुन सिद्धसुरसेव्य पाथोजनाभं ॥ २ ॥
अखिललावन्यगृह विस्वविग्रह परमप्रौढ़ गुनगूढ़ महिमाउदारं ।
दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्गअपवर्गपति भग्नसंसारपादपकुठारं ॥ ३ ॥

की माया से जलंधर के शरीर के सब अंग वहाँ आ गिरे जिन्हें देख स्त्री महाविलाप करने लगी । साधुरूप भगवान् ने कहा तू तो सती है; इसका शरीर जोड़ दे । तेरे सत से यह जी उठेगा । जब उसने वैसाही किया तब जलंधर में प्राण आगये । यह देख उसकी स्त्री भगवान् के पैर दाबने लगी । अंग के स्पर्श होते ही सतीपन नष्ट होगया और वहाँ शिवजी ने उसे मार दिया । उसके मरते ही वहाँ से साधु और जलंधर के रूप का लोप होगया । स्त्री ने यह भेद जान भगवान् को शाप दिया कि तुम स्त्री के विरह में बड़े दुखी होगे और मेरा पति तुम्हारी स्त्री को चुरावेगा ।

सापबस मुनिवधूमुक्तकृत विप्रहितजज्ञरच्छनदच्छ पच्छकरता।
जनकनृपसदसि सिवचापभंजन उग्रभार्गवागर्वगरिमापहरता ॥४॥
गुरुगिरागौरवअमरसुदुस्त्यजराज्यत्यक्त श्रीसहित सौमित्रि-भ्राता।
संग जनकात्मजा मनुजमनुसृत्य अज दुष्टबधनिरत त्रैलोक्यत्राता ॥
दंडकारन्य-कृतपुन्य-पावनचरन हरनमारीच-मायाकुरंगं।
बालिबलमत्तगजराज इव केसरी सुहृदसुग्रीवदुखरासिभंगं ॥ ६ ॥
रिच्छमरकट बिकट सुभट उदभट समरसैलसंकासरिपुत्रासकारी।
बद्धपाथोधि सुरनिकरमोचनसकुलदलन दससीसभुजबीसभारी ॥
दुष्टबिबुधारिसंघात अपहरन महिभार अवतार कारनअनूपं।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुनसगुन ब्रह्म सुमिरामिनरभूपरूपं ॥८॥
सेषस्रुति सारदा संभु नारद सनक गनत गुन अंत नहिं तव चरित्रं।
सोइ राम कामारिप्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसीत्रास निधि-
बहित्रं ॥ ९ ॥

सूर्य वंशरूपी कमल को (खिलाने के लिए) सूर्यरूप, करोड़ों कामदेव की सी जिनकी छवि है और जो कलिकालरूपी सर्प को (ग्रसने के लिए) गरुड़रूप हैं। अपनी बड़ी बलवाली लम्बी भुजाओं में बड़े कठिन धनुषबाण को धारण किये, (कमर में) तरकस बाँधे और जिनके बल का प्रमाण नहीं है ॥ १ ॥ लाल कमल-पत्र के समान जिनके नेत्र हैं, जो शोभा के स्थान हैं और जिनके श्याम शरीर की छवि सुन्दर मेघ की छवि के समान है। जो तपे हुए सुवर्ण के समान (चमकते हुए) वस्त्र धारण किये हैं और शस्त्र-विद्या में चतुर तथा सिद्ध और देवताओं के पूज्य हैं और जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरता के स्थान, संसार है शरीर जिनका (अर्थात् विराट्स्वरूप), बड़े चतुर, (तेज बल-वीर्य ऐश्वर्य इत्यादि) गुण जिनके गुप्त हैं, और जिनकी बड़ी महिमा है, दुर्धर्ष (अर्थात् किसी से जीते जाने के योग्य नहीं हैं) और दुस्तर (अर्थात् जिनकी महिमा के पार कोई न जा सके), दुर्ग (अर्थात् कठिन कि जहाँ तक शत्रु की पहुँच न हो), स्वर्ग और अपवर्ग अर्थात् मोक्ष के पति (अर्थात् देनेवाले),

और (सन्तजनों के हृदयों में से) संसाररूपी वृक्ष को (उखाड़ने के लिए) कुठार-रूप हैं ॥ ३ ॥ मुनि की स्त्री (अहिल्या) को (शापवश से) छुड़ानेवाले हैं, विप्र (विश्वामित्र) के लिए यज्ञ की रक्षा में बड़े चतुर, और (भक्तों का) पक्ष करनेवाले हैं। राजा जनक की सभा में शिव-धनुष को तोड़ कर क्रूर परशुरामजी के भारी घमंड का नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ उन्होंने पिता के वचन का बड़प्पन रखने के लिए देवताओं से भी बड़े दुःख से छोड़ा जाय ऐसे राज्य की संपत्ति को छोड़ दिया और भाई लक्ष्मण-सहित और जानकीजी के साथ साक्षात् ब्रह्म और त्रिलोकी के रक्षक (भगवान्) नर-लीला करने के लिए दुष्ट (रावण) के मारने में लगे ॥ ५ ॥ अपने पवित्र चरणों से दंडकवन को पवित्र करनेवाले, कपट के मृग मारीच को मारनेवाले, बाली के बलरूपी मतवाले हाथी को (विदारण करने के लिए) सिंहरूप और मित्र सुग्रीव के दुःख-समूह के नाशक हैं ॥ ६ ॥ भयंकर और बड़े वीर, रीछ-बन्दरों में बड़े भारी योद्धा के समान, और समर में पर्वत के समान (कुम्भकरण आदि) शत्रुओं को डरानेवाले, जिन्होंने समुद्र को बाँधा, देवताओं के समूह को छुड़ाया और भारी दश-शिर और बीस भुजावाले (रावण) का कुल-समेत नाश कर दिया ॥ ७ ॥ दुष्ट और देवताओं के शत्रुओं के समूह जो पृथ्वी का भाररूप (रावण आदि) थे उनके नाश के लिए अवतार लेने में उपमारहित कारणवाले, निर्मल, दूषण-रहित, अद्वैत (अर्थात् जिनके समान कोई नहीं), निर्गुण (अर्थात् सत, रज और तम इन गुणों से रहित), और सगुण (अर्थात् अवतार धारण करनेवाले) ब्रह्म और नराकार ऐसे राजस्वरूप (रामजी) का स्मरण करता हूँ ॥ ८ ॥ शेषनाग, वेद, सरस्वती, शिवजी, नारद और सनकादि ये गुणों का वर्णन करते हैं परन्तु जिनके चरित्र का पार नहीं पाते, सोई शिवजी के प्यारे, अवध के स्वामी रामचन्द्रजी इस तुलसीदास को दुःखरूपी समुद्र से (तारने के लिए) सदा नाव-रूप हैं ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—व्यालं + इव। बलं + अप्रमेयं (प्रमाणरहित)। वारिद (मेघ) + आभं। गरिमा (बोझा, भारीपन) + अपहर्ता। अनुजं + अनुसृत्य। दण्डक + अरन्य। विबुध + अरि। काम + अरि।

शब्दार्थ—वैनतेय = गरुड़। तून = तरकस। विसिख = बाण। पाथोज, वारिज = कमल। संकास = आकार, समान। अनवद्य = दूषणरहित।

[५१]

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरनि तारुन्यतनु तेजधामं।
सच्चिदानंदआनंदकंदाकरं विस्वविस्राम रामाभिरामं ॥ १ ॥

नीलनववारिधरसुभग सुभकांति कटि पीत कौसेय बरवसनधारी।
रत्नहाटकजटितमुकुटमंडितमौलि भानुसतसरिस उद्योतकारी॥
स्रवनकुंडल भालतिलक भ्रूरुचिरअति अरुन अंभोजलोचन-
बिसाल ॥ २ ॥

वक्त्रआलोक त्रैलोक्यसोकापहं माररिपुहृदयमानसमरालं ॥ ३ ॥
नासिकाचारु सुकपोल द्विजवज्रदुति अधरबिम्बोपमा मधुरहासं।
कंठदर चिबुकवर बचनगंभीरतर सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं॥ ४ ॥
सुमनसुबिचित्रनवतुलसिकादलजुतं मृदुलबनमालउरभ्राजमानं।
भ्रमतआमोदवसमत्तमधुकरनिकर मधुरतरमुखर कुर्वंति गानं॥
सुभगश्रीवत्स केयूरकंकनहार किंकिनीरटनिकटितटरसालं।
वाम दिसिजनकजासीनसिंहासनं कनकमृदुवल्लिवत तरु तमालं॥
आजानुभुजदंड कोदंडमंडितवाम बाहु दच्छिनपानिबानमेकं।
अखिलमुनिनिकर सुर सिद्ध गन्धर्ववर नमत नर नाग अवनिप
अनेकं ॥ ७ ॥

अनवद्य अवछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रनतजनखेदविच्छेदविद्यानिपुन नौमि श्रीरामसौमित्रि साकं॥ ८॥
युगलपदपद्मसुखसद्मपद्मालयं चिह्नकुलिसादि सोभाति भारी।
हनुमंतहृदि विमल कृत परम मंदिर सदा दासतुलसीसरन
सोकहारी ॥ ९ ॥

जानकीपति, रघुकुल के स्वामी, राग आदिरूपी अंधकार का (नाश करने के लिए) सूर्यरूप, तरुण शरीरवाले, तेज के स्थान, सच्चिदानन्द, आनन्द-कन्द, की खान, संसार के विश्राम देनेवाले ऐसे सुन्दर रामचन्द्रजी हैं ॥१॥ नीले नवीन मेघ के समान सुन्दर, मंगलीक कांतिवाले, सुन्दर रेशमी पीताम्बर को कमर में धारण किये। रत्नजटित सुवर्ण का मुकुट जिनके मस्तक पर शोभित है और जो सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाश करनेवाले हैं ॥ २ ॥ कानों में (मकराकृत) कुण्डल पहिरे, माथे में (केसरिया) तिलक लगाये,

जिनकी बड़ी सुन्दर भृकुटी और लाल कमल के समान बड़े बड़े नेत्र हैं। जिनका मुख प्रकाशमान है, जो त्रिलोकी का शोक दूर करनेवाले और शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर में हंस-रूप होकर (निवास करनेवाले) हैं ॥ ३ ॥ जिनकी सुन्दर नाक, जिनके सुन्दर (गोल गोल) गाल, हीरे की चमक कैसे दाँत, विम्बा-फल के समान होठ, जिनका मधुर हास, शंख की सी ग्रीवा और उत्तम ठोड़ी है और जो बड़े गम्भीर बचन बोलनेवाले, सत्य-प्रतिज्ञ और देवताओं के भय के नाशकर्ता हैं ॥ ४ ॥ जिसमें तरह तरह के फूल और नये तुलसीपत्र गुथ रहे हैं ऐसी कोमल वनमाला जिनकी छाती पर शोभायमान है और (उस पर) सुगन्धि के वश मतवाले भौंरों का झुंड उड़ रहा है और (वे भौंरे) बड़े मीठे शब्द से गान कर रहे हैं ॥ ५ ॥ (हृदय पर) सुन्दर श्रीवत्स का चिह्न है, (हाथ में) बाजूबंद और कंकण तथा (गले में सुन्दर मणियों का) हार पहिरे और कमर में सुन्दर तागड़ी बज रही है। सिंहासन के बाईं ओर जानकीजी के विराजमान होने से (ऐसी शोभा हो रही है मानों) तमाल वृक्ष के पास कोमल सुवर्ण-लता शोभित हो ॥ ६ ॥ जिनकी घोटूं तक लम्बी दंड समान भुजायें हैं, बाम बाहु में धनुष शोभित है, दाहने हाथ में एक बाण है। सम्पूर्ण मुनियों का समाज, देवता, सिद्ध, सुन्दर गन्धर्व, नर, नाग और अनेक राजा जिनको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥ जो पापरहित, जिनके अंश कला न हो सकें, जो सबके (हृदय की) जाननेवाले, सबों के स्वामी और निश्चय करके सब प्रकार से हमको कल्याण के दाता और भक्तजनों के खेद के नाश की विद्या में चतुर हैं ऐसे लक्ष्मणजी समेत श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ जिनके दोनों चरण-कमल लक्ष्मी के मन्दिर होने से सुख के स्थान हैं और (उन चरणों में) कुलिश आदि चिह्नों की भारी शोभा हो रही है और जिन्होंने हनुमानजी के निर्मल हृदय को अपना उत्तम मन्दिर बनाया है ऐसे शोकनाशक भगवान् की मैं तुलसीदास सदा शरण हूँ ॥९॥

सन्धिविभाग—राग + आदि । आनन्दकन्द + आकर । राम + अभिराम । सोक + अपहं । विम्ब + उपमा । जनकजा + आसीन । बाणं + एकं । सर्व + ईस । दाता + अस्माकं (हमारे) । पद्मा (लक्ष्मी) + आलय ।

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य । सच्चिदानन्द = आत्मा का स्वरूप । (सत् जो त्रिकाल में एक सा रहे, चित् = ज्ञानस्वरूप, घटपटादि का देखनेवाला और अनुभवकर्त्ता, आनन्द जो दुःखों से नष्ट न हो) । वारिधर = बादल । कटि = कमर । कौसेय = रेशमी । उद्योत = उजेला । द्विज = दाँत । वज्र = हीरा । अधर = होठ । दर = शंख । मुखर = शब्दायमान । श्रीवत्स = विष्णु की छाती का चिह्न । वल्लि = लता । अवनि = (पृथ्वी) + प (रक्षक) = राजा ।

[५२]

कौसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमितगुनविपुलविस्तारलीला ।
गायंति तव चरित सुपवित्र स्नुति सेष सुक संभु सनकादि मुनि मनन-सीला ॥ १ ॥

वारिचरवपुषधर भक्त निस्तारपर धरनिकृत नाव महिमातिगुर्वी ।
सकलजज्ञांसमय उग्रविग्रहक्रोड मरदि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥२॥
कमठ अतिविकटतनु कठिन पृष्ठोपरि भ्रमतमंदर कंडुसुखमुरारी ।
प्रगटकृतअमृत गो इंदिरा इंदु वृंदारकावृंदआनंदकारी ॥ ३ ॥
मनुज, मुनि, सिद्ध, सुर, नाग त्रासक दुष्ट दनुज द्विजधर्ममरजाद-हरता ।

अतुल मृगराजवपुधरित विद्दरितअरि भक्तप्रहलादअहलादकरता ॥
छलनबलिकपट बटुरूपवामन ब्रह्मभुवनपर्जंत पदतीनिकरनं ।
चरननखनीरत्रैलोकपावनपरम विबुधजननीदुसहसोकहरनं ॥५॥
छत्रियाधीसकरिनिकर नर केसरी परसुधरविप्रससिजलदरूपं ।
बीसभुजदंडदससीस खंडन चंडवेगसायक नौमि रामभूपं ॥६॥
भूमिभरभारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूपधर भगतहेतू ।
वृष्निकुलकुमुदराकेस राधारवन कंसबंसाटवीधूमकेतू ॥ ७ ॥
प्रबलपाखंडमहिमंडलाकुल देखि निन्द्यकृत अखिलमखकर्म जालं।
सुद्धबोधैकघनज्ञानगुनधाम अज बौधअवतार वन्दे कृपालं ॥ ८ ॥
कालकलिजनित मलमलिन मन सर्वनर मोह निसि निबिडजम-नान्धकारं ।

विष्णुजसपुत्रकलकी दिवाकरउदित दासतुलसीहरनविपतिभारं ॥

हे अयोध्या के पति ! तुम जगत् के स्वामी, और संसार के एक-मात्र हितकारी हो, तुमने अपने अनगिनती गुणों से बड़ी लीला फैलाई है। तुम्हारे बड़े पवित्र चरित्र को वेद, शेषनाग, शुक, महादेव, सनक आदि और मन में ध्यान करनेवाले मुनि गाते हैं॥ १॥ तुमने मत्स्यरूप धारण कर, भक्तों का निस्तार करने के लिए (प्रलय के समय) पृथ्वी की नाव बनाई (क्योंकि उस पर सब प्रजा को बैठा कर जब तक प्रलय रहा तब तक उसे धारण किये रहे इसलिए) तुम्हारी महिमा बड़ी भारी है। तुम सम्पूर्ण यज्ञों के अंशों से पूर्ण हो, (जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को चुरा ले गया था तब) तुम बड़े भयंकर शूकर के शरीर से हिरण्याक्ष का चूरा करके पृथ्वी को छुड़ा लाये॥ २॥ हे मुरारी ! तुमने बड़ा भयंकर कछुये का रूप धरा और तुम्हारी कड़ी पीठ पर मन्दराचल के घूमने से तुम्हें ऐसा सुख हुआ जैसा कि खाज खुजाने में होता है, (फिर समुद्र को मथ कर) तुमने अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमा को प्रकट किया, और यह (तुम्हारा काम) देवताओं के समूह को आनन्द का देनेवाला हुआ॥ ३॥ मनुष्य, मुनि, सिद्ध, सुर और नाग इनको दुःख देनेवाले और ब्राह्मण तथा धर्म की मर्यादा के नाशक ऐसे दुष्ट दैत्य अपने शत्रु (हिरण्यकशिपु) को, बड़े भारी नृसिंह का रूप धर कर, विदीर्ण किया और प्रह्लाद भक्त को आनन्दित कर दिया॥ ४॥ तुमने राजा बलि को छलने के लिए कपट से बौने ब्रह्मचारी के रूप से ब्रह्मांड तक को तीन चरण में नाप लिया और (नापते समय ब्रह्मांड से) चरण के नख लगते ही (गंगा) जल निकला कि जिसने तीनों लोकों को परम पवित्र कर दिया और तुमने देवताओं की माता (अदिति) के दुःसह शोक को हर लिया (अर्थात् इन्द्र का राज्य जो बलि ने ले लिया था उसे फिर इन्द्र को दे दिया इससे अदिति प्रसन्न हुई)॥ ५॥ तुमने (सहस्रबाहु आदि) क्षत्री राजारूपी हाथियों के झुंड को (विदारण करने के लिए) सुन्दर सिंह-रूप और ब्राह्मणरूपी धान्य को (उपजाने के लिए) मेघ रूप ऐसा परशुराम स्वरूप धारण किया। फिर तुमने बीस भुजा और दश शिरवाले (रावण) का बड़े भयंकर वेगवाले बाणों से नाश किया ऐसे तुम्हें—राजा रामचन्द्र को—मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ भूमि के (१) भारी भार को हरने के लिए तुम परमात्मा, ब्रह्म-स्वरूप, भक्तों के लिए नर-रूप धरके प्रकट

---

(१) गीता में कहा है:—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् हे अर्जुन ! जब जब (वेदोक्त वर्णाश्रम) धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अपने को उत्पन्न करता हूँ। और साधुओं की रक्षा, दुष्टों का नाश, और धर्म का स्थापन करने के लिए मैं युग युग में अवतार लेता हूँ।

हुए और तुम वृष्णि कुलरूपी कुमुदिनी को (खिलाने के लिए) चन्द्रमा रूप, राधा के पति और कंसवंश-रूपी वन (जलाने) के लिए अग्निरूप हुए ॥ ७ ॥ (जब यज्ञ, धर्म, कर्म करके बली असुरों से देवता हार गये तब असुरों के) प्रबल पाखंड से पृथ्वी-मंडल को व्याकुल देख तुमने यज्ञ कर्म के सम्पूर्ण जाल की निन्दा की (कि यह किसी काम का नहीं इसमें हिंसा होती है और यों असुरों से यज्ञ, धर्म आदि छुड़ाया) और शुद्ध बोधस्वरूप, बड़े ज्ञान और गुणों के स्थान तथा जन्मरहित ऐसे तुमने बुद्धावतार लिया। ऐसे कृपालु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥ इस कलिकाल में उत्पन्न हुए सब मनुष्यों का मन पाप से मलिन हो रहा है सो तुम अज्ञानरूपी रात्रि में म्लेच्छरूपी घने अंधकार के (नाश करने के) लिए सूर्योदय रूप होकर विष्णु यश (नाम ब्राह्मण) के यहाँ पुत्र-रूप से कल्कि अवतार लोगे। ऐसे तुम तुलसीदास की विपत्ति के भार को दूर करो ॥ ९ ॥

सन्धि विभाग—कौसला + अधीस। जगत् + एक। महिमा + अति। जज्ञ + अंस। पृष्ठ + उपरि। त्रेय + अधीस। वंसन + अटवी (वन)। मंडल + आकुल (घबराये)। बोध + एक। जमन + अंधकार।

शब्दार्थ—वारिचर = पानी में चलनेवाला। गुर्वी = भारी। विग्रह = देह। उर्वी = पृथ्वी। कमठ = कछुआ। कंडु = खुजली। इन्दिरा = लक्ष्मी। वृन्दारका = देवता। बटु = ब्रह्मचारी। वामन = बौना। सस्ति (सस्य) = खेती। राकेस = चन्द्रमा। धूमकेतु = अग्नि। निविड = घना।

[५३]

सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्रनिधि सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं।
सर्वहृदिकंजमकरंदमधुकर रुचिररूप भूपालमनि नौमि रामं ॥१॥
सर्वसुखधाम गुनग्राम विस्रामपद नामसर्वासपदमतिपुनीतं।
निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोधमदहरन करुनानिकेतं ॥ २ ॥
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्तविभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं प्रकटपरमातमापरमहित प्रेरकानंत वंदे तुरीयं ॥३॥
भूधरं सुंदरं श्रीवरं मदन-मद-मथन सौंदर्यसीमातिरम्यं।
दुःप्राप्य दुःप्रेच्छ दुस्तर्क्य दुःपार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं ॥४॥
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी।
धर्मवरमनि ब्रह्मकर्मबोधैक विप्रपूज्य ब्रह्मन्यजनप्रिय मुरारी ॥ ५ ॥

नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानन्द मूलं ।
सर्वरच्छक सर्व भच्छकाध्यच्छ कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥६॥
सिद्धसाधकसाध्य वाच्यवाचकरूप मंत्रजापकजाप्य सृष्टिस्रष्टा ।
परमकारन कंजनाभ जलदाभतन सगुन निर्गुन सकलदृस्यद्रष्टा ॥
व्योमव्यापक विरज ब्रह्मवरदेस वैकुंठ वामन विमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध वृंदारकावृंदवंदितसदा खंडिपाखंडनिर्मूलकारी ॥ ८ ॥
पूरनानंदसंदोह अपहरन संमोहअज्ञानगुनसन्निपातं ।
बचनमनकर्मगतसरनतुलसीदास त्रासपाथोधिइव कुंभजातं ॥ ९ ॥

सब सौभाग्य के देनेवाले, सब प्रकार से कल्याण की खान, विश्वरूप, सबके ईश, सब लोगों को सुख के देनेवाले, शिवजी के हृदय-कमल के मकरन्द को (पीने के लिए) भ्रमररूप, सुन्दर रूपवान् और राजाओं के शिरोमणि ऐसे रामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ (हे राम) तुम सब सुख के स्थान, गुणों की राशि, विश्राम के देनेवाले हो, तुम्हारा बड़ा पवित्र नाम सब (वस्तुओं) का स्थान अर्थात् देनेवाला है। तुम निर्मल, शान्त, परम शुद्ध, ज्ञान के स्थान (अर्थात् अखंड आत्मस्वरूप) हो और क्रोध तथा मद के हरनेवाले और करुणानिधान हो ॥ २ ॥ तुम किसी से जीतने योग्य नहीं, उपाधि (माया) रहित, इन्द्रियों से परे, अप्रकट (निगुर्ण रूप से प्रकट नहीं), दूषणरहित, अजन्मा और अद्वितीय ऐसे एक तुम्हीं समर्थ हो। (भक्तों के) बड़े हित के लिए परमात्मा से मनुष्य रूप में प्रकट हुए हो, (सबके) प्रेरक हो, तुम्हारा अंत नहीं है और तुम तुरीय (निर्गुण ब्रह्म) हो ऐसे तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ (शेष रूप से) पृथ्वी धारण किये हो, सुन्दर हो, लक्ष्मी के पति हो, (सुन्दरता में) कामदेव के घमंड को तोड़नेवाले हो, सुन्दरता की सीमा और बड़े मनहरन हो। (जो विमुख हैं उन्हें) दुःख से प्राप्त होने योग्य और कठिनता से दर्शन देनेवाले हो, तुम्हारे विषय में तर्कना नहीं हो सकती, तुम दुःख से पार होने योग्य, संसार के हरनेवाले, (भक्तों को) सहज में मिलनेवाले और कोमल प्रीति से प्राप्त होनेवाले हो ॥ ४ ॥ तुम सत्य के उत्पन्न करनेवाले हो, सत्य में तुम्हारी प्रीति है, तुम्हारा सत्य संकल्प है, तुम सदा पुष्ट (दिव्य देहधारी) और सन्तोषी हो और बड़े बड़े कष्टों के हरनेवाले हो। धर्म के कवच को पहिरे हुए हो और ब्रह्म (वेद) और कर्म (मीमांसा) के ज्ञान में अद्वितीय हो, ब्राह्मणों के

पूज्य हो, तुम ब्राह्मणों के और भक्तजनों के प्यारे और सुरदैत्य के शत्रु हो ॥ ५ ॥ तुम नित्य हो, और ममतारहित, नित्य मुक्त, मानरहित, और हरि हो; तुम बड़े ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्द और (सबके) मूल (अर्थात् कारण) हो। तुम सबके रक्षक, और सर्वभक्षक जो यमराज उसके भी स्वामी हो, और कूटस्थ (निर्विकार) ब्रह्म हो, तुम्हारा तेज गुप्त है और तुम भक्तों पर प्रसन्न रहनेवाले हो ॥ ६ ॥ तुम्हीं सिद्धि, साधक और साध्य हो, तुम्हीं वाच्य और वाचक रूप हो, तुम्हीं मन्त्र, जापक और जाप्य तथा सृष्टिकर्त्ता हो; तुम्हीं सबके आदि कारण हो; तुम्हारी नाभि से पद्म निकला है; तुम मेघ की छवि समान श्याम शरीरवाले, सगुण और निर्गुण हो, और सब (सांसारिक) दृश्य के देखनेवाले हो॥ ७ ॥ तुम आकाश के समान व्यापक, और रजोगुण से रहित हो, और तुम ब्रह्मा, तथा (शिव आदि) वर के देनेवालों के भी स्वामी हो, (तुम्हारा नाम) वैकुण्ठ है और तुम वामन रूप, मल-रहित और ब्रह्मचारी हो; सिद्ध और देवताओं के समूह से सदा प्रणाम किये गये हो, और पाखंड का खंडन कर उसे निर्मूल करनेवाले हो ॥ ८ ॥ तुम पूर्ण आनन्द की राशि, और महा मोह, अज्ञान और (रज आदि) गुण समूह के दूर करनेवाले हो और मन, वचन और कर्म से जो यह तुलसीदास तुम्हारी शरण में प्राप्त है सो उसके भयरूपी समुद्र के (सोखने के) लिए अगस्त्य ऋषि रूप हो ॥ ९ ॥

सन्धिविभाग—सर्व + ईस। सर्व + अभिराम। सर्व + आस्पदं (स्थान) + अति। बोध + आयतन। गो + अतीतं (परे) + अव्यक्त। विभुं + एकं। अनवद्यं (निर्दोष, शुद्ध) + अजं + अद्वितीयं। प्रेरक + अनंत। सीता + अति। बोध + एक। भच्छक + अध्यच्छ। गूढ़ + अर्चि (तेज)। भक्त + अनुकूल। जलद (मेघ) + आभ (छवि)।

शब्दार्थ—भद्र = कल्याण। सर्व = शिव। गो = इन्द्री। प्राकृत = सांसारिक। तुरीय = निर्गुण ब्रह्म। मदन = काम। वर्म = बख़्तर। सच्चिदानन्द = ५१ वें पद में देखो। सिद्धि = ब्रह्म की प्राप्ति। साधक = ब्रह्म की प्राप्ति करनेवाला। साध्य = जिसका साधन करे अर्थात् ब्रह्म। वाच्य = जो कहा जाय। वाचक = कहनेवाला। मन्त्र = ओं आदि। जापक = जपनेवाला। जाप्य = भक्त जिसे जपें। व्योम = आकाश। वृंदारका = देवता। संदोह, सन्निपात = समूह। पाथोधि = समुद्र। कुंभजात = अगस्त्य।

[५४]

विस्वविख्यात विस्वेस बिस्वायतन विस्वमरजाद व्यालारिगामी।
ब्रह्मवरदेस वागीस व्यापक विमल विपुलबलवान निर्वानस्वामी ॥
प्रकृतिमहतत्त्वसब्दादि गुन देवता व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी।
बुद्धिमनइंद्रिया प्रानचित्तातमा काल परमानु चिच्छक्तिगुर्वी ॥ २ ॥

सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो।
भुवन भवदंश कामारिवंदितपदद्वन्द्व मंदाकिनीजनक जिष्णो॥ ३॥
आदि मध्यान्त भगवंत त्वं सर्वगतमीस पस्यंति ये ब्रह्मवादी।
जथा पटतंतु घटमृत्तिका सर्प स्रग दारुकरि कनक कटकांगदादी॥
गूढ़ गंभीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित् गुप्त गोतीत गुरु ज्ञानज्ञाता।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुरगरिमागार घोरसंसार पर पार दाता॥ ५॥
सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पान्तकृत कल्पनातीत अहितल्पबासी।
बनजलोचन वनजनाभ वन-दाभ-वपु मीनध्वज कोटि लावन्य-
रासी॥६॥
सुकर दुस्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्तिहर्त्ता।
वेदगर्भार्भकादभ्रगुनगर्भ अर्वागपरगर्वनिर्वापकर्त्ता॥ ७॥
भक्तअनुकूल भवसूलनिर्मूलकर तूलअघनामपावकसमानं।
तरल तृष्णातमीतरनि धरनीधरन सरनभयहरन करुनानिधानं॥
बहुल वृंदारकावृंदवंदारुपदद्वन्द्व मंदारमालोरधारी।
पाहि मामीस संतापसंकुलसदा दासतुलसीप्रनत रावनारी॥ ६॥

(हे राम! तुम) संसार में विख्यात, संसार के स्वामी, विराट रूप से संसार के स्थान, संसार की मर्यादा (अर्थात् सांसारिक जीवों की पहुँच केवल तुम्हारे पास तक है) और गरुड़ पर जानेवाले हो। तुम ब्रह्म हो, वरद जो शिव आदि उनके ईश हो, वाणी के स्वामी हो, (सबमें) व्यापक, निर्मल, बड़े बलवान् और मोक्ष के स्वामी अर्थात् दाता हो॥ १॥ तुम प्रधान माया, महत्तत्त्व, शब्द आदि और रज आदि गुण तथा आकाश, वायु, अग्नि, निर्मल जल और पृथ्वी इनके देवता हो और बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, प्राण, चित्त, आत्मा, काल, परमाणु और बड़ी चैतन्य शक्ति॥ २॥ इन सबमें तुम्हारा रूप है और हे राजाओं के मणि, तुम प्रगट हो, तुम ही अप्रगट हो, तुम भेद (अनेक बुद्धि) करके रहित हो। यह भुवन तुम्हारा अंश है। शिवजी ने तुम्हारे दोनों चरणों की वन्दना की है, तुम गंगाजी के पिता हो (क्योंकि गंगाजी तुम्हारे चरणों से निकली हैं) और तुम सबको जीतनेवाले हो॥ ३॥ हे भगवन्! तुम आदि, मध्य और

अंत इन सबमें व्याप्त हो और हे ईश! ब्रह्मवादी तुम को कैसे देखते हैं कि जैसे वस्त्र में सूत, घड़े में मिट्टी, सर्प में माला, लकड़ी के हाथी में लकड़ी, और कड़े बाजू आदि में सोना ॥४॥ इस प्रकार तुम गूढ़ (अर्थात् चर अचर में गुप्त) हो, गंभीर हो (अर्थात् तुम्हारे अंतःकरण का भेद कोई नहीं जानता), तुम घमंड के नाश करनेवाले, और गूढ़ार्थवित् (अर्थात् कर्म वचन में जो गुप्त अर्थ उसके वित् नाम जाननेवाले) हो, फिर गुप्त हो, गोतीत हो (गो नाम इन्द्रियों से अतीत नाम बहुत परे हो अर्थात् इन्द्रियों से प्राप्त नहीं हो सकते), तुम ही गुरु, ज्ञान और उसके ज्ञाता हो, (अथवा ज्ञान के जाननेवालों के गुरु हो अथवा बड़े ज्ञान के ज्ञाता हो)। (फिर तुम) ज्ञेय हो (ज्ञेय उसे कहते हैं जो पदार्थ जाना जाय), ज्ञान-प्रिय हो (अर्थात् तुमको ज्ञान प्यारा है), बड़े गौरव के स्थान हो और भयङ्कर संसार में मग्न जीवों के पार करनेवाले हो ॥ ५ ॥ तुम्हारा संकल्प सत्य है (अर्थात् जो कुछ निश्चय कर लेते हो सो करते हो), तुम अतिकल्प, (महाकल्प कि जब ब्रह्मा की आयु पूरी हो जाती है) और कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) इन दोनों का प्रलय करनेवाले हो, कल्पना से परे हो (अर्थात् मन से तुम्हारी कोई कल्पना नहीं कर सकता), और शेषनाग की शैय्या पर वास करनेवाले हो। तुम्हारे कमलसमान नेत्र हैं, तुम्हारी नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ है, और तुम मेघ की कान्ति समान श्याम शरीरवाले हो और तुम करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता की राशि हो (अर्थात् सुन्दरता में करोड़ों कामदेवों के समान हो) ॥६॥ (भक्तों के लिये तुम) सुकर (अर्थात् सुलभ) हो, (दुष्टों के लिये) कठिनता से मिलनेवाले हो, दुराराध्य नाम कठिनता से आराधना करने के योग्य हो, (भाव--मनुष्य अनेक अच्छे कर्म करके जब शुद्ध हो, तब तुम्हारी सेवा के योग्य हो) और (मद्पान परस्त्री-गमनादि) खोटे कर्मों के हरनेवाले हो, तुम दुर्ग (अर्थात् कठिनता से प्राप्त होनेवाले) और दुर्धर्ष हो (अर्थात् कोई तुम पर आक्रमण नहीं कर सकता) और तुम कठिन दुःख के हरनेवाले हो! और ब्रह्माजी के बालक सनकादिकों को जो बहुत से गुणों से युक्त, परा-अपरा नाम ब्रह्म-विद्या का घमंड था उसके दूर करनेवाले हो ॥ ७ ॥ तुम भक्तों पर प्रसन्न रहनेवाले, संसाररूपी शूल (जन्म-मरणादि की पीड़ा) का जड़ से नाश करनेवाले हो और तुम्हारा नाम पापरूपी रुई को (भस्म करने के लिये) अग्निरूप है। तुम चंचल तृष्णारूपी रात्रि का नाश करने को सूर्यरूप, पृथ्वी के धारण करनेवाले, शरणागतों के भय हरनेवाले और करुणा के स्थान हो ॥८॥ बहुत से देवताओं के समूहों से तुम्हारे दोनों चरण बन्दना करने योग्य हैं और तुम

मंदार की माला को हृदय पर धारण करते हो। हे रावण के शत्रु ! सदा संताप से व्याकुल मैं तुलसीदास तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे ईश, मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥

सन्धिविभाग—विस्व + ईस। विस्व + आयतन। व्याल (सर्प) + अरि (शत्रु)। वरद + ईस। वाक् + ईस। सब्द + आदि। मरुत (वायु) + अग्नि। अमल + अंबु। चित्त + आत्मा। चित् (ज्ञानस्वरूप) + सक्ति। सर्व + एव + अत्र। त्वत् (तुम्हारा) + रूप। व्यक्त + अव्यक्त। भवत् (तुम्हारा) + अंग। सर्वगत + ईस। कटक + अंगद + आदी। गूढ़ + अर्थ। गो (इन्द्रिय) + अतीत (परे)। गरिमा (श्रेष्ठता) + आगार। कल्पना + अतीत। वनद + आभ। अर्वाक् (अपरा) + अपर (परा)। दुर्ग + आर्ति। वेदगर्भ (ब्रह्मा) + अर्भक (बालक) + अदभ्र (बहुत)। माला + उर। मां + ईस। रावण + अरि।

शब्दार्थ—विपुल = बहुत। व्योम = आकाश। उर्वी = धरती। गुर्वी = भारी। कामारि = शिव। प्रचुर = बहुत। तल्प = शय्या। वनज = कमल। वनद = मेघ। निर्वाप = नाश। वंदारु = वन्दना करने योग्य। वृन्दारका = देवता।

[५५]

संतसंतापहर विस्वविस्रामकर राम कामारि अभिरामकारी।
सुद्धबोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंदवरधन खरारी ॥ १ ॥
सीलसमताभवन विषमतामतिसमन राम रामारमन रावनारी।
खड्गकरचर्मवर वर्म धर रुचिर कटितून सरसक्तिसारंगधारी ॥ २ ॥
सत्यसंधान निरवानप्रद सर्वहित सर्वगुनज्ञानविज्ञानसाली।
सघनतमघोरसंसारभरसर्वरी नाम दिवसेस खरकिरनमाली ॥ ३ ॥
तपनतीच्छन तरुनतीव्रतापघ्न तपरूप तनभूप तमपर तपस्वी।
मानमदमदनमत्सरमनोरथमथन मोहअंभोधिमंदर मनस्वी ॥ ४ ॥
वेदविख्यात वरदेस वामन विरज विमल वागीस वैकुंठस्वामी।
कामक्रोधादिमर्दन विवर्धनछमा सांतविग्रह विहगराजगामी ॥ ५ ॥
परमपावन पापपुंजमुंजाटवी अनल इव निमिष निर्मूलकर्त्ता।
भुवनभूषन दूषनारि भुवनेस भूनाथ स्रुतिमाथ जयभुवनभर्त्ता ॥ ६ ॥

अमल अविचल अकल सकल संततकलिविकलता भंजनानंदरासी ।
उरगनायकसयन तरुनपंकजनयन छीरसागरअयन सर्ववासी ॥७॥
सिद्धकविकोविदानंददायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
जत्र संभूत अतिपूतजलसुरसरी दर्सनादेव अपहरति पापं ॥ ८ ॥
नित्यनिर्मुक्त संजुक्तगुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता ।
विस्वपोषनभरन विस्वकारनकरन सरनतुलसीदासत्रासहंता ॥

हे राम ! तुम संतों के संताप के हरनेवाले, संसार को विश्राम करानेवाले और शिवजी को आनन्द देनेवाले हो । तुम शुद्ध ज्ञान के स्थान, सच्चिदानन्दघनरूप, सज्जनों का आनन्द बढ़ानेवाले और खर दैत्य के शत्रु हो ॥ १ ॥ हे राम ! तुम शील और समता के स्थान हो । विषमता (अर्थात् किसी से प्रीति किसी से वैर इत्यादि) की बुद्धि के नाशक हो, लक्ष्मी के पति और रावण के शत्रु हो । तुम हाथ में सुन्दर ढाल, तलवार, शक्ति, बाण और धनुष को धारण करते हो, (शरीर पर) कवच और सुन्दर कमर में तरकस धारण करते हो ॥ २ ॥ तुम सत्य प्रतिज्ञावाले, मोक्ष के दाता, सब (चर और अचर) के हितू हो और (शीलता आदि) गुण, ज्ञान और आत्म-ज्ञान ये सब तुममें शोभित हैं । और (अज्ञानरूपी) घने अंधकार से युक्त, ऐसे भयङ्कर संसार के भार (आवागमन) रूपी रात्रि के लिए तुम्हारा नाम तेज किरण युक्त सूर्यरूप है ॥ ३ ॥ तुम्हारी तपन बड़ी तेज़ है, फिर तुम (संसार के) नये नये और तीव्र सन्तापों के हरनेवाले हो, राजा का शरीर होने पर भी तपस्या के रूप हो (पिता की आज्ञा मान भूषण-वसन त्याग वल्कल चीर पहिर वन को चल दिये) । तुम तम अर्थात् अविद्या से परे हो, और तपस्वी हो (१४ वर्ष तक हिम, वर्षा, आतप सहकर और कंद, मूल, फल खाकर वन में रहे) और मान, मद, काम, मत्सर, मनोरथ और मोहरूपी समुद्र को मथने के लिये मंदराचल और मनस्वी (अर्थात् मन को वश में रखनेवाले) हो ॥ ४ ॥ तुम वेदों में विख्यात हो, वर के देनेवाले (ब्रह्मा, महादेव) के स्वामी हो, वामनरूपधारी, रजोगुणरहित, विकाररहित, वाणी के पति और वैकुण्ठ के स्वामी हो । और काम, क्रोध आदि के नाशक और क्षमा (गुण) को बढ़ानेवाले हो, तुम्हारा शान्त स्वरूप है और तुम गरुड़ पर बैठकर चलनेवाले हो ॥ ५ ॥ तुम बड़े पवित्र और पाप पुंजरूपी मूँज की बनी को अग्निरूप होकर एक पल भर में

जड़ से नष्ट करनेवाले हो। तुम भुवनों के भूषण, दूषण (राक्षस) के शत्रु, भुवन के ईश, पृथ्वी के नाथ, और वेद के मस्तक हो (भाव—जैसे शिर से देह सजीव होती है ऐसे ही तुमसे वेद सजीव हैं) और तुम भुवनों के पालन करनेवाले हो—तुम्हारी जय ॥ ६ ॥ तुम अमल (रजोगुण आदि) मल से रहित वा शुद्ध-स्वरूप, अविचल (किसी कारण से चलायमान नहीं होनेवाले) और अकल (कलारहित) हो, (भाव—तुम्हारी कला चन्द्रमा के समान घटती बढ़ती नहीं) तुम कलासहित (अर्थात् पूर्ण कलावाले), कलियुग के संतप्त (जीवों) की विकलता के नाशक, और आनन्द की राशि हो। तुम शेषनाग पर शयन करनेवाले हो, हाल के खिले कमल के समान तुम्हारे नेत्र हैं, और क्षीरसागर में तुम्हारा स्थान है और तुम सब (चराचर) में निवास करते हो ॥ ७ ॥ तुम्हारे दोनों चरण सिद्ध, कवि और पण्डितों को आनन्द देनेवाले हैं, और मलिन आत्मावाले (विषयी) मनुष्यों को तुम दुःख से प्राप्त होने योग्य हो। (और तुम्हारे चरण कैसे हैं कि) जहाँ से बड़े पवित्र जलवाली गंगाजी निकली हैं कि जो दर्शन मात्र से ही पाप को हर लेती हैं ॥ ८ ॥ तुम (माया से) नित्य छूटे हुए अर्थात् रहित हो, (कृपा, करुणा आदि) गुणों से युक्त हो, (रज आदि) गुण न होने से निर्गुण हो, तुम्हारा अंत नहीं है, तुम भगवंत हो (अर्थात् ६ गुण जो ऐश्वर्य, धर्म, यश, सत्य, शोभा और वैराग्य हैं उनसे युक्त हो) नियामक (अर्थात् रक्षा, दंड आदि के नियमों के कर्त्ता अथवा अपनी सामर्थ्य से सबको वश में करनेवाले) हो, और नियंता हो, (अर्थात् ब्रह्मा आदि सबकी प्रेरणा करते हो)। संसार का पालन-पोषण करनेवाले, संसार के कारण (अर्थात् उसकी उत्पत्ति करनेवाले) और करण हो (अर्थात् संसार के उत्पन्न करने में जो महत्तत्त्व अहंकार आदि सामग्री चाहिए सो भी तुम ही हो) और शरणागत तुलसीदास के भय के दूर करनेवाले हो ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—काम + अरि। बोध + आयतन। सत् + चित् + आनंद। सज्जन + आनंद। खर + अरि। रावन + अरि। दिवस + ईस। वरद + ईस। वाक + ईस। क्रोध + आदि। मुञ्ज + अटवी (वन)। दूषण + अरि। भुवन + ईस। भंजन + आनन्द। कोविद (पण्डित) + आनंद। मंद (नीच) + आत्मा। दर्शनात् + एव। निर्गुन + अनंत।

शब्दार्थ—समता = सबमें एक सी बुद्धि रखना। सच्चिदानन्द = ५१ वें पद में देखो। चर्म = ढाल। वर्म = बख़्तर। तून = तरकस। सक्ति = सांगी। सारंग = भगवान् का धनुष। निर्वान = मोक्ष। सर्वरी = रात्रि। मत्सर = द्वेष। विहंगराज = पक्षियों के राजा गरुड़। उरगनायक = शेषनाग। निमिष = पल।

[५६]

दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहनदुर्दोष दुःपापहरता ।
दुष्टतादमन दमभवन दुःखौघहर दुर्गदुरवासनानासकरता ॥ १ ॥
भूरिभूषन भानुमंत भगवंत भवभंजनाभयद भुवनेसभारी ।
भावनातीत भववंदि भवभक्तहित भूमिउद्धरन भूधरनधारी ॥ २ ॥
वर वदन वनदाभ वागीस विस्वातमा विरज वैकुंठमंदिरविहारी ।
व्यापकव्योम वंदारु वामन विभो ब्रह्मविद्ब्रह्म चिंतापहारी ॥ ३ ॥
सहजसुंदर सुमुख सुमन सुभ सर्वदा सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी ।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित् सर्वहित सत्यसंकल्प कल्पांतकारी ॥ ४ ॥
नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वान निर्वानदाता ।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥ ५ ॥
महामंगलमूल मोद महिमायतन मुग्धमधुमथन मानद अमानी ।
मदनमर्दन मदातीत मायारहित मंजु मानाथ पाथोजपानी ॥ ६ ॥
कमललोचन कलाकोस कोदंडधर कोसलाधीस कल्यानरासी ।
यातुधानप्रचुरमत्तकरि केसरी भक्तमनपुन्य आरन्यवासी ॥ ७ ॥
अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंदसिंधो ।
अचल अनिकेत अविरल अनामयअनारंभ अंभोदनादघ्नबंधो ॥ ८ ॥
दासतुलसी खेदखिन्न आपन्न इह सोकसंपन्न अतिसै सभीतं ।
प्रनतपालक राम परमकरुनाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥ ९ ॥

हे राम ! तुम दैत्यों के नाशक, दया के समुद्र, पाखंड का नाश करनेवाले, बुरे बुरे दोषों के जलानेवाले, और बुरे बुरे पापों के हर्ता हो। तुम दुष्टता के नाशक, दम (अर्थात् बाहर की इन्द्रियों का रोकना) के स्थान, दुःख-समूह के हरनेवाले, कठिन और बुरी वासना के नाशकर्त्ता हो ॥ १ ॥ तुम बहुत से आभूषण धारण किये, सूर्य-सम प्रकाशमान, छः ऐश्वर्ययुक्त, संसार के नाशक, अभय के देनेवाले, भुवनों के स्वामी जो ब्रह्मा,

शिव आदि उनसे भी बड़े हो । तुम भावनातीत (अर्थात् मन, बुद्धि के विचार से परे), शिवजी से वन्दना करने योग्य, शिवभक्तों के हितकारक, भूमि का उद्धार करनेवाले, और (गोवर्द्धन) पर्वतधारी हो ॥ २ ॥ तुम्हारे सुन्दर मुख की मेघ समान (श्याम) छवि है, तुम वाणी के स्वामी, विश्व के आत्मा, रजोगुणरहित, वैकुंठ मन्दिर में विहार करनेवाले आकाश के समान सबमें व्याप्त, प्रणाम के योग्य, वामन अवतार, समर्थ, ब्रह्म के जाननेवाले, (स्वयं) ब्रह्म और चिन्ता के दूर करनेवाले हो ॥ ३ ॥ तुम स्वभाव से ही सुन्दर, सुन्दर मुख और सुन्दर मनवाले हो, शुभ अर्थात् मङ्गलस्वरूप, सदा शुद्धरूप, सबके ज्ञाता और स्वतंत्र विचरनेवाले हो । तुम सबके जीतनेवाले, और सबके धारण करनेवाले हो, (अर्थात् जड़ चेतन सबमें तुम्हारी सत्ता है); तुम सर्व-कृत् (ब्रह्मा आदि सबके) कर्त्ता, सबके हितकारी, सत्य प्रतिज्ञावाले, और प्रलय के कर्त्ता हो ॥ ४ ॥ तुम नित्य हो, और तुम अज्ञानरहित, निर्गुण (रज आदि गुणहीन), निरंजन (मायारहित), और (अपनी आत्मा में) पूर्ण आनन्द करनेवाले, मोक्षस्वरूप और मोक्ष के दाता हो । तुम पूर्ण आनन्दस्वरूप, अचल, सीमारहित, मुक्तिरूप, और उपाधि जो माया उससे रहित हो, तुम ममतारहित (अर्थात् जब स्वयं ही विश्वरूप हो तो ममता किस पर करो) और सबके विधाता हो, (अर्थात् सब संसार को तुमने ही बनाया है) ॥ ५ ॥ तुम बड़े बड़े मङ्गलों के मूल (अर्थात् देनेवाले) आनन्द-रूप, महिमा के स्थान, मूर्ख मधु (दैत्य) के नाशकर्त्ता, मान देनेवाले, (स्वयं) मान–रहित, काम के नाशक, मद से परे, मायारहित सुन्दर लक्ष्मी के पति हो और कमल को हाथ में लिये हो ॥ ६ ॥ तुम कमल कैसे नेत्रवाले, (६४ कलाओं के) भंडार, कोदंड—धनुष धारण किये, अवध के स्वामी और कल्याण की राशि हो । और राक्षस-रूपी बहुत से मनवाले हाथियों का (नाश करने के लिए) सिंहरूप, भक्तों के मन को पवित्र करनेवाले, और वन के वासी हो ॥ ७ ॥ पापरहित, अद्वैत, दूषणरहित, अप्र-कट, अजन्मा, सीमारहित, (काम, क्रोध आदि) विकाररहित, (अर्थात् शुद्ध आत्म-रूप), और आनन्द के समुद्र हो । तुम अचल हो, (एक स्थान में) तुम्हारा वास नहीं है (अर्थात् सर्वव्यापी हो), सघन (अर्थात् सबमें परिपूर्ण), और नीरोग हो । तुम्हारा आदि नहीं और तुम मेघनाद के नाशक जो लक्ष्मणजी उनके भाई हो ॥ ८ ॥ यह तुलसीदास (संसार के दुःख से दुखी और विपद्ग्रस्त हो रहा है और) शोकयुक्त और (कलि से) अधिकतर डरा हुआ है सो हे प्रणतों के पालक ! हे करुणा के स्थान ! हे पृथ्वी के पति ! हे राम ! मुझ दुर्विनीत की रक्षा करो ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—दंभ + अपहन। दुःख + ओघ (समूह)। भंजन + अभय। भुवन + ईस। भावना + अतीत (परे)। वनद (मेघ) + आभ। वाक् + ईस। विस्व + आत्मा। चिंता + अपहारी। कल्प (ब्रह्मा का दिन) + अंत। निर्भर (पूर्ण) + आनंद। मद + अतीत। कौसला + अधीस। माम् + उर्वि (पृथ्वी)।

शब्दार्थ—दंभ = पाखंड। दुर्ग = कठिन। भव = महादेव। वनद = मेघ। वंदारु = वन्दना के योग्य। मुग्ध = मूर्ख। मंजु = सुन्दर। मानाथ = लक्ष्मी के पति। पाथ = कमल। पानी = हाथ। प्रचुर = बहुत। जातुधान = राक्षस। अद्वैत = जिसके समान दूसरा न हो। अनवद्य = निर्दोष। अनामय = नीरोग। अंभोदनादघ्न = अंभ नाम जल उसे देनेवाला हुआ मेघ और मेघ का सा नाद करनेवाला हुआ मेघनाद रावण का पुत्र उसके नाशक अर्थात् लक्ष्मणजी। खिन्न = दुखी। संपन्न = युक्त।

[५७]

देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग भवभंगकारन सरनसोकहारी।
जे तु भवदंघ्रिपल्लवसमाश्रित सदा भक्तिरत विगतसंसय मुरारी॥
असुर सुर नाग नर जच्छ गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध जे चापि अन्ने।
संत संसर्ग त्रैवर्गपर परमपद प्राप निःप्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥
वृत्र बलि बान प्रह्लादमयव्याधगजगृद्ध द्विजबंधु निजधर्मत्यागी।
साधुपदसलिल निर्धूतकल्मषसकल स्वपचजवनादि कैवल्यभागी॥
सांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन सब्दब्रह्मैकपर ब्रह्मज्ञानी।
दच्छसमदृक स्वदृक विगतअतिस्वपरमति परमरति विरति तव चक्रपानी ॥ ४ ॥
विस्व उपकारहित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्तमदमन्यु कृतपुन्यरासी।
जत्र तिष्टंति तत्रैव अज सर्व हरि सहित गच्छन्ति छीराब्धिवासी॥
वेदपयसिंधु सुविचारमंदरमहा अखिलमुनिवृंदनिर्मथनकरता।
सारु सत्संगमुद्धृत्य इति निस्चितं वदत श्रीकृष्न वैदर्भिभरता ॥ ६ ॥
सोकसंदेहभयहर्षतमतर्षगन साधुसद्युक्तिविच्छेदकारी।
जथा रघुनाथसायक निसाचरचमू निचय निर्दलन पटु वेगभारी॥

जत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवस भ्रमत जगजोनि संकटअनेकम्।
तत्र त्वद्भक्तिसज्जनसमागम सदा भवतु मे राम विस्राममेकम्॥८॥
प्रबलभवजनितत्रैव्याधिभेषजभगति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
संतभगवंतअंतर निरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कहदासतुलसी॥

हे रमापते! सत्संग दीजिए जो तुम्हारा (अर्थात् तुम्हारे मिलने का) एक अंग (साधन) है, संसार के नाश करने का कारण है और शरणागत के शोक का हरनेवाला है। हे मुरारि! जो (सन्त) तुम्हारे चरण-पल्लव के सदा आश्रित हैं और तुम्हारी भक्ति में जिनकी प्रीति है, उनका सन्देह जाता रहता है॥ १॥ (सत्संग का प्रभाव कैसा है कि) दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध, और जो दूसरे हुए हैं वे भी सन्तों के संसर्ग से त्रयवर्ग (धर्म, अर्थ काम) से परे जो परमपद (मोक्ष है) उसे पाते हैं। (वह मोक्षपद कैसा है कि) निःप्राप्यगति है (अर्थात् उसकी गति साधन आदि से नहीं प्राप्त होती, वह तो) आपके प्रसन्न होने पर (मिलता) है॥ २॥ वृत्रासुर, बालि, बाणासुर, प्रहलाद सहित जो व्याध, (वाल्मीकि), गजेन्द्र, गृध्र (जटायु) और, ब्राह्मणों का भाई होने पर भी अपने धर्म का त्यागी (अजामेल) इन्हों का साधुओं के चरणामृत (पीने) से सब पाप जाता रहा। और (तो क्या) श्वपच और यवन आदि भी मोक्ष के भागी हो गये॥ ३॥ (सत्संग के प्रभाव से साधु कैसे हो जाते हैं कि) शान्त (रागद्वेषरहित), निरपेक्ष (अर्थात् जिनको किसी बात की वासना नहीं), निर्मम (अर्थात् ममतारहित), निरामय (अर्थात् संसारी कामक्रोधादि रोगरहित), अगुण (सत, रज, तम, गुणों से रहित), शब्द ब्रह्मैक (शब्द ब्रह्म जो वेद उसके जानने में एक अर्थात् मुख्य), और परब्रह्म के जाननेवाले। दक्ष (अर्थात् सब शास्त्रों में चतुर अथवा भगवत्सम्बन्धी भक्ति, वैराग्य आदि में कुशल), सम-दृष्टि (सब चराचर में समान दृष्टि रखनेवाले), स्वदृक् (अपने स्वरूप को देखनेवाले) और विशेष करके छूट गई है अपनी और पराई मति जिनकी (अर्थात् जो अपने पराये में भेद नहीं समझते) और हे चक्र-पाणि! जो वैराग्य होने के कारण तुमसे बड़ी प्रीति करते हैं॥ ४॥ संसार के उपकार के लिए जिनका चित्त सदा चिन्ता-युक्त रहता है, जिन्होंने मद और क्रोध को त्याग दिया है, और बहुत से पुण्य किये हैं वे (ऐसे साधु) जहाँ बैठते हैं वहाँ ही ब्रह्मा, और महेश को साथ लेकर क्षीरसमुद्र के निवासी भगवान् जाते हैं॥ ५॥ (फिर सत्संग अमृत समान है सो कहते हैं) वेद सो ही क्षीरसमुद्र है उसका अच्छी भाँति विचारना ही बड़ा मन्दिराचल है और सब मुनियों के समूह उसके मथनेवाले

हैं, और उसमें जो सार निकला सो सत्संग है यह निश्चय हुआ। यह रुक्मिणीजी के प्रति श्रीकृष्णजी कहते हैं (भाव यह है कि बड़े बड़े मुनियों ने जो वेद वेदान्त पढ़ कर सबका तत्त्व निकाला वह सत्संग निश्चित हुआ जो मोक्ष पाने में आदि कारण है) ॥ ६ ॥ शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और वासना इनके समूहों को साधुओं की सुन्दर युक्ति ही ऐसे नाश करनेवाली है कि जैसे रघुनाथजी का बाण राक्षसों की सेना के झुंडों का नाश करने में समर्थ है और बड़े वेग से जाता है ॥ ७ ॥ (हे देव !) अपने कर्म के वश जहाँ कहीं मेरा जन्म हो और संसार में जिस जिस योनि में अनेक संकट सहता हुआ भ्रमता फिरूँ उसी उसी (योनि) में मुझे सदा तुम्हारी भक्ति और सज्जनों का संग हो। हे राम ! मुझे एक यही विश्राम हो ॥ ८ ॥ बड़े बली संसार में उत्पन्न हुई जो तीन प्रकार की पीड़ा हैं उसकी दवाई आपकी भक्ति है और अद्वैतदर्शी (अर्थात् चराचर में एक दृष्टि रखनेवाले भगवान के) भक्त ही हकीम हैं। सन्त और भगवान् में सदा से कुछ भी भेद नहीं है फिर मलिन बुद्धिवाला तुलसीदास क्या कहे (कि भेद है अर्थात् नहीं कह सकता) ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—भवत् (तुम्हारे) + अंघ्रि (चरण) । च + अपि । ब्रह्म + एक । तत्र + एव । क्षीर + अब्धि । सत्संगम् + उद्धृत्य (निकाल कर) । सत् (अच्छी) + युक्ति । त्वत् (तुम्हारी) + भक्ति । विस्रामम् + एकम् ।

शब्दार्थ—पल्लव = पत्ता । च = और । अन्ने (अन्ये) = दूसरे । निर्धूत = जड़ से धुल जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है । कल्मष = पाप । कैवल्य = मोक्ष । चक्रपानी = चक्र है हाथ में जिनके अर्थात् विष्णु । मन्यु = क्रोध । सर्व = शिव । रासि = समूह, बहुत सा । वैदर्भि = रुक्मिणी । तर्ष = वासना । चमू = सेना । निचय = समूह । पटु = चतुर । निरंतर = सदा ।

[५८]

देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमनदुख समनसंतापभारी ।
अज्ञानराकेसग्रासनविधुंतुद गर्वकामकरिमत्तहरि दूषनारी ॥ १ ॥
वपुषब्रह्मांड सुप्रवृत्तिलंकादुर्ग रचित मनदनुजमयरूपधारी ।
विविधकोसौघ अतिरुचिरमंदिरनिकर सत्त्वगुन प्रमुख त्रैकटक-कारी ॥ २ ॥
कुनपअभिमान सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारम् ।
नक्ररागादिसंकुल मनोरथसकल संगसंकल्पवीचीविकारम् ॥ ३ ॥

मोहदसमौलि तदभ्रातअहंकार पाकारिजित् काम विस्रामहारी।
लोभअतिकाय मत्सरमहोदरदुष्ट क्रोधपापिष्ठविबुधांतकारी ॥४॥
द्वेषदुर्मुख दंभखर अकंपनकपट दर्पमनुजाद मदसूलपानी।
अमित ल परमदुर्जय निसाचरनिकर सहितषड्वर्ग गो जातुधानी ॥
जीवभवदंघ्रि सेवक विभीषन बसत मध्यदुष्टाटवीग्रसितचिंता।
नियम जम सकल सुरलोकलोकेस लंकेसवसनाथअत्यंतभीता ॥
ज्ञानअवधेस गृहगेहिनीभगतिसुभ तत्र अवतारभूभारहरता।
भक्तसंकष्ट अवलोकि पितुवाक्यकृत गमन किय गहन वैदेहिभरता ॥
कैवल्यसाधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञानसुग्रीव कृतजलधिसेतू।
प्रबलवैराग्यदारुनप्रभंजनतनय विषयवनभवनमिव धूमकेतू ॥ ८ ॥
दुष्टदनुजेस निर्वंसकृत दासहित विस्वदुखहरन बोधैकरासी।
अनुजनिजजानकीसहितहरि सर्वदा दासतुलसीहृदयकमलवासी ॥

हे लक्ष्मीपते ! (मैं संसाररूपी सागर में डूबा जाता हूँ) मुझे अपने कर-कमल का सहारा दो। क्योंकि तुम दुःख दूर करनेवाले (और तीन प्रकार के) भारी सन्तापों के नाशक हो। और हे दूषण राक्षस के शत्रु ! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के ग्रसने के लिए तुम राहु रूप हो और गर्व तथा कामरूपी मतवाले हाथियों के (नाश के) लिए सिंह-रूप हो ॥ १ ॥ शरीररूपी ब्रह्मांड में प्रवृत्ति ही लंका का किला है, (लंका को मय दैत्य ने बनाया था और इस प्रवृत्ति की) मन (१) ने रचना की है। (लंका में बड़े अच्छे अच्छे भाँति भाँति के महल और सेनापति थे) और इस (देह की प्रवृत्ति)

(१) शरीर में प्रवृत्ति का आधार मन है अर्थात् जब मन में संकल्प होता है तब इन्द्रियाँ अपना अपना विषय ग्रहण करने की ओर झुकती हैं और तब ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और उस पर अन्नमयादि पाँचों कोशों का प्रतिबिम्ब पड़ता है जिससे प्राणी "मैं मनुष्य हूँ, मैं क्षुधित हूँ, मेरा देह है, मैं ज्ञानी हूँ, मैं सुखी हूँ" इत्यादि कहता है। तीनों गुणों का प्रकाश भी प्रवृत्ति में ही होता है क्योंकि संसार की कोई अवस्था या मनुष्य का कोई कर्म ऐसा नहीं जो तीनों गुणों में से एक का प्रकाश न हो। जैसा गीता में कहा है—"न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः" अर्थात् पृथ्वी में या स्वर्ग में या देवताओं में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो प्रकृति के इन तीन गुणों से अलग हो।

में अनेक प्रकार के जो (अन्न (१) मय आदि) कोशों के समूह हैं (कि जिनके द्वारा जीव को सब प्रकार की चाहना होती है) सो ही बड़े बड़े सुन्दर महलों के समूह हैं और सत्त्वगुण को आदि लेकर (अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) ही सेनापति हैं ॥ २ ॥ जैसे लंकागढ़ को बड़ा भयंकर बहुत गहरा अपार और दुस्तर समुद्र घेरे हुए है वैसे ही यहाँ प्रवृत्ति को) सागर के समान देहाभिमान (२) घेरे हुए है जो (दया आदि गुण न रहने से) महा भयङ्कर है, (बुद्धि से थाह न मिलने के कारण) बड़ा अथाह है, और अपार (कहिये चौड़े पाटवाला) है जो कि तरा न जाय (अर्थात् छोड़ा न जाय। और जैसे समुद्र में अनेक जलचर होते हैं और पानी की लहरें उठा करती हैं वैसे ही यहाँ) राग आदि सब मनोरथ ही घड़ियाल हैं जिनसे यह भरा हुआ है और इसमें विषयासक्ति का संकल्प ही लहरों का उठना है ॥ ३ ॥ (जैसे लंका में रावण आदि राक्षस थे, यहाँ प्रवृत्ति में) मोह रावण है; अहंकार उस रावण का भाई (कुम्भकर्ण) है और विश्राम का हरनेवाला काम ही मेघनाद है। लोभ अतिकाय (राक्षस) है, मत्सर ही दुष्ट महोदर है और क्रोध पापी देवान्तक है (भाव यह हुआ कि जैसे रावण के राज्य में सब राक्षस चैन करते थे वैसे ही अहंकार आदि के स्वामी और आत्मस्वरूप को भुलानेवाले मोह के राज्य में काम, क्रोध आदि की अच्छी बन पड़ती है) ॥ ४ ॥ (इनके सिवा जैसे लंका में दुर्मुख, खर आदि और भी राक्षस और मन्दोदरी आदि राक्षसियाँ थीं ऐसे ही यहाँ प्रवृत्ति में) द्वेष दुर्मुख है, दम्भ खर है, कपट अकंपन है, दर्प मनुजाद है और मद शूलपाणि है। इन राक्षसों का समूह बड़ा भारी बली और बड़ा दुर्जय है (अर्थात् किसी से जीता नहीं जा सकता) क्योंकि इस (मोह आदि) छः राक्षसों के समूह के साथ इन्द्रियाँरूपी राक्षसियाँ भी हैं। (भाव यह है कि लंका के राक्षस और राक्षसियों की तरह प्रवृत्ति में भी मोहादिक भरे हैं और ये इन्द्रियों के साथ रमण करते हैं क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा ही इनकी प्रत्यक्षता होती है इसलिए इनका जीतना महा कठिन है) ॥ ५ ॥ (जैसे विभीषण राक्षसों के मध्य में रहकर उनके नाश की

---

(१) गूढ़ार्थ कोश में देखो।

(२) देहाभिमान के घेरने से मन की प्रवृत्ति सदा ऐसी हो जाती है कि मनुष्य अपने को वृथा बड़ा समझने लगता है कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं धनिक हूँ, मैं राजा हूँ इत्यादि। विषयों में अनुराग होने के कारण वह महल, भूषण, वाहन आदि के पाने के लिए बड़े बड़े सङ्कल्प करता है और अपने अभिमान की तृप्ति करने के लिए आकाशकुसुम के समान बड़े बड़े मनोरथ किया करता है और बहुत से कामों के करने का संकल्प करता है जिससे देहाभिमान और भी बढ़ता है। इसी से देहाभिमान को भयङ्कर दुस्तर और अपार कहा है।

चिन्ता किया करता था और जैसे सुरलोक और लोकेश भी रावण के वश में होने से डरते थे ऐसे ही) जीव ही हुआ आपके चरणों का सेवक विभीषण सो (मोहादि-रूपी) दुष्टों (अर्थात् राक्षसों) की बनी के मध्य में बसकर (उनके नाश की) चिन्ता में फँसा रहता है। और हे नाथ ! नियमरूपी सब देवता और यमरूपी लोकपाल भी (मोहरूपी) रावण के वश में होने से बहुत डरते हैं। (भाव यह है कि जीव तो बहुतेरा चाहता है कि मोह का नाश हो और मुझे सुख मिले पर मोह के कारण यम नियम तो हो ही नहीं सकते फिर जीव को कैसे शांति मिल सकती है) ॥ ६ ॥ सो हे नाथ ! जैसे तुमने राजा दशरथ और कौशल्या के यहाँ पृथ्वी का भार उतारने के लिए सुन्दर (सगुण) अवतार लिया था ऐसे ही यहाँ ज्ञानरूपी राजा दशरथ और सुन्दर भक्तिरूपी कौशल्या रानी के द्वारा (मोहादि का नाश करने के लिए) अपना रूप प्रकट करो। और हे जानकीपते ! जैसे भक्त का कष्ट देखकर पिता के वचन से वन में गमन किया था (वैसे ही यहाँ भी जीवरूपी भक्त का कष्ट देख कर ज्ञानरूपी दशरथ की प्रेरणा से हृदयरूपी वन में गमन करो अर्थात् ज्ञान के द्वारा अपना प्रकाश करो) ॥ ७ ॥ मोक्ष के (जप, तप, वैराग्य आदि) अनेक साधन ही हुए अनेक रीछ, बन्दर (इनके द्वारा) (विवेकरूपी सुग्रीव (देहाभिमानरूपी) समुद्र का पुल बाँध देगा और प्रबल वैराग्य ही हुआ कठिन हनूमान् सो (देहाभिमानरूपी समुद्र को फाँद) विषयरूपी (अशोक) वन और (कोशरूपी) भवनों को अग्नि के समान भस्म कर देगा ॥ ८ ॥ और तुम (जीवरूपी विभीषण) भक्त के लिए — (मोहरूपी) दुष्ट रावण को निर्वंश करके संसार का दुःख दूर कर दो और हे आत्मस्वरूप ! अपने छोटे भाई (लक्ष्मणजी) और जानकीजी सहित हे हरे ! तुलसीदास के हृदय-कमल में सदा वास करो। (भाव यह है कि जब समाधि, जप, तप आदि मोक्ष साधनों के द्वारा ज्ञान का उदय होता है तब मनुष्य का देहाभिमान छूट जाता है और इन्द्रियों के विषयों और अन्नमयादि कोशों की लवलीनता, कि जिसके कारण मनुष्य तेरा मेरा करता है, जाती रहती है। फिर आत्मज्ञान होने पर हृदय में आत्मस्वरूप का प्रकाश होता है और जीव को परम शान्ति मिलती है ॥ ९ ॥

सन्धि-विभाग—राका (रात्रि) + ईस। दूषण + अरि। कोस + ओघ (समूह)। राग + आदि। विबुध + अंतकारी। भवत् (आपके) + अंघ्रि (चरण)। दुष्ट + अटवी (वन)। लोक + ईस। लंका + ईस। अवध + ईस। भवनं + इव। दनुज + ईस। बोध + एक।

शब्दार्थ—राकेस = चन्द्रमा। विधुंतुद = राहु। करि = हाथी। हरि = सिंह। प्रवृत्त = चित्तवृत्ति। कोस = गूढ़ार्थ में देखो। निकर = समूह। प्रमुख = आदि। कुनप = देह। संकुल =

व्याप्त, भरा हुआ । संग = विषय में लगना । बीची = लहरें । विकार = उठना । दसमौलि = रावण । पाकारिजित् = मेघनाद । विबुध = देवता । गो = इन्द्रियाँ । जातुधानी = राक्षसियाँ । अटवी, गहन = वन । बैदेही = सीता । भर्त्ता = पति (राम) । कैवल्य = मुक्ति । प्रभंजन = पवन । धूमकेतु = अग्नि । बोधैकराशि = ब्रह्मज्ञानी ।

[५६]

दीनउद्धरन रघुवर्ज करुनाभवन समनसंताप पापौघहारी ।
बिमलविज्ञानविग्रह अनुग्रहरूप भूपवर विबुधनरमद खरारी ॥१॥
संसारकांतार अतिघोर गंभीर घन गहन तरुकर्मसंकुल मुरारी ।
वासनावल्लि खरकंटकाकुलविपुल निबिडविटपाटवीकठिनभारी ॥
विविधचितवृत्ति खग-निकर सेनोलूक काकबकगृद्ध आमिषअहारी ।
अखिल खल निपुनछल छिद्र निरखत सदा जीवजनपथिकमन-खेदकारी ॥ ३ ॥
क्रोधकरिमत्त मृगराज कंदर्प मद दर्प वृकभालु अतिउग्रकरमा ।
महिष मत्सर क्रूर लोभसूकररूप फेरु छल दंभ मार्जार धरमा ॥४॥
कपटमर्कटविकट व्याघ्रपाखंड मुखदुखदमृगव्रातउतपातकरता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं पाहि मापाहि भो विस्वभरता ॥
प्रबलअहंकारदुरघट महीधर महामोहगरिगुहा निबिडांधकारम् ।
चित्तवेताल मनुजादमन प्रेतगनरोग भोगौघवृस्चिक विकारम् ॥
विषयसुखलालसादंसमसकादि खल झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी ।
तत्र आच्छिप्त तव विषममायानाथ अंध मैं मंद व्यालादगामी ॥
घोरअवगाह भवआपगा पापजलपूर दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा ।
मकरषड्वर्ग गोनक्रचक्राकुला कूल सुभ असुभ दुखतीव्रधारा ॥८॥
सकल संघट्ट पोच सोचवस सर्वदा दासतुलसी बिषम गहनग्रस्तम् ।
त्राहि रघुवंसभूषन कृपाकर कठिन कालविकरालकलित्रास-त्रस्तम् ॥ ९ ॥

हे देव! तुम दीनों का उद्धार करनेवाले, रघुकुल में श्रेष्ठ, करुणा के स्थान, सन्ताप के दूर करनेवाले और पापों के समूह के हरनेवाले हो। तुम निर्मल आत्मज्ञान का शरीर धारण किये, कृपा के स्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ, देवताओं को सुखदाई और खर दैत्य के शत्रु हो ॥ १ ॥ हे मुरारी! संसाररूपी वन (शुभाशुभ) कर्मरूपी वृक्षों से भरा हुआ है और (कैसा है कि) बड़ा भयानक, बड़ा गहरा, घना (ऐसा कि जिसमें कुछ नहीं सूझे) और कठिन है (अर्थात् जिसमें दुःख ही दुःख मिले; और उन कर्मरूपी वृक्षों पर) वासनारूपी बेलें (लिपट रहीं) हैं और (वासना पूरी न होने से जो) व्याकुल होना है सो ही पैने काँटे हैं ऐसा बड़े और गहरे वृक्षों का वन बड़ा भारी कठिन है ॥ २ ॥ (वन में भयानक जीव रहते हैं सो यहाँ संसाररूपी वन में पर-स्त्री-हरण, पर-निन्दा, पराया दोष देखना आदि) अनेक प्रकार की चित्त-वृत्तियाँ ही मांसाहारी बाज़, उल्लू, काक, बगुले और गिद्ध आदि पक्षियों का झुंड है और (जैसे वन के सब दुष्ट जीव छल में निपुण होते हैं और कमज़ोरी देखते ही पथिक जन के मन को खेद पहुँचाते हैं ऐसे ही इस संसार में) बहुत से दुष्ट, जो छल में चतुर होते हैं, दोष देखते ही जीवरूपी पथिक के मन को सदा दुःख देते हैं (अर्थात् मन में स्थिरता, शान्ति, सुख आदि नहीं होने देते) ॥ ३ ॥ (संसाररूपी वन में कौन कौन से दुष्ट जन्तु हैं सो कहते हैं कि) क्रोधरूपी मतवाला हाथी है, कामरूपी सिंह है, मदरूपी भेड़िया और गर्वरूपी रीछ है और उनके काम बड़े उग्र अर्थात् दुखदाई हैं। और मत्सररूपी क्रूर भैंसा है, लोभरूपी शूकर है, छलरूपी गीदड़ है, और दम्भ में बिलाव का धर्म है ॥ ४ ॥ कपटरूपी बड़ा विकट बन्दर है, पाखंडरूपी बाघ है, क्योंकि जैसे बाघ का मुख मृग के झुंडों को दुखदाई और उत्पात करनेवाला है (ऐसे ही पाखंड वेदविरुद्ध बातें करा कर सन्तों को दुःख देता है) हे विश्व के पालक! हृदय में इस शोक को देख कर मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। सो मेरी रक्षा करो ॥ ५ ॥ (यहाँ तक तो वन के जीवजन्तुओं से रक्षा करने के लिए विनय की। आगे, और रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं कि संसाररूपी वन में) बड़ा भारी अहंकाररूपी दुर्घट (जो लाँघा न जाय ऐसा) पर्वत है और जैसे (वन में बड़ी अँधेरी गुफाएँ होती हैं ऐसे ही संसाररूपी वन में) महामोहरूपी पर्वत की कन्दरा है कि जिसमें घना अँधेरा भरा है (उसमें जाने से अपना आत्मस्वरूप नहीं दीखता फिर जैसे वन में बैताल रहते हैं) यहाँ चित्तरूपी बैताल है, मनरूपी राक्षस है, रोगरूपी प्रेतगण हैं, और (स्त्री, भोजन वसन, भूषण, गान, वाहन आदि) भोग का समूहरूपी बिच्छू का विकार अर्थात् ज़हर

है ॥ ६ ॥ (और जैसे वन में मक्खी, मच्छर, झिल्ली और सर्प होते हैं और जीव को सुख नहीं होने देते ऐसे ही संसाररूपी वन में) विषयसुख की लालसारूपी वन की मक्खियाँ और मच्छर हैं और (बुरे वचन बोलनेवाले) दुष्टरूपी झिल्ली हैं और हे स्वामी ! रूप, रस, गंध आदि सब विषयरूपी सर्प हैं। हे गरुड़गामी ! हे नाथ ! तुम्हारी कठिन माया ने मुझ मूर्ख को (वहाँ संसाररूपी वन में) पटक रक्खा है। (वहाँ से निकल नहीं सकता क्योंकि ज्ञानरूपी नेत्र न होने से) अंधा हूँ ॥ ७ ॥ (वन में नदी होती है उसका रूपक कहते हैं) यह संसाररूपी नदी बड़ी भयंकर और गहरी है और पापरूपी जल से भरी है, बड़े दुःख से देखने योग्य, दुःख से पार करने योग्य और अपार है (अर्थात् इसका पार नहीं सूझता अथवा यह पार नहीं हो सकती)। इसमें षड्वर्ग (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) रूपी मगर हैं, इन्द्रियाँ-रूपी घड़याल और कछुए भरे हैं, और शुभाशुभ कर्मरूपी (इस नदी के दोनों) किनारे हैं और दुःखरूपी बड़ी कठिन धारा है (उसमें पड़ कर कौन बच सकता है) ॥ ८ ॥ (संसाररूपी कठिन वन में काम, क्रोधादि रूपी जो जीवजन्तु हैं इन) सब नीचों ने इकट्ठे होकर मुझे पकड़ लिया है सो तुलसीदास सदा शोच के वश रहता है, हे रघुवंश के भूषण ! इस कठिन भयंकर कलिकाल के भय से डरे हुए को कृपा कर बचाइए ॥ ६ ॥

सन्धि-विभाग—पाप + ओघ । कंटक + आकुल (दुःख) । विटप + अटवी (वन) । सेन + उलूक । निविड़ (घना) + अंधकार । भोग + ओघ (समूह) । मसक + आदि । रूप + आदि । व्याल + अद (खानेवाला) = गरुड़ । चक्र + आकुल (व्याप्त, भरा हुआ) ।

शब्दार्थ—संकुल = भरा हुआ । सेन = बाज़ । फेरु = गीदड़) । व्रात = झुंड । मनुजाद = मनुज (मनुष्य) को अद नाम खानेवाला अर्थात् राक्षस । दंस = वन की मक्खी । आपगा = नदी । संवट्ट = इकट्ठे हो कर ।

[६०]

नौमि नारायनं नरं करुनायनं ध्यानपारायनं ज्ञानमूलम् ।
अखिलसंसारउपकारकारन सदय हृदय तपनिरत प्रनतानुकूलम् ॥
स्यामनवतामरसदामद्युतिवपुष छवि कोटिमदनार्कअगनित-प्रकासम् ।
तरुनरमनीय राजीवलोचन ललितवदनराकेस करनिकरहासम् ॥
सकलसौंदर्जनिधि बिपुलगुनधामविधिवेदबुधसंभुसेवित अमानम् ।

अरुनपदकंज मकरंदमंदाकिनी मधुपमुनिवृंद कुर्वन्ति पानम् ॥
सक्रप्रेरित घोरमदनमदभंगकृत क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी।
मार्कंडेयमुनिवर्जहितकौतुकी बिनहिं कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥
पुन्यवनसैलसरिबदरिकास्रम सदासीनपद्मासनं एकरूपं।
सिद्धजोगींद्रवृंदारकानन्दप्रद भद्रदायक दरस अतिअनूपं ॥ ५ ॥
मान मनभंग चितभंगमद क्रोधलोभादिपर्वतदुर्ग भुवनभरता।
द्वेषमत्सररागप्रबलप्रत्यूह प्रति भूरि निर्दयक्रूरकर्मकरता ॥ ६ ॥
बिकटतरवक्रछुरधारप्रमदातीव्र दर्पकंदर्पगरखड्गधारा।
धीरगंभीरमनपीरकारक तत्र के वराका वयं विगतसारा ॥ ७ ॥
परमदुर्घटपंथ खलअसंगतसाथ नाथनहिंहाथवरविरतियष्टी।
दरसनारतदास त्रसितमायापास त्राहि हरि त्राहि हरि जानकष्टी ॥८॥
दासतुलसी दीन धर्मसंबलहीन स्रमित अतिखेदमतिमोहनासी।
देहि अवलंब न विलंब अंभोजकर चक्रधर तेजबलसर्मरासी ॥ ९ ॥

मैं नर नारायण को प्रणाम करता हूँ कि जो करुणा के स्थान, ध्यान में मग्न और ज्ञान के मूल अर्थात् कारण हैं। जो सब संसार का उपकार करनेवाले हैं, जिनका हृदय दयायुक्त है, और जो तपस्या में लगे हुए और प्रणत जो भक्त उन पर कृपालु हैं ॥१॥ नीले और नये (खिले हुए) कमलों की माला के समान जिनके शरीर की शोभा है, जिनकी करोड़ों कामदेवों की सी छबि है और अनगिनती सूर्यों का सा जिनका प्रकाश है। हाल के खिले सुन्दर कमल के समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्र-समान सुन्दर मुख है और चन्द्र की किरणों के समूह के समान जिनकी मुसक्यान है ॥ २ ॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरता की खान, बहुत से गुणों के स्थान, ब्रह्मा, वेद, पण्डित और शिवजी से सेवा किये गये और मानरहित हैं। जिनके लाल कमल-समान चरणों से निकली हुई मन्दाकिनी नाम गंगाजी के (जल-रूपी) रस का मुनि-रूपी भौंरे पान करते हैं ॥ ३ ॥ और जो इन्द्र से भेजे गये भयङ्कर (अर्थात् सबका चित्त डिगानेवाले) कामदेव के मद के भंग करनेवाले, क्रोधरहित, बोधरत (अर्थात् शुद्ध ज्ञानी) और ब्रह्मचारी हैं। जो मुनियों में श्रेष्ठ मार्कंडेयजी के लिए लीला करनेवाले और कल्पांत के बिना ही

प्रलय करने में समर्थ हैं॥ ४॥ और जिसमें पवित्र वन, पर्वत और नदियाँ हैं ऐसे बदरिकाश्रम में सदा पद्मासन लगाये एक रूप से (निश्चल) बैठनेवाले हैं और सिद्ध तथा बड़े बड़े योगी और देवताओं को विशेष आनन्ददायक, कल्याण के देनेवाले और जिनका बड़ा उपमारहित दर्शन है॥ ५॥ (आगे बदरिकाश्रम के मार्ग की और हृदय में दर्शन-मार्ग की कठिनता कहते हैं कि उस कठिन मार्ग को लाँघकर जाय तो दर्शन हो) हे भुवन के कर्त्ता! वहाँ तो मनभंग पर्वत है (जिसे देख कर ही मन में संकल्प विकल्प उठता है) और यहाँ अभिमानरूपी पर्वत है (कि जिसके कारण दर्शन करने को मन न करे) और वहाँ तो चित्तभंग पर्वत है (कि जिसे देख आगे जाने का विचार ही न हो) और यहाँ मदरूपी पर्वत है। वहाँ तो बड़े बड़े कठिन पर्वत हैं और (यहाँ इस दर्शन-मार्ग में) क्रोध, लोभ आदि कठिन पर्वत हैं। और वहाँ तो (व्याघ्र, सिंह, कोल-किरात आदि) बड़े भारी विघ्न हैं (खा जायँ, लूट लें) और इस (दर्शन-मार्ग) में द्वेष, मत्सर और रागरूपी बड़े भारी विघ्न हैं और इनमें से हर एक बड़ा निर्दयी और दुष्ट कर्म करनेवाला है॥ ६॥ (बदरीनाथ के मार्ग में तो बटमार बड़ी भयङ्कर और पैनी छुरी—तलवार—की धार से पथिकों को मारते हैं और यहाँ) स्त्री की बड़ी टेढ़ी चितवन ही छुरी की बड़ी भयङ्कर धार है और काम-विष ही तलवार की पैनी धार है। (ये बीच में ही काम तमाम कर देते हैं। वहाँ दर्शन कैसे हो। ये ऊपर कही हुई विघ्नकारी वस्तु) धीर और गंभीर (मनुष्यों) के मन को भी पीड़ा करनेवाली हैं फिर वहाँ हम सरीखे बिचारे बलहीन कौन हैं (अर्थात् किस गिनती में हैं)॥ ७॥ (एक तो) बड़ा कठिन मार्ग है (दूसरे काम, क्रोधादि) दुष्ट नीचों का साथ है (तीसरे) हे नाथ! हाथ में सुन्दर वैराग्यरूपी लकड़ी नहीं है (लकड़ी हो तो कुछ बच सकूँ) और यह दास दर्शन के लिए घबड़ा रहा है और माया के फँदे से दुखी है सो दास को पीड़ित जान कर हे भगवन्! रक्षा करो, रक्षा करो॥ ८॥ (इन ऊपर के विघ्नों के सिवा) मुझ ग़रीब तुलसीदास के पास धर्मरूपी कलेवा नहीं है (कि जिसे खाता हुआ चला जाऊँ फिर मार्ग की कठिनाई से) थक गया हूँ, और बड़ा दुखी हूँ (इस पर भी) मोह ने मति का नाश कर दिया है। सो हे चक्रधारी! मुझे अपने कर-कमल का सहारा दो, देर मत करो (क्योंकि) तुम तेज, बल और सुख के समूह हो (इसलिए सब कुछ कर सकते हो)॥ ९॥

संधि-विभाग—करुना + ऐन। मदन + अर्क। राका + ईस। बदरिका + आस्रम। सदा + आसीन। जोगी + इंद्र। बृंदारका + आनंद।

शब्दार्थ—राकेस = (राका = रात्रि उसका ईस) चन्द्रमा। वर्ज = श्रेष्ठ। द्वेष = वैर। मत्सर = डाह। राग = संसारी मोह। प्रत्यूह = विघ्न। भूरि = बड़ा। प्रमदा = स्त्री। कंदर्प = काम। बराक = ग़रीब, छोटा। सार = बल। सर्म (शर्म) = कल्याण, सुख। प्रति = हर एक। आतुर = घबराया हुआ।

[६१]

सकलसुखकंद आनंदवन पुन्यकृत बिंदुमाधव द्वन्द्वविपति हारी।
यस्यांघ्रिपाथोज अज संभु सनकादिसुक सेसमुनिवृंद अलि निलयकारी ॥ १ ॥
अमलमर्कतस्याम कामसतकोटिछबि पीतपट तड़ित इव जलदनीलम्।
अरुनसतपत्रलोचन विलोकनिचारु प्रनतजनसुखद करुनार्द्रसीलम् ॥ २ ॥
कालगजराजमृगराज दनुजेसवनदहनपावक मोहिनिसिदिनेसम्।
चारिभुजचक्रकौमोदकीजलजदर सरसिजोपरि जथा राजहंसम् ॥
मुकुट कुंडल तिलक अलकअलिव्रात इव भ्रुकुटिद्विज अधर वर चारु नासा।
रुचिरसुकपोल दरग्रीव सुखसींव हरि इंदुकरकुंदमिव मधुरहासा ॥
उरसि वनमालसुविसाल नवमंजरीभ्राज श्रीवत्सलांछनमुदारम्।
परमब्रह्मन्य अतिधन्य गतमन्यु अज अमितबल विपुलमहिमा अपारम् ॥ ५ ॥
हार केयूर कर कनक कंकन रतन जटित मनिमेखला कटिप्रदेसम्।
जुगलपदनूपुरामुखर कल हंसवत सुभगसर्वांग सौंदर्यवेषम् ॥ ६ ॥
सकलसौभाग्यसंजुक्तत्रैलोक्यश्री वामदिसि रुचिरवारीसकन्या।
बसत विबुधापगा निकट तट सदन बर नैन निरखंति नरतेऽतिधन्या ॥

अखिलमङ्गलभवन निबिड़संसयसमन दमनब्रजनाटवी कष्टहरता।
विस्वधृत विस्वहित अजित गोतीत सिव विस्वपालनहरनविस्व-
करता ॥ ८ ॥
ज्ञान विज्ञान वैराग्य ऐस्वर्जनिधि सिद्धि अनिमादि दे भूरिदानम्।
ग्रसतभवव्याल अतित्रासतुलसीदास त्राहि श्रीराम उरगारियानम्॥

हे बिन्दुमाधव! तुम सब सुख के मेघ अर्थात् बरसानेवाले हो, आनन्द-वन अर्थात् काशी के पवित्र करनेवाले हो और द्वन्द्व (राग द्वेष आदि) की विपत्ति के हरनेवाले हो। तुम्हारे चरणकमलों में ब्रह्मा, शिव, सनक आदि शुक, शेषनाग और मुनियों के समूह इन्होंने भ्रमररूप होकर अपने अपने स्थान बनाये हैं, (अर्थात् जैसे भौंरे कमल पर रहते हैं ऐसे ही ब्रह्मा आदि तुम्हारे चरण-कमलों में पड़े रहते हैं) ॥१॥ तुम निर्मल मरकत (मणि) के समान श्याम हो, सौ करोड़ कामदेवों के समान तुम्हारी छवि है, पीताम्बर धारण किये (कैसे शोभायमान लगते हो) जैसे नीले मेघ में बिजली होती है। तुम्हारे लाल कमल के से नेत्र हैं, सुन्दर चितवन है, तुम भक्त-जनों को सुख देनेवाले हो और तुम्हारा स्वभाव करुणा से भीग रहा है ॥ २ ॥ तुम कालरूपी गजराज को (फाड़ने के लिए) सिंहरूप हो, दैत्यराजरूपी वन को (भस्म करने के लिए) अग्निरूप हो, और मोहरूपी रात्रि को (दूर करने के लिए) सूर्यरूप हो, चारों भुजाओं में चक्र, कौमोदकी (गदा), कमल, और शंख को धारण किये हो (और हाथ में शंख ऐसा शोभा दे रहा है) जैसे कमल पर राजहंस ॥ ३ ॥ (शिर पर रत्नजटित सुन्दर) मुकुट धारण किये, (कानों में मकराकृत) कुंडल पहिरे और (मस्तक पर केसरिया) तिलक लगाये हो, तुम्हारी अलकें भौंरों के समूह के समान काली हैं और भ्रुकुटी, दाँत और होठ सुन्दर हैं और नाक भी मनोहर है; तुम्हारे सुन्दर (गोल गोल) कपोल, शंख की सी ग्रीवा मानों सुख की सीमा है और हे भगवन्! तुम्हारी मधुर मुसक्यान चन्द्रमा (१) की किरण और कुन्द पुष्प के समान है ॥ ४ ॥ तुम्हारे हृदय पर नई मंजरी की सुन्दर लम्बी वनमाला और सुन्दर श्रीवत्स नाम लांछन शोभायमान है। तुम परम ब्रह्मण्य (अर्थात् ब्राह्मणों का बड़ा आदर करनेवाले) और बड़े धन्य हो (अर्थात् सब संसार तुम्हारी बड़ाई करता है), तुम क्रोधरहित,

---

(१) हास को चन्द्रमा की किरण और कुन्द के पुष्प की उपमा इसलिए दी गई है कि हास का श्वेत वर्णन किया जाता है।

अजन्मा, और अतोल बलवाले हो और तुम्हारी बड़ी अपार महिमा है ॥५॥ तुम (गले में मणियों के) हार, हाथ में सुवर्ण के रत्नजटित बाजू और कंगन पहिरे हो और कमर में मणियों की तागड़ी धारण किये, दोनों चरणों में हंस के समान सुन्दर शब्द करनेवाले झाँझन पहिरे हो और तुम्हारे सब अंग सुन्दर हैं, (और तुम साक्षात्) सुन्दरता का वेश बनाये हो ॥ ६ ॥ और तुम्हारे वाम भाग में सम्पूर्ण सौभाग्य से भरी पूरी और तीनों लोकों की शोभा, सुन्दर लक्ष्मीजी (विराजमान) हैं और तुम गंगाजी के पास किनारे पर सुन्दर मन्दिर में निवास करते हो। जो मनुष्य नेत्रों से तुम्हारे दर्शन करते हैं वे बड़े धन्य हैं ॥ ७ ॥ तुम सब मंगलों के स्थान, कठिन कठिन संदेहों के दूर करनेवाले, पापों के वन के भस्म करनेवाले और कष्ट हरनेवाले हो। तुम संसार को धारण किये हो, संसार के हितकारी और अजित हो (अर्थात् किसी से जीते नहीं जाते हो), तुम इन्द्रियों से परे हो, शिव अर्थात् मंगल करनेवाले और संसार के पालक, संहारक और विश्व के उत्पन्न कर्ता भी हो। ज्ञान, आत्मज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इनकी खान और अणिमादि सिद्धियों के देनेवाले ऐसे बड़े दानी हो (ऐसा जान मैं भी भीख माँगने आया हूँ सो मुझ) तुलसीदास को जो संसाररूपी सर्प लीले जाता है इसका मुझे बड़ा डर है, सो हे श्रीराम! (इससे मेरी) रक्षा करो (कुछ बड़ी बात नहीं है) गरुड़ तुम्हारी सवारी है। (फिर तुम्हारी आज्ञा से गरुड़ के लिए सर्प भक्षण क्या बड़ी बात है। भाव यह है कि संसार के आवागमन से छुटाओ) ॥ ८ ॥

सन्धि-विभाग—यस्य + अंघ्रि। सनक + आदि। करुना + आर्द्र (गीला)। दनुज + ईस। दिन + ईस। सरसिज + उपरि। कुन्दम् + इव। विबुध + आपगा। ते + अति। अजन (पाप) + अटवी (वन)। अनिमा + आदि। उरग + अरि।

शब्दार्थ—कंद = मेघ। अंघ्रि = चरण। सतपत्र = कमल। कौमोदकी = भगवान् की गदा। दर = शंख। अलि = भौंरे। व्रात = समूह। द्विज = दांत। मन्यु = क्रोध। गो = इंद्री।

राग आसावरी।

[६२]

इहै परमफल परम बड़ाई।
नख सिख रुचिर बिंदुमाधव-छबि निरखहिं नयन अघाई ॥ १ ॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु स्यामसुरुचि अधिकाई।
नीलकंज बारिद तमालमनि इन्ह तनुते दुति पाई ॥ २ ॥

मृदुलचरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई ।
अरुननीलपाथोजप्रसव जनु मनिजुत दलसमुदाई ॥ ३ ॥
जातरूप मनिजटित मनोहर नूपुर जन सुखदाई ।
जनु हर उर हरि विविध रूप धरि रहे वरभवन बनाई ॥ ४ ॥
कटितट रटति चारु किंकिनिरव अनुपम वरनि न जाई ।
हेमजलज कलकलिन मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई ॥ ५ ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई ।
कंकन चारु विविधभूषन विधि रचि निज कर मनु लाई ॥ ६ ॥
गजमनिमाल बीचभ्राजत कहि जाति न पदिक निकाई ।
जनु उडुगन-मंडल वारिद पर नवग्रह रची अथाई ॥ ७ ॥
भुजगभोग भुजदंड कंज दर चक्र गदा बनि आई ।
सोभासीव ग्रीव चिबुकाधर वदन अमित छबि छाई ॥ ८ ॥
कुलिस कुंद कुडमल दामिनिदुति दसनन देखि लजाई ।
नासा नैन कपोल लिलत स्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥ ९ ॥
कुंचित कच सिर मुकुट भालपर तिलक कहों समुझाई ।
अलप तड़ित जुगरेख इंदुमहँ रहि तजि चंचलताई ॥ १० ॥
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई ।
बहुमनिजुत गिरि नीलसिखर पर कनक वसन रुचिराई ॥ ११ ॥
वामभाग अनुरागसहित इंदिरा अधिक ललिताई ।
हेमलता जनु तरुतमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई ॥ १२ ॥
सतसारदा सेष स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमंद द्वंद्वरत कहै कौन विधि गाई ॥ १३ ॥

यही बड़ा भारी फल और बड़ी भारी बड़ाई है कि नेत्र नख से शिखा तक सुन्दर बिन्दुमाधवजी की छबि के तृप्त होकर दर्शन करें । (बिन्दुमाधवजी कैसे हैं कि)

निर्मल, किशोर अर्थात् १६ वर्ष की अवस्थावाले हैं और जिनके पुष्ट और सुन्दर श्याम शरीर की बड़ी अधिक छबि है (भाव—ऐसा मन में आता है कि दर्शन ही करते रहें)। नीले कमल, मेघ, तमाल वृक्ष और नीलमणि ने उन्हीं के शरीर से शोभा पाई है (अर्थात् नील कमल में चिकनापन, श्यामता और खिलाव, मेघ में गम्भीरता और श्यामता, तमाल वृक्ष में श्यामता लिये प्रकाश और नीलमणि में झलक उन्हीं भगवान् के शरीर से आई है) ॥ २ ॥ कोमल चरणों में सुन्दर (वज्र, अंकुश कमल आदि के) चिह्न हैं, पदज अर्थात् उँगली, अँगूठों और नखों की ऐसी बड़ी अनोखी उपमा है कि मानो लाल और नीले कमलों से मणि सहित पत्तों का समूह उत्पन्न हुआ है (इसका भाव यह है कि भगवान् के चरण ऊपर की ओर श्याम और नीचे की ओर लाल कमल के समान हैं उन पर उँगलियों के साथ नखों की ऐसी शोभा हो रही है मानों मणि-जटित लाल नीले पत्ते निकले हैं। कमल के पत्ते मणियुक्त नहीं होते इसी से अनोखी उपमा है) ॥ ३ ॥ सोने के मणि-जटित मनहरण झाँझन (धारण किये हैं कि जो) भक्तजनों को सुख देनेवाले हैं। (अब यहाँ कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) मानों शिवजी के डर के मारे हारे अर्थात् कामदेव ने अनेक रूप धरकर उनके चरणों का आश्रय लिया है ॥ ४ ॥ कटि के पास सुन्दर तागड़ी शब्द रट रही है उसकी उपमा वर्णन नहीं की जा सकती मानों सुवर्ण के कमल की सुन्दर कलियों के बीच में भौंरों का सुन्दर शब्द हो रहा है ॥ ५ ॥ चौड़ी छाती में बड़ा सुन्दर भृगु-चरण का चिह्न है कि जिससे छाती की कोमलता प्रकट होती है। (भाव—ऐसी कोमल कि भृगुजी ने चरण मारा सो चिह्न उखड़ आया।) कंकण आदि अनेक भाँति के आभूषण (हाथों में) ऐसे सुन्दर हैं मानों ब्रह्मा ने अपने हाथ से मन लगा कर बनाये हैं ॥ ६ ॥ और गजमुक्ताओं की माला के बीच में पदिक की (अर्थात् रंग रंग के मणि-जटित चौकोन रत्नों की) ऐसी शोभा हो रही है कि उनकी सुन्दरता कही नहीं जाती। मानों मेघ के ऊपर तारागणों के मंडल के बीच में (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु इन) नवग्रहों ने अपनी सभा बनाई है। (भाव यह है कि भगवान् के मेघ-तुल्य श्याम शरीर पर मुक्ताओं की माला हुई तारागण का मण्डल, उसके बीच बीच में जो मणि पुह रहे हैं सोई मानों नवग्रह हैं) ॥ ७ ॥ सर्प के शरीर के समान जिनके भुजदंड हैं (अर्थात् चिकने और ऊपर से मोटे नीचे से पतले) उनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म की शोभा हो रही है। जिनकी ग्रीवा शोभा की सीमा है (अर्थात् इससे बढ़ कर सुन्दर गरदन नहीं

हो सकती) और ठोड़ी, होठ, और मुख इनकी असीम छवि झलक रही है ॥ ८ ॥ हीरा, कुन्द की कली और बिजली इनकी झलक दाँतों को देख कर लजाती है (अर्थात् उजलापन देख कर हीरा और आकार देखकर कुन्द की कली और चमक देख कर बिजली) और जिनके नाक, नेत्र, गाल, तथा सुन्दर कुण्डलों से सजे हुए कान और भौंहें—ये मुझे अच्छे लगते हैं ॥ ९ ॥ उनके शिर पर कुंचित नाम टेढ़े (अर्थात् घूँघरवाले) बाल हैं, वे जो मुकुट पहिरे हैं और भाल पर जो तिलक लगाये हैं उसे समझा कर कहता हूँ—मानों थोड़ी बिजली की दो रेखा अपनी चंचलता छोड़ कर चन्द्रमा में वास कर रही हैं ॥ १० ॥ और निर्मल, अनुपम जो पीताम्बर धारण किये हैं उसकी उपमा हृदय में नहीं समाती । मानों बहुत से मणियों से युक्त नील पर्वत के शिखर पर सोने के वस्त्र की सुन्दरता हो (भाव--श्याम पर्वत के समान शरीर हुआ, मणियों के समान अनेक भूषण हुए और सुनहरे वस्त्र के समान पीताम्बर हुआ) ॥ ११ ॥ वाम भाग में प्रेम स हित लक्ष्मीजो (बैठो) हैं उनकी सुन्दरता इतनी अधिक है मानों तमाल के वृक्ष के पास सोने की लता नील वस्त्र ओढ़े बैठी हो ॥ १ ॥ सैकड़ों सरस्वती, शेषनाग और वेद मिल कर जो (भगवान की) शोभा कहें तो पार न पावें फिर तुलसीदास, जो मंद-बुद्धि है और द्वंद्व (काम, क्रोध, आदि) में जिसकी प्रोति है सो किस प्रकार गाकर कहे ॥ १३ ॥

सन्धि-विभाग—चिबुक (ठोड़ी) + अधर (होठ) ।

शब्दार्थ—बिसद = निर्मल । किसोर = १६ वर्ष का । हेम, जातरूप = सोना । कल = सुन्दर । भोग = सर्पशरीर । कुड्मल = कली । दर = शंख । दसन = दांत । स्रुति = कान । इंदिरा = लक्ष्मी । निचोल = वस्त्र । कच = बाल ।

राग जयतिश्री ।

[६३]

मन इतनोई या तनु को परमफलु ।
सब अँगसुभग बिंदुमाधव छबि तजि सुभाउ अवलोकु एकु पलु ॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु नख दुति हृदयतिमिरहारी ।
कुलिस केतु जव जलज रेखवर अंकुस मन गज वसकारी ॥२॥

कनक जटित मनिनूपुरमेखल कटितट रटति मधुरबानी ।
त्रिवली उदर गँभीर नाभिसर जहँ उपजे बिरंचिज्ञानी ॥ ३ ॥
उर वनमाल पदिक अति सोभित विप्रचरन चित कहँ करषै ।
स्याम तामरसदामबरनवपु पीतवसन सोभा वरषै ॥ ४ ॥
कर कंकन केयूर मनोहर देति मोद मुद्रिक न्यारी ।
गदा कंज दर चारु चक्रधर नागसुंडसम भुजचारी ॥ ५ ॥
कंबुग्रीव छबिसीँव चिबुक द्विज अधर अरुन उन्नत नासा ।
नवराजीवनैन ससि आनन सेवकसुखद बिसदहासा ॥ ६ ॥
रुचिर कपोल स्रवन कुंडल सिर मुकुट सुतिलक भाल भ्राजै ।
ललित भ्रुकुटि सुंदर चितवनि कच निरखि मधुपअवली लाजै ॥ ७ ॥
रूपसीलगुनखानि वाम दिसि सिंधुसुता रत पदसेवा ।
जाकी कृपाकटाच्छ चहत सिव विधि मुनि मनुज दनुज देवा ॥ ८ ॥
तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति एहि सरूप अटकै ।
नाहित दीन मलीन हीनसुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥ ९ ॥

हे मन ! इस शरीर का बड़ा फल इतना ही है कि जिनके (नख से सिख तक) सब अंग सुन्दर हैं उन बिन्दुमाधव की छबि का एक पल अपने (चंचल) स्वभाव को छोड़ कर (अर्थात् स्थिर होकर, प्रेम से) दर्शन कर ॥ १ ॥ नये खिले लाल कमल के समान जिनके कोमल चरण हैं और नखों की झलक हृदय के अंधकार को हरनेवाली है । और (चरणों में) वज्र, ध्वजा, जव, और कमल इनकी रेखारूपी सुन्दर अंकुश मनरूपी हाथी को वश में करनेवाला है ॥ २ ॥ (चरणों में) सोने की मणि-जटित झाँझन पहिरे और कमर में तागड़ी मधुर मधुर वाणी रटती है (अर्थात् मधुर मधुर बज रही है) उदर पर तीन रेखायें (पड़ी) हैं और सर समान गहरी नाभि है कि ज ाँ से ब्रह्मा सरीखे ज्ञानी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ छाती पर पदिक (अर्थात् मणिजटित रत्न-माला) और वनमाला अत्यन्त शोभायमान हैं और (छाती में) भृगुजी का चरण (भक्तों के) चित्त को खींचता (अर्थात् चुराये लेता) है । नीले कमल के गुच्छे के समान शरीर का वर्ण है और उस पर पीताम्बर शोभा बरसा रहा है ॥ ४ ॥ हाथ में मन को

हरनेवाले कंगन और बाजू-बन्द हैं और अँगूठी जुदा ही आनन्द दे रही है। सुन्दर शंख, चक्र, गदा, पद्म को हाथी की सूँड़ के समान अपनी चारों भुजाओं में धारण किये हैं ॥ ५ ॥ छवि की सीमा ऐसी, शंख की सी ग्रीवा है और ठोड़ी, दाँत, लाल होठ, और ऊँची नाक है। नये कमल समान नेत्र, चन्द्रमा के समान मुख और निर्मल (मृदु) मुसक्यानि भक्तों को सुख देनेवाली है ॥ ६ ॥ जिनके सुन्दर (गोल गोल) गाल, कानों में कुण्डल, शिर पर मुकुट और भाल पर सुन्दर तिलक चमक रहा है। सुन्दर भौंहें और सुन्दर चितवन हैं और जिनके बालों को देख कर भौंरों की पाँति लजाती है ॥ ७ ॥ जो रूप, शील और गुण की खान हैं और जिनके वाम ओर लक्ष्मीजी पद-सेवा में लग रही हैं। जिनके कृपा-कटाक्ष को शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता चाहते हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदास का संसाररूपी भय तब मिटे कि जब बुद्धि इस स्वरूप में अटके (प्रेमपूर्वक लगे) । नहीं तो दीन, मलीन और सुखहीन हुआ करोड़ों जन्म तक यों हीं घूमता भटकता फिरेगा (अर्थात् संसार के आवागमन से नहीं छूटेगा) ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—सर = ताल। विप्र = भृगुजी। दर = शंख। नाग = हाथी। द्विज = दाँत (दो बार उगते हैं)।

राग वसन्त ।

[६४]

वन्दों रघुपति करुनानिधान। जाते छूटै भवभेदज्ञान ॥ १ ॥
रघुवंस कुमुदसुखप्रदनिसेस। सेवित पदपंकज अजमहेस ॥ २ ॥
निजभक्तहृदयपाथोजभृंग। लावन्यवपुषअगनितअनंग ॥ ३ ॥
अतिप्रबलमोहतममारतंड। अज्ञानगहन पावकप्रचंड ॥ ४ ॥
अभिमानसिंधुकुंभजउदार। सुररंजन भंजन भूमिभार ॥ ५ ॥
रागादिसर्पगनपन्नगारि। कंदर्पनागमृगपति मुरारि ॥ ६ ॥
भवजलधिपोतचरनारविंद। जानकीरमन आनंदकंद ॥ ७ ॥
हनुमंतप्रेमवापीमराल। निःकाम कामधुक गो दयाल ॥ ८ ॥
त्रैलोकतिलक गुनगहनराम। कह तुलसिदास विस्रामधाम ॥ ९ ॥

मैं करुणानिधान रघुनाथजी को प्रणाम करता हूँ कि जिससे संसार में भेदज्ञान छूट जाता है ॥ १ ॥ जो रघुवंशरूपी कुमुद को चन्द्रमा के समान सुख देनेवाले (अर्थात्

खिलानेवाले) हैं और ब्रह्मा और शिव जिनके चरण-कमलों की सेवा करते हैं ॥ २ ॥ जो अपने भक्तों के हृदयरूपी कमल को भ्रमररूप हैं (अर्थात् जैसे रस पीने के लिए कमल पर भौंरा रहता है, ऐसे ही भक्त के हृदय में रामजी वास करते हैं) और जिनके अंग की शोभा अनगिनत कामदेवों की सी है ॥ ३ ॥ जो बड़े प्रबल मोहरूपी अंधकार को (मिटाने के लिए) सूर्यरूप हैं और अज्ञानरूपी वन को (भस्म करने के लिए) धधकती हुई अग्निरूप हैं ॥ ४ ॥ जो अभिमानरूपी समुद्र के (सोखने के) लिए उदार अगस्त्यरूप हैं, और देवताओं को सुख के दाता और भूमि के भार (राक्षसादि) के नाशक हैं ॥ ५ ॥ राग (विषय आदि) रूपी सर्पों के समूह को (भक्षण करने के लिए) गरुड़-रूप हैं और कामरूपी हाथी को सिंह-रूप तथा मुर दैत्य के शत्रु हैं ॥ ६ ॥ संसाररूपी समुद्र के लिए जिनके चरण-कमल जहाज़-रूप हैं ऐसे वे जानकीपति आनन्द बरसानेवाले हैं ॥ ७ ॥ हनूमान्‌जी के प्रेमरूपी बावड़ी में हंस रूप होकर (सदा वास करनेवाले) और कामनारहित भक्तों के लिए कामधेनुरूप और दया करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ तीनों लोकों के तिलक अर्थात् शिरोमणि, गुणों के वन ऐसे (राम) विश्राम के धाम हैं यह तुलसीदास कहता है ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—भेदज्ञान = चर अचर में ऊँच नीच का भेद समझना । निसेस = (निसा + ईस) निशा का स्वामी, चन्द्र । पाथोज = (पाथ नाम जल उससे उत्पन्न) कमल । मारतंड = सूर्य । अनंग = (जिसके शरीर नहीं) कामदेव । पन्नगारि = (पन्नग = सर्प + अरि = वैरी) गरुड़ । पोत = नाव । कंद = मेघ ।

राग भैरव ।

[६५]

राम राम रमु राम राम रटु राम राम जपु जीहा ।
रामनाम नवनेह मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥ १ ॥
सब साधनफल कूप सरित सर सागरसलिलनिरासा ।
रामनामरति स्वातिसुधासुभसीकर प्रेमपियासा ॥ २ ॥
गरजि तरजि पाषान परुष पवि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै ॥ ३ ॥
राम नामगति रामनाममति रामनामअनुरागी ।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे तेइ तिभुवन गनियत बड़भागी ॥ ४ ॥

एकअंग मग अगम गवन कर विलँबु न छन छन छाहें।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहें॥ ५॥

गुसाईंजी अपनी जिह्वा और मन से कहते हैं:—

हे जीभ! तू राम राम में रमण कर, राम राम रट और राम राम ही जप। और हे मन! (तू भी) राम नाम में नवीन स्नेहरूपी मेघ के लिए हठ करके पपीहा हो (अर्थात् सबकी आशा-भरोसा छोड़ एक रामजी से प्रेम कर)॥ १॥ (राम साधन को छोड़ अन्य) सब साधनों का फल (तुझे ऐसा है कि जैसे पपीहे को) कुआँ, नदी, तालाब, समुद्र का जल। सो जैसे वह इनकी आशा छोड़कर स्वाति के जल की सुन्दर एक बूँद के प्रेम का प्यासा रहता है ऐसे ही तू (सब साधनों को छोड़ कर) राम नाम में प्रीति कर॥ २॥ (देखो चातक के प्रेम को देख मेघ) गर्जता है और तर्जता है (अर्थात् डाटता है कि हमसे प्रीति मत कर और जब डाटने से भी वह नहीं मानता है तब) कड़े कड़े ओले बरसाता है, (जब ओले से भी नहीं मानता है तब) वज्र गिराता है (फिर भी न मानने पर) प्रीति को परख कर जी में जान लेता है (कि मेरे इतना करने पर भी) इसके हृदय में अधिक अधिक प्रेम उपजता है और (जब ऐसे प्रेम की) पूरी हद को पहचान लेता है (तब स्वाति की बूँद बरसाता है। ऐसे ही तू भगवान् की प्रीति कर। वे क्रोध करेंगे, तेरा चित्त उचटावेंगे, निर्धन और रोगी करेंगे, स्त्री, पुत्रादि का वियोग और दुःख देंगे। जब इतना करने पर भी तू प्रेम करता जायगा तब तेरी प्रीति पहचान तुझे स्वाति बूँद के समान मोक्ष देंगे)॥ ३॥ राम नाम की ही शरण (१) रख (अर्थात् जो होगा सो इसी से होगा), राम नाम में ही बुद्धि को स्थिर कर (अन्य देवताओं में बुद्धि लगाने से कुछ काम नहीं बनेगा) और राम नाम में ही प्रेम कर (अर्थात् उसका ही स्मरण करता रह क्योंकि ऐसा करने से) जो हो गये हैं, जो मौजूद हैं और जो आगे होंगे वे ही त्रिलोकी में बड़भागी गिने जाने योग्य हैं॥ ४॥ परन्तु एकांगी (२) (अर्थात् चातक के समान दृढ़ होकर एक राम नाम में ही प्रीति करना यह) मार्ग बड़ा कठिन है (प्रथम तो अन्य देवताओं के पूजन का फल और संसार की झूँठी सिद्धियों का फल सुनकर उसमें जाना ही दुर्लभ है और) जो तू चला भी जाय तो

---

(१) सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सरलार्थ।

(२) अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। भाव—जो अन्य को छोड़कर मेरी ही उपासना करते हैं उन अपने भक्तों को मैं योग-क्षेम देता हूँ। अर्थात् सब भाँति उनके मनोरथ पूर्ण करता हूँ।

छिन छिन में छाया के सहारे से देर मत कर (अर्थात् जैसे जब मार्ग में कड़ी धूप होती है तब मनुष्य वृक्षों की छाया में ठहरता ठहरता जाता है ऐसे ही लोक परलोक के लिए जितने पूजा, पाठ, जप, तप, यज्ञादि, साधन हैं और स्त्री, पुत्र, धन आदि का सुख है यही ठहरी सुन्दर हरे हरे वृक्षों की छाया, इसका सहारा मत ले, नहीं तो देर हो जायगी अर्थात् आयु पूरी हो जायगी। बीच में ही मर कर रह जायगा और जो राम का ही केवल भरोसा करेगा तो संसाररूपी कठिन मार्ग को काट मोक्ष पद पर पहुँच जायगा)। हे तुलसीदास ! अपना भला तो (भगवान् में) अपनी ओर से निरुपाधि (अर्थात् संसार में जितने कष्ट और चिंता हैं उनमें से जिसमें एक भी न हो ऐसा) प्रेम निबाहे से होगा॥ ५॥

शब्दार्थ—सुधा—जल। लावण्य=सुन्दरता। मारतंड =सूर्य। पन्नगारि (पन्नग=सर्प+अरि=शत्रु)=गरुड़। कंदर्प=कामदेव।

[६६]

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भवनीरनिधि नाम निजु नाव रे॥ १॥
एकही साधन सब रिधि सिधि साधि रे।
ग्रसे कलिरोग जोग संजम समाधि रे॥ २॥
भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो वाम रे।
रामनामही सों अंत सबही सों काम रे॥ ३॥
जग नभवाटिका रही है फल फूलि रे।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे॥ ४॥
रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्याग माँगै कूर कौर रे॥ ५॥

अरे बावरे मन ! राम जप, राम जप, राम जप। भयानक संसाररूपी समुद्र को (पार करने के लिए राम का) नाम ही अपनी नाव है (अर्थात् जब चाहो तब बिना भाड़ा दिये पार चले जाओ)॥ १॥ अरे ! एक (राम नाम के) ही साधन से सब ऋद्धि-सिद्धियों को, साध अर्थात् प्राप्त कर क्योंकि योग, संयम और समाधि को कलियुगरूपी रोग ने ग्रस लिया है (अर्थात् कलि में विषयी जीवों से आलस्य के

कारण योग आदि कठिन साधन नहीं हो सकते) ॥ २ ॥ जो भला है, या बुरा है जो सीधा है या उलटा है अंत में सबको राम नाम ही से काम है । (अर्थात् कैसा ही आदमी हो मरण-समय जो आता है उसे यह उपदेश करता है कि राम राम जप और फिर मरने पर भी लोग राम राम सत्य कहते हुए उसे श्मशान को ले जाते हैं) ॥ ३ ॥ (देखो बगीचा भूमि पर होता है; आकाश में नहीं होता । कोई कहे भी तो सर्वथा झूठ है सो ही कहते हैं) अरे ! यह संसार (ऐसा है कि जैसे) आकाश में बगीची फल-फूल रही है-(अर्थात् झूठा है)-और धुएँ कैसे धौरहर (महल) हैं (अर्थात् जैसे गीले ईंधन में अग्नि जलाने से जो धुआँ उठता है उसमें भाँति भाँति के महल बनते और बिगड़ते चले जाते हैं ऐसे ही संसार में धन, धाम, स्त्री, पुत्रादि सब झूठे हैं) इन्हें देख कर तू मत भूल (अर्थात् इनमें प्रीति मत कर) ॥ ४ ॥ अरे ! जो तू राम नाम को छोड़ और (कर्म-योग, ज्ञान, यज्ञ आदि) का भरोसा करेगा तो हे तुलसी ! परोसे हुए (अन्न) को त्याग कुत्ते के समान टुकड़ा टुकड़ा माँगता फिरेगा (सो उससे क्या पेट भरेगा) ॥ ५ ॥

[६७]

रामराम जपु जिय सदा सानुराग रे ।
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे ॥ १ ॥
रामसुमिरन सब बिधिही को राज रे ।
राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे ॥ २ ॥
रामनाम महामनि फनि जगजाल रे ।
मनि लिये फनि जियै व्याकुल बिहाल रे ॥ ३ ॥
रामनाम कामतरु देत फल चारि रे ।
कहत पुरान बेद पंडित पुरारि रे ॥ ४ ॥
रामनाम पेम परमारथ को सारु रे ।
रामनाम तुलसी को जीवन आधारु रे ॥ ५ ॥

हे मन ! सदा प्रेम से राम राम का जप कर । कलियुग में (१) विराग, योग, यज्ञ

---

(१) जैसा कहा है—"रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन् मुक्तिमुपैति जन्तुः ।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥ १ ॥

श्रौर तप दान नहीं है (क्योंकि लोभ छोड़ने से विराग होगा, सो कलि में लोभ छूटेगा नहीं; योग, यज्ञ, तप में मन श्रौर इन्द्रियाँ स्थिर करनी पड़ेंगी सो काम बड़ा बली है वह यह भी न होने देगा) ॥ १ ॥ अरे! राम नाम का सुमरन करना सब साधनों का राजा है श्रौर राम नाम का भूलना सब निषेधों का सिरताज है (फिर बहुतेरा चाहो कोई पदार्थ नहीं मिल सकता) ॥ २ ॥ अरे! राम का नाम तो महामणि है (जो सर्प के सिर पर होती है) श्रौर यह संसार का जाल (दुख सुख, संयोग वियोगादि) सर्प है। मणि ले लेने से सर्प व्याकुल होकर बुरे हाल से जीता है (भाव यह है कि जिसने राम नाम महामणि नहीं लिया श्रौर संसार को सञ्चा माना उसे जगत्‌रूपी सर्प ने डस लिया श्रौर जिसने संसार को झूँठा माना श्रौर राम नामरूपी महामणि ले लिया उसका जगजालरूप सर्प अवश्य मरेगा) ॥ ३ ॥ अरे! (स्वर्ग में कल्प-वृक्ष तो धर्म, अर्थ, काम, तीन ही फल देता है श्रौर) राम नामरूपी कल्प-वृक्ष (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चार फल देता है यह बात वेद, पुराण, पण्डित श्रौर शिवजी (१) कहते हैं ॥४॥ अरे! राम नाम में प्रेम करना परमार्थ का सार है (अर्थात् मुक्ति का दाता है) श्रौर राम नाम तुलसीदास के जीवन का आधार है ॥५॥

शब्दार्थ—जाग = यज्ञ। त्याग = दान। फनि = सर्प। पुरारि = (पुर दैत्य के शत्रु) शिव।

[६८]

राम राम राम जीय जौलों तू न जपि है।
तौलों जहाँ जैहै तहाँ तिहुँ ताप तपि है॥ १ ॥
सुरसरि तीर विनु नीर दुख पाइ है।
सुरतरुतर तोहिं दुख दारिद सताइ है॥ २ ॥
जागत वागत सपने न सुख सोइ है।
जनम जनम जुग जुग जग रोइ है॥ ३ ॥
छूटिवे के जतन विसेष बाँध्यो जाहिगो।
ह्वैहै विष भोजन जो सुधा सानि खाहिगो॥ ४ ॥

(१) रामनाम परंब्रह्म सर्वदेवप्रपूजितम्। महेश एव जानाति नान्यो जानाति वै मुने॥

तुलसी तिलोक तिहुँ काल तोसे दीन को।
रामनामही की गति जैसे जल मीन को ॥ ५ ॥

हे जीव! जब तक तू जीभ से राम राम नहीं जपेगा तब तक (स्वर्ग आदि में), तू कहीं जा, तीनों तापों से तपता ही रहेगा ॥ १ ॥ गंगाजी के किनारे (जाने पर भी) बिना पानी के दुःख पावेगा (भाव—जब रोगी होगा तब राम-विमुख जान तुझे कोई पानी न देगा) और कल्पवृक्ष के नीचे भी तुझे दुःख दरिद्र सतावेगा ॥ २ ॥ जागते फिरते भी सुख न होगा और सुपने में भी सुख से नहीं सोवेगा और युग युग में जन्म जन्म कर संसार में रोवेगा (अर्थात् बिना राम नाम के तेरा दुःख से पीछा नहीं छुटेगा) ॥ ३ ॥ और छूटने के उपाय (यज्ञ, योग, जप, तप आदि) करेगा तो (राम-विमुख होने से) और भी अधिक बाँधा जायगा (जैसे शिवजी से विमुख होने पर दक्ष की दशा हुई थी) और जो अमृत सान कर खायगा तो भी भोजन विष हो जायगा ॥ ४ ॥ हे तुलसी! तीनों लोक और तीनों काल में तुझ सरीखे ग़रीब को राम नाम की ही गति ऐसे है कि जैसे मछली को जल की होती है ॥ ५ ॥

[६९]

सुमिरु सनेह सों तु नाम रामराय को।
संबर निसंबरी को सखा असहाय को ॥ १ ॥
भाग है अभागे हू को गुन गुनहीन को।
गाहकु गरीब को दयालु दानि दीन को ॥ २ ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है वेद साखि है।
पाँगुरे को हाथ पाँय आँधरे के आँखि है ॥ ३ ॥
माय बाप भूखे को अधार निराधार को।
सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को ॥ ४ ॥
पतितपावन रामनाम सो न दूसरो।
सुमिरें सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ५ ॥

(हे जीव!) तू स्नेह से राजा रामचन्द्रजी के नाम को सुमिर। (जो नाम) जिसके पास (मार्ग के लिए) कलेवा नहीं उसके लिए कलेवा अथवा राह-खर्च है। (देखो,

साधु-सन्त, देश-परदेश फिरते हैं और राम के नाम से ही उन्हें खाने को मिलता है) और जिसका (पिता-माता आदि) सहायक नहीं उसका (राम नाम) सखा है (अर्थात् राम नाम लेने से सब उसकी मित्र के समान सहायता करते हैं) ॥ १ ॥ अभागे का भी भाग है (अर्थात् नाम स्मरण करनेवाले कुछ व्यापार नहीं करते तिस पर भी सम्पत्ति उनके पीछे लगी फिरती है) और जो (विद्या आदि) गुण से रहित हैं उनका (राम नाम) गुण है (अर्थात् उनमें आपही गुण आ जाते हैं), वह ग़रीब का गाहक है (अर्थात् जिसके पास यज्ञादि के लिए दाम नहीं वह भी इसे जप कर यज्ञादि का फल पा लेता), और दीन के लिए दयावान् दानी है (अर्थात् नाम लेते ही दीन के दुःख का नाश हो जाता है और उसे सुख मिलता है) ॥ २ ॥ जो अकुलीन हैं (अर्थात् जिनका कुल अच्छा नहीं है) उनका कुल है (अर्थात् नाम के प्रभाव से वे बड़े कुलवन्त हो जाते हैं जैसे वाल्मीकिजी ब्रह्मर्षि हो गये) यह सुना है और वेद भी साखी है । और जो लूले हैं उनका (राम नाम) हाथ पाँय है (अर्थात् यज्ञ आदि करके स्वर्ग तो जा नहीं सकते, वे राम नाम के सहारे ही स्वर्ग पाते हैं) और अंधे को आँख के समान है (अर्थात् आँख की जोत ठीक हो तो थोड़ी दूर की वस्तु देखे और नाम के प्रभाव से परमेश्वर का रूप तक सूझ जाता है) ॥ ३ ॥ भूखे का माँ-बाप है (अर्थात् भूखा राम के नाम से माँग कर पेट भर लेता है) और जो निराधार है (अर्थात् जिसका कोई सहारा नहीं) उसका आधार है (अर्थात् स्मरण मात्र से संकट दूर हो जाता है जैसे गजेन्द्र को किसका सहारा था ? वह नाम लेने से ही तर गया) वह (राम नाम) संसाररूपी सागर का पुल है (अर्थात् जिसके पास संसाररूपी भवसागर से पार होने के लिए पुल की उतराई का यज्ञादिरूपी पैसा नहीं वह भी राम नाम लेकर पार हो जाता है) और सुख का सार (जो मोक्ष) उसका कारण है (अर्थात् बिना राम नाम के मुक्ति नहीं होती) ॥ ४ ॥ राम नाम के सिवा पतित को पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है क्योंकि तुलसी सरीखा ऊसरा (कि जिसमें धर्म, कर्मरूप का तिनका भी नहीं उगता था सो राम नाम का) सुमिरन करके सुन्दर भूमि हो गया (अर्थात् अब तो उसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि सबकी बड़ी बड़ी खेतियाँ लहलहाने लगीं) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संवर = कलेवा। निसंवरी = जिसके पास संवर न हो। ऊसर = धरती जिसमें कुछ पैदा न हो।

[७०]

भलो भलीभाँति है जो मेरे कहे लागि है ।
मन रामनाम सों सुभाय अनुरागि है ॥ १ ॥

राम नाम को प्रभाउ जानु जूड़ी आगि है ।
सहित सहाइ कलिकाल भीरु भागि है ॥ २ ॥
राम नाम सों विराग जोग राग जागि है ।
वाम विधि भालहू न कर्म दाग दागि है ॥ ३ ॥
राम नाम मोदक सनेह सुधा पागि है ।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागि है ॥ ४ ॥
रामनाम कामतरु जोई जोइ माँगि है ।
तुलसीदास स्वारथ परमारथौ न खाँगि है ॥ ५ ॥

हे मन ! अच्छी तरह भला होगा जो तू मेरे कहे पर चलेगा और राम नाम से स्वभाव से प्रेम करेगा ॥ १ ॥ राम नाम का प्रभाव जाड़े को अग्नि है ऐसा जान (अर्थात् जैसे अग्नि के सामने जाड़ा नहीं ठहर सकता ऐसे ही राम नाम के प्रभाव से) कलिकाल अपने सहायक (काम-क्रोध, लोभ, मोह आदि की फौज) समेत डरकर भाग जायगा ॥ २ ॥ राम नाम से वैराग्य, योग और अनुराग आप ही (चित्त में) जागेंगे (और जब उनके प्रभाव से पापों का नाश हो जायगा तब) फिर वाम विधाता भी माथे को कर्मरूपी दाग से नहीं दाग सकेगा । (भाव—आप-कर्मानुसार माथे में बुरा फल नहीं लिखेगा) ॥ ३ ॥ राम नामरूपी लड्डू को जो प्रेमरूपी अमृत की चाशनी में पागेगा तो उसे पाकर तू अघा जायगा और घर घर नहीं चिल्लाता फिरेगा (अर्थात् प्रेम से राम नाम जप, उससे तुझे संतोष हो जायगा फिर अन्य देवता की शरण नहीं जाना पड़ेगा) ॥ ४ ॥ राम नाम कल्पवृक्ष है इससे जो तू माँगेगा तो हे तुलसीदास, तुझे स्वारथ और परमारथ की कमी नहीं रहेगी (अर्थात् तुझे दोनों मिलेंगे) ॥ ५ ॥

[७१]

ऐसेउ साहब की सेवा तूँ होत चोरु रे ।
आपनी न बूझि ना कहै की राडरोर रे ॥ १ ॥
मुनि मन अगमु सुगमु माइ बापु सो ।
कृपासिंधु सहजसखा सनेही आपु सो ॥ २ ॥

लोक वेद विदित बड़ो न रघुनाथ सो ।
सब दिन सब देस सबही के साथ सो ॥ ३ ॥
स्वामी सर्वज्ञ सों चले न चोरी चार की ।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की ॥ ४ ॥
काय न कलेसु लेसु लेत मानि मन की ।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥ ५ ॥
रीझे वस होत खीझे देत निज धामु रे ।
फलत सकल फल कामतरु नामु रे ॥ ६ ॥
बेंचे खोटो दामु न मिलै न राखे कामु रे ।
सोऊ तुलसी निवाजै ऐसो राजा रामु रे ॥ ७ ॥

ऐसे भी स्वामी की सेवा से तू चोर होता है (अर्थात् छिपता फिरता है) । तुझे न तो अपनी समझ है और न दूसरे के कहे का (खयाल) है सो तू किसी काम का नहीं है, पत्थर का रोड़ा है ॥ १ ॥ जो (राम) मुनियों के मन को भी कठिन (अर्थात् जहाँ मुनियों के मन भी न जा सकें) सो अपने माँ-बाप को सहज में प्राप्त हुए, वे कृपासिंधु स्वभाव से ही सखा और अपने आप स्नेह करनेवाले हैं ॥२॥ लोक और वेद में विदित है कि रघुनाथजी से बड़ा कोई नहीं है और वे सब दिन, सब देश में, सबके ही साथ रहते हैं ॥३॥ स्वामी तो सर्वज्ञ (अर्थात् अन्तःकरण की जाननेवाले) हैं उनसे सेवक की चोरी नहीं चलेगी । इस दरबार की यही रीति है कि यहाँ प्रीति की पहचान की जाती है ॥ ४ ॥ (किसी की सेवा करने में तो बड़ा क्लेश होता है परन्तु रामजी की सेवा में) शरीर को लेशमात्र भी क्लेश नहीं होता और वे मन की (प्रीति) मान लेते हैं । (भाव—कपट छोड़ कर प्रीति कर—इतनी ही सेवा है । जो कहो कि सेवा करने से मिलेगा क्या ! तहाँ कहते हैं कि) स्मरण करते ही वे सकुच के साथ भक्तजन की रुचि समझ लेते हैं (भाव—जो भक्त की इच्छा हो सो देते हैं और वे देकर सकुचाते हैं कि हमने इसे कुछ नहीं दिया) ॥५॥ जिस पर रीझते हैं उसके तो वश हो जाते हैं और जिस पर कोप करते हैं उसे अपना धाम देते हैं (जैसे हनूमान पर रीझे तो उन्हें अपना दास बनाकर उनके वश हुए और रावण पर कोपे तो मारकर उसे अपना धाम दिया) । उनका नाम कल्प-

वृक्ष है जिसमें सब तरह के फल फलते हैं (भाव—स्वर्ग में जो कल्प-वृक्ष है वह तीन ही फल देता है; मोक्ष नहीं देता पर यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों देता है) । ६ ।। (अब उनकी कृपालुता का प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि) खोटे मनुष्य को बेचो तो दाम न मिले (क्योंकि निठल्ले को लेकर कोई क्या करे) और रक्खो तो कुछ काम न करे (और खाने को माँगे-ऐसे) इस तुलसी को भी उन्होंने निहाल कर दिया । ऐसे राजा रामचन्द्रजी हैं ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—चार = नौकर । राड़ = बेकाम का । रोर = (रोड़ा) पत्थर का टुकड़ा ।

[७२]

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।
हौंतो साँई द्रोही पै सेवकहितु साँई ॥ १ ॥
राम सों बड़ो है कौन मोसों कौनु छोटो ।
राम सों खरो खसम मोसों खल खोटो ॥ २ ॥
लोगु कहै राम को गुलाम हौं कहावों ।
एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावों ॥ ३ ॥
पाथ माथे चढ़े त्रिन तुलसी ज्यौं नीचो ।
बोरत न वारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ ४ ॥

रघुनाथजी ने अपनी भलाई से मेरा भला कर दिया । मैं तो स्वामी से द्रोह करने-वाला हूँ परन्तु स्वामी सेवक के हितकारी ही हैं ॥ १ ॥ रामजी सरीखा तो बड़ा कौन है और मेरे समान छोटा कौन है और रामजी सरीखा स्वामी कौन है और मेरे समान दुष्ट और खोटा कौन है ॥ २ ॥ तो भी संसार मुझे राम का गुलाम कहता है और मैं भी (राम नामी वेष बना कर) कहलवाता हूँ (भाव—नीच होकर अच्छा बनता हूँ यह रामजी का बड़ा अपराध कर रहा हूँ) पर इतना बड़ा अपराध होने पर भी (रामजी का) मन मुझसे नहीं फिरा ॥ ३ ॥ हे तुलसी ! जैसे तृण बड़ा नीच होने पर भी जल के माथे पर चढ़ता है (अर्थात् उसके ऊपर तैरा करता है) परन्तु जल उसे अपना ही सींचा हुआ जानकर नहीं डुबोता है (अर्थात् मैंने तो इसे सींचकर बड़ा ही किया, मैं इसे क्या डुबोऊँ—ऐसे ही रामजी समझते हैं) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भौ = हुआ । बावों (बायाँ) = टेढ़ा (बाम होना = फिरना) । पाथ = जल ।

[७३]

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी।
देह गेह नेह जानु जैसे घनदामिनी ॥ १ ॥
सोवत सपनेहू सहै संसृति संताप रे।
बूड़ो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे॥ २ ॥
कहैं वेद बुध तू तो बूझि मन माँहि रे।
दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे॥ ३ ॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ ताय रे।
रामनाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥ ४ ॥

अरे जीव ! तू बड़ा मूर्ख है (अपना हानि-लाभ नहीं देखता। मोह-निद्रा में बहुत सोया अब तो) जाग, जाग और संसार जो रात्रि के समान है उसे (ज्ञानदृष्टि से) देख। (जैसे अँधेरी रात में चोर, उचक्के माल लूट ले जाते हैं ऐसे ही इस संसार-रूपी रात्रि में तेरे पीछे काम, क्रोध आदि चोर गठकटे लगे हुए हैं सो तेरा अमूल्य राम नामरूपी रत्न छिनावेंगे; होशियार हो जा, और जागता हुआ राम राम रटता रह जिससे ये तेरे पास न फटकें और इस संसाररूपी रात्रि में) शरीर और घर के स्नेह को ऐसा जान जैसे मेघ में बिजली (छिन छिन में चमकती है, छिन छिन में बन्द होती है, इसी भाँति ये कभी मिलते हैं कभी नष्ट हो जाते हैं, इनका झूठा स्नेह है, आँख मिचने पर फिर कुछ भी नहीं है) ॥ १ ॥ अरे ! जब तू सोता है तब सपने में संसार के (जन्म, मरण, दुःख आदि) बड़े बड़े ताप सहता है। (परन्तु जैसे जब तक सोता है तबही तक वे सच्चे हैं जागने पर सब झूठे हैं। ऐसे ही इस संसार के सब कार्य जब तक मनुष्य मोहनिद्रा में सो रहा है तब तक सच्चे दीखते हैं परन्तु जब मोहनिद्रा जाती रही और ज्ञान के नेत्र खुले सो ही यह संसार झूठा प्रतीत होने लगता है। सुपने में) कभी तू मृग-तृष्णा के पानी में गोते खाता है और कभी तुझे जेवरी का सर्प खा लेता है (भला यह कब सत्य हो सकता है ? इसी भाँति संसार को सत्य मानना कोरा भ्रम है वहाँ रज में न पानी है और न जेवरी सर्प है) ॥ २ ॥ वेद और पण्डित कहते हैं कि अरे तू अपने मन में समझ तो सही कि सपने के दोष और दुख जागने पर ही जाते हैं ॥ ३ ॥ हे तुलसी ! जागने से तीनों तापों की जलन जाती रहती है और सहज-सुभाव से राम-नाम में पवित्र रुचि होती है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—जामिनी = रात । दामिनी = बिजली । संसृत = संसार । तिहूँ = तीन । ताय = ताप (भूमि, दैव और शरीर से उत्पन्न हुए) । ताप = जलन ।

राग विभास ।

[७४]

जानकीस की कृपा जगावति सुजान जीव जागि त्यागि मूढ़-
ताऽनुराग श्रीहरे ।
करि विचार तजि विकार भजु उदार रामचन्द्र भद्रसिंधु दीन-
बंधु वेद वदत रे ॥ १ ॥
मोहमय कुहू निसा विसाल काल विपुल व्याल, सोयो खोयो
सो अनूप रूप स्वप्न जो परे ।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास वासना सराग मोह
द्वेष निबिड़ तम टरे ॥ २ ॥
भागे मद मान चोर, भोर जानि जातुधान काम कोह लोभ
छोभ निकर अप डरे ।
देखत रघुवर-प्रताप बीते संताप पाप, ताप त्रिविध प्रेम आप
दूर ही करे ॥ ३ ॥
स्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर वीर, वर विराग तोष
सकल संत आदरे ।
तुलसिदास प्रभुकृपाल निरखि जीवजन विहाल भंज्यो भवजाल
परम मंगलाचरे ॥ ४ ॥

रामचन्द्रजी की कृपा ज्ञानी पुरुष को जगाती है (इसलिए) मूढ़ता (अर्थात् अज्ञानरूपी निद्रा) को त्याग कर जाग और श्री भगवान में प्रेम कर और विचार कर, तथा विकार (अर्थात् अनेक प्रकार की वासनाओं) को छोड़कर उदार रामजी का भजन कर। वे कल्याण के समुद्र और दीनों के बन्धु हैं—ऐसा वेद कहते हैं ॥ १ ॥ अविद्या सो ही अमावस की रात्रि है (और रात्रि ४ पहर

की होती है पर यह अज्ञानरूपी रात्रि बड़ी भारी है इसमें जो) बहुत सा काल है सो ही बड़ा सर्प है जो कोई स्वप्न में पड़ कर सोया उसने अनूपरूप (अर्थात् आत्मस्वरूप) को खो दिया । अब (जब) सवेरा प्रकट हुआ और ज्ञान के सूर्य का चाँदना हुआ तब वासना, राग सहित मोह और द्वेषरूपी घना अँधेरा जाता रहा ॥ २ ॥ फिर तो सवेरा जान कर मद और मानरूपी चोर भागे और काम, क्रोध, लोभ, क्षोभरूपी राक्षसों के समूह स्वयं डर गये और रामजी के प्रताप को देखते ही सन्ताप और (संचित) पाप नष्ट हो गये और जो तीन प्रकार के ताप रह गये उन्हें (रामजी के) प्रेमरूपी जल ने दूर ही कर दिया अर्थात् बुझा दिया ॥ ३ ॥ इस प्रभावयुक्त वाणी को कानों से सुन कर (संसार के जीतने में) जो बड़े धीरे वीर सन्त थे सो जागे और उन्होंने सुन्दर वैराग्य, सन्तोष, आदि सबका आदर किया । हे तुलसीदास ! कृपालु रामजी ने जीवजन अर्थात् प्राणी-मात्र को बेहाल देख कर संसाररूपी जाल को तोड़ डाला और बड़ा आनन्द किया ॥ ४ ॥

सन्धि-विभाग—मूढ़ता + अनुराग । मंगल + आचरे ।

शब्दार्थ—उदार = दाता । कुहु = अमावस की रात्रि । व्याल = सर्प । वासना = संसार के सुख की इच्छा । सराग = रागसहित (राग कहते हैं संसारी वस्तुओं में प्रीति करना) । निविड़ = घना । यातुधान = राक्षस । छोभ = घबराहट । तापत्रिविध = गूढ़ार्थ कोश में देखो । निकर = समूह । आप = जल ।

राग ललित ।

[७५]

खोटो खरो रावरो हैं रावरी सों रावरे सों झूठ क्यों कहोंगो जानौ सबहि के मन की ।
करम वचन हिये कहौं न कपट किये ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ॥ १ ॥
दूसरो भरोसो नाहिं वासना उपासना की वासव विरंचि सुर नर मुनिगन की ।
स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई काहू तो न पीर रघुवीर दीन जन की ॥ २ ॥
साँप सभा सावरु लबारु भये देउँ दिव्य दुसह साँसति कीजै आगेही या तन की ।

साँचे पर पाऊँ पान पाँच में प्रमानपनु तुलसी चातकु आस राम स्याम घन की॥ ३ ॥

मैं बुरा भला जैसा हूँ तुम्हारा (गुलाम) हूँ, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ कि तुमसे झूँठ क्यों कहूँगा क्योंकि तुम सभी के मन की जानते हो। मैं कपट से नहीं कहता हूँ, मैं अपने हृदय में कर्म और वचन से तुम्हारे गुलाम होने की ऐसी हठ किये हूँ कि जैसी पानी में पड़ी सन की गाँठ होती है (अर्थात् जैसे वह नहीं खुल सकती ऐसी ही मेरी गुलामी नहीं छूट सकती) ॥ १ ॥ न तो मुझे दूसरे का भरोसा है, न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और मुनियों के समूह की उपासना की इच्छा है क्योंकि वे (देवता आदि) स्वारथ के साथी हैं (अर्थात् जब तक पूजूँगा तब तक सुख देंगे, न पूजूँगा कष्ट देंगे सो मेरी उनकी नहीं पटेगी) और मेरे हाथ से उनकी लेवा-देई नहीं होती और हे राम! जैसी दीन जन की पीर तुमको है ऐसी किसी को भी नहीं है॥ २ ॥ और मैं साँप की सभा में अपनी सचाई साबित करने को तैयार हूँ जो सावर (१) लबार (अर्थात् सावरी मन्त्र के न जाननेवाले) की भाँति झूँठा होऊँ तो साँप मुझे काट खाय और तुम अपने आगे ही इस शरीर को ऐसा दंड दो जो सहा न जाय और जो मैं सच्चा ठहरूँ (अर्थात् साँप मुझे न काटे) तो उस प्रण की पकावट का एक बीड़ा पाँच पंचों में पाऊँ (जिससे मेरा भी भक्तों में नाम हो क्योंकि) मुझ तुलसीरूपी चातक को रामरूपी श्याम मेघ की ही आशा है॥ ३ ॥

शब्दार्थ—वासव = इन्द्र। विरंचि = ब्रह्मा। दिव्य देना = अपनी बात का पक्का प्रमाण देना। सावर = सावरी मन्त्र। लबार = झूँठा। साँसति = दण्ड। प्रमान = पकावट।

[७६]

राम को गुलाम नाम रामबोला राखु राख्यौ काम इहै नाम द्वै हों कबहुँ कहत हौं।

---

(१) भाव यह है जो साँप पकड़ने का सावरी मन्त्र जानता होगा सो तो उसे पकड़ लेगा और जो सभा में जाकर झूँठ कहेगा कि मैं सावर जानता हूँ और साँप को पकड़ने लगेगा तो साँप उसे काट खायगा। ऐसे ही जो तुम्हारे सामने मैं झूँठा सेवक बनता होऊँ तो मुझे दंड दो।

रोटी लूगा नीके राखै आगेहू के वेद भाषै भलो ह्वैहै तेरो तातें आनँद लहत हों ॥ १ ॥

बाँध्यो हों करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़ सुनत दुसह हुतो सासति सहतु हों ।

आरत अनाथ नाथ कौसल पाल कृपाल लीन्हों छीनि दीन देखो दुरित दहतु हू ॥ २ ॥

बूझ्यो जौंही मैं कह्यो हों चेरो ह्वैहों रावरो जू मेरो कोउ कहूँ न हो चरन गहतु हों ।

मींजो गुर-पीठ अपनाइ गहि बाँह बोल सेवक सुखद सदा हों विरद बहतु हों ॥ ३ ॥

लोक कहैं पोच सो न सोचु न सँकोचु मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहतु हों ।

तुलसी काजु अकाजु रामहि के रीझें खीझें प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहतु हों ॥ ४ ॥

मैं राम का गुलाम हूँ और (गुरु ने) मेरा राम-बोला नाम रक्खा है और मैं रामजी का यही काम करता हूँ कि कभी कभी नाम के दो अक्षर कह लेता हूँ। वे मुझे अच्छी तरह रखते हैं और रोटी कपड़ा देते हैं। यह तो इस लोक की बात हुई और आगे की वेद कहते ही हैं कि (राम-नाम लेने से) तेरा भला होगा (सो पूरी आशा है कि परलोक में भी मुझे सुख मिलेगा) इससे आनन्द पाता हूँ अर्थात् सदा प्रसन्न रहता हूँ ॥ १ ॥ (अब राम के गुलाम होने से पहले की दशा कहते हैं कि) जड़ कर्म ने मुझे अहंकाररूपी पक्की बेड़ी से बाँध लिया यह सुनते ही मैं तो ऐसी पीड़ा सहने लगा कि जो सही न जाय। (फिर मैं पुकारा कि) हे दुखी अनाथों के नाथ! हे कृपाल कोशलपाल (रामजी)! मेरी रक्षा करो (यह वाणी सुन कर वे आये) और जब उन्होंने मुझ गरीब को देखा कि मैं पापों से जला जाता हूँ तब मुझे (पापों से) छुड़ा लिया ॥ २ ॥ और ज्योंही पूछा (कि तू कौन है त्योंही) मैंने कहा कि हे स्वामी! मैं तुम्हारा चेला हूँगा, मेरा कोई कहीं नहीं है, मुझे तुम्हारे चरणों का ही सहारा है। तब सेवकों को सुख देनेवाले रामजी ने मुझे

शाबाशी दी और भरोसा दे बाँह पकड़ कर अपनाया। तब से यह (माला-कंठी तिलक आदि) बाना सदा धारण किये रहता हूँ।। ३ ।। लोग (भले ही) कहें कि यह नीच है (गुलामी करता है) सो इसका मुझे सोच और शरम नहीं है क्योंकि मुझे अब अपना ब्याह सगाई थोड़े ही करना है और न मैं जाति, पाँति को चाहता हूँ (अर्थात् मुझे जातवालों के साथ भी नहीं खाना है) तुलसी का काज अकाज तो रामजी के रीझने खीजने में है (अर्थात् रीझेंगे सुख देंगे, गुस्सा होंगे दुःख पाऊँगा पर मुझे उनके चरणों में अपनी) प्रीति की प्रतीति है (कि वे मुझे अवश्य तारेंगे इसलिए) मन में प्रसन्न रहता हूँ ।। ४ ।।

शब्दार्थ—निगड़ = बेड़ी । सांसति = पीड़ा । दुरित = पाप । जू = स्वामी । बरेखी = सगाई, ब्याह की बात-चीत ।

[७७]

जानकीजीवन जगजीवन जगतहित जगदीस रघुनाथ राजीव-लोचन राम ।
सरदविधुवदन सुखसील श्रीसदन सहज सुंदरतनु सोभा अगनित काम ।। १ ।।
जग सुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत सबको दाहिनो दीनबंधु काहू को न बाम ।
आरतिहरन सरनद अतुलितदानि प्रनतपाल कृपाल पतितपावन नाम ।। २ ।।
सकलविस्ववंदित सकल सुरसेवित अगम निगम कहैं रावरेइ गुनग्राम ।
एही जानि कै तौ तुलसी तिहारो जन न्यारो कै गनिवो जहाँ गने गरीब गुलाम ।। ३ ।।

हे राम ! तुम जानकीजी के जीवन, जगत् को जिलानेवाले, संसार के हितकारी, जगत् के स्वामी, रघुकुल के नाथ, कमल समान नेत्रवाले हो और तुम्हारा मुख शरद्-

काल के चन्द्रमा के समान है, तुम्हारा सुख देने का स्वभाव है, तुम लक्ष्मी के स्थान हो और स्वभाव से ही तुम्हारे सुन्दर शरीर की शोभा अनगिनती कामदेवों के समान है ॥ १ ॥ तुम जगत् के सुन्दर पिता, माता, गुरु, हितू, मित्र, और सबको दाहने अर्थात् सुखदाई, ग़रीबों के बन्धु और किसी को टेढ़े नहीं हो । तुम विपत्ति के हरनेवाले, शरण के दाता, अतोल दान देनेवाले, भक्तों के रक्षक और कृपालु हो और तुम्हारा नाम पतितपावन है ॥ २ ॥ सब संसार तुमको प्रणाम करता है, तुम सब देवताओं से सेवा किये गये हो और वेद, शास्त्र सब तुम्हारा ही गुण-समूह गाते हैं । यही जान कर तुलसी तुम्हारा भक्त हुआ है, इसे अलग कर दोगे अर्थात् अपनी सेवा में न रक्खोगे या जहाँ (केवट आदि) ग़रीब ग़ुलाम गिन रक्खे हैं उनमें रक्खोगे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र । निगम = वेद । ग्राम = समूह ।

राग टोडी ।

[७८]

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहिब तौ घनेरे ।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वदत वेद चारी ।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥ ३ ॥
तोहिं माँगि माँगनो न माँगिनो कहायो ।
सुनि सुभाउसील सुजस जाचन जन आयो ॥ ४ ॥
पाहन पसु विटप विहग अपने करली हैं ।
महाराज दसरथ के रंक राय कीन्हें ॥ ५ ॥
तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु तुलसिदास मेरो ॥ ६ ॥

हे देव ! ग़रीबों पर कृपा करनेवाला और दानी (तुझ सरीखा) दूसरा कोई नहीं है (क्योंकि) जिससे अपनी ग़रीबी कहता हूँ उसे भी मैं ग़रीब देखता हूँ (अर्थात् तेरे

समान किसी का ऐश्वर्य नहीं) ॥ १ ॥ मुनि, देवता, मनुष्य, नाग और दैत्य स्वामी तो बहुत से हैं, पर तभी तक हैं कि जब तक तेरे थोड़े से भी नेत्र नहीं फिरते (अर्थात् ज्योंहीं तूने निगाह टेढ़ी की त्योंहीं सबका स्वामीपना निकल जायगा) ॥ २ ॥ तीनों भुवनों और तीनों कालों में यह (बात) प्रकट है और चारों वेद भी कहते हैं कि आदि, अन्त और मध्य में (अर्थात् सदा तो) हे राम ! तेरी ही साहबी है ॥ ३ ॥ तुझसे भीख माँग कर (कोई) मँगता फिर मँगता नहीं कहाया (अर्थात् एक ही बार में तूने उसे निहाल कर दिया) यही शील सुभाव और सुन्दर यश सुन कर यह जन भी भीख माँगने आया है ॥ ४ ॥ (जो कहो किन किन याचकों को हमने निहाल किया तहाँ कहते हैं कि) तूने पत्थर (अहिल्या), पशु (रीछ बन्दर), वृक्ष (यमलार्जुन) और पक्षी (जटायु) इनको अपना कर लिया और हे महाराज दशरथ के पुत्र ! तूने उन्हें कंगाल से राजा कर दिया (अर्थात् जो महानीच थे उन्हें भी मुक्त कर दिया) ॥ ५ ॥ तू ग़रीब को निहाल करनेवाला है और मैं तेरा ग़रीब हूँ । हे कृपालु ! (कुछ संपत्ति आदि नहीं चाहता हूँ केवल यह चाहता हूँ कि तू) एक बार (अपने मुख से) यह कह दे कि तुलसीदास मेरा है ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मांगनें = मँगता, भिखारी । पाहन = पत्थर । विटप = वृक्ष । विहग = पक्षी । रंक = कंगाल । हौं = मैं ।

[७९]

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तु पापपुंजहारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसों ॥ २ ॥
ब्रह्म तू हौं जीव तुही ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥ ३ ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावे ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपाल चरन सरन पावे ॥ ४ ॥

हे देव ! तू दयाल है मैं ग़रीब हूँ, तू दानी है मैं भिखारी हूँ । मैं नामी पापी हूँ तू पापों के पुञ्ज का नाशक है ॥१॥ तू अनाथों का नाथ है और मुझ सरीखा अनाथ कौन

है। मेरे समान तो कोई दुखी नहीं और तेरा सा कोई दुखभंजन नहीं ॥ २ ॥ तू ब्रह्म है मैं जीव हूँ, तू ठाकुर है मैं तेरा सेवक हूँ, और सब तरह से तू मेरा पिता, माता, गुरु, सखा और हितू है ॥ ३ ॥ तुझसे मेरे अनेक नाते हैं, जो (मन में) भावे उसे मान ले। हे कृपाल! (प्रयोजन तो इतना ही है कि यह) तुलसी जैसे बने वैसे तेरे चरणों की शरण पावे ॥ ४ ॥

[८०]

और काहि माँगिये को माँगिबो निवारै।
अभिमतदातार कौन दुखदरिद्र दारै ॥ १ ॥
धर्मधाम राम कामकोटिरूप रूरो।
साहब सबविधि सुजान दान खडग सूरो ॥ २ ॥
सुसमै दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै।
कुसमैं दसरथ के दानि तैं गरीब निवाजै ॥ ३ ॥
सेवा विनु गुन विहीन दीनता सुनाये।
जेजे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक रुचि जानि दान दीजै।
रामचंद्र चंद्र तू चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

(जो कहो कि और किसी से क्यों नहीं माँगता तहाँ कहते हैं कि) हे राम! और किससे माँगूँ और कौन मेरी याचना को रोक सकता है (अर्थात् इतना दे सकता है कि जिससे मुझे फिर माँगने की ज़रूरत न पड़े)। ऐसा कौन सा मनोरथ का दाता है कि जो मेरे दुःख और दरिद्र को दूर करे ॥ १ ॥ हे राम! तू धर्म का मन्दिर और करोड़ों कामदेवों के रूप से सुन्दर है, सब प्रकार से स्वामी है, सुजान (अर्थात् हृदय की जाननेवाला) और दानरूपी तलवार (चलाने) में शूर है, अर्थात् बड़ा दानी है ॥ २ ॥ (जो कहो कि दानी तो और भी बहुत हैं तहाँ कहते हैं कि और तो ऐसे हैं कि जब किसी का) सुन्दर (अर्थात् बढ़ती का) समय होता है तब सबके द्वार पर दो दिन नगाड़े बजते हैं पर हे दशरथ के (नन्दन!) तू ऐसा दानी है कि (कुसमय में भी) तूने ग़रीबों को निहाल कर दिया है (अर्थात् राज्य गया, वनवास हुआ ऐसे बुरे बुरे समय में भी तूने केवट, गिद्ध, शवरी, सुग्रीव, विभीषण आदि को निहाल कर

दिया) ॥ ३ ॥ सेवा के बिना ही जिस जिस महागुणहीन ने तुझे अपनी ग़रीबी सुनाई उसी उसी को तूने निहाल कर दिया और (वे अपनी मनोकामना) पाकर फूले फिरते हैं।॥ ४ ॥ तुलसीदास भिखारी की भी (भीतरी) रुचि जान कर उसे दान दे और हे रामचन्द्र ! (मैं कुछ धन संपत्ति नहीं चाहता हूँ; केवल यह माँगता हूँ कि) तू चन्द्रमा है मुझे चकोर बना ले। (भाव यह है कि जैसे चकोर इकटक चन्द्रमा को देखा करता है वैसे ही मैं तेरे दर्शन करता रहूँ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अभिमत = मनोरथ। रूरो = सुन्दर। तै = तू।

[८१]

दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ मनु जरत त्रिविधज्वर करत फिरत बौराई ॥ १ ॥
कबहुँ जोगरत भोगनिरत सठ हठ विजोग वस होई।
कबहुँ मोहवस द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई ॥ २ ॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत कबहुँ धरमरत ज्ञानी ॥ ३ ॥
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै।
संसृति सन्यपात दारुनदुख बिनु हरिकृपा न नासै ॥ ४ ॥
संजम जप तप नेम धरम व्रत बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भवरोग राम-पद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥ ५ ॥

हे रामचन्द्र ! तुम दीनों के बन्धु, सुख के समुद्र, कृपा करनेवाले हो, और तुम्हारे भीतर बड़ी करुणा है। सो हे नाथ ! सुनो। मेरा मन तीन प्रकार के तापों से जलता है (अर्थात् मुझे त्रिदोष हो गया है और जैसे त्रिदोषवाला पागल की तरह बकता है ऐसे ही मेरा मन) पागलपन करता फिरता है ॥ १ ॥ कभी योग में प्रीति करता है, कभी भोग में लगता है, कभी यह मूर्ख हठ से (स्त्री, पुत्र आदि के) वियोग के वश हो जाता है (अर्थात् उनसे जुदा हो जाता है), कभी मोह के वश होता है, कभी बहुत सा द्रोह करने लगता है और कभी बड़ी दया करने लगता है ॥ २ ॥ कभी दीन, कभी बुद्धिहीन और कभी अधिक कंगाल हो जाता है, कभी राजाओं का सा घमंड करने लगता है,

कभी मूर्ख और कभी पण्डित बनता है, कभी पाखंड में प्रीति और कभी धर्म में प्रीति करता है, कभी ज्ञानी बनता है ॥ ३ ॥ कभी (धन की चाह हुई तो) जगत् धन से भरा और (जब किसी से लड़ाई हुई तब) शत्रुओं से भरा दीखता है और कभी (काम की इच्छा हुई तो) स्त्रियों से भरा भासने लगता है, (कोई एक बात हो तो कहूँ) सो संसाररूपी सन्निपात बड़ा कठिन दुःख है, हे भगवन् ! बिना तुम्हारी कृपा के इसका नाश नहीं होता ॥ ४ ॥ संयम, जप, तप, नेम, धर्म, व्रत (इत्यादि) बहुत सी ओषधियों का समूह है पर हे राम ! तुलसीदास का संसाररूपी रोग तुम्हारे चरणों के प्रेम बिना नहीं जा सकता ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विडंब = पाखंड । संसृत = संसार । त्रिदोष = कफ, वात, पित्त तीनों का मिल जाना ।

[८२]

मोहजनित मल लाग विविधविध कोटिहु जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई ॥ १ ॥
नैन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागे ।
हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे ॥ २ ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भये वचन दोष पर गाये ।
सब प्रकार मलभार लाग निज-नाथ-चरन बिसराये ॥ ३ ॥
तुलसिदास व्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै ।
रामचरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥ ४ ॥

अज्ञान से उत्पन्न हुआ अनेक प्रकार का जो पाप लगा रहता है (कि जिसने जीव को दुखी कर रक्खा है) वह करोड़ों उपायों से भी नहीं छूटता । (कारण यह कि) जन्म जन्म में चित्त को उससे प्रीति करने का अभ्यास पड़ रहा है, इसलिए (वह पाप) अधिक अधिक लिपटता चला जाता है ॥ १ ॥ (अनेक प्रकार का पाप कौन सा है सो कहते हैं) पराई स्त्रियों को देख कर नेत्र धुँधले हो गये और विषयों के साथ लगने से मन मलिन हो गया और हृदय (विषय) वासना, मान, मद से मलिन हो गया और जीव अपने सहज सुख (अर्थात् आत्मस्वरूप) के त्यागने से मलिन हो गया ॥ २ ॥ पराई निन्दा सुनते सुनते कान मैले हो गये और पराया दोष बार बार कहने से वचन मैला हो गया । सो सब तरह से अपने स्वामी के चरणों को भूल जाने से यह मल का भार (मेरे पीछे) लगा फिरता

है॥ ३॥ हे तुलसीदास! शुद्धि हेतु (अर्थात् उस पाप के धुलने के लिए) वेद तो व्रत, दान, ज्ञान, और तप (आदि उपाय) बता रहा है परन्तु रामचन्द्रजी के चरणों के प्रेमरूपी जल बिना यह भारी पाप नहीं धुल सकता॥ ४॥

राग जयतश्री।

[८३]

कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय।
अति दुर्लभ तन पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय॥ १॥
लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोवन जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय॥ २॥
मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय।
राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसि बासर तपो तिहूँ ताय॥ ३॥
सेये नहिं सीतापतिसेवक साधु सुमति भले भगति भाय।
सुने न पुलकि तनु कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुवंसराय॥ ४॥
अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यौं बिकल अंग दले जरा धाय।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर कोउ न मीत हित दुसह दाय॥५॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्यौ ते लजात होत ठाढ़े ठाँय।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तर्यो गयंद जाके एक नायँ॥ ६॥

मुझसे कुछ बन नहीं पड़ा और जन्म वृथा जा रहा है। बड़ी दुर्लभ (मनुष्य) देह पाकर तू कपट छोड़ कर तन, मन, वचन से राम को नहीं भजता है॥ १॥ लड़कपन तो अज्ञान में बीत गया, (उस समय) चित्त में चौगुनी चंचलता और खुशी थी (खूब खेले कूदे), और जब युवावस्थारूपी ज्वर चढ़ा तब स्त्रीरूपी कुपथ्यकर (अर्थात् स्त्री के साथ संभोग करने पर) कामरूपी वायु से भारी त्रिदोष हो गया॥ २॥ बीच की उम्र धन के लिए खेती, व्यापार और अनेक उपायों में गवाँई और रामजी से विमुख होने के कारण सपने में भी सुख नहीं पाया और रात दिन तीनों तापों (१) से तपता रहा॥ ३॥ और

(१) गूढार्थ कोष में देखो।

रामजी के सेवक और सुन्दर बुद्धिवाले साधुओं की भी अच्छी भक्ति भाव से सेवा नहीं की और रामचन्द्रजी ने जो चरित्र किये थे उन्हें भी न तो शरीर में पुलकायमान होकर सुने और न प्रसन्न मन से कहे ॥ ४ ॥ अब ऐसा शोक करता है कि जैसे मणि के बिना सर्प विकल होता है और वृद्ध अवस्था दौड़ दौड़ कर अंग को पीसे डालती है और (अब तू) सिर धुन धुन कर और हाथ मींज मींज कर पछताता है (पर इस) दुःसह दावानल के (शांत करने के) लिए कोई हितकारी मित्र नहीं (आता) ॥ ५ ॥ और जिनके लिए तू अपना परलोक बिगाड़ा था वे सब पास खड़े होने में शरमाते हैं (अर्थात् कोई बात नहीं पूछता) । हे तुलसी ! अब भी तू (उन) रघुनाथजी का ही स्मरण कर कि जिनका नाम एक बार लेने से गजेन्द्र तर गया था ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—चाय = ख़ुशी । त्रिदोष = ८२ वें भजन में देखो । ताय = ताप । दाय = दावानल, वन की अग्नि । ठांव = पास । नांय = नाम ।

[८४]

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ ।
भयो है सुगम तोको अमर अगम तन समुझिधों कत खोवत अकाथ १
सुखसाधन हरिविमुख वृथा जैसे स्रमफल घृतहित मथे पाथ ।
यह विचारि तजि कुपथ कुसंगति चलुसुपंथ मिलि भले साथ ॥ २ ॥
देखु रामसेवक सुनु कीरति रटहिं नाम करि गान गाथ ।
हृदय आनु धनुबान पानि प्रभु लसै मुनिपट कटि कसे भाथ ॥ ३ ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंचसब नाउँ रामपदकमल माथ ।
जनि डरपहि तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ ॥ ४ ॥

(अब यहाँ गुसाईंजी अपने लिए कहते हैं कि जो तू राम-भजन नहीं करेगा) तो तू हाथ मल मल कर मन में पछतावेगा क्योंकि देवताओं को भी कठिन ऐसी मनुष्य देह तुझे सुगम होगई (अर्थात् सहज में मिल गई है) उसे अब वृथा क्यों खोता है, समझ तो सही ॥ १ ॥ भगवान् के विमुख होकर सुख का साधन ऐसे वृथा हैं कि जैसे घी के लिए पानी मथने से श्रम का फल (वृथा) हो । यह विचार कर बुरा मार्ग और कुसंगति को छोड़ और सुन्दर मार्ग में चल और भलों के साथ

मिल ॥ २ ॥ राम के भक्तों के दर्शन कर (उनसे भगवान् का) यश सुन, नाम को रट, कथा का गान कर, और हाथ में धनुष, बाण लिये और मुनियों के वस्त्र कटि में पहिरे और तरकस को कसे ऐसे प्रभु को हृदय में ला (अर्थात् उनका ध्यान कर) ॥ ३ ॥ हे तुलसीदास! सब प्रपंच को छोड़कर रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में माथा नवा, और तू डरे मत, तुझ सरीखे अनगिनती नीचों को रघुनाथजी ने अपना बनाया है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—घों = सो, अब। अकाथ = वृथा। पाथ = जल। गाथ = कथा।

राग धनाश्री।

[८५]

मन माधो कौ नेकु निहारहि।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों छिन छिन प्रभुहि सँभारहि ॥१॥
सोभासील ज्ञानगुनमंदिर सुंदर परम उदारहि।
रंजनसंत अखिलअघगंजन भंजन विषयविकारहि ॥ २ ॥
जों विनु जोग जज्ञ व्रत संजम गयो चहै भवपारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसि वासर हरिपदकमल विसारहि ॥ ३ ॥

हे मन! भगवान् को नेक निहार अर्थात् उनके दर्शन कर। हे मूर्ख! सुन जैसे कंगाल अपने धन को सदा छिन छिन में सँभालता है ऐसे ही तू प्रभु को सँभाल ॥ १ ॥ वे शोभा, शील, ज्ञान और गुण के स्थान, सुन्दर और बड़े दानी हैं। संतों को प्रसन्न करनेवाले, सब पापों के नाशक और विषय के विकारों को तोड़नेवाले हैं ॥ २ ॥ जो तू बिना योग, यज्ञ, व्रत और संयम के संसार (रूपी समुद्र) के पार जाया चाहे तो हे तुलसीदास! रात दिन भगवान् के चरण-कमलों को मत भूल ॥ ३ ॥

[८६]

इहै कह्यो सुत वेद चहूँ।
श्रीरघुवीरचरनचिंतनतजि नाहिन ठौर कहूँ ॥ १ ॥
जाके चरन विरंचि सिधि पाई सोइ संकरहूँ।
सुकसनकादि मुकत विचरत तेउ भजन करत अजहूँ ॥ २ ॥

जद्यपि परमचपल श्री संतत थिर न रहति कतहूँ ।
हरिपदपंकजपाइ अचलभइ करम वचन मनहूँ ॥ ३ ॥
करुनासिंधु भगतचिंतामनि सोभा सेवतहूँ ।
और सकल सुर असुर ईस सब खाये उरग छहूँ ॥ ४ ॥
सुरुचिकह्यो सोइ सत्य तात अति परुष वचन जबहूँ ।
तुलसिदास रघुनाथविमुख नहिँ मिटै विपति कबहूँ ॥ ५ ॥

(सुनीति (१) नाम ध्रुवजी की माता उन्हें उपदेश करती है)—हे पुत्र ! चारों वेदों ने यही बात कही है कि श्रीरघुनाथजी के चरणों का शरण छोड़ और कहीं जगह नहीं है ॥ १ ॥ जिनके चरणों की सेवा करके ब्रह्मा और शङ्कर ने भी सिद्धि पाई और शुक, सनकादि भी (जिनकी सेवा से) जीवन-मुक्त हुए विचरते हैं और अब तक उनका भजन करते हैं ॥ २ ॥ यद्यपि लक्ष्मी बड़ी चंचल है और सदा कहीं भी स्थिर नहीं रहती परन्तु भगवान् के चरण-कमलों को पाकर मन, कर्म और वचन से अचल हो गई है ॥ ३ ॥ (भगवान्) करुणा के समुद्र, भक्तों को चिन्तामणिरूप हैं, उनकी सेवा से (मनुष्य की) शोभा है (क्योंकि) और सब देवता तथा राक्षसों में जो स्वामी कहाते हैं उन सबको (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) छः सर्पों ने डस लिया है ॥ ४ ॥ हे प्यारे ! (यद्यपि यह) बड़ा कठोर वचन है तो भी सुरुचि ने जो कहा है सोई सत्य है । हे तुलसीदास ! रघुनाथजी से विमुख होने पर कभी विपत्ति नहीं मिटती है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संतत = सदा । उरग = सर्प । परुष = कठोर ।

[८७]

सुनि मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरिपदविमुख काहु न लह्यो सुख सठ यह समुझु सबेरो ॥ १ ॥

(१) राजा उत्तानपाद की दे। रानियां थीं । बड़ी सुनीति और छोटी सुरुचि । सुनीति से ध्रुव हुए और सुरुचि से उत्तम । राजा छोटी रानी के पुत्र से अधिक स्नेह करता था । एक दिन राजा छोटी रानी सहित सिंहासन पर बैठा था और गोद में उत्तम को खिला रहा था इतने में ध्रुव आया और उसने चाहा कि मैं भी राजा की गोद में खेलूँ पर राजा ने न आने दिया । यह देख सुरुचि ने कहा कि जो तू पूर्व जन्म में भगवान् का तप करता तो राजसिंहासन पर बैठता सो तू जाकर तप कर । जब ध्रुव ने आकर यह सब हाल सुनीति से कहा तो उसने भी पुत्र को तप की शिक्षा दी और ध्रुव तप करने चला गया ।

बिछुरे रवि ससि मन नैननि तें पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन मोँ, तहुँ रिपु राहु बड़ेरो ॥ २॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिवो ताहू केरो ॥ ३ ॥
मिटै न विपति भजे विनु रघुपति स्रुति संदेहु निवेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि होहि राम को चेरो ॥ ४ ॥

हे मूर्ख मन ! मेरी सीख सुन। हरि के चरणों से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया सो हे शठ ! यह समझ ले कि अभी सबेरा ही है (अर्थात् सिदौस है अब तक कुछ बिगड़ा नहीं है) ॥१॥ हे मन ! सूर्य, चन्द्रमा (भगवान् के) नेत्रों से अलग हुए तब से बहुतेरा दुख पा रहे हैं; रात-दिन आकाश में घूमते घूमते थक जाते हैं और वहाँ राहु उनका बड़ा शत्रु है॥ २॥ और यद्यपि गङ्गाजी बड़ी पवित्र हैं और तीनों पुर में उनका बहुत सा सुन्दर यश फैल रहा है परन्तु (भगवान् के) चरण छोड़ देने से उनका नित्य बहना अब भी नहीं रुकता है ॥ ३ ॥ बिना रघुनाथजी के भजे विपत्ति नहीं छूटती यह संदेह वेद ने निपटा दिया है सो हे तुलसीदास ! सब आशा छोड़कर रामजी का चेला हो जा ॥ ४ ॥

[८८]

कबहूँ मन विस्राम न मान्यौं ।
निसि दिन भ्रमत विसारि सहज सुख जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यौं ॥ १ ॥
जदपि विषयसँग सह्यो दुसह दुख विषमजाल अरुझान्यौ ।
तदपि न तजत मूढ़ ममता वस जानतहूँ नहिं जान्यौं ॥ २ ॥
जनम अनेक किये नाना विधि करम कीच चित सान्यौं ।
होइ न विमल विवेक नीर विनु वेद पुरान बखान्यौं ॥ ३ ॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदय नहिं आन्यौं ।
तुलसिदास कब त्रिषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यौं ॥ ४ ॥

हे मन ! तूने कभी विश्राम नहीं माना (अर्थात् तू कभी निचला होकर न बैठा), अपने सहज सुख (अर्थात् ब्रह्मानन्द सुख) को भूल कर रात-दिन (विषय-वासना में) घूमता है और जहाँ तहाँ इन्द्रियों ने तुझे खैंच रक्खा है, अर्थात् जिधर जो इन्द्रिय जाती है उधर ही तू जाता है॥ १॥ यद्यपि (इन्द्रियों के) विषय-संग से दुःसह दुख सहता है और कठिन जाल में फँस गया है तो भी तू उसे नहीं छोड़ता और हे मूढ़ ! ममता के वश जान बूझ कर भी अनजान सा हो रहा है ॥ २॥ (ममता होने का कारण लिखते हैं) हे चित्त ! तू अनेक जन्मों में नाना प्रकार के किये हुए कर्मरूपी कीच में सन गया है सो बिना निर्मल ज्ञानरूपी जल के साफ़ नहीं हो सकता; यह वेद पुराणों ने वर्णन किया है ॥ ३ ॥ जैसा हित अपने स्वामी, पिता और गुरु से होता है वैसा प्रसन्न होकर भगवान् से भी करता पर तू उनको तो अपने हृदय में भी न लाया (अर्थात् उनका स्मरण भी न किया, प्रीति तो दूर रही), हे तुलसीदास ! ऐसे तालाब से कब प्यास जा सकती है कि जिसके खोदते खोदते ही जन्म बीत गया ॥ ४ ॥

[८९]

मेरो मन हरि जू हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहुविधि करत सुभाउ निजै ॥ १ ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुखउपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ॥ २ ॥
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥
हौं हार्यो करि जतन विविधविध अतिसय प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता। रात-दिन बहुत भाँति से सीख देता हूँ पर हे नाथ ! वह अपने स्वभाव के ही अनुसार करता है ॥ १ ॥ जैसे स्त्री प्रसव का अनुभव करती है कि उसमें बड़ा कठिन दुःख होता है (और पति से बिगड़ जाती है कि किसी तरह यह दुख मिटे तो अब मुँह न देखूँगी) परन्तु वह मूर्खा (पहले) दर्द को भूलकर और प्रसन्न होकर फिर दुष्ट पति को भजती है (अर्थात् उसके साथ प्रेम करती

है) ॥ २ ॥ फिर जैसे कुत्ता लालच का मारा जहाँ जाता है वहीं उसके सिर पर जूता बजता है तो भी नीच फिर उसी रास्ते में घूमता फिरता है और वह मूर्ख कभी नहीं लजाता ॥ ३ ॥ मैं अनेक प्रकार के उपाय कर करके हार गया पर वह (मन) बड़ा बली और अजित है (अर्थात् किसी से जीता नहीं जाता परन्तु) वह इस तुलसीदास के वश में तभी हो सकता है कि जब प्रेरणा करनेवाले प्रभु आप ही उसे मना करें ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अनुकूल = प्रसन्न । गृहपसु = कुत्ता । पदत्रान = जूता । अजै (अजय) ।

[९०]

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥ १ ॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यौं तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की ॥ २ ॥
ज्यों गच काँच विलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अतिआतुर अहार वस छति विसारि आनन की ॥ ३ ॥
कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की ॥४॥

(फिर मन की गति को दिखाते हैं) इस मन की ऐसी मूर्खता है कि यह रामभक्ति रूपी गंगाजी को छोड़कर ओस के कण की आशा करता है ॥ १ ॥ (वर्षाकाल में) जैसे चातक धुएँ के गुब्बारे को (आकाश में देखकर) प्यास के मारे अपनी बुद्धि से उसे मेघ जानता है (परन्तु) न तो वहाँ शीतलता है और न पानी है वरन् और नेत्रों की हानि होती है (अर्थात् धुएँ की ओर देखने से दृष्टि मन्द पड़ जाती है) ॥ २ ॥ और जैसे मूर्ख बाज़ शीशे की गच में अपने शरीर की परछाईं देखकर और अपने मुख (चोंच) की हानि को भूल कर भोजन के वश बड़ी शीघ्रता से टूटता है (पर वहाँ भोजन कहाँ है वरन् और चोंच की भी हानि है ऐसे ही भगवान् को छोड़ और की उपासना करने में हानि ही है लाभ कुछ नहीं ॥ ३ ॥ हे कृपा के सागर ! इस कुचाल को मैं कहाँ तक कहूँ, तुम तो इस दास की दशा को जानते हो। हे भगवन् ! तुलसीदास का दुसह दुख हरो और अपने पन की लाज रक्खो (क्योंकि तुम पतितपावन कहाते हो) ॥ ४ ॥

[९१]

नाचतही निसि दिवस मर्यो ।
तबहीं ते न भयो हरि थिर जबते जिव नाम धर्यो ॥ १ ॥
बहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यो ।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँगु कर्यो ॥ २ ॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्यो ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ हर्यौ ॥ ३ ॥
थके नयन पद पानि सुमति बल संग सकल बिछुर्यो ।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभयविकल डर्यो ॥ ४ ॥
जेहि गुनते बस होहु रीझि करि सो मोहिं सब बिसर्यो ।
तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो ॥ ५ ॥

रात-दिन नाचता नाचता (अर्थात् जन्म लेता ही लेता) मरा। हे भगवन् ! जब से तुमने "जीव" नाम धरा तब से ही यह स्थिर नहीं हुआ ॥ १ ॥ (अब नाच को स्पष्ट करके दिखाते हैं) अनेक प्रकार की बहुत सी वासना तो हुए वस्त्र और लोभ आदि में पड़ना हुए भूषण, इनको पहिर करके और चर अचर का रूप धर कर आकाश और जल थल में ऐसा कौन स्वाँग है जो न दिखाया ॥ २ ॥ देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुज कोई भी याचना से नहीं बचा (अर्थात् मैंने सबसे भीख माँगी परन्तु) मेरे दुसह दरिद्र, दोष और दुःख को किसी ने दूर नहीं किया ॥ ३ ॥ नेत्र, पैर, हाथ, सुन्दर बुद्धि और बल ये सब थक गये और (इन्द्रियों का) संग सब बिछुड़ गया। हे रघुनाथजी ! अब यह जन संसार के भय की व्याकुलता से डर कर तुम्हारी शरण आया है ॥ ४ ॥ जिस गुण से तुम रीझ कर वश होते हो वह तो मैं सब भूल गया (अब अपनी ओर देखकर) हे प्रभो ! इस तुलसीदास को अपने घर के द्वार पर पड़ा रहने दो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कंचुक = स्वाँग के वस्त्र। भर्यो = धारण किया। गगन = आकाश। पानि = हाथ।

[९२]

माधव जू मो सम मंद न कोऊ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजै ओऊ ॥ १ ॥

रुचिर रूप आहार वस्य उन पावक लोह न जान्यो ।
देखत विपति विषय न तजत हौं ताते अधिक अयान्यो ॥ २ ॥
महामोहसरिता अपार महँ संतत फिरत वह्यो ।
श्रीहरिचरनकमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो ॥ ३ ॥
अस्थि पुरानों छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरै ।
निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरै ॥ ४ ॥
परमकठिन भवव्यालग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारी ।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपतिनाथ बिसारी ॥ ५ ॥
जलचर वृंद जाल अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालचवस नहिं देखत निज नासा ॥ ६ ॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै ।
तुलसीदास पतितपावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ॥ ७ ॥

हे माधोजी! मेरे समान मूर्ख कोई नहीं है। यद्यपि मछली और पतङ्ग मतिहीन हैं परन्तु वे भी मुझे नहीं पूजते (अर्थात् मेरी मूर्खता की बराबरी नहीं कर सकते) ॥ १ ॥ सुन्दररूप और आहार के वश उन दोनों ने अग्नि और लोहे को जाना नहीं (अर्थात् पतंग अग्नि का सुन्दर रूप देखकर उसमें गिर कर मरा और मछली चारे के लालच से काँटे में फँसकर मरी) और मैं विषय की विपत्ति को देखकर भी उसे नहीं छोड़ता हूँ इसी से मैं बड़ा मूर्ख हूँ ॥ २ ॥ महामोहरूपी अपार नदी में बराबर बहता फिरता हूँ और श्रीभगवान् के चरण-कमलरूपी नौका को छोड़कर बार बार झागों को पकड़ता हूँ ॥ ३ ॥ जैसे बड़ा भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी को मुख में भर कर पकड़ता है और अपने तालुये में अड़ जाने से जो लोहू निकलता है उसे पीकर मन में संतोष करता है ॥ ४ ॥ (फिर दूसरी मूर्खता दिखाते हैं कि) बड़े कठिन संसाररूपी सर्प के डसने से तो मैं बड़ा भारी डरा हुआ हूँ और गरुड़नाथ भगवान् को भूलकर मेढ़क की शरण में जाकर अभय चाहता हूँ (इससे अधिक मूर्खता क्या होगी क्योंकि मेढ़क को तो साँप स्वयं खा जायगा, वह मेरी रक्षा क्या करेगा: साँप से तो भगवान् ही बचा सकते हैं। क्योंकि उनकी आज्ञा से उसको गरुड़ खा जायगा) ॥ ५ ॥ जैसे जल के

जीवों के समूह जाल के भीतर सिमट कर पास पास हो जाते हैं और लालच के वश एक को एक खाता है, और अपना नाश नहीं देखते (कि हम भी थोड़ी देर में मारे जायँगे । ऐसा अज्ञान !) ॥ ६ ॥ मेरे पापों को सरस्वती अनेक युगों तक गिनती रहे तो भी पार नहीं पा सकती पर तुलसीदास के जी में यह भरोसा है कि हे प्रभो ! तुम पतितों के पवित्र करनेवाले हो, (सो मुझे भी अवश्य पवित्र करोगे) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—अ ऊ = वे भी । पावक = अग्नि । संतत = बराबर । खगपतिनाथ (गरुड़ के स्वामी) = भगवान ।

[६३]

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ।
जेहि करुना सुनि स्रवन दीन दुख धावत हौ तजि धाम ॥ १ ॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन्ह ।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन्ह ॥ २ ॥
दितिसुतत्रास त्रसित निसि दिन प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी ।
अतुलितबल मृगराजमनुजतनु दनुज हत्यौ स्रुति साखी ॥ ३ ॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी ।
बसनपूरि अरिदर्प दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥ ४ ॥
एक एक रिपुतें त्रासित जन तुम राखे रघुबीर ।
अब मोहि देत दुसह दुख बहुरिपु कस न हरहु भवभीर ॥ ५ ॥
लोभग्राह दनुजेस क्रोध कुरुराजबंधु खलमार ।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु रामउदार ॥ ६ ॥

हे राम ! अब तुम उस करुणा को कहाँ भूले कि जिस करुणा के कारण दीनों के दुःख कानों से सुन कर तुम अपना धाम छोड़ कर दौड़ते हो ॥ १ ॥ (जो कहो कि कहाँ दौड़े तो) गजेन्द्र ने जब अपने बल को विचारा (कि मैं ग्राह से कैसे जीतूँगा तब) हृदय में हार कर तुम्हारे चरणों में चित्त लगाया (अर्थात् तुम्हारा स्मरण किया) सो उसके दुख की वाणी को सुनते ही तुमने गरुड़ को छोड़ कर जाने में देरी

नहीं की (अर्थात् पैदल ही भागे)॥२॥ प्रहलाद जो कि हिरण्यकशिपु के क्लेश से रात-दिन दुखी रहता था उसका प्रण रक्खा। बड़े भारी बली सिंह (का सा मुख) और मनुष्य का सा शरीर धारण करके उस दैत्य को मारा, इसका वेद साक्षी है॥३॥ राजा (दुर्योधन) की सभा में जब (द्रौपदी का चीर खिँचने लगा तब उसने) राजाओं की ओर देखा और (जब भीष्म, कर्ण आदि कोई भी न बोला तब) अर्जुन की स्त्री (द्रौपदी) पुकारी कि हे कृष्ण! (मेरी लाज) रक्खो तब हे भगवन्, तुमने वस्त्र से (उसकी देह को) ढाँक कर, और शत्रुओं का (भारी) घमंड दूर कर बड़ी कृपा की॥४॥ हे राम! (गजेन्द्र आदि) शत्रुओं से दुखी जनों की तो तुमने एक एक शत्रु से ही रक्षा की (अर्थात् ग्राह से गजेन्द्र की, हिरण्यकशिपु से प्रहलाद की इत्यादि) और मुझे तो अब बहुत से शत्रु कठिन दुःख दे रहे हैं सो मेरे संसाररूपी भय को क्यों नहीं हरते हो॥५॥ हे प्रभो! लोभरूपी ग्राह, क्रोधरूपी हिरण्यकशिपु, कामरूपी दुष्ट दुश्शासन मुझ तुलसीदास को बड़ा कठिन दुःख देते हैं उनका नाश करो (क्योंकि) हे राम! तुम बड़े दाता हो, (इतना माँगा) मुझे दो॥६॥

शब्दार्थ—दिति-सुत = हिरण्यकशिपु। दनुजारी = दनुजों (दैत्यों) के वैरी भगवान्। दनुजेस = हिरण्यकशिपु। कुरुराज-बंधु = दुर्योधन का भाई दुश्शासन। मार = काम। नर = अर्जुन।

[९४]

काहे ते हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो॥१॥
पतितपुनीत दीनहित असरन सरन कहत स्रुतिचारो।
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं बेदन मृषा पुकारो॥२॥
खग गनिका गज व्याध पाँति जहँ तहँ हौंहूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो॥३॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस ते न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन तेहि भजते तजि गारो॥४॥
मसक बिरंचि बिरंचि मसक सम करहु प्रभाउ तुम्हारो।
यह सामरथ अछत मोहि त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो॥५॥

नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो ॥ ६ ॥

हे राम ! मुझे क्यों भूल गये । हे नाथ ! अपनी महिमा और मेरे पापों को जानते हो तो भी मुझे नहीं सम्भालते हो ॥ १ ॥ तुम पापियों के पवित्र करनेवाले, ग़रीबों के हितू और जिसको किसी की शरण नहीं उसको शरण देनेवाले हो, यह बात चारों वेद कहते हैं (परन्तु तुम कृपा नहीं करते इससे मुझे मन में सन्देह होता है कि) क्या मैं पापी, भयभीत, और दीन नहीं हूँ (जो होता तो कृपा करते; और यदि मैं पापी हूँ और तुम दया नहीं करते तो) क्या वेद झूँठ (ठकुरसुहाती) बक रहे हैं (कि तुम पतित-पावन इत्यादि हो; और यदि वेद सच्चे हैं तो) ॥ २ ॥ खग (जटायु), गणिका, गजराज, व्याध (वाल्मीकि) इनकी पंगति जहाँ हो वहाँ मुझे भी बैठाओ (जो कहो कि वे तो सब उत्तम समय में हुए थे और तू कलि का जीव है, तुझे उनके साथ बैठाने में हमें शरम आती है तो जब उन महानीचों के तारने में शरम न आई तो) हे कृपा-निधान ! अब किस बात की शरम है जो परसी हुई पत्तल को हटाते हो ॥ ३ ॥ जो कलिकाल तुमसे अधिक बली होता और तुम्हारी आज्ञा से अलग होता (अर्थात् तुम्हारी आज्ञा मानना उसके लिए ज़रूरी नहीं होता) तो हे हरे ! तुम्हारा जो भरोसा करते हैं और गुण गाते हैं और क्रोध कर उसके दोष कहते हैं सो हम इस झंझट को छोड़ उसी को भजते (अर्थात् उसका भरोसा कर उसी के गुण गाते कि जिससे वह बाधक नहीं होता) ॥ ४ ॥ तुम तो मच्छर से ब्रह्मा और ब्रह्मा से मच्छर कर सकते हो, ऐसा तुम्हारा प्रभाव है । अपनी इतनी सामर्थ्य होने पर भी जो मुझे त्यागते हो, तो हे नाथ ! इसमें मेरा क्या चारा है अर्थात् मेरा कुछ वश नहीं है ॥ ५ ॥ और यद्यपि मैं (सब भाँति) हारा हूँ और नरक में पड़ने का भी मुझे डर नहीं है परन्तु मुझ तुलसीदास को यह बड़ा दुःख है कि प्रभु के नाम ने भी मेरे पापों को भस्म नहीं किया । (इसमें तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी और वेद झूँठे पड़ेंगे सो मैं तो तुम्हारा यश बढ़ाने के लिए पुकारता हूँ, आगे तुम्हारी इच्छा हो सो करो) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—अघ = पाप । मृषा = झूँठ । पनवारो = पत्तल । निदेस = आज्ञा । गारा = झगड़ा टंटा । अच्छत = होते हुए ।

[९५]

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं ।
जो जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं ॥ १ ॥

चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥
हँसि करिहैं परतीति भगत की भगत सिरोमनि मनिहैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कौसलपति अपनाएहि पर बनिहैं ॥३॥

(हे राम! जो तुम नरक में भेजोगे तो भी) मेरे इतने पाप और औगुन हैं कि जो यमराज अपना सब काम छोड़कर इन्हीं का ख्याल मन में लावेंगे (अर्थात् हिसाब करेंगे) तो भी नहीं गिन सकेंगे ॥१॥ (और एक दूसरी बात भी होगी कि जब तक मेरा लेखा करेंगे तब तक) पापियों के झुंड के झुंड छूट कर भाग जायँगे और फिर उनके जी में बड़ा सोच फैलेगा (कि अब क्या करें) और अपने अधिकार में खलल देख कर (कि भगवान् मुझे कहीं मौक़ूफ़ न कर दें सो मुझसे पीछा छुड़ाने के लिए) हे प्रभो! तुमसे मेरी बड़ी बड़ाई करेंगे (अर्थात् जब तुम पूछोगे कि महापापी तुलसीदास को तुमने क्या दंड दिया तब उन्हें यही कहना पड़ेगा कि तुलसी तुम्हारा भक्त है, तुम्हारे नाम के प्रभाव से उसके सब पाप बट्टेखाते कर दिये) ॥२॥ फिर तुम हँस कर मुझ भक्त की प्रतीति करोगे और मुझे भक्तों का शिरोमणि मानोगे (क्योंकि पहले भी तुम वाल्मीकि, शबरी, श्वपच आदि नीचों को भक्त-शिरोमणि कर चुके हो) सो हे अयोध्यापति राम! जैसे हो वैसे तुलसीदास को तो अपना बनाये पर ही बनेगी ॥३॥

[९६]

जो पै जिय धरिहो अवगुन जन के।
तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मो पै विपुल वृंद अघ वन के ॥१॥
कहि है कौन कलुष मेरे कृत कर्म वचन अरु मन के।
हरिहैं अमित शेष सारद स्रुति गिनत एक इक छन के ॥२॥
जो चित चढ़ै नाम महिमा निज गुन गन पावनपन के।
तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के ॥३॥

(जो भगवान् कहें कि हम कुछ नहीं करेंगे; तू शुभकार्य कर, उसी से तेरे पाप दूर हो जायँगे तहाँ गुसाईंजी कहते हैं कि) हे राम! जो इस जन के औगुनों को जी में

धरोगे अर्थात् लाओगे तो पुण्यरूपी नख से पापरूपी वन के बहुत से समूह मुझसे कैसे कटेंगे (भाव यह है कि मेरा पुण्य तो नाखून के बराबर है और मेरे पापों के वन के वन खड़े हैं सो उससे वे कैसे कट सकते हैं अर्थात् नहीं कट सकते) ॥ १ ॥ कर्म, वचन और मन से किये हुए मेरे पापों को कौन कह सकता है। एक एक छिन के (पापों को) गिनते गिनते अनगिनती शेषनाग, सरस्वती और वेद भी हार जायँगे (सो मेरे पुण्य का तो तुम भरोसा मत करो) ॥ २ ॥ जो तुम्हारे चित्त पर अपने नाम (१) की महिमा का और पवित्र करने के गुण-समूह का प्रण चढ़ेगा तो यमदूतों के दाँत तोड़ कर तुलसीदास को ऐसे तार देगे कि जैसे (अजामेल) ब्राह्मण को तार दिया था ॥ ३ ॥

[९७]

जो पै हरि जन के औगुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ॥ १ ॥
जो जप जाग जोग व्रत बरजित केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिवर विहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते ॥ २ ॥
जो जहँ तहँ प्रन राखि भगत को भजन प्रभाउ न कहते।
तौ कलि कठिन करम मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ॥ ३ ॥
जो सुतहित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते।
तौ जमभट साँसति हर हम से वृषभ खोजिखोजि नहते ॥ ४ ॥
जो जगविदित पतितपावन अति बांकुर विरद न बहते।
तौ बहुकल्प कुटिलतुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते ॥ ५ ॥

(गुसाईं जी ने पहिले पद में कहा है जो जन के औगुन धारण करोगे इत्यादि इस पर जो रामजी कहें कि हम भक्तों के गुण धारण करते हैं, अवगुण धारण नहीं करते उसी का फिर उत्तर देते हैं)—हे राम! जो तुम (भक्त) जनों के गुणों का ही ग्रहण करते

---

(१) पद्मपुराणे—"सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥ सरलार्थः।

तो इन्द्र, (१) दुर्योधन, (२) और बालि (३) से क्यों हठ करके वैर विसाते॥ १॥ जो जप, यज्ञ, योग और व्रत, इन्हें छोड़ कर केवल प्रेम नहीं चाहते तो देवता और श्रेष्ठ मुनियों को त्याग कर ब्रज में गोपों के घर में क्यों वास करते॥ २॥ और जो जहाँ तहाँ अपना प्रण रख कर भक्त के भजन के प्रभाव को नहीं कहते, तो कलियुग में (यज्ञ, तप आदि) कर्म-मार्ग तो बड़ा कठिन है (हो नहीं सकता फिर) हम सरीखे जड़ किस भाँति निभते॥ ३॥ जिसने पुत्र को बुलाने के लिए "नारायण" नाम लिया था ऐसे उस अजामेल (४) के अनगिनती पापों को जो तुम नहीं जलाते, तो यम के दूत हम सरीखे बैलों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर यमदंडरूपी हल में जोत देते (अर्थात् हमें पूरा पूरा दंड दिलाये बिना कभी नहीं मानते)॥ ४॥ और जो तुम संसार में विदित अपने पतितपावनरूप बड़े बाँके (यश के) बाने को नहीं धारण करते, तो बहुत से कल्प तक तुलसी सरीखे कुटिल (यों तो क्या) सुपने में भी सुन्दर गति नहीं पाते॥ ५॥

शब्दार्थ—कुरुराज = दुर्योधन। सांसति = यमपीड़ा। हर = हल। नहते = जोतते। बिरद = बाना। बांकुर = बांका।

[६८]

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।

निज प्रभुता बिसारि जन के वस होत सदा यह रीति॥ १॥

जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरि।

सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरि॥ २॥

जाकी मायावस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।

करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन तेहि नाच नचायो॥ ३॥

---

(१) इंद्र से वैर यों हुआ था कि भगवान् सतभामाजी के लिए इंद्रलोक से कल्पवृक्ष उखाड़ लाये थे।

(२) दुर्योधन से वैर पाण्डवों के कारण हुआ था। जब इनके कहने से ५ गाँव भी दुर्योधन ने नहीं दिये तब ये पाण्डवों का पक्ष लेकर युद्ध में गये और युद्ध कराया।

(३) बाली से सुग्रीव के पीछे वैर हुआ था। कथा रामायण में है।

(४) अजामेल बड़ा दुष्ट दुराचारी था। जन्म भर उसने पाप किये पर मरते समय अपने पुत्र नारायण को पुकारा और पुत्र के बहाने से जो भगवान् का नाम उसके मुख से निकला उससे वह तर गया।

विस्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति वेद विदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख॥ ४॥
जाको नाम लिये छूटत भव जनम मरन दुखभार।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जन्म्यों दस बार॥ ५॥
जोग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनिज्ञानी।
वानर भालु चपल पसु पाँवर नाथ तहाँ रति मानी॥ ६॥
लोकपाल जम काल पवन रवि ससि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत कर धारी॥ ७॥

(भगवान् भक्ति के अधीन हैं सो ही कहते हैं) भगवान् दासों पर ऐसी प्रीति करते हैं कि अपनी प्रभुता को भूल कर भक्तजन के वश हो जाते हैं यह सदा की रीति है॥ १॥ जिसने देवता, असुर, नाग और नरों को बड़ी पक्की कर्म की डोरी से बाँध रक्खा है उसी अविच्छिन्न (अंश, कलादि रहित) परब्रह्म (भगवान्) को यशोदाजी ने हठ करके (ऐसी रस्सी से) बाँध दिया कि जिसे वह छुड़ा न सके॥ २॥ जिसकी माया के वश होकर ब्रह्मा और शिवजी नाचते फिरे और पार नहीं पाया, उसी को गोपियों ने हथेली पर ताल बजा बजा कर नाच नचाया॥ ३॥ और वह विश्व का पालन करनेवाला, लक्ष्मी का पति और तीनों लोक का स्वामी है यह लिखावट वेद में लिखी है पर यह सुन्दर प्रभुता राजा बलि (१) से कुछ नहीं चली (वहाँ तो प्रेम के कारण) वामन बन कर ही भीख माँगनी पड़ी॥ ४॥ जिसके नाम लिये से संसार के जन्म, मरण और दुःख का भार छूट जाता है, उसी कृपा के समुद्र ने अम्बरीष (सरीखे भक्तों) के लिए दश बार जन्म लिया॥ ५॥ योग, विराग, ध्यान, जप, तप करके जिसको ज्ञानी मुनीश्वर ढूँढ़ते हैं उस नाथ ने वहाँ चंचल रीछ-बन्दर नीच पशुओं में प्रीति मानी अर्थात्

(१) जब राजा बलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ तब इन्द्र घबरा कर विष्णु के पास गये। विष्णु ने धीरज देकर राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की और आप वामनरूप धर कर बलि के पास गये और जाकर तीन चरण भूमि माँगी। जब राजा ने इनको दान दिया तब दो चरण में ब्रह्मलोक पर्यन्त नाप कर तीसरे चरण से पृथ्वी माँगी। उस समय राजा ने कहा कि मेरी पीठ नाप लीजिए। इतना कहने पर भगवान् उससे प्रसन्न हुए और इन्द्र की कामना पूरी की।

उनसे प्रीति करी ॥ ६ ॥ लोकपाल, यम, काल, पवन, सूर्य, और चन्द्र ये सब जिसके आज्ञाकारी हैं हे तुलसीदास ! वही प्रभु उग्रसेन के द्वार पर हाथ में लकुटिया लिये खड़ा है। इसलिए भगवान् से प्रेम अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

[९९]

विरदु गरीबनिवाजु राम को।
गावत वेद पुरान संभु सुक प्रगट प्रभाउ नाम को ॥ १ ॥
ध्रुव प्रह्लाद विभीषन कपि जदुपति पाँडव सुदाम को।
लोक सुजस परलोक सुगति इन्ह में को हो राम काम को ॥ २ ॥
गनिका कोल किरात आदि-कवि इन्हते अधिक बाम को।
बाजिमेध कब कियो अजामिल गज गायो कब साम को ॥ ३ ॥
छली मलीन हीन सबही अँग तुलसी सो छीन छाम को।
नाम नरेस प्रताप प्रबल जग जुगजुग चलत चाम को ॥ ४ ॥

रामजी का बाना ग़रीबनिवाज है और उनके नाम का प्रभाव सबको विदित है जिसे वेद, पुराण, महादेव और शुक गाते हैं ॥ १ ॥ ध्रुव प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, उग्रसेन, पांडव, और सुदामा—इनको लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुगति दी सो इनमें राम के काम का कौन था ॥ २ ॥ गणिका, कोल, किरात, और आदि-कवि (वाल्मीकि) इनसे अधिक बुरा कौन था; अजामेल ने कब अश्वमेध यज्ञ किया था और गजेन्द्र ने साम वेद को कब गाया था ॥ ३ ॥ छली, पापी, और सब अंग (साधनों) से रहित तुलसी सरीखा दुबला, पतला कौन है पर (भगवान् के) नामरूपी राजा के प्रबल प्रताप से संसार में युग युग से चमड़े का (सिक्का) चलता आया है (भाव यह है कि नाम के प्रताप से नीच से नीच तरते चले आये हैं सो चमड़े के सिक्के के समान मैं क्या नहीं तरूँगा) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आदि-कवि = (वाल्मीकि जी)। बाम = टेढ़ा, नीच। बाजि = घोड़ा। मेध = यज्ञ।

[१००]

सुनत सीतापति सील सुभाउ ।
मोदु न मन तन पुलक नैन जलु सो नर खेहरु खाउ ॥ १ ॥
सिसुपन ते पितु मातु बंधुप्रिय सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम विधुवदनु रिसौहों सुपनेहुँ लख्यौ न काउ ॥ २ ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ ।
जितें हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ॥ ३ ॥
सिला सापसंताप विगत भइ परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेर हरष हिय चरन छुए को पछिताउ ॥ ४ ॥
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ ।
छमि अपराध छमाइ पाँय परि इतौ न अनत समाउ ॥ ५ ॥
कह्यौ राजु वनु दियौ नारिवस गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातु को मन जुगवत ज्यौं निजतनु मरम कुघाउ ॥ ६ ॥
कपि सेवा वस भये कनौड़े कह्यौ पवनसुत आउ ।
दीबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तूँ पत्र लिखाउ ॥ ७ ॥
अपनाए सुग्रीव विभीषन तज्यो न तिन छलछाउ ।
भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ ॥ ८ ॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जसु वरनत सुनत कहत फिर गाउ ॥ ९ ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेमपसाउ ॥ १० ॥

(अब रामचन्द्रजी के स्वभाव का वर्णन करते हैं ।) रामजी का शील-स्वभाव सुन कर (जिसके) मन में आनन्द न हो, जिसका शरीर पुलकायमान न हो, जिसके नेत्रों

में से आँसू न टपकें वह दुष्ट (भले ही) धूल फाँकता फिरे ॥ १ ॥ बालकपन से पिता, माता, भाई, गुरु, सेवक, मन्त्री और सखा कहते हैं कि रामजी के चन्द्र-समान मुख को किसी ने (यों तो क्या) सुपने में भी क्रोधित नहीं देखा ॥२॥ उनके संग (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) छोटे भाई और (अयोध्यावासियों के) बालक नित्य खेलते थे (उनके आपस के) अन्याय और नटखटपन को वे देखते रहते, अपने जीतने पर भी हार जाते, उनको पुचकार कर प्यार करते, दाव खुद देते और दूसरों से दिलाते थे ॥ ३ ॥ उनके पवित्र पाँव से छूते ही अहिल्या (गौतम के) शाप और (अपने) संताप से रहित हो गई। उन्होंने उसे सुन्दर गति दी पर उसका मन में हर्ष न लाये (वरन्) चरण से छूने का पछतावा किया (कि हमने ब्राह्मणी को पैर से छुआ) ॥ ४ ॥ जब महादेवजी का धनुष तोड़ कर राजाओं का अनादर किया और परशुरामजी ताव खा गये अर्थात् महाक्रुद्ध हो गये तब उनका अपराध क्षमा करके और (लक्ष्मणजी ने जो दुर्वचन कहे थे उनका अपराध) क्षमा करा कर वे उनके पैरों पड़े। इतनी समाई दूसरों में नहीं है ॥ ५ ॥ जिस राजा (दशरथ) ने राज्य देना कहा था और स्त्री के वश (अर्थात् उसकी बातों में आकर) वनवास दिया और (अन्त को) इस ग्लानि से गले अर्थात् मर गये। उसी बुरी माता का मन (भगवान्) ऐसे देखते रहे कि जैसे कोई अपने शरीर के मर्मस्थान में पके फोड़े को देखता हो (अर्थात् केकयी को कहीं हमसे खेद न हो) ॥ ६ ॥ हनुमानजी की सेवा के वश जब उपकृत हुए (अर्थात् उनके उपकार का बदला न दे सके) तब कहा कि हे पवनपुत्र! यहाँ आ, मेरे पास देने को तो कुछ नहीं है पर मैं तेरा ऋणी हूँ और तू धनी है (इस बात का चाहे तू) कागज़ लिखा ले ॥ ७ ॥ सुग्रीव और विभीषण को अपना बनाया पर उन्होंने छल (तो क्या छल) की छाया भी नहीं छोड़ी। (अर्थात् बाली के मरने पर जब भगवान् ने सुग्रीव को राज्य दिया तब वह विषय में पड़ सीताजी के लाने की सुध भूल गया पर पहले कहता था कि "सुखसंपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई;" इसी भाँति विभीषण ने पहले तो कहा कि "उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही;" फिर जब राज मिला तब ऐसा विषय में लिप्त हुआ कि अपनी स्त्री से क्या मन्दोदरी जो बड़े भाई की स्त्री—माता के समान—थी उसे घर में रख लिया)। रामजी ने भरतजी की सभा में सुग्रीव और विभीषण का सम्मान कर उनकी सराहना की तब भी हृदय में तृप्ति नहीं हुई अर्थात् मन नहीं भरा ॥ ८ ॥ भक्त पर जो दया और करतूत की उसकी जब चर्चा चली तब शरमा गये और जिसने

एक बार भी प्रणाम किया उस भक्त के यश का वर्णन सुनते हैं तो कहते हैं कि फिर गाओ ॥ ६ ॥ सो ऐसे रामजी के गुण-समूहों को समझ समझ कर हृदय में प्रे॰ को बढ़ा कि (जिससे) हे तुलसीदास ! सहज में ही प्रेम के प्रसाद से रामजी के चरणों ॰॰॰ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—खेहरु = धूल, मिट्टी । अनट = अन्याय । अपाउ = नटखटपन । समाउ (समा संवाई) – शक्ति, ताक़त । गलानि = दुख, नफ़रत । चपत = चपना, शरमाना । सकृत = एक बार । पसाउ = प्रसाद ।

[१०१]

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतितपावन जग केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥
कौने देव बराय विरद हित हठि हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषान विटप जड़ जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस विचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

हे नाथ ! तुम्हारे चरण छोड़कर कहाँ जाऊँ ? किस दूसरे का नाम पतितपावन है और संसार में किसको ग़रीब बड़े प्यारे हैं (अर्थात् किसी को नहीं, केवल तुमको ही हैं) ॥ १ ॥ (जो कहो कि बहुत से देवता हैं तो) ऐसा कौन सा देवता है कि जिसने (अपने पतितपावन) बाने के लिए छाँट छाँट कर बार बार हठपूर्वक नीचों को तारा हो (क्योंकि) पक्षी (जटायु), मृग (१) (रीछ बन्दर), व्याधा (वाल्मीकि), पत्थर (अहिल्या और दंडक वन के) वृक्ष आदि और महामूर्ख यवन इनको किस देवता ने तारा है (अर्थात् नीचों के उद्धार करने का बाना तुम्हारा ही है) ॥ २ ॥ (दूसरे) देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्य ये तो विचारे आपही माया के वश हो (दुःख भोग) रहे हैं (ये किसी को क्या तारेंगे) सो हे प्रभो ! यह तुलसीदास अपने को उनके हाथ क्या हारे (अर्थात् उनकी शरण में जाकर क्या करे) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पतितपावन = पापियों के पवित्र करनेवाले । जवन = एक महा नीच जाति ।

---

(१) संकेत—मृग का अर्थ केवल हरिण ही नहीं है, वन के जीवों को भी मृग कहते हैं इसलिए रीछ-बन्दरों का अर्थ लिया गया और व्याधा का अर्थ बहेलिया और पाषाण का अर्थ पत्थर है परन्तु प्रसंगवश यहाँ व्याधे से वाल्मीकि और पाषाण से अहिल्या का अर्थ किया है ।

[१०२]

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो ।
साधनधाम बिबुधदुरलभ तन मोहिं कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार ।
तदपि नाथ और कछु माँगौं दीजै परम उदार ॥ २ ॥
विषय वारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
तेहिते सहौं विपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥
कृपा डोरि वनसी पदअंकुस परम प्रेम मृदु चारो ।
एहि विधि वेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥
है स्तुतिविदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरे ।
तुलसिदास यहि जीव मोहरजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरे ॥ ५ ॥

(अब गोसाईंजी भगवान् के उपकार को जताते हैं) हे भगवन् ! तुमने (मेरे ऊपर) बड़ी कृपा की कि मुझे साधनों का मन्दिर (अर्थात् जिससे भक्ति, ज्ञान आदि सब साधन हो सकें) और जो देवताओं को भी कठिनता से मिल सके ऐसा (मनुष्य) शरीर कृपा करके दिया ॥ १ ॥ यद्यपि प्रभु की एक एक भलाई (ऐसी है कि एक मुख से तो क्या) करोड़ों मुखों से भी नहीं कही जा सकती है तो भी हे नाथ ! कुछ और माँगता हूँ सो दो क्योंकि तुम बड़े दानी हो ॥ २ ॥ (वह यह है कि कान का विषय शब्द, त्वचा का स्पर्श, नेत्रों का रूप, जिह्वा का रस, और नाक का गंध है सो) विषय-रूपी जल से मेरा मनरूपी मच्छ कभी एक पल के लिए भी अलग नहीं होता और इससे मैं अनेक योनियों में जन्म लेते लेते महा कठिन दुःख सहता हूँ ॥ ३ ॥ (सो जैसे शिकारी वंशी के द्वारा जल में से मच्छ पकड़ते हैं ऐसे ही तुम विषयरूपी जल में से मेरे मनरूपी मच्छ को निकालो; उसका उपाय यह है कि मेरे ऊपर जो तुम्हारी) कृपा है उसकी तो डोरी बनाओ और तुम्हारे चरण में जो अंकुश (१) का

(१) यहाँ अंकुश के कहने का यह भाव है कि जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है ऐसे ही भगवान् के चरण में जो अंकुश का चिह्न है उसका ध्यान करने से मनरूपी मतवाला हाथी विषयों से अलग होकर अच्छे कामों में लग जाता है ।

चिह्न है उसे वंशी का काँटा बनाओ फिर उसमें बड़े प्रेम का कोमल चारा (चिपकाओ) और इस प्रकार (इस मनरूपी मच्छ को) बेधकर (अर्थात् काँटे में उलझा कर और खेंचकर) मेरा (जन्म मरण आदि) दुःख दुर कर दो। हे राम ! तुम्हारे लिए यह खेल है। ४ ॥ (यों तो) वेद में (यज्ञ, जप, तप आदि अनेक) उपाय कहे हैं और (गणेश, शिव, दुर्गा आदि) सब देवता भी (फलदायक) हैं (पर यह) ग़रीब किस किस से निहोरा करता फिरे। तुलसीदास (तो यह चाहता है कि) जिसने इस जीव को मोह की रस्सी में बाँधा है वही छोड़े ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विबुध = देवता। विषय = इन्द्रियों का कर्म। भिन्न जुदा। दारुन = कठिन। वंशी = मछली पकड़ने का कांटा। स्रुति = वेद। रज्जु = रस्सी। मोह – अज्ञान।

[१०३]

यह विनती रघुबीर गुसाँईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरु जिय की जड़ताई ॥ १ ॥
चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़ियो कमठअंड की नाईं ॥ ३ ॥
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सों होहिं सिमिटि एक ठाईं ॥ ४ ॥

(अब अपनी इच्छा को स्पष्ट कहते हैं) हे स्वामी ! रघुनाथजी ! (मेरी) यह विनती है कि यह जीव दूसरे (यज्ञ, जप आदि कर्म) की आशा, (मंत्र-तंत्र आदि का) विश्वास और (अन्य देवताओं का) भरोसा करता है सो इसकी इस मूर्खता को दूर कर दो ॥ १ ॥ मैं मुक्ति, सुन्दर बुद्धि, (धन धाम आदि) सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि और (संसार में) बड़ी भारी बड़ाई कुछ नहीं चाहता, (मैं तो यह चाहता हूँ कि) हे राम ! तुम्हारे चरणों में मेरा प्रेम बिना किसी कारण के दिन पर दिन अधिक बढ़ता रहे (किसी तरह घटने न पावे) ॥ २ ॥ और मेरा खोटा कर्म मुझे जहाँ जहाँ (जिस

योनि में) अपनी जबरई से ले जाय वहाँ वहाँ (उस योनि में) जैसे कछुआ अपने अंडों का स्मरण रखता है ऐसे ही दिन भर रात तुम अपनी कृपा न छोड़ना (अर्थात् मेरे ऊपर सदा कृपादृष्टि रखना) ॥ ३ ॥ और इस संसार में जहाँ तक (स्त्री, पुत्र आदि से) इस शरीर की प्रीति, प्रतीति और नाता है सो सब एक जगह सिमट कर हे प्रभो! तुमसे ही हो (ऐसा करिए) । ४ ॥

शब्दार्थ—विपुल = बड़ो । छोह = कृपा । कमठ = कछुआ । जनि = मत, न ।

[१०४]

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चितु कहै रामसीयपद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥ १ ॥
उपजी उर परतीति सुपनेहूँ सुखु प्रभु विमुख न पैहौं।
मन समेत या तनु के वासिन्ह इहै सिखावनु दैहौं ॥ २ ॥
स्रवननि्ह अवर कथा नहि सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन विलोकत औरन सीसु ईसही नैहौं ॥ ३ ॥
नातो नेहु नाथ सों करि सब नाते नेह बहैहौं।
है छर-भारु ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥ ४ ॥

(अब गुसाईंजी अपनी वृत्ति कहते हैं) मैं जानकीजी के जीवन (प्राण) रघुनाथजी की बलि जाऊँगा (अर्थात् अपना तन, मन, धन, उन पर निछावर करूँगा) । मेरा मन यही कहता है कि सीतारामजी के चरणों को छोड़ अब कहीं नहीं जाऊँगा ॥१॥ (क्योंकि) मेरे मन में ऐसा भरोसा होगया है कि भगवान् के चरणों से विमुख होकर (इस संसार में तो क्या) सुपने में भी सुख नहीं पाऊँगा और मैं मन समेत इस शरीर में रहनेवाली (इंद्रियों) को भी यही सलाह दूँगा (कि तुम भी सब विषय-भोगों का त्याग कर भगवान् के चरणों में लगी रहो) ॥ २ ॥ मैं कानों से (रघुनाथजी को छोड़) और किसी की कथा नहीं सुनूँगा और जीभ से औरों को नहीं गाऊँगा । (रामजी के सिवा) दूसरे के देखने से नेत्रों को रोकूँगा (अर्थात् भगवान् के ही दर्शन किया करूँगा) और अपने शिर को रामजी के सामने ही झुकाऊँगा (अर्थात् और किसी को प्रणाम भी नहीं करूँगा) ॥ ३ ॥ और रामजी से ही

नाता और प्रेम करके (माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि के) सब नाते और स्नेह को बहा दूँगा (भाव—किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं रक्खूँगा। जो कहो कि ऐसा करने से संसार में बुराई होगी तो) संसार में मैं तुलसीदास जिसका दास कहाऊँगा उसी पर यह सब बोझा है (अर्थात् उसी के सिर सब बुराई भलाई है) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—परिहरि = छोड़ कर। स्रवण = कान।

[१०५]

अबलौं नसानी अब न नसैहौं।

रामकृपा भवनिसा सिरानी जाग्यों फिरि न डसैहौं ॥ १ ॥

पायो नाम चारु चिंतामनि उर कर तें न खसैहौं।

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं ॥ २ ॥

परवस जानि हँस्यो हौं इंद्रिन्ह निजवस ह्वै न हँसैहौं।

मन मधुपहि पनु कै तुलसी रघुपतिपदकमल बसैहौं ॥ ३ ॥

(गुसाईंजी पछताते हैं कि) अब तक (मेरी अवस्था रघुनाथजी के भजन बिना वृथा) गई सो गई पर अब (जो रही है उसका इस भाँति वृथा) नाश नहीं होने दूँगा और श्रीरामजी की दया से संसाररूपी रात्रि बीत चुकी (अर्थात् मैं जो संसार की माया में भूल रहा था सो राम की कृपा से दूर हुई) अब जागने पर फिर (पहले की भाँति (उस मायारूप खाट पर) बिछौना नहीं बिछाऊँगा (अर्थात् अब उस माया के भ्रम में नहीं पड़ूँगा) ॥ १ ॥ (अब आगे क्या करना है सो कहते हैं कि मैंने जो रामजी का) नामरूपी सुन्दर चिन्तामणि पाया है उसे हृदयरूपी हाथ से नहीं गेरूँगा (अर्थात् अब सदा हृदय से रामनाम रटना नहीं छोड़ूँगा) और श्रीरामजी का साँवरा पवित्र सुन्दर स्वरूप सोई कसौटी है उस पर अपने चित्तरूपी कंचन को कसूँगा (अर्थात् जैसे सोना कसौटी पर कसा जाता है तब उसका खरापन जान पड़ता है ऐसे ही मेरे चित्तरूपी सोने में जो विषयवासनारूपी मैल मिल रहा है उसे ज्ञानरूपी अग्नि में जला कर श्यामसुन्दर रघुनाथजी में लगाऊँगा तब उसका खरापन जान पड़ेगा और जब स्मरण करते समय मेरा मन किसी विषय में न जायगा तब जानूँगा कि शुद्ध हुआ। भाव यह है कि ऐसे मन से ध्यान करूँगा) ॥ २ ॥ (जैसे मन्त्रीजन मूर्ख राजा को अपने वश में कर उसे लूटते और उसकी हँसी उड़ाते हैं ऐसे ही नेत्र आदि) इन्द्रियों ने मुझे

परवश (अर्थात् अपने वश में) जान कर मेरी हँसी उड़ाई है सो अब अपने को वश में करके (अर्थात् जितेन्द्रिय होकर) उनसे अपनी हँसी नहीं कराऊँगा (अर्थात् उन्हें विषय-वासना से रोक वश में रक्खूँगा) और मैं तुलसीदास अपने मनरूपी भौंरे को (जो विषय-वासनारूपी दुर्गन्धियों पर दौड़ता रहा है) प्रण करके (कि जिसमें और जगह न जाने पावे) श्रीरघुनाथजी के चरण-कमलों में निवास कराऊँगा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—भव = संसार । निसा = रात्रि । चारु = सुन्दर । चिंतामणि = जो मणि इष्ट पदार्थ को दे । मधुप = भौंरा ।

राग रामकली ।

[१०६]

महाराज रामादर्‌यो धन्य सोई ।
गरुअ गुनरासि सरवज्ञ सुकृती सूर सीलनिधि साधु तेहि सम न कोई ॥ १ ॥
उपल केवट कीस भालु निसिचर सबरि गीध सम दम दया दान हीने ।
नामु लिये रामु किये परमपावन सकल तरत नर तिनके गुन-गान कीने ॥ २ ॥
व्याध अपराध की साध राखी कौन पिंगलै कौन मति भगति भेई ।
कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम, कौन गजराज धौं बाजपेई ॥
पंडुसुत गोपिका विदुर कुबरी सबको सोध लिये सुद्धता लेस कैसो ।
प्रेम लखि कृष्ण करे आपने तिन्ह को अब सुजस संसार हरि हर को जैसो ॥ ४ ॥
कोल खस भिल्ल जवनादि खल राम कहे नीच ह्वै ऊँच पद कैं न पायो ।
दीन दुखदमन श्रीरमन करुनाभवन पतित पावन विरुद वेद गायो ॥

मंदमति कुटिल खलतिलकु तुलसी सरिस भो न तिहुँलोक तिहुँकाल कोऊ।
नाम की कानि पहिंचानि पन आपनो ग्रसत कलिकाल राख्यो सरन सोऊ ॥ ६ ॥

महाराज रामचन्द्रजी ने जिसका आदर किया है वही धन्य है (कैसा धन्य है कि ज्ञान, विज्ञान, क्षमा, शीलता आदि) जो बड़े बड़े गुण हैं उनकी राशि (अर्थात् बड़ा गुणी), सर्वज्ञ (तीनों काल की जाननेवाला), पुण्यात्मा, सूरमा, सुन्दर स्वभाव की खान (अर्थात् बड़ा सुशील), सज्जन और जिसके समान कोई भी नहीं है ॥ १ ॥ (जो कहो कि रामजी की सेवा से उसमें ये लक्षण कहाँ से आवेंगे तहाँ कहते हैं कि) पाषान (अहिल्या), केवट, बन्दर (सुग्रीव हनुमान आदि), रीछ (जामवंत), राक्षस (विभीषण आदि), शवरी और गिद्ध (ये सब) संयम, नियम, दया और दान से रहित थे (अर्थात् इन्होंने कुछ भी नहीं किया था पर) नाम लेते ही रामचन्द्रजी ने सबको ऐसा परम पवित्र कर दिया कि उनके गुणों का गान करने से मनुष्य (संसाररूपी समुद्र से) पार हो जाते हैं ॥ २ ॥ फिर व्याध (वाल्मीकि) ने कौन से अपराध की इच्छा बाक़ी रक्खी थी (अर्थात् हिंसा, लूट, मार, उनका काम ही था) और पिंगला (नाम वेश्या) ने अपनी मति कब भक्ति में लगाई थी (वह जन्म भर कुकर्म ही करती रही) और अजामेल पापी ने कौन सा सोम यज्ञ किया था और गजेन्द्र कौन सा वाजपेयी था ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर आदि (एक भी अपने पिता से उत्पन्न नहीं थे और एक स्त्री के पाँचों पति थे), गोपिका (पर-पति में रता थीं), विदुर (दासी के पुत्र थे), कुबरी (कंस की मालिन, दासी और कुरूपा थी) इन सबमें शुद्धता का लेश कैसा? (अर्थात् किसी भाँति की पवित्रता छू नहीं गई थी) इन सबको पवित्र कर दिया और प्रीति देख कर भगवान् ने इनको भी अपना बना लिया कि जिससे इनका सुन्दर यश इस संसार में विष्णु, महेश का सा छा रहा है ॥ ४ ॥ और कोल, खस, भील, म्लेच्छ आदि (सभी) दुष्ट थे पर नीच होकर भी रामनाम कह कर किसने ऊँचा (१) पद नहीं पाया अर्थात् सबने पाया। ग़रीबों के दुःखनाशक, लक्ष्मी के पति, करुणा के मन्दिर,

(१) यन्नामसंसर्गवशाद्द्विवर्णौ नष्टस्वरौ मूर्ध्नि गतौ स्वराणाम्। तन्नामपादौ हृदये निधाय देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति ॥ अर्थात् जिसके नाम के संसर्ग से दो अक्षर "रा—म" स्वर नष्ट होते ही स्वरों के ऊपर चले जाते हैं, ऐसे रामजी के पदों को हृदय में रखने से प्राणी ऊर्ध्व गति को क्यों नहीं पहुँचेगा।

पापियों के पवित्र करनेवाले, (ऐसे रामजी) का यश वेदों ने गाया है ॥ ५ ॥ (इन पर विश्वास न हो तो अब प्रत्यक्ष प्रमाण देख लो कि) मंदबुद्धि, कुटिल और दुष्टों का शिरोमणि तीनों लोकों में और तीनों कालों में तुलसीदास सरीखा कोई नहीं हुआ, उसे भी अपने नाम के लिहाज़ से (अर्थात् कहीं पतित-पावन नाम में बट्टा न लगे इस कारण) अपना प्रण याद करके कलिकाल से डसते हुए को अपनी शरण में रख लिया ॥ ६ ॥

सन्धि-विभाग—राम + आदरयो ।

शब्दार्थ—गरुअ = भारी । उपल = पत्थर । कीस = बन्दर । जाजी = यज्ञ करनेवाला । वाजपेई = वाजपेय यज्ञ करनेवाला । विरद = यश । भौ = हुआ ।

राग बिलावल ।

[१०७]

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम ।
सुभग सरोजसुलोचन सुठि सुंदर स्याम ॥ १ ॥
सिय समेत सोहैं सदा छबि अमित अनंग ।
भुज बिसाल सर धनु धरें कटि चारु निषंग ॥ २ ॥
बलि पूजा माँगै नहीं चाहै एक प्रीति ।
सुमिरनही मानै भलो पावन सब रीति ॥ ३ ॥
देइ सकल सुख दुख दहै आरतजनबंधु ।
गुन गहि अघ औगुन हरै ऐसो करुनासिंधु ॥ ४ ॥
देस काल पूरन सदा वद वेद पुरान ।
सब को प्रभु सब मों बसै सब की गति जान ॥ ५ ॥
को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ।
तुलसिदास तेहि सेइये संकर जहि सेव ॥ ६ ॥

कोशल देश के स्वामी रामचन्द्रजी मेरे (इष्टदेव सबसे) अच्छे देवता हैं, सुन्दर कमल से उनके नेत्र हैं और (उनका शरीर) अत्यन्त सुन्दर साँवला है ॥ १ ॥ सदा जानकीजी के संग शोभायमान रहते हैं और उनकी अनगिनती कामदेवों की सी

छवि है, अपनी लम्बी लम्बी भुजाओं में धनुष-बाण और कमर में सुन्दर तरकस धारण किये हैं ॥ २ ॥ वे भेट पूजा कुछ नहीं चाहते केवल प्रीति चाहते हैं और ध्यान धरते ही भला मान लेते हैं (अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं) और उनकी सब रीति पवित्र (अर्थात निष्कपट) है ॥ ३ ॥ सब सुखों के दाता और दुःखों के भस्म करनेवाले हैं। दुखी भक्तों के भाई समान (हितकारी) और गुणों को ग्रहण कर पाप और अवगुणों के हरनेवाले ऐसे दया के समुद्र हैं ॥ ४ ॥ (सब) देशों में तथा (सब) कालों में सदा पूर्ण रहते हैं (अर्थात् घटते बढ़ते नहीं) यह वेद-पुराण कहते हैं (फिर सुर, नर, नाग आदि) सबके प्रभु (अर्थात् उनके पालने में समर्थ) और सबमें निवास करते हैं और सबकी गति को जानते हैं ॥ ५ ॥ सो (ऐसे स्वामी को पाकर) कौन करोड़ों भाँति की कामना करके बहुत से देवताओं को पूजै। हे तुलसीदास ! उसी की सेवा करनी चाहिए कि जिसकी (सेवा देवों के देव) महादेवजी करते हैं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सरोज = कमल। अमित = बेहद । अनंग = (नहीं है अंग जिसके) कामदेव। निषंग = तरकस। आरत = दुखी। अघ = पाप।

[१०८]

वीर महा अवराधिये साधे सिधि होइ ।
सकल काम पूरन करै जानै सब कोइ ॥ १ ॥
वेगि विलंब न कीजिये लीजै उपदेस ।
बीजमंत्र जपिए सोई जो जपत महेस ॥ २ ॥
प्रेमवारि तरपन भलो घृत सहज सनेहु ।
संसय समिध अगिन छमा ममता बलि देहु ॥ ३ ॥
अघ उचाट मनवस करै मारै मद मार ।
आकरषै सुखसंपदा संतोष विचार ॥ ४ ॥
जेहि एहि भाँति भजनु कियो मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभु पथ चढ़यो जो लेहु निर्बाहि ॥ ५ ॥

महावीर (रघुवीर) की आराधना करनी चाहिए कि जिसके साधने से (मारण, उच्चाटन, वशीकरण, आकर्षण और लोक, परलोक के सब कामों की) सिद्धि होती है।

वे सब कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं (इस बात को सुर, नर, मुनि) सब जानते हैं ॥ १ ॥ सो (उस आराधना को) जल्दी करो, देर न करनी चाहिए और (अच्छे गुरु से) उपदेश लेकर उसी महा मन्त्र (राम) का जप करना चाहिए कि जिसे शिवजी जपते हैं ॥ २ ॥ (मन्त्र जपने के पीछे तर्पण, हवन और बलिदान होता है सो कहते हैं) प्रेम-रूपी जल का तर्पण करे और सहज स्नेहरूपी सुन्दर घृत और संशयरूपी समिधा (इन दोनों) का क्षमारूपी अग्नि में हवन करे और ममता का बलिदान करे ॥ ३ ॥ (यह क्या फल करेगा कि) पापों का उच्चाटन कर मन को वश में करेगा, मद और काम को मारेगा और सन्तोष और आत्मज्ञानरूपी सुख-संपत्ति का आकर्षण करेगा ॥ ४ ॥ जिसने इस रीति से भजन किया है उसे रामचन्द्रजी मिले हैं। तुलसीदास भी उसी मार्ग पर चढ़ा है जो प्रभु निबाह लें ॥ ५ ॥ (इस भजन का भाव यह है कि पहले रामनाम जपे, फिर भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए उनसे प्रेम करे और धीरे धीरे स्त्री, पुत्र, माता, पिता आदि के सहज स्नेह और संशय (अर्थात् झूठे संसार की सत्यता) को त्याग कर क्षमा आदि गुणों को ग्रहण करे फिर ममता को हटा कर भगवान् के चरणों में मन लगावे। इस साधन से पाप नष्ट हो जायँगे, मन वश में होगा और अहंकार और काम आदि भी भस्म हो जायँगे और क्षमा सन्तोष और आत्मज्ञान होने से अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा; फिर उसमें रामजी के दर्शन होंगे) ॥

शब्दार्थ—समिध = लकड़ी। मार = कामदेव।

[१०६]

कस न करहु करुना हरे दुखहरन मुरारी।
त्रिविध ताप संदेह सोक संसय भय हारी ॥ १ ॥
येहु कलिकाल-जनित मल मति मंद मलिन मन।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार केहि भाँति जियै जन ॥ २ ॥
सब प्रकार समरथ प्रभो मैं सब विधि दीन।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करमविहीन ॥ ३ ॥
भ्रमत अनेक जोनि फिरों रघुपति पति आन न मोरे।
दुख सुख सहों रहों सदा सरनागत तोरे ॥ ४ ॥

तो सम देव न कोउ कृपालु समुझेउँ मनमाहीं ।
तुलसिदास हरि तोषिये सो साधन नाहीं ॥ ५ ॥

हे हरे ! हे मुरारे ! तुम दुःख के नाशक होकर मेरे ऊपर करुणा क्यों नहीं करते (अर्थात् जैसे मुर दैत्य को मार देवों पर कृपा कर उनका दुःख दूर किया ऐसे ही कलि को मार दया कर मेरा दुख दूर करो) तुम तीन प्रकार के ताप, (पाप भोगने का) सन्देह, शोक, (संसार के सच्चे होने का) संशय, और (यम पीड़ा का) भय इनके नाशक हो ॥ १ ॥ कलियुग में उत्पन्न हुए पाप से मेरी बुद्धि मन्द (अर्थात् ज्ञान और विचार से शून्य) हो गई है और चित्त (बुरे बुरे कामों में लगने से) पापी हो गया है तिस पर भी हे प्रभो ! तुम सँभाल नहीं करते तो यह दास किस भाँति जिये (यह समय तुम्हारे सँभालने का है) ॥ २ ॥ तुम सब भाँति समर्थ हो (कोई बात ऐसी नहीं कि न कर सकते हो) और हे नाथ ! मैं सब भाँति से ग़रीब हूँ, मन में यह जान कर भी कृपा नहीं करते तो मैं ही भाग्यहीन हूँ (क्योंकि जो दानी सबको दान दे और अपने को नहीं दे तो अपने ही भाग्य का दोष है दाता का क्या दोष) ॥ ३ ॥ (जो कहो कि पहले तू जिन देवताओं का भजन करता था उन्हीं से कह, वेही तेरे ऊपर कृपा करेंगे तहाँ कहते हैं कि) हे रघुनाथजी ! मैं अनेक योनियों में भ्रमता फिरा परन्तु मेरे स्वामी तो तुम्हीं रहे, दूसरा (सुर, मुनि कोई) नहीं रहा, और (कर्म के अनुसार) सुख, दुख भी सहता भोगता रहा पर रहा सदा तुम्हारी ही शरण में ॥ ४ ॥ क्योंकि तुम्हारे समान दया करनेवाला कोई देवता नहीं है यह मन में (ख़ूब) समझता हूँ और हे भगवन् ! जिस (श्रवण, कीर्तन, तप, यज्ञ, आदि) साधन से तुम्हें प्रसन्न करना चाहिए ऐसा साधन इस तुलसीदास के पास नहीं है (मैं तो कोरा तुम्हारी शरण हूँ सो कृपा कर इस कलि के पापों से बचाइए) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तीन प्रकार के ताप = गूढ़ार्थ कोश में देखो । मन्द = नीच । मलिन = मैला, पापी ।

[११०]

कहु केहि कहिये कृपानिधे भवजनित विपति अति ।
इंद्रिय सकल विकल सदा निज निज सुभाउ रति ॥ १ ॥
जे सुख संपति स्वरग नरक संतत सँग लागी ।
हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥ २ ॥

मैं अति दीन दयालु देव सुनि मन अनुरागे।
जो न द्रवहु रघुबीर धीर काहे न दुख लागे॥ ३॥
जद्यपि मैं अपराधभवन दुखसमन मुरारे।
तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे॥ ४॥

(जो कहो कि अपना दुख किसी दूसरे से क्यों नहीं कहता तहाँ कहते हैं कि) हे कृपानिधान! कहो इस संसार से उत्पन्न हुई (जन्म-मरण की) भारी विपत्ति किससे कहूँ (अर्थात् तुम्हीं उसे दूर करने को समर्थ हो क्योंकि अपने शरीर की इन्द्रियाँ तक तो साथ देती ही नहीं हैं नाक, कान, नेत्र आदि) सब इन्द्रियाँ तो अपने स्वभाव में लगने के लिए सदा बे चैन रहती हैं (अर्थात् अपने अपने विषयों में लगे विना उन्हें चैन नहीं पड़ता। आँखें चाहती हैं कि सुन्दर सुन्दर पदार्थ देखें, कान चाहते हैं कि रसीला गान सुनें, नाक चाहती है सुगंध सूँघूँ, जीभ चाहती है तर माल चक्खूँ और त्वचा सुन्दर मखमल के गुदगुदे तोशक, तकिये आदि का स्पर्श करना चाहती है)॥ १॥ और वे (इन्द्रियाँ) सुख, संपत्ति, स्वर्ग और नरक के साथ सदा लगी रहती हैं (अर्थात् बुरा भला सब ही काम करती हैं कि जिससे सुख, संपत्ति स्वर्ग भी मिले और नरक भी मिले)। मेरा अभागा मन भी हे हरे! तुम्हें छोड़ कर (अर्थात् तुम्हारे चरणों में न लग कर) वही (इन्द्रियों का सा) उपाय करता है (भाव—जो मन वश में हो तो इन्द्रियाँ क्या कर सकती हैं, सबका राजा तो मन है) सो हे देव! जब मैं बड़ा दुखी हुआ और तुम्हें (वेद पुराण के द्वारा और भक्तों के मुख से) दीनदयाल सुना तब तुममें मन लगाया (फिर भी तुम) रघुकुल के वीर और धीरजवान् होकर जो मेरे ऊपर कृपा नहीं करते तो मुझे क्यों न दुःख होगा (भाव—धनी के घर से भिखारी खाली हाथ जाय तो उसे बुरा लगे हीगा)॥ ३॥ (जो कहो कि तू बड़ा पापी है हम तेरे अपराध कहाँ तक दूर करें तहाँ कहते हैं कि) यद्यपि मैं अपराधों का घर हूँ (अर्थात् मुझमें तो पाप ही पाप भर रहे हैं) परन्तु हे मुर दैत्य के शत्रु! तुम तो सब दुःखों के नाशक हो (जैसे मुर दैत्य का नाश कर दिया ऐसे ही मेरे दुःखों का भी नाश कर दो) मुझ तुलसीदास को तुमसे यही आशा है क्योंकि तुम (कोल, किरात, शवरी आदि) बहुत से पापियों का उद्धार कर चुके हो (फिर मेरा क्यों न करोगे)॥ ४॥

शब्दार्थ—भव = संसार। सुभाउ = विषय। संतत = सदा। द्रवहु = कृपा करो। मुरारे = (मुर + अरि = मुरारि) मुर दैत्य के शत्रु, भगवान् (सम्बोधन में) हे मुरारे!

[१११]

केसव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि समुझि मनहिं मन रहिये ॥ १ ॥
सून भीति पर चित्र रंग नहिं तनु विनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरइ भीति दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥ २ ॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
वदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जेहि जाहीं ॥ ३ ॥
केउ कह सत्य झूठ कह केऊ जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने ॥ ४ ॥

हे केशव ! कुछ कहा नहीं जाता क्या कहूँ ? हे हरे ! तुम्हारी (संसार की) विचित्र रचना देखकर मन ही मन में समझ कर रह जाता हूँ ॥ १ ॥ (तुम्हारी विचित्र रचना कैसी है कि देहधारी चित्रकार तो रंग से चित्र को भीत अथवा किसी कागज़ आदि आधार पर बनाता है परन्तु) इस संसार को बिना शरीर के (निराकार) चितेरे ने शून्य अर्थात् अंतरिक्ष में बिना रंग के बनाया है । (फिर वह चित्र तो जल के धोने से मिट जाता है और) इसका आवागमन कर्मादिरूपी जल के धोने से नहीं मिटता (फिर उस चित्र को तो जड़ होने के कारण मृत्यु का भय नहीं है और इस संसार में) मृत्यु का भय (सबके पीछे) लगा है । (चित्र के देखने से तो सुख मिलता है, नेत्रों की तृप्ति होती है, चित्त प्रसन्न होता है पर) इस (संसार) की ओर देखने से दुख मिलता है अर्थात् इसकी बहुत देख भाल करने से यह असत्य भासने लगता है और इससे ग्लानि हो जाती है ॥ २ ॥ (जो कहो कि दुःख पाता है तो उससे दूर क्यों नहीं रहता है तहाँ कहते हैं कि) जैसे प्यासा मृग सूर्य की किरणों में जो लहरें उठती हैं उनको जल समझ कर पीने को जाता है पर वहाँ जल कहाँ धरा है जो उसकी प्यास मिटे वरन् वह दौड़ता दौड़ता काल के वश हो जाता है ऐसे ही यह जीव स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि संसाररूपी मृग-तृष्णा के जल में सुख की प्यास बुझाने जाता है पर वहाँ सच्चा सुख कहाँ धरा है उसमें तो बड़ा भयंकर कालरूपी मगर रहता है जिसका मुख नहीं दीखता पर जो चर अचर जल पीने जाता है उसे वह खाये चला जाता है (भेद इतना ही है कि जो संसार के विषय-सुख, जन्म, मरण आदि को सत्य मानता है उसको वह खाता है

श्रोर जो उन्हें झूठा मानकर अपने मन को अखंड सच्चिदानन्द में लगाये रहता है उसके पास वह नहीं आता जैसे प्रलय होने पर भी काग-भुशुंड का नाश नहीं हुआ) ॥ ३ ॥ कोई (अर्थात् पूर्व मीमांसावाला) कहता है कि संसार सत्य है (क्योंकि जो जैसा काम करता है वह वैसा फल पाता है) और कोई (उत्तर मीमांसावाला संसार को) झूठा (और ईश्वर को सत्य) बतलाता है और कोई (अर्थात् योग-शास्त्री ईश्वर और संसार) दोनों को मुख्य मानता है इस पर मैं तुलसीदास कहता हूँ कि जो कोई इन तीनों भ्रमों को त्याग देगा (और केवल रघुनाथजी की भक्ति (१) का भरोसा रक्खेगा) वह अपने (आत्मस्वरूप) को पहचान सकता है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भीति = डर । तनु = ओर, शरीर, विस्तार । हेरना = विचारना, ढूँढ़ना, देखना । बदन = मुख । जुगल = दो ।

[११२]

केसव कारन कौन गुसाँईं ।
जेहि अपराध असाध जानि मोहि तजेहु अज्ञ की नाईं ॥ १ ॥
परमपुनीत संत कोमलचित तिन्हहिं तुम्हहिं बनिआई ।
तौ कत विप्र व्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ॥ २ ॥
काल करम गति अगति जीव कै सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मैं फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥ ३ ॥
जौं तुम तजहु भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरें ।
मन वच करम नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुवीर निहोरें ॥ ४ ॥
जद्यपि नाथ उचित न होई अस प्रभु सैं करिअ ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हरी निठुराई ॥ ५ ॥

हे केशव! हे स्वामी! क्या कारण है जिस अपराध से मुझे दुष्ट जानकर अनजान की तरह त्यागते हो ॥ १ ॥ (जो कहो कि तू दुष्ट है, हमारी शरण योग्य नहीं, तो सुनिए कि) जो परम पवित्र और कोमल चित्तवाले संत हैं उनसे ही तुम्हारी बनी होती (अर्थात् उनको ही अपना बनाते और हमसे पापियों को छोड़ देते) तो तुमने ब्राह्मण (अजामेल), व्याध (वाल्मीकि) और गणिका को क्यों तारा ? क्या उनसे तुम्हारा कुछ

(१) सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।

नाता था ? (यदि नहीं था तो मेरे लिए क्यों चुपके हो) ॥ २ ॥ हे हरे ! (अपना ऐश्वर्य तो देखो) प्राणी की मृत्यु, कर्म, सुगति और दुर्गति ये सब तुम्हारे हाथ में हैं, सो मेरी ममता को हर कर कुछ ऐसा करो कि मैं तुम्हें भूलकर भटकता न फिरूँ ॥ ३ ॥ हे हरे ! जो तुम मुझे छोड़ भी दोगे तो भी मैं दूसरे देव को नहीं भजूँगा यह मेरा पक्का प्रण है (यथा—बनैं तो रघुबर ते बनैं जो बिगरैं भरिपूर । तुलसी औरन ते बनैं ता बनिबे में धूर) और तुम नरक में वा स्वर्ग में जहाँ भेजोगे वहाँ मैं मन, वचन, कर्म से हे रघुनाथजी ! तुम्हारी ही विनती करता रहूँगा (जो स्वर्ग में कोई मुझसे पूछेगा कि तू कौन है तो यही कह दूँगा कि रामजी का सेवक हूँ, उनकी ही कृपा से स्वर्ग भोगने आया हूँ और जो नरक में भेजोगे तो वहाँ भी कह दूँगा कि भगवान् का भेजा हुआ आया हूँ, परन्तु इसमें तुम्हारी ही बदनामी होगी) ॥ ४ ॥ सो हे नाथ ! यद्यपि यह उचित तो नहीं है कि स्वामी से ऐसी ढिठाई करूँ पर यह तुलसीदास तुम्हारी निठुराई देखकर रात-दिन दुःख पाता है (कहावत है-मरता क्या न करता—सो मुझे क्षमा करना) ॥ ५ ॥

[११३]

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे ।
प्रनतपाल पन तोर मोर पन जिअउँ कमलपद देखे ॥ १ ॥
जब लगि मैं न दीन दयालु तैं मैं न दास तैं स्वामी ।
तब लगि जे दुख सहेउँ कहेउँ नहिं जद्यपि अंतरजामी ॥ २ ॥
तैं उदार मैं कृपन पतित मैं तैं पुनीत स्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि अब न तजें बनि आवै ॥ ३ ॥
तैं जनक जननि गुरुबंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी ।
द्वैत रूप तम कूप परौं नहि अस कछु जतन बिचारी ॥ ४ ॥
सुन अदभ्र करुना वारिज-लोचन मोचन भय भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसै टरै न टारी ॥ ५ ॥

हे माधव ! अब तुम किस हिसाब से कृपा नहीं करते ! तुम्हारा प्रण (१) तो यह

(१) जैसा वाल्मीकीय रामायण में कहा है—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम । अर्थात् जो एक बार भी कहता है कि मैं आपका हूँ उसे मैं सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ । यह मेरा प्रण है ।

है कि भक्त का पालन करें और मेरा प्रण यह है कि तुम्हारे चरण-कमलों का दर्शन कर जिऊँ (नहीं तो प्राण छोड़ दूँ, फिर प्रतिज्ञा पूरी क्यों नहीं करते) ॥ १ ॥ (जो कहो कि इतने दिन से ऐसा हठ क्यों नहीं किया तो) जब तक मैं दीन नहीं हुआ और तुम दयालु नहीं हुए और जब तक मैं दास नहीं हुआ और तुम स्वामी नहीं हुए तब तक तो जो जो मैंने दुःख सहे सो तुमसे नहीं कहे यद्यपि तुम तो घट घट की जाननेवाले हो ॥ २ ॥ (अब जब तुमसे नाता होगया है तब तुमसे कहता हूँ। वह नाता कैसा है सो सुनो कि) तुम तो दानी और मैं कंगाल हूँ, (फिर) मैं तो पापी और तुम पवित्र हो ऐसा वेद गाता है । सो हे रघुनाथजी ! तुमसे और मुझसे (आपस में) बहुत से नाते हैं (मेरे कहने से क्या होता है, जीव और ईश्वर के अनेक नाते सदा से चले आये हैं) सो अब तुम्हें मुझे छोड़े नहीं बनेगा (छोड़ने से बात में बट्टा लगेगा क्योंकि चाहे जैसा आपस में विरोध हो पर किसी का नातेदार किसी से नहीं छुटता) ॥ ३ ॥ मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, मालिक और सब भाँति मेरा हित करनेवाले तुम ही हो सो ऐसा कुछ यत्न विचारो कि जिससे मैं द्वैतरूपी अंधे कुएँ में न गिरूँ (अर्थात् तुम्हें ही एक परब्रह्म समझूँ, दूसरे को नहीं) ॥ ४ ॥ हे कमलनेत्र ! सुनो - तुम्हारी बड़ी कृपा ही (संसार के) भारी भय (आवागमन) से छुड़ानेवाली है । हे प्रभो ! तुलसीदास का जो (संसार के सच्चे झूठे होने में) संशय है सो तुम्हारे प्रकाश विना (अर्थात् हृदय में तुम्हारा स्वरूप आये विना कर्मयोग इत्यादि से) टाला नहीं टल सकता ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—द्वैत = भेद । अदभ्र = बड़ी (संस्कृत शब्द है) । वारिज = कमल । तम = अँधेरा ।

[११४]

माधव मोहि समान जग माहीं ।
सब विधि हीन जु दीन मलिन अति लीन विषय कोउ नाहीं ॥ १ ॥
तुम्ह सों हेतु-रहित कृपालु आरतहित ईसहि त्यागी ।
मैं दुख सोक विकल कृपाल केहि कारन दया न लागी ॥ २ ॥
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना ।
ज्ञान-भवन तनु दिहेहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥ ३ ॥
वेनु करील श्रीखंड वसंतहि दूषन मृषा लगावै ।

सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहहु किमि पावै ॥ ४ ॥
सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि दृढ़विचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह सृंखला छूटिहि तुम्हरे छोरे ॥ ५ ॥

हे माधवजी ! संसार में मेरे बराबर सब साधनों से रहित, महापापी, अति ग़रीब और (इन्द्रियों के) विषयों में डूबा हुआ कोई नहीं ॥ १ ॥ तुम्हारे समान निष्कारण दया करनेवाले और दुखियों के हितकारी स्वामी को छोड़ मैं दुःख और शोक से व्याकुल हो रहा हूँ, तुम्हें किस कारण मुझ पर दया नहीं आती (सो मैं नहीं जानता) ॥ २ ॥ परन्तु तुम्हारा भी इसमें दोष नहीं है मैंने मान लिया कि मेरा ही दोष है क्योंकि तुमने मुझे जिस लिए यह ज्ञान का भण्डार (मनुष्य का) शरीर दिया था सो हे नाथ ! उसे पाकर भी मैंने प्रभु को नहीं जाना (अर्थात् मनुष्य-शरीर पाकर तुम्हारा भजन नहीं किया) ॥ ३ ॥ (जो कहो कि अपना दोष जानकर भी हमें दोष क्यों देता है तहाँ कहते हैं कि) बाँस और करील ये दोनों चन्दन और वसंत ऋतु को वृथा दोष लगाते हैं क्योंकि (बाँस तो) गूदारहित है (उसे चन्दन) कैसे सुगन्धि दे (भले ही मलयागिरि के सब पेड़ सुगन्धित हों) और (करील) भाग्यहीन है (अर्थात् ब्रह्मा ने उसके कर्मों में पत्ते नहीं लिखे इसमें वसंत का क्या दोष है इस लिए) वह पत्ते कैसे पा सकता है (सारांश यह है कि जो महापापी हैं और जिनके हृदय में तुमसे प्रेम नहीं उन पर तुम्हारी कृपा कैसे हो परन्तु यह तो सदा की रीति है कि मूर्ख अपना दोष न देखकर ईश्वर को दोष लगाता है) ॥ ४ ॥ हे हरे ! (अपने पापों के कारण) मैं तो सब प्रकार से कठिन हूँ, पर तुम तो कोमल-चित्त हो सो मैंने अपने जी में पक्का विचार कर लिया है कि हे प्रभो ! इस तुलसीदास की मोहरूपी बेड़ी तुम्हारे ही छुड़ाने से छूटेगी (अन्य देवता वा साधनों से नहीं छूट सकती) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—श्रीखंड = चन्दन। मृषा = झूठ। सुरभि = सुगन्ध। सृंखला = बेड़ी।

[११५]

माधव मोहपास क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय अभिअंतर ग्रंथि न छूटै ॥ १ ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससिप्रतिबिंब दिखावै।

ईंधन अगिनि लगाइ कल्पसत औटत नास न पावै ॥ २ ॥
तरु कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिअ विचारहीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥ ३ ॥
अंतर मलिन विषय मन अति तनु पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक जतन वलमीकि विविध विधि मारे ॥ ४ ॥
तुलसिदास हरिगुरुकरुना बिनु विमल विवेकु न होई ।
बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥ ५ ॥

हे माधवजी ! मोह का पास कैसे टूटे ! बाहरी (स्नान, पूजा, पाठ आदि) करोड़ों उपाय करो पर उनसे अंतःकरण के भीतर जो (अज्ञान की) गाँठ पड़ी है वह (आत्म-ज्ञान के बिना) नहीं छूट सकती ॥ १ ॥ (एक दृष्टान्त देते हैं कि) कढ़ाह में भरे हुए घी के भीतर जो चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दीखता है (उसके जलाने के लिए घी को) आग में ईंधन लगा लगाकर सौ कल्प तक औटाते रहो (पर इस ऊपरी उपाय से उस चन्द्रबिम्ब का) नाश नहीं होगा ॥ २ ॥ (अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं कि) वृक्ष के कोटर में जो पक्षी रहता है वह जैसे (वृक्ष के) काटने से नहीं मरेगा (वरन् कोटर से निकल कर इधर उधर उड़ता ही फिरेगा कि जब तक उसे पकड़ कर पिंजरे में बन्द नहीं करोगे) तैसे ही (जप, तप, यम, नियम आदि ऊपरी) साधन भले ही करो परन्तु आत्मज्ञान के बिना मन शुद्ध नहीं हो सकता (उसको तो जब तक पूरा वश में न करोगे तब तक विषयों में जाये बिना नहीं रहेगा) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं कि) जो मन भीतर से विषयों के कारण महा मैला हो रहा है उसे बाहर (१) से (शरीर) धोकर साफ़ किया चाहें (सो ऐसे नहीं हो सकता कि) जैसे अनेक भाँति साँप के बिल को ऊपर से मारने पर और बहुत से उपाय करने पर भी (भीतर से) साँप नहीं मरता है ॥४॥ सो हे तुलसीदास ! भगवान् और गुरु की कृपा बिना निर्मल ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के कोई संसाररूपी दुस्तर समुद्र का पार नहीं पा सकता। (भाव—मोहपास के टूटने में आत्मज्ञान ही कारण है) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अभिअन्तर = भीतर । विचार = आत्मज्ञान । उरग = साँप । वलमीकि = साँप की बाँबी । निधि = समुद्र ।

---

(१) आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था, सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ।

[११६]

माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥१॥
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै ॥ २ ॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौं पै मन सो रस पावै।
तो कत मृगजल रूपबिषय कारन निसि बासर धावै ॥ ३ ॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँचु बटोरै।
सपने परबस परै जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥ ४ ॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मनमाहीं ॥ ५ ॥

(अब माया की कठिनता और राम-कृपा से उसकी निवृत्ति दिखलाते हैं) हे भगवन् ! यह तुम्हारी माया ऐसी है (कि जिसमें फँसकर कर्म, योग, ज्ञान आदि) कितने ही यत्न करके पच मरो परन्तु जब तक तुम दया नहीं करते तब तक इसके पार नहीं जाया जाता ॥ १ ॥ (क्योंकि बड़े बड़े ज्ञानियों से) सुनता हूँ, आप विचारता हूँ और समझता हूँ (फिर दूसरों को) समझाता हूँ पर (उस माया की) दशा हृदय में नहीं आती (अर्थात् जब मन को एकाग्र कर आत्मवृत्ति को अखंड ब्रह्म में लगाता हूँ तब उसका अनुभव होता है परन्तु मन स्थिर नहीं रहता) और उस अनुभव बिना मोह से उत्पन्न कठिन संसार की विपत्ति (गर्भवास, मरण आदि) सताती है ॥ २ ॥ (हे भगवन्) ब्रह्मरूपी अमृत मीठा और शीतल होता है सो यदि मेरा मन उस रस को पावे तो विषयरूपी मृगजल के लिए रात-दिन क्यों भागता फिरे (परन्तु इस जीव की गति तो तुम्हारे अधीन है नहीं तो) ॥ ३ ॥ जिसके घर में निर्मल चिन्तामणि है वह काँचों को क्यों इकट्ठा करेगा (अर्थात् ब्रह्मरूपी मणि को पाकर विषयरूप झूठे काँच के नगों पर क्यों मन लगावेगा। यह केवल जीव का भ्रम है) जैसे कोई सपने में पराये वश जा पड़े और (छूटने के लिए उससे) निहोरा करे पर जब जग जाय और देखे (कि यह तो झूठा बन्धन है) फिर वह किसके पास जाकर निहोरा करेगा (भाव यह है कि जब तक जीव मोह-निद्रा में सोता है तब तक स्वप्न के भ्रम

समान संसार को सच्चा मानता है पर जब मोह-निद्रा दूर हुई और ज्ञान का प्रकाश हुआ तब संसार-बन्धन झूठा दिखाई देने लगता है पर आपकी कृपा बिना जीव को जागने की शक्ति कहाँ है)।। ४ ॥ यों तो ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन सब सच्चे हैं कोई झूठा नहीं (पर सबमें परिश्रम का काम है सो कलियुगी जीवों से हो नहीं सकता और जो किसी तरह करें भी तो संसार की सचाई का भ्रम दूर नहीं हो सकता सो अजामेल, केवट आदि की दशा स्मरण कर) हे हरे ! इस तुलसीदास के मन में तो भरोसा है कि तुम्हारी कृपा से भ्रम मिट जाता है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—दारुन = कठिन । पियूष = अमृत । चिन्तामणि = जिससे सब इष्ट वस्तुएँ प्राप्त हों ऐसा रत्न ।

[११७]

हे हरि कवन दोष तोहि दीजै ।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति सोइ निसि वासर कीजै ॥ १ ॥
जानत अरथ अनर्थ रूप तम कूप परब यहि लागे ।
तदपि न तजत स्वान अथ खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे ॥२॥
भूत द्रोहकृत मोहवस्य हित आपन मैं न विचारा ।
मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इन्हमहँ रहनि अपारा ॥३॥
वेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगव्यापी ।
भेदत नहिं श्रीखंड वेनु इव सारहीन मन पापी ॥ ४ ॥
मैं अपराधसिंधु करुनाकर जानत अंतरजामी ।
तुलसिदास भवव्याल ग्रसत तव सरन उरग-रिपुगामी ॥ ५ ॥

हे हरे ! तुझे कौन सा दोष दिया जाय ? (सब दोष मेरे ही हैं क्योंकि) जिस उपाय से मोक्ष का होना स्वप्न में भी दुर्लभ है उसी (विषय आदि कर्म) को रात-दिन करता रहता हूँ ॥ १ ॥ और जानता हूँ कि यह (इन्द्रियों का विषयरूपी) अर्थ अनर्थ का रूप है (अर्थात् इससे कभी सुगति नहीं होगी) और इसमें लगने से अज्ञानरूपी कुए में गिरूँगा तो भी जैसे कुत्ता हड्डी को नहीं छोड़ता उसी तरह इसे नहीं छोड़ता हूँ और गधे की तरह विषयों से ही प्रीति करता फिरता हूँ ॥ २ ॥ (जब विषयों में पड़ा

और सबने मने किया तब) जीवों से वैर तो बिसाया पर मोहवश अपना भला न सोचा (कि ये अच्छी कहते हैं, विषय को छोड़ तुम्हारा भजन करूँ वरन्) मद, ईर्ष्या, अहंकार आदि जो ज्ञान के वैरी हैं इनमें और भी अधिक पड़ा रहने लगा ॥ ३ ॥ वेद, पुराणों को सुनता और समझता भी हूँ (सबका सिद्धान्त यही है) कि हे रघुनाथजी ! तुम सब संसार में व्याप्त हो (अतएव किसी से वैर करना और किसी को सताना नहीं चाहिए) पर सारहीन (अर्थात् ज्ञान से शून्य) मेरे पापी मन में यह बात ऐसे नहीं घुसती है कि जैसे चन्दन की सुगन्धि साररहित बाँस में नहीं जाती (क्योंकि वह पोला है उसमें गूदा होता तो सुगन्ध ठहरती) ॥ ४ ॥ हे करुणानिधान ! मैं तो अपराधों का समुद्र हूँ, तुम जानते ही हो क्योंकि घट घट निवासी हो। इस तुलसीदास को संसाररूपी सर्प निगले जाता है सो हे गरुड़गामी ! मैं तुम्हारी शरण हूँ (भाव— जैसे तुम्हारा वाहन गरुड़ सर्प का भक्षण कर जाता है ऐसे ही तुम संसाररूपी सर्प से मेरी रक्षा करो) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—मत्सर = ईर्ष्या । श्रीखंड = चन्दन । सार = गूदा, ज्ञान । उरगरिपुगामी = सांप के वैरी गरुड़ पर जानेवाले । अथ = (अस्थि) हड्डी ।

[११८]

हे हरि कवन जतन सुख मानहुँ ।
ज्यों गज दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम्ह जानहु ॥ १ ॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वच्छपद जैसे ।
रहनि आन बिधि करिय आन हरि पद सुख पाइय कैसे ॥ २ ॥
देखत चारु मयूर बैन सुभ बोलि सुधा इव सानी ।
सविषउरग आहार निठुर अस यह करनी वह बानी ॥ ३ ॥
अखिल जीव वत्सल निरमत्सर चरनकमल अनुरागी ।
ते तोहि प्रिय रघुवीर धीरमति अतिसय निज पर त्यागी ॥ ४ ॥
जद्यपि मम औगुन अपार संसार जोग रघुराया ।
तुलसिदास निजगुन बिचारि करुनानिधान करु दाया ॥ ५ ॥

हे हरे ! तुम कौन से उपाय से सुख मानो ? मेरी करनी तो हाथी के दाँतों के समान है (अर्थात् जैसे हाथी के दाँत कोरे दिखावट के ही होते हैं उनसे खाना चबाना कुछ

नहीं हो सकता ऐसे ही मेरा वेष और आचार थोते दिखाने के ही हैं, भीतर मेरे कुटिलता भरी है) सो तुम सब प्रकार से जानते ही हो (क्योंकि अंतर्यामी हो) ॥ १ ॥ जो कुछ कहता हूँ सोई करूँ तो बछड़े के पदचिह्न के समान भवसागर से तर जाऊँ परन्तु रहन तो और तरह की और करनी और तरह की है सो हे हरे ! तुम्हारे चरणों का सुख कैसे पाऊँ (भाव यह कि औरों के सामने मुख से तो राम राम कह कर धर्म, कर्म ज्ञान आदि की बातें मारता हूँ पर आप कुछ नहीं करता और रामफटाका तिलक लगाकर और तुलसी की माला पहिर कर ऊपर से रहन तो वैष्णवों की सी बना रक्खी है और चेले मूड़ मूड़ कर भीतरी ठगई करता हूँ सो भवसागर तरने की और तुम्हारे चरणों के सुख की क्या आशा है) ॥ २ ॥ (मेरी रहन और करनी कैसी है कि) जैसे मोर देखने में सुन्दर और अमृत से सनी हुई सी मधुर वाणी बोलता है पर निठुर ऐसा होता है कि विषयुक्त सर्प को चबा जाय सो (मोर की) वाणी तो ऐसी और करनी ऐसी (ऐसे ही मेरी वाणी तो मधुर और वेष सुन्दर वैष्णवों का सा परन्तु मैं हृदय में कठोर ऐसा कि विषयरूपी विष भरे ऐसे संसार-सुख-रूपी सर्प को खा जाऊँ) ॥ ३ ॥ हे रघुवीर ! जो सब जीवों को प्यार करते हैं, निर्मत्सर हैं (अर्थात् किसी को देखकर नहीं जलते) और जो तुम्हारे चरणों से प्रेम करते हैं, जो बड़े धीरजवान् हैं और निज परित्यागी हैं (अर्थात् अपने से प्रीति और दूसरों से द्वेष नहीं करते) ऐसे जन तुम्हें प्यारे हैं (और मैं इनसे प्रतिकूल हूँ सो तुम्हें कैसे प्यारा लगूँ) ॥ ४ ॥ हे रघुनाथजी ! यद्यपि मेरे अवगुण अपार हैं (कोई गिन कर उनका पार नहीं पा सकता) और संसार (८४ योनि) भोगने योग्य भी हूँ (यह तो मेरे कर्मों की बात रही) पर तुम करुणानिधान हो; अपने गुण विचार कर इस तुलसीदास पर दया करो (अर्थात् संसार के आवागमन से छुटाओ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—दसन = दांत । उरग = सांप । वत्सल = प्यारा ।

[११६]

हे हरि कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत सुनत विचारत यह मन निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥ १ ॥
भगति ज्ञान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ देउ कछु कोउ असि वासना न उर ते जाई ॥ २ ॥

जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहि समुझि महाभय लागै ॥ ३ ॥
जद्यपि भग्नमनोरथ विधिवस सुख इच्छत दुख पावै।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥ ४ ॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरें।
तुलसिदास इंद्रिय संभवदुख हरें बनिहि प्रभु तोरें ॥ ५ ॥

हे भगवन्! (झूठे संसार को सच्चा मान रहा हूँ यह मेरा) भ्रम कौन से उपाय से दूर हो। यह मेरा मन देखता है (कि यह शरीर पानी का सा बतासा है मरे पीछे सब ठाट यहीं पड़ा रह जाता है) फिर पुराणों में सुनता है (कि बड़े बड़े रावण सरीखे, जो अचल होकर बैठे थे, क्षण भर में नष्ट हो गये तब मैं किस गिनती में हूँ) फिर विचारता है (कि एक दिन संसार भर नष्ट हो जायगा) परन्तु अपने स्वभाव को (अर्थात् विषयों से प्रीति करने को) नहीं छोड़ता ॥ १ ॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सब साधन इसी (मन) के रोकने के लिए बनाये हैं तो भी "कोई मुझे अच्छा कहे" (कि गुसाईंजी बड़े रामभक्त हैं, बड़े महात्मा हैं) और "कोई मुझे कुछ दे" ऐसी वासना हृदय से नहीं जाती ॥ २ ॥ जिस (मोहरूपी) रात्रि (१) में सब जीव सोते हैं (अर्थात् अपने को भूल इस संसार को सत्य मानते हैं) उसी में तुम्हारे कृपापात्र भक्तजन जगते हैं (अर्थात् संसार के सुख को झूठा मान तुम्हारे चरणों में प्रीति करते हैं) परन्तु मुझे अपना कर्तव उलटा देख कर और (उसका फल चौरासी योनि) समझ कर बड़ा डर लगता है ॥ ३ ॥ यद्यपि दैव के वश से मेरे मनोरथों का नाश हो चुका (क्योंकि जो दैव ने कर्मों में लिखा होता तो पाता) तिस पर भी मैं सुख की इच्छा कर ऐसे दुःख पा रहा हूँ जैसे कोई चित्र बनानेवाला हाथ तो लगावे नहीं और (मनहीं मन में) चित्र बनावे और उससे कुछ अपना मतलब न निकले (भाव यह है कि मुझसे सत्कर्म तो बनता नहीं कि जिससे सुख मिले बिना कुछ करे धरे मन ही मन में विषय-वासना छोड़ तुम्हारे चरणों की प्रीति और सुगति चाहता हूँ सो कैसे मिल सकती है) ॥ ४ ॥ तुम्हारा नाम "हृषीकेश" है (अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी) यह सुन कर मैं

---

(१) गीतायाम्—या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ अर्थ ऊपर से मिलता है।

तुम्हारी बलैया लेता हूँ और मेरे जी में अब बड़ा भरोसा हो गया (कि जो तुम इन्द्रियों से आज्ञा कर दोगे तो वे मुझे बुरे कर्मों से दूर रक्खेंगी) सो हे प्रभो ! इस तुलसीदास का, इन्द्रियों से किया हुआ, दुःख तो तुम्हें दूर करते ही बनेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विपरीत = उलटा । भग्न = नाश हुआ । संभव = उत्पन्न ।

[१२०]

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥ १ ॥
अरथ अविद्यमान जानिय संसृत नहिं जाइ गोसाईं ।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परेउ कीर की नाँईं ॥ २ ॥
सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई ।
बैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ॥ ३ ॥
स्रुति गुरु साधु सुमृति संमत यह दृश्य असद दुखकारी ।
तेहि बिनु तजें भजें बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी ॥ ४ ॥
बहु उपाय संसार तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै ।
तुलसिदास मैं मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ॥ ५ ॥

हे हरे ! मेरे भारी भ्रम को क्यों नहीं दूर करते हो । यद्यपि (संसार) झूठा है तो भी तब तक सच्चा सा भासता है कि जब तक तुम्हारी दया न हो ॥ १ । (इस संसार में) अर्थ (जो धन स्त्री पुत्रादि हैं सो किसी के अचल नहीं सब) नाशवान् हैं यह जानता हूँ परन्तु हे नाथ ! संसार नहीं छुटता (अर्थात् जान, बूझ कर झूठे को सच्चा मान रहा हूँ और इस चेतन जीव को किसी ने विषय आदि से बाँधा नहीं है पर) बिना बाँधे ही यह मूर्ख (१) अपने हठ से तोते (२) की तरह पराये (अर्थात् माया के) वश पड़ा है ॥ २ ॥ (अब दूसरा दृष्टांत देते हैं कि) जैसे सुपने में (ज्वर, खाँसी, सन्निपात आदि)

(१) जैसा योगवासिष्ठ में लिखा है "न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः । वत मूढा वयं सर्वे जानाना अपि शाम्बरम्" अर्थात् किसी ने हमको बेचा नहीं तो भी हम बिके हुए से हैं और हम सब माया को जान बूझ कर भी मूढ़ बने हुए हैं । भाव यह है कि यद्यपि हम लोग ज्ञानी बनते हैं तथापि हम अज्ञान के फंदे में फँसे हैं और यह जान कर भी कि सब जगत् माया-मात्र है, उसके हाथ बिके हुए हैं ।

(२) भाव–जैसे खेत में दो लकड़ी गाड़ कर उन पर एक लकड़ी धर के उसमें एक चोंगली

व्याधियों से अनेक ऐसी बाधायें हुई मानों मृत्यु पास आ गई हो और वैद्य लोग (रस आदि देकर) अनेक यत्न करते हैं परन्तु बिना जागे दुःख दूर नहीं होता (ऐसे ही जब तक जीव मोह-निद्रा में सोता है तब तक वह भले बुरे कर्म करता रहेगा परन्तु जब उसकी मोह-निद्रा जाती रहेगी तब उसकी संसारी विषयवासना आदि सब पीड़ा जाती रहेगी) ॥ ३ ॥ वेद, गुरु, सन्त और धर्म-शास्त्र इन सबों का मत है कि यह संसार देखने-मात्र का है और (इस जीव को) अत्यन्त दुखदायी है, इसके बिना छोड़े और रामजी को भजे बिना कौन दुःख को टाल सकता है ॥ ४ ॥ संसार से पार होने के लिए (यज्ञ, व्रत, जप, होम आदि) बहुत से उपाय हैं जिन्हें वेद निर्मल वाणी से गाता है परन्तु हे तुलसीदास! ममता गये बिना तू जी में कभी सुख नहीं पावेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—मृषा = झूठ। संसृत = संसार। स्रुति = वेद।

[१२१]

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई ॥ १ ॥
जौं जग मृषा तापत्रय अनुभव होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगवारि सत्य भ्रम ते दुख होइ बिसेखे ॥ २ ॥
सुभगसयन सोवत सपने वारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाउ न पार पाव सो जब लगि आपु न जागै ॥ ३ ॥
अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया विवेक ते व्यवहारौ सुख कारी ॥ ४ ॥
तुलसिदास सब विधि प्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति भगति संत संगति विनु को भवत्रास नसावै ॥ ५ ॥

पहिरा देते हैं सो तोते के ऊपर बैठते ही वह घूम जाती है और तोता उलटा टँग जाता है, ऐसे ही संसाररूपी खेत में शुभ अशुभ कर्म दो लकड़ियाँ हैं। स्वभाव बीच की लकड़ी है और वासना बैंगली है, ज्योंही जीव इस पर बैठा कि माया के फंदे में पड़ा।

हे हरे ! यह भ्रम की अधिकता (कैसी दृढ़) है । देखता हूँ, सुनता हूँ, कहता और समझता हूँ परन्तु संशय (अर्थात् झूठे संसार को सच्चा मानना) और संदेह (कहिए संसार झूठा है वा सच्चा) दूर नहीं होता ॥ १ ॥ (जो कहो कि) संसार मृषा कहिए झूठा है तो फिर तीन प्रकार के तापों का अनुभव किस हिसाब से होता है (अर्थात् झूठे संसार का दुःख इस जीव को क्यों भोगना पड़ता है; इससे तो सच्चा जान पड़ता है । तहाँ कहते हैं कि नहीं संसार को सच्चा मानना कोरा भ्रम है देखो) मृग-तृष्णा के जल को सत्य नहीं कह सकते (क्योंकि वहाँ झूठे को भी जल नहीं है परन्तु मृग उसे) भ्रम से सत्य जान लेता है और भ्रम में पड़कर दुःख सहता है (भाव यह है कि संसार मृग-जल के समान बिलकुल झूठा है, जो लोग अज्ञान से इसे सत्य मानते हैं वे अंत में महा दुख पाते हैं) ॥ २ ॥ (संसार के झूठे होने का और दृष्टांत लो) जैसे यदि (कोई मनुष्य) सुन्दर सेज पर सो रहा है और सुपने में मानों अपने को समुद्र में डूबा जान भय खा रहा है तो तब तक वह करोड़ों नावों से भी पार नहीं पा सकता कि जब तक आप न जाग पड़े ॥ ३ ॥ सो विना ज्ञान के यह संसार सदा सुन्दर दीखता है पर (विचार से देखो तो) बड़ा भारी भयङ्कर है । केवल सबमें समान-भाव, सन्तोष दया और ज्ञान इनसे व्यवहार करनेवाले को (संसार) सुख देनेवाला है ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास ! यदि च संसार का प्रपंच (अर्थात् धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि) सब प्रकार से झूठा है ऐसा वेद गाता है परन्तु राम भक्ति और सन्तों की संगति को छोड़ (इस जीव को) संसार के भय से कौन छुड़ा सकता है (अर्थात् रामभक्ति और सत्संग ही संसार से छूटने में कारण हैं) ॥ ५ ॥

[१२२]

मैं हरि साधन करइ न जानी ।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कौन दिरमानी ॥ १ ॥
सपने नृप कहँ घटै विप्रवध विकल फिरै अघ लागे ।
वाजिमेध सत कोटि करे नहिं सुद्ध होइ विनु जागे ॥ २ ॥
स्रग महुँ सर्प विपुल भयदायक प्रगट होइ अविचारे ।
बहु आयुध धर बल अनेक कर हारहिँ मरइ न मारे ॥ ३ ॥
निज भ्रम ते सागर रविकरसंभव अतिभय उपजावै ।

अवगाहत वोहित नौका चढ़ि कबहुँ पार न पावै ॥ ४ ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई ।
तब लगि कलप कोटि उपाय करि मरिय तरिय नहिं भाई ॥ ५ ॥

हे हरे ! मैंने (संसार त्यागने के लिए) उपाय करना ही नहीं जाना । जैसा रोग था वैसी दवाई नहीं की इसमें हिकमत का क्या दोष है (भाव यह है कि संसार-त्याग के लिए जप तप आदि देह के साधन तो किये पर असल दवा जो अन्तःकरण की शुद्धि है सो नहीं की) ॥ १ ॥ (इसमें दृष्टांत देते हैं कि) जैसे सुपने में किसी राजा को ब्राह्मण मारे की हत्या लगे और वह पाप लगने से घबराता फिरे पर बिना जागे वह सौ करोड़ अश्वमेध यज्ञ करने से भी शुद्ध नहीं हो सकता (ऐसे ही जब अन्तःकरण शुद्ध होने से आत्मज्ञान होगा तब संसार स्वयं छूट जायगा) ॥ २ ॥ (अब दूसरा दृष्टांत देते हैं कि अँधेरे में) जैसे अज्ञान से माला में बड़े भारी भयदायक सर्प का धोखा हो जाता है और उसे बहुतेरे आयुध लेकर और अनेक बल करके हार जाओ पर वह मारा नहीं मरता (ऐसे ही संसार झूठा है उसे भ्रम से सच्चा मान कर उसके नाश के लिए अनेक साधन करने से क्या होगा) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टांत देते हैं कि) जैसे अपने भ्रम से, सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुआ (मृग-तृष्णा का) सागर बड़ा भय उत्पन्न करता है, उसमें डूब जाने से जहाज़ या नाव पर चढ़ कर कभी कोई पार नहीं पा सकता (क्योंकि वहाँ सागर है कहाँ जो कोई पार पावे वह तो झूठा भ्रम है ऐसे ही जब तक संसार को सच्चा मान रक्खा है तब तक भय है, जब आत्मज्ञान हो जायगा और संसार झूठा प्रतीत हो जायगा तब स्वयं भ्रम जाता रहेगा) ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास ! जब तक अहंकार सहित संसार का जड़ से नाश न होगा तब तक करोड़ों कल्प तक उपाय करके मर जाओ पर हे भाई ! तर नहीं सकते ॥ ५ ॥

(इस भजन का भाव यह है कि करोड़ों उपाय करो पर ज्ञान हुए बिना इस संसार का पार नहीं पाओगे । दृष्टान्तों पर विचार करो । भ्रम से ही ब्रह्महत्या लगी । भ्रम से ही अँधेरे में माला पड़ी थी उसे सर्प मान लिया । भ्रम से ही मृग-तृष्णा के समुद्र में डूबने से भय हुआ सो जिस झूठे भ्रम से ये बातें हुई हैं वह जब ज्ञान से दूर हो जायगा तब अपने आप संसार झूठा प्रतीत होगा और आवागमन से छूट जाओगे । इसके लिए केवल ज्ञान की आवश्यकता है) ॥

शब्दार्थ—आमय = रोग । भेषज = दवा । दिरमानी = इलाज, हिकमत (अरबी भाषा का शब्द है) । बटे = लगे । अघ = पाप । बाजि = घोड़ा । मेध = यज्ञ । स्रग = माला । अवगाहन = डूबना । वोहित = नाव ।

[१२३]

अस कछु समुझि परत रघुराया ।
बिन तव कृपा दयाल दासहित मोह न छूटै माया ॥ १ ॥
वाक्यज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई ।
निसि गृहमध्य दीप की बातिन्ह तम निवर्त नहिं होई ॥ २ ॥
जैसे कोउ इक दीन दुखित अति असनहीन दुख पावै ।
चित्र कलपतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥ ३ ॥
षटरस बहुप्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै ।
बिनु बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥ ४ ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषयनास मनमाहीं ।
तुलसिदास तब लगि जगजोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥ ५ ॥

हे रघुनाथजी ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी कृपा बिना न मोह छूटता है न माया छूटती है, तुम कृपालु और दासों का हित करनेवाले हो ॥ १ ॥ (तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि—इत्यादि महा) वाक्यों में और ज्ञान (की कोरी बातें मारने) में अत्यन्त चतुर होने से कोई संसार का पार नहीं पा सकता (अर्थात् वेदान्त पढ़े भी हैं और दूसरों को शिक्षा भी देते हैं परन्तु ज्ञान के वाक्यों पर चलते नहीं तो संसार कैसे छूट सकता है) जैसे रात्रि को घर में दीपक की बातें करने से अँधेरा दूर नहीं हो सकता (भाव यह है कि अविद्यारूपी रात्रि फैलने पर हृदयरूपी घर में आत्मज्ञानरूपी दीपक बालने से अज्ञानरूपी अन्धकार मिटेगा) ॥ २ ॥ (अब दूसरा दृष्टान्त देते हैं) जैसे कोई एक बड़ा गरीब बिना भोजन के दुख पा रहा है उसके घर में कामधेनु और कल्पवृक्ष की तसवीर लिखने से उसका दुःख नहीं जा सकता (भाव यह है कि यदि कोई मनुष्य अज्ञान से विषयवासना में लगा दीन दुखी हो रहा है तो उसका अज्ञान दूर करने के लिए उसके घर में गणेश, सरस्वती आदि की तसवीरें टाँग दो तो क्या हो सकता है) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं) जैसे कोई बहुत तरह के षटरस भोजनों का नाम रात दिन रटा करे (कि लड्डू, कचौड़ी, इमरती, जलेबी, खुरमा आदि वाह क्या उमदा हैं पर ऐसा करने से क्या हो सकता है) और बिना बोले (अर्थात् बिना नाम लिये) भी सन्तोष (अर्थात् पेट भरने) से उत्पन्न हुआ सुख तो जो खाता है सो ही

जानता है (भाव—पाखंड करके ऊपर से भले ही रामनाम रटा करो। भीतर की तृप्ति तो तभी होगी जब निर्मल अन्तःकरण में आत्मज्ञान होगा) ॥ ४ ॥ सो जब तक अन्तःकरण में (आत्मज्ञान का) उजेला नहीं होगा और मन में विषयों की आशा रहेगी तब तक हे तुलसीदास ! तू संसार की (चौरासी लाख) योनियों में भ्रमता ही रहेगा और तुझे स्वप्न मे भी सुख नहीं मिलेगा ॥ ५ ॥

[१२४]

जौ निज मन परिहरै विकारा।
तौ कहँ द्वैतजनित संसृति दुख संसय सोक अपारा ॥ १ ॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि एइ मन कीन्हे बरिआई।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं ॥ २ ॥
असन वसन वसु वस्तु विविध विधि सब मनिमह रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥ ३ ॥
विटप मध्य पुतरिका सूत महुँ कंचुक बिनहिं बनाए।
मनमहँ तथा लीन नाना तन प्रगटत अवसर पाए ॥ ४ ॥
रघुपति भगति वारिछालित चित विनु प्रयासही सूझै।
तुलसिदास कह चिद विलास जग बूझत बूझत बूझै ॥ ५ ॥

(अब मन के द्वारा जीव के बंधन का मोक्ष दिखाते हैं) जो तू अपने मन के विकारों को छोड़ दे (अर्थात् विषय आदि की इच्छा न करे) तो तुझे (रागद्वेष आदि) द्वैत भाव से उत्पन्न संसारी दुख, भ्रम और अपार शोक क्यों हों, (भाव—जो तू मन स्थिर करके रामनाम में लगावे तो संसारी दुख, सुख कुछ नहीं व्यापे) ॥ १ ॥ शत्रु, मित्र और मध्यस्थ इन तीनों को भी मन ने ही हठ से उत्पन्न किया है (अर्थात् जिससे मन मिला वह मित्र, जिससे हटा वह शत्रु और जिसने बुरा-भला नहीं किया उसे तूने मन से मध्यस्थ कहिए न शत्रु, न मित्र मान लिया) और सर्प, सोना और तृण के समान (अर्थात् जैसे मार्ग में सर्प देखा, प्राणघातक होने से शत्रु जान त्याग दिया; सोना देखा, लाभकारी होने से मित्र समान जान कर उठा लिया; तृण देखा, उदासीनता से उस पर ध्यान नहीं दिया। ऐसे ही शत्रु का) त्याग (मित्र का) ग्रहण और (मध्यस्थ की) उपेक्षा की (अर्थात् उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया) ॥ २ ॥ (अब

दूसरा दृष्टान्त देते हैं कि) जैसे भोजन, वसन, धन और अनेक प्रकार की सब वस्तुएँ मणि में रहती हैं वैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, अचर और बहुत से लोक मन में बसते हैं (भाव यह है कि मणि है तो छोटा पर उसका मोल बड़ा होने से जो वह किसी अच्छे जौहरी के हाथ पड़ा तो अच्छा मोल मिलने से भोजन आदि सब वस्तु आसकती हैं पर जो वह हाथ से गिर किसी गँवार के हाथ पड़ गया तो जैसे सब वस्तुओं का नाश हो जायगा, ऐसे ही जो मनरूपी मणि राम नाम जौहरी के हाथ पड़ा तो उसके मोल से परम सुख, आत्मज्ञान और मोक्ष मौजूद हैं और जो संसार के हाथ पड़ा तो चौरासी योनि धरी हैं अर्थात् जीव चर, अचर की योनियों में घूमता फिरेगा) ॥ ३ ॥ (अब तीसरा दृष्टान्त देते हैं कि) जैसे वृक्ष के बीच में कठपुतली, सूत में वस्त्र बिना बनाये रहते हैं ऐसे ही मन के भीतर अनेक प्रकार के (सुर, नर, मुनि, कीट, पतङ्ग आदि के) शरीर छिपे रहते हैं सो समय समय पर प्रकट होते हैं (भाव यह है कि जैसे समय पर पुतली काठ से बढ़ई द्वारा बन जाती है, कपड़ा सूत से कोली द्वारा बुन जाता है ऐसे ही यह जीव मन के द्वारा शुभ अशुभ कर्म से नर आदि का शरीर प्रकट करता है) ॥ ४ ॥ (अब मन के विकार छूटने की युक्ति कहते हैं कि) रामजी की भक्तिरूपी जल से जब चित्त धुल जायगा (अर्थात् अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा) तब अनायास ही (विषय-वासना आदि मैल धुलने से आत्म और परमात्म स्वरूप) सूझ पड़ेंगे परन्तु हे तुलसीदास ! चिद्, विलास (अर्थात् सदा चैतन्य अखंड आनन्दस्वरूप) को तो (जीव) संसार में समझते समझते ही समझेगा (एक साथ नहीं समझ सकता । पहले मन को विषय-वासना से हटा कर और भजन, पूजन आदि से अन्तः-करण शुद्ध करना चाहिए) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संसृति = संसार । संसय = झूठे को सच्चा मानना । उपेच्छनीय = ध्यान देने के अयोग्य । हाटक = सोना । अहि = साँप । पुतरिका = कठपुतली । कंचुक = वस्त्र । लीन = छिपा । चिद् = चैतन्य । विलास = आनन्द ।

[१२५]

मैं केहि कहौं विपति अति भारी । श्रीरघुवीर धीर हितकारी ॥१॥
मम हृदै भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥२॥
अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहिं विनय निहोरा ॥३॥
तम मोह लोभ अहँकारा । मद कोह बोधरिपु मारा ॥४॥
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहिं जानि अनाथा ॥५॥

मैं एक अमित बटपार । कोउ सुनै न मोर पुकार ॥ ६ ॥
भागेहुँ नहिं नाथ उबार । रघुनायक करहु सँभार ॥ ७ ॥
कह तुलसिदास सुन राम । लूटहिं तसकर तव धाम ॥ ८ ॥
चिंता यह मोहि अपार । अपजस नहिं होइ तुम्हार ॥ ९ ॥

मैं किससे अपनी बड़ी भारी विपत्ति कहूँ। हे रघुनाथजी ! तुम ही धैर्यवान् और हितकारी हो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! मेरा हृदय तुम्हारे रहने का मन्दिर है उसमें बहुत से चोर आकर बसे हैं ॥ २ ॥ वे कठोर मुझसे बड़ी ज़बरदस्ती करते हैं और मेरी विनती और निहोरे को नहीं मानते ॥ ३ ॥ (जो कहो कि नाम बताओ वे कौन हैं तहाँ कहते हैं कि वे) अविद्या, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध, अज्ञान और काम (आठ) हैं ॥ ४ ॥ सो हे नाथ ! वे बड़ा ऊधम मचाते हैं (अर्थात् मेरा ज्ञान विरागरूपी धन लूटे लेते हैं) और मुझे अनाथ अर्थात् लावारसी जान कुचले डालते हैं ॥ ५ ॥ मैं अकेला हूँ और चोर बहुत हैं (सो उनके कोलाहल में) मेरी पुकार कोई नहीं सुनता (भाव—अन्य देवताओं के पेट में तो इन डाकुओं के मारे आप ही पानी हो रहा है वे सुनें भी तो मुझे क्या बचावेंगे) ॥ ६ ॥ (जो कहो कि और जगह भाग जा, तो ये वे डाकू नहीं हैं जो अपने ही शहर में लूटें ये तो जहाँ जाऊँगा वहीं पहुँचेंगे) सो हे नाथ ! इनसे भागने पर भी पीछा नहीं छूटेगा। हे रघुनाथजी ! तुम ही रक्षा करो ॥ ७ ॥ (जो कहो कि घर तो हमारा लूटते हैं तुझको क्या पड़ी है, तो) हे राम ! सुनो तुलसीदास का तो इतना ही कहना है कि चोर तुम्हारे घर को लूटे लेते हैं ॥ ८ ॥ और मुझे तो (केवल) यही बड़ी चिन्ता है कि तुम्हारी बदनामी न हो (अर्थात् लोग यह न कहें कि चोर भगवान् के घर को भी लूट ले गये । इस सबका यह भाव है कि काम, क्रोध आदि से मुझे बचाओ कि जिससे भजन में बाधा न हो) ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—बोधरिपु = (ज्ञान का वैरी) अज्ञान । मार = काम । बटपार = उठाईगीरे । उबार = बचाव । तस्कर = चोर, डाकू ।

[१२६]

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी ॥ १ ॥
उर आनहिं प्रभु कृत हित जेते । सेवहि तजे अपनपौ चेते ॥ २ ॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई । सब सम लेखहिं विपति विहाई ॥३॥

सुनु सठ कालग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि विदूषहि केही ॥४॥
तुलसिदास विनु असि मति आए। मिलहिं न राम कपट लौ लाये ॥५॥

(मनही को जीव के सुख दुख का कारण जान शिक्षा देते हैं) हे मेरे मन ! तू मेरी सीख मान, जो अपने में भगवान् की भक्ति करना चाहे तो ॥ १ ॥ भगवान् ने तेरे जितने भले कर्म किये हैं (अर्थात् गर्भ में रक्षा की, फिर मनुष्य-तन देकर पाल-पोस कर बड़ा किया) उनको याद कर और अपनी देह का अभिमान छोड़ कर सावधानता से उनकी सेवा कर ॥ २ ॥ तू सुख दुख, अनादर और बड़ाई सबको समान जान तब तेरा संकट दूर होगा ॥ ३ ॥ अरे शठ ! सुन ले कि इस शरीर को काल ने ग्रस रक्खा है (पल भर का ठिकाना नहीं है) उसके लिए किसी को दोष मत दे (भाव--सबमें ईश्वर मान, किसी का अपमान मत कर) । ४ ॥ हे तुलसीदास ! ऐसी बुद्धि के बिना आये कपट की लौ लगाने से रामजी नहीं मिलते । (भाव—संसारी विषय-वासना से हट कर और सुख, दुख आदि को समान जान बेखटके हो राम-भक्ति कर) ॥ ५ ॥

[१२७]

मैं जानी हरिपदरति नाहीं। सपनेहुँ नहिं विराग मन माहीं ॥१॥
जे रघुवीरचरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ॥२॥
कामभुअंग डसत जब जाही। विषय नीब कटु लगै न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय विचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥
जब कब रामकृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

(अब अपने में भगवत् अनुरागहीनता का लक्षण कहते हैं) मैंने जान लिया कि मेरी प्रीति भगवान् के चरणों में नहीं है क्यों के मेरे मन में सुपने में भी विराग नहीं है ॥ १ ॥ जो रामचरणों के प्रेमी हैं उन्होंने (धन, धाम, स्त्री पुत्रादि के) सब भोगों को रोगों के समान त्याग दिया है ॥ २ ॥ पर जब जिसको कामरूपी सर्प डसता है तब उसे विषयरूपी नीम कड़वा नहीं लगता (अर्थात् जैसे सर्प के काटे को नीम कड़ुआ नहीं लगता ऐसे ही जिसको सुन्दर स्त्री का चसका पड़ गया है उसे विषय बुरा नहीं लगता पर ये नाश की निशानी है । न साँप का काटा बचे और न विषयी भवसागर से तरे) ॥ ३ ॥ ऐसा विचारने से मन में यही दुबिधा बनी रहती है (कि विषय-वासना छोड़ूँ

या राम-भजन करूँ) और दिन पर दिन नया सोच बढ़ता जाता है (कि यदि मनुष्य देह पाकर रामभजन कर अब भी संसार से न छूटा तो कब छूटूँगा) ॥ ४ ॥ (यज्ञादि तो मुझसे हो नहीं सकते पर इतनी आशा है कि भगवान् तरन-तारन हैं) जब कभी रामजी की कृपा होगी तब यह दुःख चला जायगा (भाव—वे मुझे अवश्य आवागमन से छुड़ावेंगे) हे तुलसीदास ! दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

[१२८]

सुमिरु सनेह सहित सीतापति ।
रामचरन तजि नहिन आन गति ॥ १ ॥
जप तप तीरथ जोग समाधी ।
कलि मति विकल न कछु निरुपाधी ॥ २ ॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥३॥
हरनि एक अघ असुर जालिका । तुलसिदास प्रभु कृपा कालिका ॥

(हे जीव !) प्रीति से सीतापति (रघुनाथजी) का स्मरण कर । रामजी के चरणों को छोड़ और गति नहीं है ॥ १ ॥ जप, तप, तीरथ, योग और समाधि इनमें से कोई भी कलियुग में, बुद्धि ठिकाने न रहने से, उपाधिरहित नहीं है (भाव—सबके करने में खटका लगा है) ॥ २ ॥ और (जप, तप आदि) सुकृत करने से भी तो पाप दूर नहीं होते वरन् रक्तबीज (राक्षस) की भाँति बढ़ते ही जाते हैं (भाव—पुण्य से एक पाप छूटा नहीं कि और पाप होगये; पुण्य बनता नहीं; और न कोई ऐसा देवता है कि पापों का नाश करता रहे) हे तुलसीदास ! पापरूपी असुरों के समूह का नाश करनेवाली तो एक रघुनाथजी की कृपारूपी कालिका ही है (जो संसाररूपी रक्तबीज का भक्षण कर सकती है) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निरुपाधी = बेखटके । अघ = पाप । जालिका = समूह । रक्तबीज = एक राक्षस था जिसकी जितनी रुधिर की बूँदें धरती पर गिरती थीं उतने ही राक्षस हो जाते थे । काली ने उसका नाश किया था । यह कथा मारकण्डेयपुराण में है ।

[१२९]

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत ।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमंगल घटत ॥ १ ॥

बिनु स्रम कलिकलुसजाल कटु कराल कटत ।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर तोम फटत ॥ २ ॥
जोग जाग जप बिराग तप सुतीरथअटत ।
बाँधिबे को भवगयंद रेनु कि रजु बटत ॥ ३ ॥
परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत ।
लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहि हटत ॥ ४ ॥

(अब सबसे सुगम उपाय बतलाते हैं) हे सुन्दर जीभ, तू राम राम क्यों नहीं रटती । राम नाम के सुमिरन से सुख और पुण्य बढ़ते हैं और पाप और विघ्न घटते हैं ॥ १ ॥ और बिना ही परिश्रम कलियुग में किया पापों का समूह जो कड़वा और भयङ्कर है सो ऐसे कट जाता है जैसे सूर्य के उदय होने से अँधेरे का समूह फट जाता है ॥ २ ॥ योग, यज्ञ, जप, वैराग्य, तप और सुन्दर तीर्थाटन ये कर्म ऐसे हैं जैसे संसाररूपी हाथी के बाँधने को धूल की जेवड़ी बटना (भाव – जैसे हाथी लोहे की संकल से बँधता है न कि धूल की रस्सी से; ऐसे ही मनरूपी हाथी राम-नाम की रस्सी से बँध सकता है उसके लिए जप, तप, तीर्थाटन वृथा हैं) ॥ ३ ॥ चिन्तामणि के समान सुन्दर (राम) नाम को छोड़कर (जप, तपरूपी) चिरमिटी को देखकर ललचाती है सो तेरी इस तुच्छ इच्छा को देखकर तुलसीदास तुझे दुरदुराता है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—तोम = समूह । गयंद = हाथी । गुंजा = घुँघची । लटत = ललचाता है ।

[१३०]

राम राम राम राम राम राम जपत ।
मंगल मुद उदित होत कलि मल छल छपत ॥ १ ॥
कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ॥ २ ॥
काल करम गुन सुभाउ सब के सीस तपत ।
रामनाम महिमा की चरचा चले चपत ॥ ३ ॥

साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत ।
कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम नगर खपत ॥ ४ ॥
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किये रावन रिपु तुलसिहु से अपत ॥ ५ ॥

राम-नाम जपने से आनन्द-मंगल उत्पन्न होता है और कलियुग का पाप और कपट छिपता फिरता है ॥ १ ॥ कहो किसने बबूर के बीजों को बोकर आम के फल पाये हैं (अर्थात् बुरा काम करके किसने अच्छा फल पाया है) सो तू गाल बजा बजा कर जो गप्पें मारता है सो अपने जन्म को वृथा मत खोवे (भाव—कोरी बातों में वृथा समय मत बितावे, राम-नाम का भजन कर जिससे काम चले) ॥ २ ॥ काल, (बुरे) कर्म, (सत, रज, तम, आदि) गुण और स्वभाव ये सबके सिर पड़ते हैं अर्थात् सबको सताते हैं (अपना फल दिये बिना नहीं मानते) पर श्रीरामजी की महिमा की चरचा चलने पर चप जाते हैं (अर्थात् शरमा कर दब जाते हैं) ॥ ३ ॥ लोग (जप, तप आदि साधनों की मिहनत से) घबराकर बिना साधन के ही सिद्धियों को लपका चाहते हैं (सो कैसे हो सकता है) । कलियुग का बहुत सा सुन्दर सौदा (जो अधर्म) है सो रामचन्द्रजी के नामरूपी नगर में बिक जाता है (भाव यह है कि जैसे बड़े शहर में भली बुरी वस्तु सब बिक जाती हैं उसी तरह राम का नाम लेने से कलियुग के पाप भी नष्ट हो जाते हैं) ॥ ४ ॥ नाम का विश्वास और उस में प्रीति करने से मन खूब स्थिर हो जाता है । रामचन्द्रजी ने रावण सरीखे शत्रु और तुलसीदास से पापी को भी पवित्र कर दिया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रसाल = आम । गूल (गुल) = शब्द, शोर (अरबी शब्द है) । गपत = गप्पें मारना । लपत = लपकना । बनिज = सौदा । अपत = अपवित्र ।

[१३१]

पावन प्रेम रामचरन कमल जनम लाहु परम ।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥ १ ॥
जोग मख बिबेक बिरति बेद बिदित करम ।
करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम ॥ २ ॥

तुलसी सुनि ज्ञान बूझि भूलहि जनि भरम ।
तेहि प्रभु को होहि जाहि सब ही की सरम ॥ ३ ॥

रामजी के चरणों में पवित्र कहिए निष्काम प्रेम होना जन्म का बड़ा लाभ है। रामजी का नाम लेने से सब धर्म सहज में मिल जाते हैं ॥ १ ॥ यों तो योग, यज्ञ, ज्ञान और वैराग्य वेद में प्रकट हैं कि जो सुनने के ही मीठे और कोमल हैं (अर्थात उनका सुन्दर फल सुनकर उनका करना सहज जान पड़ता है) पर करने में कठिन होने से वे कड़ुवे लगते हैं (अर्थात् उनके करने में मन नहीं लगता फिर उनके द्वारा अपना भला होने की क्या आशा है) ॥ २ ॥ सो हे तुलसीदास ! (इन साधनों के फल को) सुन और ज्ञान से समझ कर भूल करके भ्रम में मत पड़े (कि यज्ञ आदि साधन जो वेद में कहे हैं वे अवश्य फल देंगे) तू तो उस प्रभु का हो ले कि जिसको सबकी लाज है ॥ ३ ॥

[१३२]

राम से प्रीतम की प्रीतिरहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत ॥ १ ॥
जहँ तहँ जेहि जोनि जनम महि पताल त्रियत ।
तहँ तहँ तू विषय सुखहि चहत लहत नियत ॥ २ ॥
कत विमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत ॥ ३ ॥

रामजी सरीखे प्रीतम की प्रीति बिना यह जीव वृथा जीता है। जिस (विषय के) सुख को तू सुख मानता है उस सुख को समझ तो कि कितना है (अर्थात् थोड़ी देर का है और उसके फल से ८४ योनि भुगतनी पड़ेंगी) ॥ १ ॥ तैंने पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में जहाँ जहाँ जिस जिस योनि में जन्म लिया वहाँ (उसी उसी योनि में) जिस सुख को चाहा वही तुझे भाग्य के अनुसार मिला ॥ २ ॥ अब महा अज्ञान से लटकर (अर्थात् विषय-वासना में पड़कर) फटे आकाश को सीने के लिए क्यों खुश हो रहा है (अर्थात् जैसे फटा आकाश सिलना असंभव है ऐसे ही तुझे संसारी विषयों से परमानन्द सुख मिलना असंभव है और जो तू सुख को चाहता ही है तो)

हे तुलसी ! तू भगवान् का सुन्दर यश गाकर क्यों नहीं अमृत पीता है (कि जिससे अमर हो जाय) ॥ ३ ॥

[१३३]

तोसों हौं फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य वचन कहत ।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥ १ ॥
छोटो बड़ो खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।
अपने अपने को भलो कहु को न चहत ॥ २ ॥
विधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी दुख दहत ।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥ ३ ॥
विषय मुद निहारि भार सिर ज्यों काँधे बहत ।
योंही जिय जानि मानि सठ त साँसति सहत ॥ ४ ॥
पायो केहि घृत बिचारु हरिनवारि महत ।
तुलसी तकु ताहि सरन जातें सब लहत ॥ ५ ॥

रे जीव ! मैं तुझसे बार बार हितकारी, प्रिय पवित्र अर्थात् निष्कपट, और सत्य वचन कहता हूँ । सो तू इन्हें सुन कर, मन में विचार कर और समझ कर भी सीधे रास्ते को क्यों नहीं ग्रहण करता (अर्थात् रामजी की शरण क्यों नहीं जाता) ॥१॥ संसार में छोटा (पशु आदि) बड़ा (ब्रह्मादिक) बुरा और भला जो जहाँ पर रहता है कहो तो वह कौन सा है जो अपना अपना भला न चाहता हो (सो रामजी भी अपने शरणागत का भला चाहते हैं) ॥२॥ ब्रह्मा से लेकर छोटे से छोटे कीड़े तक (सब) सुख से सुखी होते और दुख से तचते हैं और जैसे ग्वाला पशु के (रात्रि में) बाँधता है, (सवेरे चरने के लिए) छोड़ता है और जुए में जोतता है, वैसे ही ईश्वर भी (जीव को अविद्यारूपी रात्रि में मोह आदि बन्धन से) बाँधता है, (ज्ञानरूपी सवेरा होने पर) छोड़ता है और (वह जैसे कर्म करने योग्य हो उसे वैसे ही) कर्म में लगा देता है ॥३॥ विषय के आनन्द को देख ले वह सिर के बोझ को कंधे पर धरने के समान है (अर्थात् जब बोझ के मारे सिर दुख उठता है तब मनुष्य उसे कंधे पर धर लेता है । इसमें थोड़ा

सा सुख तो हुआ पर दुख नहीं छूटा) ऐसा मन में समझ कर मान जा। हे मूर्ख! क्यों क्लेश सहता है ॥४॥ समझ तो सही, मृग-तृष्णा को मथ कर किसने घी पाया है (अर्थात् किसी ने नहीं पाया। जैसे घृत दुग्ध ही से निकलता है ऐसे ही सुख रामजी के प्रेम से निकलेगा; विषयों में कहाँ धरा है) सो हे तुलसीदास! तू उसकी शरण ले कि जिससे सब सुखों की प्राप्ति होती है ॥५॥

शब्दार्थ—पुनीत = पवित्र। गुनि = गुनना, विचारना। अवधि = तक। पसुपाल = ग्वाला। ईस = ईश्वर। नहत = जोतता है। साँसति = दुख। महत = मथना।

[१३४]

ताते हों बार बार देव द्वार परि पुकार करत।
आरत नति दीनता कहे प्रभु संकट हरत ॥ १ ॥
लोकपाल सोक विकल रावन डर डरत।
का सुन सकुचे कृपालु नरसरीर धरत ॥ २ ॥
कौसिक मुनि तीय जनक सोक अनल जरत।
साधन केहि सीतल भये सो न समुझि परत ॥ ३ ॥
केवट खग सबरि सहज चरन कमल न रत।
संमुख तोहिं होत नाथ कुतरु सुफरु फरत ॥ ४ ॥
बंधुवैर कपि विभीषन गुरु गलानि गरत।
सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत ॥ ५ ॥
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत।
ताको लिये राम नाम सबको सुढर ढरत ॥ ६ ॥
जाने बिनु राम रीति पचि पचि जग मरत।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहु से तरत ॥ ७ ॥

हे देव! इसलिए मैं बार बार तुम्हारे द्वार पर पड़ कर पुकारता हूँ क्योंकि दुखियों के नवकर ग़रीबी कहते ही हे प्रभो! तुम संकट को दूर कर देते हो ॥१॥ (यह ऐसे जान पड़ा कि जब इन्द्रादिक) लोकपाल रावण के डराने से डरने लगे और शोक से घबराये

तब हे कृपालु! (उनका दुख) सुनते ही क्या तुम नर-तन धारण करने में रुके (अर्थात् नहीं रुके) ॥ २ ॥ विश्वामित्र (१) (मारीच आदि से), मुनि की स्त्री (अहिल्या पतिशाप से) और जनक (धनुष न टूटने से) सोचरूपी अग्नि में भस्म हुए जाते थे। वे किस उपाय से शान्त हुए सो नहीं जान पड़ता ॥ ३ ॥ निषाद, पक्षी (जटायु) और शवरी (भीलनी) इनकी प्रीति तुम्हारे चरणों में स्वभाव ही से नहीं थी परन्तु हे नाथ! तुम्हारे सामने होते ही (अर्थात् तुम्हारे दर्शन करते ही ऐसा हुआ मानों) बुरे बुरे (बबूल, थूहर आदि) वृक्षों में (अंगूर, आम, आदि) सुन्दर सुन्दर फल लटक पड़े (भाव यह है कि ये महानीच थे, बिना किसी साधन के केवल तुम्हारी कृपा से तर गये) ॥ ४ ॥ फिर भाइयों के वैर से सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दुःख से गले जाते थे (अर्थात् दुःख से मरे जाते थे, कहीं बैठने का ठिकाना नहीं था) सो हे राम! किस सेवा से रीझ कर (उन्हें राजतिलक दे) भरतजी के बराबर कर लिया (भाव—सेवा तो पीछे करी थी पर पहले राज क्यों दिया यह भी तुम्हारी कृपा है) ॥ ५ ॥ (अब यह जानना चाहिए कि सुग्रीव विभीषण ने तो मतलब से सेवा करी पर जिन हनूमान् ने बिना कारण सेवा करी उन्हें क्या दिया सो ही कहते हैं) हनूमान्जी दास होने पर भी स्वामी के समान हो गये। हे राम! उनका नाम लेते ही तुम सब पर अच्छी तरह ढलते हो (अर्थात् कृपा करते हो) ॥ ६ ॥ हे रघुनाथजी! तुम्हारी रीति (कृपा, सुशीलता आदि) बिना जाने संसार (अन्य आश्रमों में) पच पच कर मरता है पर कपट को छोड़ कर तुम्हारी शरण जाने से तुलसीदास सरीखा भी तर जाता है ॥ ७ ॥

[१३५]

राग सूहो बिलावल।

राम सनेही सों तैं न सनेहु कियो।
अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहिँ दियो ॥

छन्द।

दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को ॥

(१) कौशिक, अहिल्या, केवट, गिद्ध, शवरी और विभीषण की कथा पुस्तक के अंत में देखो।

यह भरतखंडु समीप सुरसरि थलु भलो संगति भली ।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति है विष फल फली ॥ १ ॥

अजहूँ समुझि चितु दै सुनि परमारथु ।
है हितु सो जगहूँ जाहिते स्वारथु ॥
स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो कातें कौन वेद बखानई ।
देखइ खेलइ अहिखेल परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपौ तिय तनय सेवक सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिनु हेतु हित नहिं तैं लखा ॥ २ ॥

दूरि न सो हितू हेरु हियेहि है। छलहि छाँड़ि सुमिरे छोहु किये हि है ॥
किये छोह छाया कमल कर की भगत पर भज तेहि भजे ।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबके सजे ॥
हरहि हरता विधिहि विधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई ।
सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ॥ ३ ॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि ।
ध्यान अगम सिवहू भेंट्यो केवट उठि ॥
भरि अंक भेट्यो सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सो ।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुवीर सो ॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किए आपुते वंदित बड़े ।
तापर तिन्ह की सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े ॥ ४ ॥

स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहैं ।
सोचु सकल मिटिहैं राम भलो मानिहैं ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फलु पाइहै ॥

जपु नाम करहि प्रनाम कहि गुनग्राम रामहिं धरि हिये।
विचरहि अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किये॥ ५॥

(हे तुलसीदास!) तूने राम सरीखे सनेही से प्यार नहीं किया। उसने देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा मनुष्य का शरीर तुझे दिया है। सुन्दर कुल में जन्म और सुन्दर शरीर दिया कि जो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों पदार्थों का कारण है और जिसको पाकर पण्डित जन महादेव और विष्णु का बड़ा पद पाते हैं। फिर यह गङ्गाजी के पास भरतखंड सुन्दर स्थान है और संगति भी अच्छी है। परन्तु हे कायर, तेरी दुष्ट बुद्धिरूपी कल्पबेल ज़हर के फल (अर्थात् जन्म-मरणरूपी फल) फला चाहती है (उसमें तो सुन्दर धर्म, अर्थ आदि फल लगने चाहिएँ) ॥१॥ अब भी समझ कर चित्त लगा और परमार्थ की बात सुन। वह बात इस लोक में भला करनेवाली है और उससे अपना स्वार्थ निकलता है (अर्थात् ऐश्वर्य आदि मिलते हैं) और जो स्वार्थ हो प्यारा है (परमार्थ नहीं है) तो वह स्वार्थ किससे मिलेगा, वह कौन है कि जिसको वेद गाते हैं (अर्थात् राम ही है); अरे दुष्ट! देख सर्प के साथ खेलना छोड़ दे (नहीं तो वह काटे बिना नहीं छोड़ेगा और वृथा शरीर जायगा। भाव यह है कि संसार सर्प के समान है और विषय विष के समान है, जो तू संसारी विषय-वासना में पड़ेगा तो ८४ लाख योनि अवश्य भुगतनी पड़ेंगी) सो उस प्रभु को पहचान। पिता, माता, गुरु, स्वामी, देहाभिमान, स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र ये सब जिसके प्रेम से प्यारे लगते हैं उस निष्कारण हित करनेवाले को तूने नहीं पहचाना ॥२॥ (जो कहो कि वह कहाँ है तहाँ कहते हैं कि) वह हित करनेवाला दूर नहीं है, ढूँढ़, वह हृदय में ही है (जो कहो कि हृदय में है तो मिलता क्यों नहीं; तहाँ कहते हैं कि जीव ईश्वर से छल कर विषयों में आसक्त हो उसे भूल गया है इससे वह नहीं मिलता) सो छल को छोड़ कर प्रीति से स्मरण कर, वह कृपा करता हुआ ही मिलेगा। वह कृपा करके अपने करकमलों की छाया भक्तों पर करता है और जो उसे भजता है उसे वह भी भजता है (अर्थात् भक्त जो चाहता है सो वह करता है, देखो शतरूपा के कहने से पुत्ररूप धारण किया)। वह जगत् का स्वामी, जीवों का जिलानेवाला है और सबका सब (अर्थात् ब्रह्मादिकों के भी ऐश्वर्य का) सामान तैयार करता है। उसने शिव को हरता (संहार की शक्ति), ब्रह्मा को विधिता (उत्पत्ति की शक्ति) और लक्ष्मीजी को श्रियता (संपत्ति की शक्ति) दी है। यह वही जानकीनाथ है जिसकी आनन्दमङ्गलभरी मधुर मूर्ति है ॥३॥ और वह स्वामी

बहुत ही बड़ा है (अर्थात् ब्रह्मादिकों का भी स्वामी है परन्तु) उसका स्वभाव बड़ा सुन्दर और सीधा है क्योंकि जिसको ध्यान में लाना महादेवजी को भी दुर्लभ है वह निषाद से उठ कर मिला और बाँह से बाँह और छाती से छाती मिला कर मिलने में उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसका शरीर प्रेम से शिथिल हो गया। देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और कवि लोग कहते हैं कि रामजी के समान प्रेम-प्रिय (अर्थात् प्रेम करनेवाले से प्रीति मिलानेवाला) कोई नहीं है। जटायु, भीलनी, विभीषण, जाम्बवन्त, और हनूमान् इनको उसने अपने से भी अधिक पूजनीय कर दिया, तिस पर भी इनकी सेवा याद करके मन में मारे सकुच के गड़ा जाता है (कि मैंने इनका कुछ उपकार नहीं किया) ॥ ४ ॥ जिस स्वामी का स्वभाव मैंने कहा है उसे जब तू अपने मन में लावेगा (अर्थात् उसका स्मरण करेगा) तब तेरी संपूर्ण चिन्ता मिट जायगी और रामजी को भी मन में अच्छा लगेगा। राम इतने में ही भला मानेगा कि जो तू उसको हाथ जोड़कर माथा नवावेगा और हे तुलसी ! उसी समय तू अपने जन्म के जीने का फल पावेगा। उसका नाम जप और उसको नमस्कार कर और उसके गुणों के समूह का गान कर और राम को ही हृदय में धारण कर। राजा रामचन्द्र के चरण-कमलों में अपने मन को भौंरा बना कर पृथ्वी भर में विचरता फिर (भाव—फिर तुझे संसार का डर नहीं है वरन् तू जीवन्मुक्त है) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अमर = देवता। पुरारि = महादेव। मुरारी = विष्णु। कायर = डरपोक, नीच। हेरना = ढूँढ़ना, स्मरण करना। अहि = सर्प। छोह = कृपा। सुठि = सुन्दर। अवनीस = राजा। मधुकर = भौंरा।

[१३६]

जिय जब ते हरि बिलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो ॥
मायावस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम से दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सुपनेहुँ नहिं मिल्यौ।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहुजोनि जनम जरा विपति मतिमंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिस्राम मूढ़ बिचारि लखु पायो कहीं ॥ १ ॥
आनँदसिंधु मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृगभ्रमवारि सत्य जल जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥

तहँ मगन मज्जसि पानकरि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खलु भूलि चलि आयो तहाँ॥
निरमल निरञ्जन निरविकार उदार सुख तैं परिहर्‍यो।
निहकाज राज विहाय नृप इव सपनकारागृह पर्‍यो॥ २॥

तैं निज करमडोरि दृढ़ कीन्हीं। अपनेहि करन गाँठि हठि दीन्हीं॥
ताते परवस पर्‍यो अभागे। ताफल गरभवास दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमलसरीर गँभीर बेदन सीसधुनि धुनि रोवई॥ ३॥

तैं निज करमजाल जहँ घेरो। श्रीहरि सँग न तज्यो तहँ तेरो॥
बहुविधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हों॥
तोहि दियो ज्ञान विवेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी विषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीव निकाय वस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महुँ जेहि मति दई॥ ४॥

बहुविधि पुनि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजों चक्रपानी॥
ऐसेहिँ करि विचार चुप साधी। प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी॥
प्रेरेउ जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यौ।
सो ज्ञान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यौ॥
अति खेदव्याकुल अलपबल छिन एक बोलि न आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हरषित गावई॥ ५॥
बाल दसा जेते दुख पाये। अति अनीस नहिं जाहिं गनाये॥

छुधा व्याधि बाधा भय भारी। वेदन नहिं जानै महतारी ॥
जननी न जानै पीर तव केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सो करै विविध उपाय जाते अधिक तुव छाती जरै ॥
कौमार सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
वितरेकि तोहि निरदय महा खल आन कहु क्यों सहि सकै ॥६॥

जोबन जुवती सँग रँग रात्यो। तब तू महा मोह मद मात्यो ॥
तातें तजी धरममरजादा। बिसरे तब सब प्रथम विषादा ॥
बिसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहि फाटत हियो।
फिरि गर्भगत आवर्त्त संसृति-चक्र जेहि होइ सोइ कियो ॥
कृमि भसम विट परिनाम तनु तेहि लागि जगु वैरी भयो।
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥ ७ ॥

देखतही आई विरधाई। जो तैं सुपनेहुँ नाहिं बुलाई ॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन माहीं ॥
सो प्रगट तन जरजर जरावस व्याधि सूल सँतावई।
सिरकंप इंद्रियसकति प्रतिहत वचन काहु न भावई ॥
गृहपालहूँ ते अति निरादर खान पान न पावई।
ऐसिहु दसा न विराग तहँ तृष्णा तरङ्ग बढ़ावई ॥ ८ ॥

कहि को सकै महाभव तेरे। जनम एक के कछुक गने रे ॥
चारि खानि संतत अवगाहीं। अजहुँ न कर विचार मनमाहीं ॥
अजहूँ विचार विकार तजि भजु राम जनसुखदायकं।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ॥
विनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया तारनं।
कैवल्यपति जगपति रमापति प्रानपति गतिकारनं ॥ ९ ॥

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी। सो त्रय ताप सोकभयहारी ॥
बिनु सतसंग भगति नहिं होई। ते तब मिलहि द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइये ॥
जिन्हके मिले सुख दुख समान अमानतादिक गुन भये।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध ते सहजहिँ गये ॥१०॥
सेवत साधु द्वैत भये भागे। श्री रघुवीर चरन लय लागे ॥
देहजनित विकार सब त्यागे। तब फिरि निजसरूप अनुरागे ॥
अनुराग जो निज रूप ते जग तें विलच्छन देखिये।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिये ॥
निर्मल निरामय एकरस तेहि हरष सोक न व्यापई।
त्रैलोकपावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥
जौं तेहि पंथ चलिअ मन लाएँ। तौ हरि काहे न होइं सहाएँ ॥
जो मारग स्रुति साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥
पावै सदा सुख हरिकृपा संसार आसा तजि रहै ॥
सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत दरसन बात कोटिक को कहै ॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये ॥१२॥

हे जीव! जब से तू भगवान् से अलग हुआ है तब से तूने शरीर को अपना घर समझ लिया है। तू माया के अधीन होकर अपना जो स्वरूप (अर्थात् सत्, चित्, आनन्दरूप) उसे भूल गया और उसी के भूलने से तूने महा कठिन दुःख पाया। तूने ऐसा कठिन दुःख पाया जो सहा न जाय और तुझे सुख का लवलेश सुपने में भी नहीं मिला। संसार के जो शूल (अर्थात्, जन्म, मरण आदि के दुःख) और बहुत से शोक (अर्थात् स्त्रीपुत्रादिकों के वियोग के शोक) हैं उनके मार्ग में तू अड़ अड़ करके चला और बहुत सी योनियों में जन्म लेकर अरे मूर्ख! तूने बुढ़ापे की विपत्ति पाई (फिर भी)

भगवान् को नहीं जाना। अरे मूर्ख! विचार कर देख तो सही श्रीरामजी के बिना कहीं (किसी ने) भी विश्राम पाया है ॥१॥ तेरे रहने का स्थान आनन्द के समुद्र के बीच में है। तो भी तू उसे बिना जाने क्यों प्यासा मरता है। मृग-तृष्णा के जल को (अर्थात् विषयादिकों को तू मन में) सच्चा समझता है और वहाँ तू सुख मान कर (आनन्द में) मगन रहता है। जहाँ पर (आनन्द में) मगन होकर स्नान करता है और पानी पीता है (अर्थात् विषय का सुख भोगता है) वहाँ तीनों काल में जल नहीं है और तू अपने सहज अनुभव (सच्चिदानन्द) स्वरूप को भूल कर अरे दुष्ट ! अब वहाँ चला आया है और आकर उज्ज्वल (अर्थात् विषयों से रहित), निरंजन (कहिए अज्ञानरूपी माया से रहित), निर्विकार (अर्थात् शरीर के जन्म, मरण आदि विकारों से रहित) जो बड़ा भारी सुख है (अर्थात् जिस सुख के सामने और कोई सुख अच्छा न लगे) उसे तूने छोड़ दिया है और वृथा राजा की भाँति राज छोड़ कर (अर्थात् उस आनन्दस्वरूप को भूल कर) स्वप्नरूपी बन्दीखाने में पड़ा है ॥२॥ तूने (अपने आप) अपनी कर्मरूपी रस्सी को पक्का किया है और अपने हाथों से ही पकड़ कर उसमें गाँठ दे दी है। अरे अभागे ! इसी से तू पराये वश पड़ा है। उसका फल यह होगा कि तू माता के पेट में पड़ कर आगे दुःख पावेगा। आगे जो संसार में अनेक (क्लेशों के) समूह हैं उन्हें जो माता के पेट में पड़ा है वही जानता है। नीचे को सिर और ऊपर की ओर पाँव और ऐसा कष्ट कि कोई बात नहीं पूछता। लोहू, विष्ठा, मल-मूत्र, कीड़े और कीच इनसे ढका हुआ सोता है। कोमल शरीर में जब (माता के खाये, पिये से) बड़ी भारी पीड़ा होती है तब माथे को धुन धुन कर रोता है ॥ ३ ॥ तेरे कर्मरूपी जाल ने जहाँ जहाँ तुझे घेरा वहाँ वहाँ श्रीभगवान् ने तेरा साथ नहीं छोड़ा। बहुत भाँति से भगवान् ने तेरा प्रतिपालन किया और परम कृपालु ने तुझे ज्ञान दिया। जब तुझे ज्ञान और विचार दिया तब तुझे अनेक जन्मों की याद आई। (तब तो तू कहने लगा कि) मैं उसी ईश्वर की शरण हूँ जिसकी महा कठिन माया गुण (अर्थात् सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण) से भरी है और जिस (माया) ने जीवों के समूह को अपने वश में करके दिन पर दिन रसहीन कहिए दुखी कर दिया है और आप नित्य नई बनी रहती है। (सो जिसकी ऐसी माया है) और जिसने विपत्ति में बुद्धि दी है वह लक्ष्मीपति भगवान् जल्दी हमारी सँभाल करें (अर्थात् हमारे दुःखों को दूर करें) ॥ ४ ॥ फिर (दूसरे जन्म लेने के समय) मन में बहुत सी ग्लानि समझी और (विचारा कि) अबके संसार में जन्म लेकर भगवान् का भजन करूँगा पर ऐसे ही विचार कर फिर

चुपका हो गया तो फिर पापी के जन्म की हवा को (भगवान् ने) इशारा किया। ज्योंही इशारा किया त्योंही बड़ी तेज़ हवा से तूने भाँति भाँति के दुःख सहे और (उन दुःखों के सहने से पूर्व जन्म के जो) ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अपने स्वरूप का अनुभव (आदि कर्म किये थे वे) जन्मकाल के दुःखरूपी अग्नि में भस्म हो गये। तब तू बड़े खेद से बेचैन हो गया, तुझमें थोड़ा बल रह गया और तुझसे एक क्षण भर भी नहीं बोला गया। तब उस कठिन कष्ट को तो किसी ने भी नहीं जाना और ख़ुश हो हो कर सब लोग गाने लगे ॥ ५ ॥ जितने दुःख तूने बाल अवस्था में पाये वे बहुत बुरे और इतने अधिक हैं कि गिनाये नहीं जा सकते। भूख और रोग का बड़ा भारी दुःख हुआ कि जिसकी पीड़ा को माता भी नहीं जानती। माता भी उस पीड़ा को नहीं जानती कि किस कारण बालक रोता है। उसने भी ऐसे ही तरह तरह के उपाय करे कि जिससे तेरी छाती अधिक अधिक जले। कुमार, शिशु और किशोर इन अवस्थाओं में जो तूने अनगिनती सब पाप किये उनको कौन कह सकता है। हे निर्दयी ! हे महा मूर्ख ! तेरे सिवा कइ दूसरा कौन है जो इन्हें सह सकता है ॥ ६ ॥ जब जवानी में स्त्री के साथ (विषयरूपी) रंग में रँग गया तब तो तू बड़े मोह और मद में मतवाला हो गया। उससे धर्म (१) की मर्यादा छूट गई और पहले सब दुःख भूल गया। दुःखों के समूह को भूल गया और (फिर आगे के जन्म में वही होगा) इस संकट को समझ कर तेरी छाती नहीं फटती है; और जिससे फिर संसाररूपी चरक पर चढ़ कर घूमता हुआ माता के गर्भ में आवे उसी उसको करने लग गया। कीड़े, राख, विष्ठा यही गति शरीर की अन्त में होती है (अर्थात् किसी जन्तु के खा लेने से विष्ठा, गाड़ देने से कीड़े और जला देने से राख हो जाती है), सो उसके लिए संसार का बैरी हुआ और पराई स्त्री, पराया धन, दूसरों से वैर यही संसार में नित्य नया बढ़ता गया ॥ ७ ॥ देखते देखते ही बुढ़ापा आगया जिसको तूने स्वप्न में भी नहीं बुलाया था। उसके जो गुण हैं वे कुछ कहे नहीं जा सकते। उनको अब तू शरीर में प्रत्यक्ष देख ले। वे प्रत्यक्ष हैं—क्योंकि शरीर के जीर्ण होने से बुढ़ापे के सब रोग, शूल आदि सताने लगे। सिर हिलने लगा, (दशों) इन्द्रियों की ताक़त घट गई और तेरी बात किसी को अच्छी नहीं लगने लगी। कुत्ते से भी अधिक तेरा अपमान होने लगा और तू खाने, पीने को भी नहीं पाता है। ऐसी दशा होने पर भी तुझे वैराग्य नहीं

---

(१) इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा। अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः। (इज्या = यज्ञ) सरलार्थः।

आता और वहाँ (उस दशा में) तृष्णा की तरङ्गों को बढ़ाता जाता है॥ ८॥ ऐसे तेरे बड़े भारी जन्मों को कौन कह सकता है। अरे! यह तो एक जन्म की ही थोड़ी सी गिनती है। सदा चार खानों में घूमना होता है। अब भी तू अपने मन में विचार नहीं करता। अब भी तू समझ और (विषय) विकार को छोड़ दे और भक्तों को सुख देनेवाले रामजी का भजन कर। जो संसाररूपी दुस्तर समुद्र के लिए जहाज़रूप हैं ऐसे, सुदर्शनचक्र को धारण करनेवाले और देवताओं के स्वामी, का भजन कर। जो बिना कारण ही दया करनेवाले और बड़े दानी हैं और जिसका पार नहीं ऐसी माया से तारनेवाले हैं और मोक्ष, संसार, लक्ष्मी और जीव इनके पति और गति कहिए शरण के कारण अर्थात् देनेवाले हैं॥ ९॥ रामजी की भक्ति सहज में मिलनेवाली और सुखदाई है। वह तीनों ताप, शोक और भय इनकी हरनेवाली है परन्तु बिना संतों का संग किये वह भक्ति नहीं होती और वे (सन्त) तब मिलते हैं जब वह (रामचन्द्रजी) कृपा करते हैं। जब दीनदयाल रामजी कृपा करें तब संतों की संगति मिले और उनके दरशन, परसन और सत्संग आदि से पापों के समूह का नाश करना चाहिए। उनके मिलने से सुख-दुख का समान होना, और अहंकार न रहना आदि गुण होते हैं और सुन्दर आत्मज्ञान होने से मद, मोह, लोभ, दुःख और क्रोध ये सहज में ही चले जाते हैं॥ १०॥ साधुओं की सेवा करने से द्वैत-भाव (अर्थात् ब्रह्म, जीव में भेद) का भय मिट जाता है और श्रीरघुनाथजी के चरणों में ध्यान लग जाता है। शरीर से उत्पन्न सब विकार छूट जाते हैं तब फिर अपने स्वरूप में प्रीति होती है (अर्थात् जीव अपने आत्मस्वरूप को पहचानता है) और जो अपने स्वरूप में प्रीति हुई अर्थात् उसे पहचाना तो वह संसार से अनोखा दीख पड़ेगा। सन्तोष करना, सबको समान समझना, सदा शीतल (अक्रोध) रहना और इन्द्रियों का साधन करना, इत्यादि शरीर के धर्म उस प्राणी में नहीं दीख पड़ते। तब तो वह उज्ज्वल, नीरोग, और एक रस (अर्थात् बुरी भली वस्तु को समान समझनेवाला अथवा रामजी में ही प्रीति रखनेवाला, परब्रह्म में लीन) ऐसा हो जायगा और उसको हर्ष, शोक नहीं व्यापेगा; और जिसकी ऐसी दशा हो गई वह तीनों लोकों में सदा पवित्र है॥ ११॥ जो कोई उस मार्ग में मन लगा कर चलता है भगवान् उसके सहायक क्यों नहीं होते अर्थात् होते ही हैं। जिस मार्ग को वेद और सन्त दिखलाते हैं उस मार्ग में पाँव रख कर चलने से (जीव) सब सुख पाता है। सदा भगवान् की कृपा से सुख पाता है और संसार की आशा को छोड़ देता है। जो जीव और ब्रह्म में भेद देखता है उसको स्वप्न

में भी सुख नहीं मिलता है; यों तो करोड़ों बातें हैं उन्हें कौन कहता रहे। ब्राह्मण, देवता, गुरु, भगवान् और सन्त इनके बिना संसार का पार नहीं पाया जाता। यह जान कर तुलसीदास भी (संसार के) भय के दूर करनेवाले लक्ष्मी के पति का गुण गाता है॥ १२॥

संधि-विग्रह—कर्दम (कीचड़)+आवृत (ढका हुआ)।

शब्दार्थ—जरा = बुढ़ापा। विहाय = छोड़कर। कारागृह = जेलखाना। हेठ = नीचे। अनीस = बुरे। व्यतिरेक = सिवाय। संसृत = संसार। आवर्त = घूमना। विट = विष्ठा। परिनाम = अंत में। प्रतिहत = जाते रहना। गृहपाल = कुत्ता। अवगाहना = फिरते रहना। कैवल्य = मोक्ष। सोनित = लोहू। पुरीष = विष्ठा। निकाय = समूह।

[१३७]

राग बिलावल।

जौपै कृपा रघुपति कृपाल की बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै॥१॥
तकै नीचु जो मीच साधु की सो पाँवर तेहि मीचु मरै।
वेदविदित प्रहलादकथा सुनि को न भगतिपथ पाउं धरै॥२॥
गज उधारि हरि थप्यो विभीषनु ध्रुव अविचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥३॥
सो धों कहा जो न कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभुप्रसाद सौभाग विजै जस पांडुन नै वरिआइ बरै॥४॥
सपनेहुँ सुख न संतद्रोही कहँ सुरतरु सोउ विष फरनि फरै
जोइ जोइ कूप खनैगो परकहँ सोइ सठ फिरि तेहि कूप परै॥५॥
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीँव चरै।
तुलसिदास रघुबीर बांहबल सदा निडर काहू न डरै॥६॥

जिस पर कृपालु रामचन्द्रजी की कृपा है उसका और के बैर करने से क्या हो सकता है। उनके भक्त का बाल भी बाँका नहीं होता (भले ही) कोई करोड़ों उपाय किया करे॥ १॥ जो दुष्ट संत की मृत्यु तकता है वह नीच उसी मृत्यु में मरता है। वेद में प्रगट जो (१) प्रहलाद की कथा है उसे सुनकर ऐसा कौन है जो भक्तिमार्ग में पैर

(१) प्रहलाद, गजेन्द्र, विभीषण, ध्रुव, अंबरीष की कथा भक्तमालसार में देखो।

नहीं रखता ॥ २ ॥ भगवान् ने गजेन्द्र को तार कर विभीषण को लङ्का का राज देकर रख लिया और ध्रुव को ऐसा अचल कर दिया कि किसी का हटाया न हटे। अंबरीष के शाप की याद कर अब तक महामुनि (दुर्वासा) दुख में गले जाते हैं (अर्थात् लाज के मारे मरे जाते हैं) ॥ ३ ॥ वह कौन सी (बुरी करनी) है जो दुर्योधन ने पांडवों के लिए न करी हो (अर्थात् उनके नाश के लिए सब ही किया; कपट से जुआ खिलाया, द्रौपदी का चीरहरण कराया इत्यादि। पर अंत में कुछ नहीं हुआ) और वह अज्ञानी अपने घमण्ड में आपही जलता रहा पर यहाँ भगवान् की प्रसन्नता से सुन्दर भाग्य, जय और यश इन्होंने पांडवों को ही हठपूर्वक स्वीकार किया ॥ ४ ॥ सतों के वैरी को सुपने में भी सुख नहीं होगा। उनके लिए कल्पवृत्त भी ज़हर के फलों से फलेगा जो कोई दूसरे के लिए कुआँ खोदेगा वह दुष्ट फिर उसी कुएँ में पड़ेगा ॥ ५ ॥ किसके दो शिर हैं जो हठ से भगवान् के भक्त की मर्यादा चरेगा (अर्थात् तोड़ेगा) हे तुलसीदास ! जिसको रामजी की भुजाओं का बल है वह सदा निडर है; वह किसी से नहीं डरता ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—पाँवर = नीच । मीच = मृत्यु । ग्लानि = दुख । बरिआइ = जोरावरी । सीम = मर्यादा ।

[१३८]

कबहूँ सो करसरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिवस नाम टेरे ॥१॥
जेहि करकमल कठोर संभुधनु भंजि जनक संसय मेट्यो ।
जेहि करकमल उठाय बंधु ज्यों परम प्रीति केवटु भेट्यो ॥२॥
जेहि करकमल कृपालु गीध कहुँ उदक देइ निज लोकु दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दासहित कपिकुलपति सुग्रीव कियो ॥३॥
आयो सरन सभीत बिभीषनु जेहि करकमल तिलकु कीन्हों ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥४॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया ।
निसि बासर तेहि करसरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

हे स्वामी रघुनाथजी ! अपने उस कमल-समान हाथ को कभी तो मेरे शिर पर धरोगे कि जिस (हाथ) से इसने जिन्होंने पराधीनता से एक बार तुम्हारा नाम लेकर

तुम्हें पुकारा था उन दुखी भक्तों को अभय कर दिया था ॥ १ ॥ जिस कमल-समान हाथ से शिवजी के बड़े कठिन धनुष को तोड़कर राजा जनक का संदेह दूर किया था और जिस कमल-समान हाथ को उठाकर भाई की तरह बड़े प्रेम से निषाद से मिले थे ॥२॥ हे कृपालु ! जिस कर-कमल से गिद्ध को पानी (पिण्डदान) देकर अपना लोक (वैकुंठ) दिया था और जिस हाथ से अपने दास के लिए बालि को मार कर सुग्रीव को बन्दरों के कुल का राजा बनाया था ॥ ३ ॥ जिस कर कमल से (रावण से) डरे हुए शरणागत विभीषण को (लङ्का का) राज-तिलक किया था और जिस हाथ में धनुष-बाण चढ़ाकर राक्षसों को मार देवताओं को अभयदान दिया था ॥४॥ जिस हाथ की शीतल और सुख देनेवाली छाया, पाप, (तीनों) संताप और माया का नाश करती है उसी तुम्हारे कर-कमल की छाया को तुलसीदास रात-दिन चाहा करता है ॥५॥

सन्धि-विग्रह—बारक = (बार + एक) = एक दफे।

[१३९]

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के वचन वेद बुध संमत मम मूरति महिदेव मई है।
तिन्हकी मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है॥३॥
आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत अपने अपने रंग रई है ॥४॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति खल बिलसति हुलसति खलई है॥५॥
परमारथ स्वारथ साधन भइ अफल सकल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥

कलि करनी वरनिये कहाँ लों करत फिरत विनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मींजत को जाने चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलवस ढील दई है।
सरुष वरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है ॥८॥
दीजै दादि देखि नातो वलि मही मोद मङ्गल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहँ राम कृपा चितवनि चितई है ॥९॥
विनती सुनि सानन्द हेरि हँसि करुनावारि भूमि भिजई है।
रामराजु भयो काज सगुन सुभ राजा राम जगत विजई है ॥१०॥
समरथु बड़ो सुजानु सुसाहबु सुकृत सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाउ सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन उजारि बसावन गई बहोरि विरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत आरति-हर अभय बाँह केहि केहि न दई है ॥१२॥

हे दीनदयाल ! दुनिया (इस कलियुग में) पाप, दरिद्रता के दुःख और दुःसह तीनों ताप इनसे तची जाती है। सो हे देव ! मैं तुम्हारे द्वार पर दुखी होकर पुकारता हूँ क्योंकि सबको सब सुखों की हानि हो गई है ॥ १ ॥ (कैसे सब दुखी हैं और क्या हानि हो गई है सो कहते हैं) प्रभु के वचन हैं कि ब्राह्मण साक्षात् मेरी मूर्त्ति हैं (अर्थात् सुर असुर सबसे बड़े हैं) और यह बात वेद और पण्डितों ने भी स्वीकार की है (सो उनके सन्तोष, दया आदि धर्म और आचार-विचार आदि कर्म उत्तम चाहिएँ पर) उनकी बुद्धि को क्रोध, राग, मोह, मद, लोभ और लालच ने निगल लिया है ॥ २ ॥ (फिर इनसे नीचे क्षत्रिय हैं उन्हें शूर-वीर और प्रतापी होना चाहिए सो) राजा और उनका समाज (मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि) कुसाज (अर्थात् वेद से रहित, वृथा दण्ड देनेवाला, पर-धनहारी और अनीतियों से भरा) है और वे करोड़ों तरह की कटु कहिए बुरी बुरी पाप की बातें मन से जोड़ कर सदा नई नई कुचालें चलते हैं और राजनीति, (वेदों पर) विश्वास, (देवता, ब्राह्मण, साधु और गुरु से) प्रीति की मर्यादा और प्रतिष्ठा इन सबका हेतुवाद ने हठ से ढूँढ़ ढूँढ़ कर

पूरा नाश कर दिया है ॥ ३ ॥ संसार वर्णाश्रमधर्म से विशेष रहित हो गया और लोक तथा वेद की मर्यादा उठ गई और दुनिया भ्रष्ट होकर पाखण्ड और पाप में प्रीति कर अपने अपने रङ्ग में रँग गई (अर्थात् जो अच्छा लगा वही करने लगी) ॥ ४ ॥ शान्ति (संतोष) और सत्य की अच्छी अच्छी रीतियाँ घट गईं (अर्थात् लोग असंतोषी और झूठे हो गये) और कुरीति (अर्थात् चोरी, जुआ, शराबख़ोरी आदि) बहुत सी फैल गई और (सब बातों में) छल की कलई हो गई (अर्थात् बिना छल के कोई बात नहीं रही), संत दुखी होने लगे और साधुता शोक करने लगी, दुष्ट आनन्द उड़ाने लगे और दुष्टता भी आनन्द मनाने लगी ॥ ५ ॥ परमार्थ के बदले स्वार्थ होने लगा (अर्थात् जो करता है दिखाने के लिए और मंत्र, यंत्र, तंत्र आदि) सब साधन निष्फल हो गये। सिद्धियाँ सच्ची नहीं रहीं (अर्थात् सब झूठी पड़ गईं)। कामधेनुरूपी पृथ्वी कलियुगरूपी कसाई के वश पड़ने से ऐसी घबरा रही है कि बोया हुआ (नाज) उसमें नहीं जमता ॥ ६ ॥ कलियुग की करनी कहाँ तक बखानी जाय। वह बिना काम का काम करता फिरता है (अर्थात् धर्म में अधर्म करा देता है) और तिस पर भी दाँतों को पीस पीस कर हाथों को मलता है (कि क्या कहूँ अभी मेरा पूरा अधिकार नहीं हुआ) कौन जाने उसने मन में क्या ठान रक्खा है ॥ ७ ॥ और, ज्यों ज्यों तुम अपने शीलस्वभाव के वश इसे ढील देते जाते हो (अर्थात् इसका कुछ ख़्याल नहीं करते) त्यों त्यों वह नीच शिर पर चढ़ता जाता है (सो तुम इसे) क्रोध करके मना कर दो और अपनी तर्जनी उँगली से डाट दो जिसमें वह ऐसे दब जाय जैसे कोहड़ा की बतिया (तर्जनी उँगली दिखाने से) मुरझा जाती है ॥ ८ ॥ तुम्हारी बलिहारी जाऊँ देखो और इन्साफ़ करो (अर्थात् न्याय करो) नहीं तो यह पृथ्वी आनन्द मंगल से ख़ाली हो जायगी। (सो तुम ऐसा करो जिसमें) लोगों का भाग भरे अर्थात् खुले और वे प्रेम से कहें कि रामजी ने हमें कृपादृष्टि से देखा ॥ ९ ॥ मेरी विनती सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए, देखकर हँसे और करुणारूपी जल से पृथ्वी को तर कर दिया (भाव—पृथ्वी पर जो भक्तजन तीनों तापों से तच रहे थे उनको कलि की ओर से शान्ति हो गई) राम का राज्य होने से काम बन गया और सुन्दर शकुन होने लगे क्योंकि राजा रामचन्द्रजी संसार की विजय करनेवाले हैं ॥ १० ॥ वे बड़े समर्थ, बड़े ज्ञाता, और अच्छे स्वामी हैं, उन्होंने सुकृतरूपी फ़ौज को हारने से जिता दिया। अच्छे भक्तजन स्वभाव से ही बड़े आदर के साथ उनकी सराहना करते हैं कि उन्होंने सहज में पीड़ा को दूर कर दिया ॥ ११ ॥ उजड़े को बसाना

और बसे हुए को उजाड़ना और गई वस्तु का फिर दिलाना यह सदा से उनका बाना है। हे तुलसी ! भगवान् ने दुखियों का दुख दूर कर किस किसको अभय बाँह नहीं दी है (अर्थात् सबका भय दूर कर दिया है) ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—दुरित = पाप । हेतुवाद = नास्तिकमत । गोमर = गऊ को मारनेवाला । हई = नाश की । जई = बतिया । सांसति = पीड़ा । बिरद = बाना । दादि = इन्साफ़ । सदई = सदा का । आरत = दुखी । आरति = दुख ।

[१४०]

ते नर नरकरूप जीवत जगभवभंजन पदविमुख अभागी ।
निसि बासर रुचि पाप असुचि मन खल मति मलिन निगम-पथत्यागी ॥ १ ॥

नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को स्रवन न रामकथा अनुरागी ।
सुत वित दार भवन ममता निसि सोवत अति न कबहूँ मति जागी ॥ २ ॥

तुलसिदास हरिनाम सुधा तजि सठ हठि पियत विषय विष माँगी ।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननिदुख लागी ॥ ३ ॥

वे मनुष्य संसार में नरकरूप होकर जीते हैं और अभागे हैं कि जो संसार (अर्थात् जन्म, मरण) का नाश करनेवाले (रामजी) के चरणों से विमुख हैं। रात-दिन उनकी रुचि पाप में रहती है और उन दुष्टों का मन अपवित्र और बुद्धि मैली है और वे वेद के मार्ग के छोड़नेवाले हैं ॥ १ ॥ न तो वे साधुओं का सङ्ग करते हैं और न भगवान् का भजन करते हैं और न उनके श्रवण (कान) रामजी की कथा के प्रेमी हैं (अर्थात् न वे रामकथा को सुनते हैं), वे तो पुत्र, धन, स्त्री और घर इनकी ममतारूपी रात्रि में ख़ूब सोते हैं और कभी उनकी बुद्धि नहीं जागती (अर्थात् उन्हें यह नहीं सूझता कि ये बेटा, स्त्री, धन आदि मेरी क्या रक्षा करेंगे) ॥ २ ॥ हे तुलसीदास ! भगवत् नामरूप जो अमृत है उसे छोड़कर वे दुष्ट अड़कर विषयरूपी ज़हर माँग माँग कर पीते हैं। ऐसे मनुष्य शूकर, कुत्ता और गीदड़ के समान संसार में (केवल) अपनी माता को दुःख देने के लिए जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥

[१४१]

रामचन्द्र रघुनायक तुम सों हौं विनती केहि भाँति करों ।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरों ॥१॥
परदुख दुखी सुखी परसुख ते संतसील नहिं हृदै धरों ।
देखि आन की विपति परम सुख सुनि संपति बिनु आगि जरों ॥२॥
भगति विराग ज्ञान साधन कहि बहुविधि डहँकत लोग फिरों ।
सिव सरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरों ॥३॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय जल सीकर सम सुनत लरों ।
रजसम पर औगुन सुमेरु करि गुन गिरि सम रजतें निदरों ॥
नाना वेष बनाइ दिवस निसि पर वित जेहि तेहि जुगुति हरों ।
एकौ पल न कबहुं अलोल चित हित दै पदसरोज सुमिरों ॥५॥
जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि औटि मरों ।
तुलसिदास प्रभु कृपा विलोकनि गोपद ज्यों भवसिन्धु तरों ॥६॥

हे रघुकुल के नायक रामचन्द्रजी ! मैं तुमसे किस भाँति विनती करूँ । मैं अपने तो अनेक पाप देख कर और तुम्हारे नाम को पापरहित अनुमान करके डरता हूँ (अर्थात् जो पापरहित होगा वह पापी से क्या मतलब रक्खेगा वरन उसे और दगड देगा) ॥ १ ॥ जो औरों के दुःख से (आप) दुखी होते हैं और औरों के सुख से (आप) सुखी होते हैं ऐसे संतों के स्वभाव को मैं हृदय में नहीं धारण करता हूँ (अर्थात् मेरा स्वभाव संतों का सा नहीं है) मुझे तो औरों की विपत्ति देख बड़ा सुख होता है और उनकी (धन, सवारी आदि) सम्पत्ति को सुन कर बिना ही आग के मैं जल जाता हूँ ॥ २ ॥ भक्ति, वैराग्य और ज्ञान के साधन कह कह कर मैं लोगों को बहुत भाँति से ठगता फिरता हूँ और शिवजी का (१) सर्वस्व और सुख का धाम ऐसे तुम्हारे नाम को बेच बेच कर नरक देनेवाला अपना पेट भरता हूँ (अर्थात् तुम्हारा नाम पेट के लिए जपता हूँ जिसमें लोग मुझे राम-भक्त जान कर खाने के लिए लावें) ॥ ३ ॥ मन में अपने पाप को समुद्र के बराबर जान

(१) कूर्म-पुराण में पार्वतीजी से शिवजी का वाक्य है:—
गोप्याद् गोप्यतमं भद्रे सर्वस्वं जीवनं मम । रामनाम परं ब्रह्म कारणानां च कारणम् ॥ १ ॥
(गोप्य = गुप्त रखने योग्य) सरलार्थः ।

कर भी (निष्पापी कैसा बनता हूँ कि औरों के मुख से उस पाप को) पानी की बूँद की बराबर सुन कर भी लड़ मरता हूँ और दूसरों के धूल के कण की बराबर औगुन का तो सुमेरु पर्वत के समान और पर्वत के समान गुण का धूलि के समान निरादर करता हूँ (अर्थात् अपने सामने दूसरे के बड़े गुण को धूल समझता हूँ) ॥ ४ ॥ (कभी धोता पागड़ा बाँध पण्डित का, कभी राम-फटाका तिलक लगा कर वैष्णव का) ऐसे भाँति भाँति के भेस बना कर रात दिन पराये धन को, जिस जुगत से हो सके, हरता हूँ। कभी एक पल भी मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता कि तुम्हारे चरण-कमलों का ध्यान देकर स्मरण करूँ ॥ ५ ॥ जो तुम मेरे आचरण का विचार करोगे तो करोड़ों कल्प तक (संसाररूपी कढ़ाव में) औट औट कर मर जाऊँगा (और अपने पापों से नहीं छूटूँगा)। हे प्रभो ! मैं तुलसीदास तो तुम्हारी कृपा-दृष्टि से ही गऊ के खुर के समान (अर्थात् जिस भाँति मनुष्य गऊ के खुर को सहज में उलाँघ जाता है उसी भाँति) संसाररूपी समुद्र को तर जाऊँगा ॥ ६ ॥

[१४२]

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्योंकरि विनय सुनावों।
सकल धरम विपरीत करत केहि भाँति नाथ मन भावों ॥१॥

जानत हौं हरि रूप चराचर मैं हठि नैन न लावों।
अंजनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावों ॥ २ ॥

स्रवनन्हि को फलु कथा तिहारी यहु समुझों समुझावों।
तिन्ह स्रवनन्हि परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावों ॥३॥

जेहि रसना गुनगाइ तिहारे विनु प्रयास सुख पावों।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावों ॥४॥

करहु हृदय अति विमल बसहिं हरि कहि कहि सबहिं सिखावों।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खलमंडली बसावों ॥ ५ ॥

जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गवावों।
हाटक घट भरि धर्‌यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावों ॥६॥

मन क्रम वचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावों ।
पर प्रेरित इरषा वस कबहुँक किये। कछु सुभ सो जनावों ॥७॥
विप्रद्रोह जनु बाँट पर्‌यो हठि सबसों वैर बढ़ावों ।
ताहू पर निजमति विलास सब संतन्हि माँझ गनावों ॥ ८ ॥
निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावों ।
तो न सिराहिं कलपसत लगि प्रभु कहा एक मुख गावों ॥६॥
जों करनी आपनी बिचारों तौ कि सरन हो आवों ।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावें ॥१०॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावों ।
नाथ कृपा भवसिन्धु धेनुपद सम जिय जानि सिरावों ॥ ११ ॥

हे राम ! हे कृपानिधान ! मैं बड़ा शरमाता हूँ कि तुम्हें कैसे अपनी विनती सुनाऊँ क्योंकि मैं सब धर्म से उलटा चलता हूँ । हे नाथ ! मैं किस भाँति तुम्हारे मन को अच्छा लगूँ ॥ १ ॥ मैं जानता हूँ कि चराचर सब भगवान् के रूप हैं (अर्थात् भगवान् सबमें व्यापक हैं) पर मैं अड़ कर उन पर आँख ही नहीं लगाता । मैं तो स्त्रीरूपी अग्निशिखा के पास अपनी आँखरूपी पतङ्ग को (मरने के लिए) भेजता हूँ ॥ २ ॥ फिर कानों के होने का यही फल है कि तुम्हारी कथा सुनें, इसे मैं समझता हूँ और दूसरों को समझाता भी हूँ (कि भाई राम-कथा सुना करो) परन्तु उन्हीं कानों से पराये दोष लगातार सुन सुन कर और (हृदय में) भर भरकर धरता जाता हूँ ॥ ३ ॥ जिस जीभ से तुम्हारे गुणों को गाकर सहज में ही सुख पा सकूँ उसी मुख से दूसरों की निन्दा कर मेढ़क की तरह रट रट कर अपना जन्म बिगाड़ता हूँ ॥ ४ ॥ यह कह कह कर सबको तो सिखाता हूँ कि "अपने हृदय को निर्मल करोगे तो भगवान् उसमें वास करेंगे" परन्तु मैं अपने हृदय में अभिमान, मोह और मद इन दुष्टों की मण्डली को बसाता हूँ ॥ ५ ॥ जिस शरीर को धारण करके भक्तजन भगवान् के चरणों का साधन करते हैं उसे मैं वृथा खोता हूँ । सोने का कलसा अमृत से भरा घर में धरा है उसे छोड़ कर आकाश में कुआँ खुदवाता हूँ । (भाव यह है कि मनुष्य का शरीर सोने के घड़े के समान है उसमें सच्चिदानन्दरूप अमृत धरा है उसे छोड़ संसार जो आकाश के तुल्य है उसमें सुखरूप जल के लिए उपाय करता हूँ भला कहीं आकाश में भी कुआँ

खुद कर पानी मिल सकता है ! इस जीव को सुख तो भगवद्भजन में और संसारी विषय को छोड़ने ही में मिल सकता है) ॥ ६ ॥ मन, वचन, कर्म से जो पाप किये हैं उनको उपाय करके छिपाता हूँ और दूसरों के इशारे से ईर्ष्या के अधीन होकर (अर्थात् दूसरा करता है मैं उससे बढ़ कर करूँ इस भाँति) कभी कभी जो कुछ शुभ काम बन भी जाता है तो उसे औरों को जतलाता फिरता हूँ ॥ ७ ॥ (धर्म की बात तो यह है कि सबको समान जानूँ और ब्राह्मणों का अधिक मान करूँ पर) ब्राह्मणों से ऐसा वैर करता हूँ मानों उनसे (वैर करना) मेरे बाँट में ही आ गया है और अड़कर सबसे वैर बढ़ाता हूँ। तिस पर भी अपनी बुद्धि की चेष्टा से सब संतों के बीच में (अपने को उत्तम रामभक्त) गिनाता हूँ ॥ ८ ॥ वेद, शेष और सरस्वती की हा-हा खाकर भी जो अपने औगुनों का बखान कराऊँ तो भी तो हे प्रभो ! वे सौ कल्प तक पूरे न हों; फिर मैं एक मुख से उन्हें कहाँ तक गाऊँ ॥ ९ ॥ जो मैं अपनी करनी का विचार करूँ तो क्या मैं तुम्हारी शरण में आ सकता हूँ (अर्थात् नहीं आ सकता और जब मेरा मन तुम्हारी शरण जाने में हिचकता है तब) हे राम ! तुम्हारे कोमल शील स्वभाव (१) का बल अपने मन को दिखाता हूँ (कि भगवान् बड़े कृपालु हैं। तू क्यों डरता है, कैसा ही पापी शरण में जाय उसको क्षमा कर अपना लेते हैं। तब वह तुम्हारी ओर जाता है) ॥ १० ॥ हे प्रभो ! तुलसीदास के पास वह गुण नहीं है कि जिससे तुम्हें सुपने में भी प्रसन्न कर सके परन्तु हे नाथ ! तुम्हारी दया से संसाररूपी समुद्र गौ के खुर के समान है यह जानकर अपने जी को ठंडा कर लेता हूँ (भाव यह है कि मुझमें तो कोई शम, दम आदि गुण संसार से पार जाने का है नहीं पर जो तुम दया करोगे तो आवागमन से सहज में छूट जाऊँगा) ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—अंजनकेस = अग्नि वा दिया। सलभ = तीतरी। स्रवन = कान। तावना = धरना, कसना। रसना = जीभ। हाटक = सोना। बिलास = आनन्द, चेष्टा।

[१४३]

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं मन अनीतिरत मेरो।
चरनसरोज बिसारि तिहारे निसिदिन फिरत अनेरो ॥ १ ॥

---

(१) वाल्मीकीय में रामजी ने कहा है:—

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" ॥

जो एक बार भी कहे कि मैं तुम्हारा हूँ तो मैं उस शरणागत को सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।

मानत नाहिं निगम अनुसासन त्रास न काहू केरो ।
भूल्यो सूल करम कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥२॥
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो ।
लोभ मोह मद काम कोहरत तिन्ह सों प्रेम घनेरो ॥३॥
परगुन सुनत दाह परदूषन सुनत हरष बहुतेरो ।
आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो ॥४॥
साधन फल स्रुति सार नाम तव भव सरिता कहुँ बेरो ।
सोइ पर कर काकिनी लागि सठ बेंचि होत हठि चेरो ॥५॥
कबहुँक हौं संगति प्रभाउ तें जाउँ सुमारग नेरो ।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भट भेरो ॥६॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति बिपति जाल अति घेरो ।
तापर सहि न जाइ करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ॥७॥
हारि पर्यो करि जतन बहुत बिधि तातें कहत सबेरो ।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

हे राम ! हे रघुवीर गुसाईं ! सुनो। मेरा मन अनीति में लगता है (वह अनीति क्या है कि) तुम्हारे चरण-कमलों को छोड़कर रात दिन दूर भटकता फिरता है ॥१॥ यह वेद की आज्ञा को नहीं मानता और इसे किसी का डर नहीं। (जो कहो कि इसे कभी दण्ड नहीं मिला। दण्ड मिलता तो आज्ञा मानता तहाँ कहते हैं कि) यह बहुत बार कर्मरूपी कोल्हू में तिलों के समान पेरा गया (अर्थात् बुरे कर्म करने से बार बार नरक भोग आया) पर उस पीड़ा को भूल गया ॥ २ ॥ जहाँ संतों का संग है और भगवान् की कथा होती है वहाँ तो सुपने में भी फेरा नहीं करता और लोभ मोह, मद, काम और क्रोध में मगन रहता है, उन्हीं से बड़ा प्रेम करता है ॥ ३ ॥ दूसरों के गुणों को सुन कर तो जल जाता है और दूसरों के अवगुण सुनकर बड़ा प्रसन्न होता है। आप तो पाप के नगर बसाता है और दूसरे के छोटे से गाँव को नहीं सह सकता (अर्थात् आप महापापी होने पर भी दूसरे का थोड़ा सा भी पाप नहीं देख सकता, देखते ही उसकी धूल उड़ाता है) ॥ ४ ॥ सब साधनों का फल और वेद का सार ऐसा

तुम्हारा नाम संसाररूपी नदी के लिए बेड़ा है सो यह दुष्ट कौड़ी के लिए दूसरे के हाथ इसे बेचकर अड़ करके ग़ुलाम होता है (अर्थात् पैसे के लालच से तुम्हारा नाम सुनाता फिरता है) और कभी मैं संगति के प्रभाव से सुन्दर मार्ग के पास जाता हूँ (अर्थात् धर्म कार्य्य करने को तैयार होता हूँ) तो संग कहिए इन्द्रियों के विषय क्रोध कर (उस मन को फिर स्त्री-विषय आदि) कुमनोरथरूपी धक्का दे देते हैं (कि जिससे फिर वह कुमार्ग में जा लगता है) ॥ ६ ॥ एक तो मैं ग़रीब पापी और बुद्धि-हीन हूँ फिर विपत्तिरूपी जाल ने ख़ूब घेर रक्खा है। तिस पर भी हे करुणानिधान ! मन का कठिन धक्का नहीं सहा जाता ॥ ७ ॥ मैं बहुत भाँति के उपाय करके हार गया इससे मैं पहले से ही कहे देता हूँ कि यह मेरा संसार का भय तभी दूर होगा कि जब तुम इस तुलसीदास के हृदय में डेरा करोगे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अनेरा = दूर। खेड़ा = छोटा सा गाँव। बेरा = बांस की टट्टी। काकिनी = कौड़ी। दरेरो = धक्का। संग = इन्द्रियों के विषय। सबेरो = सिदोसी, पहिले से ॥

[१४४]

सो धों को जो नाम लाज ते नहिं राख्यौ रघुवीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरहि सकल भवभीर ॥१॥

वेदविदित जगविदित अजामिल विप्र बंधु अघधामा।
घोर जमालय जात निवार्‌यौ सुतहित सुमिरत नामा ॥२॥

पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्‌यो दुसह उर-दाह ॥३॥

व्याध निषाद गीध गनिकादिक अगनित औगुनमूल।
नाम ओटते राम सबनि की दूरि करी सब सूल ॥४॥

केहि आचरन घाटि हैां तिन्ह तें रघुकुलभूषन भूप।
सीदत तुलसिदास निसि बासर पर्‌यौ भीमतमकूप ॥५॥

(जो कहो कि तेरा हृदय अपवित्र है उसमें डेरा कैसे करें तहाँ कहते हैं कि:—) हे राम ! वह कौन सा है कि जिसको तुमने अपने नाम की लाज से (शरण में) नहीं रक्खा। हे भगवन् ! तुम तो बिना कारण ही दयावान् हो, सब संसाररूपी भय

(जन्म, मरण) को दूर करो ॥१॥ वेद में प्रकट है और संसार जानता है कि अजामेल था तो जाति का ब्राह्मण परन्तु पाप का घर था। उसे यमराज के कठिन स्थान में जाते हुए रोका (अर्थात् नहीं जाने दिया)। उसने (किया क्या था कि केवल) बेटे के लिए अर्थात् उसके बहाने तुम्हारे नाम का सुमरण किया था ॥ २ ॥ पशु और नीच घमंडी हाथी को जब समुद्र में ग्राह ने आकर पकड़ लिया तब उसके एक बार याद करने पर तुरन्त ही हे प्रभो! तुम आये और उसके हृदय की दुःसह तपन दूर कर दी ॥ ३ ॥ व्याध (वाल्मीकि), निषाद, गिद्ध और गणिका आदि अनगिनती औगुणों की जड़ थे परन्तु हे राम! केवल नाम के सहारे से तुमने इन सबके (जन्म-मरणरूपी) सब दुःखों को दूर कर दिया ॥ ४ ॥ हे रघुकुल के भूषण! हे पृथ्वीनाथ! मैं किस आचरण में उनसे कम हूँ और मैं तुलसीदास रात-दिन भयानक अज्ञानरूपी कुएँ में पड़ा हुआ दुःख पा रहा हूँ। (भाव—सबको निकाला है तो मुझे भी निकालो) ॥ ५ ॥

सन्धि-विभाग—यम + आलय (घर)।

शब्दार्थ—अघ = पाप। हित = लिए। सकृत = एक बार। सपदि = शीघ्र।

[१४५]

कृपासिन्धु जन दीन दुवारें दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारै आरत तब तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज प्रहलाद पंडुसुत कपि सबको रिपु-संकट मेट्यो।
प्रनत बंधुभय विकल विभीषन उठि सो भरत ज्यों भेट्यो ॥२॥
मैं तुम्हरो लेइ नाउँ गाउँ एक उर आप ने बसायों।
भजनु विवेकु विरागु लोग भले करम करम करि ल्यायों ॥३॥
सुनि रिसभरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआँईं।
तिन्हहि उजारि नारि अरि धनु पुर राखहिं राम गुसाईं ॥४॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हारयों।
विनु कारन के कलह बड़े दुख प्रभु सों प्रकटि पुकार्‍यों ॥५॥
सुर स्वारथी अनीस अलायक निठुर दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ को विपति-निवारकु भवतारकु जगमाहीं ॥६॥

तुलसी जदपि पोच तो तुम्हरोइ और न काहू केरो।
दीजै भक्ति बाँह बैरक ज्यों सुबस बसै अब खेरो ॥७॥

हे कृपासागर! तुम्हारा ग़रीब दास तुम्हारे द्वार पर न्याय क्यों नहीं पाता (अर्थात् तुम उसका इन्साफ़ क्यों नहीं करते); जब और जहाँ दुखियों ने तुमसे पुकार मचाई है तभी (तुमने उनके) दुःख जला दिये हैं ॥ १ ॥ गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि), बन्दर (सुग्रीव) इन सबों के शत्रु से किये क्लेशों को तुमने दूर कर दिया और जब भाई के डर से घबराये हुए विभीषण ने तुम्हें प्रणाम किया तब उठ कर उससे ऐसे मिले जैसे भरतजी से मिलते हो ॥ २ ॥ मैंने तुम्हारा नाम लेकर (अर्थात् तुम्हारे नाम से) एक गांव (रामनगर) अपने हृदय (रूपी धरती) में बसाया है और उसमें भजन, ज्ञान, वैराग्य रूपी अच्छे अच्छे लोगों को एक एक करके लाया हूँ ॥ ३ ॥ यह सुन दुष्ट काम, क्रोध आदि रिस में भरकर उनसे ज़बरदस्ती हाथा पाँई करते हैं (अर्थात् उन्हें धक्के दे देकर निकालते हैं) और निकाल कर हे रामगुसाईं! स्त्री, वैरी और धन को पुर में बसाते हैं ॥ ४० ॥ साम, दान, दण्ड, भेद—ये उपाय रच रच कर और पचि पचि कर जब मैं हार गया तब हे प्रभो! इस बिना कारण की लड़ाई के बड़े दुःख को प्रभु के सामने पुकारता हूँ (भाव—तुमसे रपट कर दी है) ॥ ५ ॥ (जो कहो कि और देवताओं से पुकार कर तो) और देवता तो मतलबी हैं, उनमें सामर्थ्य नहीं है और वे कुछ करने लायक़ नहीं हैं, बड़े कठोर हैं और उनके चित्त में दया नहीं है। सो मैं कहाँ जाऊँ? जगत् में विपत्ति का दूर करनेवाला और संसार से तारनेवाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं है) ॥ ६ ॥ तुलसीदास यद्यपि नीच है पर है तो तुम्हारा ही और किसी का तो नहीं है। तुम भक्तिरूपी बल-भरोसे का झंडा दे दो (तो उसमें खड़ा कर दूँ) कि जिससे अब वह नगला अच्छी भाँति से बस जाय (अर्थात् उसे तुम्हारा नगला समझ कर दुष्ट उपद्रव न मचावें) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—दादि = इन्साफ़। सेवा = ख़ुशामद। छल = भेद, फूट करा देना। अनीस = असमर्थ। खेड़ा = नगला, छोटा सा गांव।

[१४६]

हौं सब विधि राम रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहिबी होत है ख्याल काल कलि केरो ॥१॥
काल कर्म इंद्रिय विषय गाहक गन घेरो।
हौं न कबूलत बांधि के मोल करत करेरो ॥२॥

बंदि छोर तेरो नाम है विरुदैत बड़ेरो ।
मैं कह्यो तब छल-प्रीति कै माँगे उर डेरो ॥३॥
नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो ।
अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो ॥४॥
जेहि कौतुक वक स्वान को प्रभु न्याय निबेरो ।
तेहि कौतुक कहिए कृपाल तुलसी है मेरो ॥५॥

हे राम ! मैं तो सब भाँति तुम्हारा ग़ुलाम हुआ चाहता हूँ । पर यहाँ जगह जगह पर साहबी हो रही है (अर्थात् इन्द्रियरूपी साहब अपनी अपनी साहबी दिखा कर मुझे ग़ुलामी के लिए लिया चाहते हैं सो यह) कलियुग का खेल है ॥ १ ॥ काल-कर्म इन्द्रियाँ और उनके (देखना, सूँघना आदि) विषयरूपी गाहकों ने मिल कर मुझे घेर रक्खा है और जब मैं (उनकी बात) कबूल नहीं करता तब वे मुझे बाँध कर (अर्थात् वश में करके) मेरा कड़ा मोल करते हैं (अर्थात् मोल बढ़ाते हैं । भाव यह है कि हर एक विषय लालच दिखा दिखा कर मुझे अपने वश में किया चाहता है) ॥ २ ॥ इनके बंधन से छुड़ानेवाला तुम्हारा नाम और बड़ा (प्रणत-पालक) बाना है । सो जब मैंने उनसे कहा (कि मैं तो रामचन्द्रजी के हाथ बिक कर उनका ग़ुलाम हुआ चाहता हूँ) तब उन्होंने कपट कर प्रीति से मेरे हृदय में अपने लिए डेरा माँगा (अर्थात् जो तुम हमारे हाथ न बिको तो हमें अपने हृदय में ही बसा लो । सो पहले प्रीति दिखा कर घुसेंगे फिर कपट से मेरे हृदय का नाश करेंगे) ॥ ३ ॥ मैं अब तक तो तुम्हारे नाम के सहारे से बचा रहा था पर अब इस कलियुग ने मुझे संसार में जेरबार कर दिया । सो अब इस ग़रीब जन का पालन कीजिए, (जो न करोगे तो फिर) यह ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा ॥ ४ ॥ हे हरे ! जिस लीला से बगुले (१) और

---

(१) किसी वन में उल्लू और गिद्ध एक घर में रहते थे । एक दिन गिद्ध के मन में पाप आया तो वह उल्लू से कहने लगा कि यह घर मेरा है और जो तू न माने तो चल हम अपने राजा रामचन्द्रजी से न्याय करा लें । इस पर दोनों राज़ी होकर रामजी के पास गये । पहले गिद्ध ने प्रणाम करके कहा कि आप हमारे न्यायवान् राजा हैं; यह उल्लू मेरा बना बनाया घर छीने लेता है सो न्याय करके मेरा घर मुझे दिलाइए । रामजी ने उल्लू से पूछा कि यह क्या बात है ? तू सत्य सत्य कह । उल्लू ने कहा हे प्रभो ! यह झूठ बकता है । वह घर सदा से मेरा है ।

कुत्ते (१) का न्याय तुमने किया था उसी लीला से हे कृपालु ! तुम (उस कलियुग से) कह दो कि (सदा से ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध होने के कारण यह) तुलसीदास मेरा है (तू उसे सतावेगा तो दण्ड पावेगा) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गन = समूह, मिलकर। करेरो = कड़ा। बन्दि = बन्धन। बिरुदैत = बाना। मलयुत = कलियुग। जेरो = जेरवार। हेरो = ढूँढ़ने पर। बक = बगुला।

[१४७]

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन मारे।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥१॥
मिले रहैं मारयो चहैं कामादि सँघाती।
मो बिनु रहैं न मेरि ये जारैं छल छाती ॥२॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली।
कियो कथिक को दंड हौं जड़करम कुचाली ॥३॥

इस विवाद को सुन रामजी ने पहले गिद्ध से पूछा कि तू कब से इस घर में रहता है ? गिद्ध ने उत्तर दिया कि जब से इस पृथ्वी पर मनुष्य-सृष्टि हुई। फिर उल्लू से पूछा कि तू कब से रहता है ? उल्लू ने कहा हे अन्नदाता ! मैं तो जब से पृथ्वी पर वृक्षों की सृष्टि हुई है तब से रहता हूँ। यह सुन कर रामजी ने गिद्ध से कहा कि मनुष्यों की सृष्टि से वृक्षों की सृष्टि पहले हुई है इसलिए यह घर उल्लू का है, तेरा नहीं। यह न्याय करके गिद्ध से उल्लू का पीछा छुड़ा दिया। वाल्मीकि० उ० का० ७१ स०।

(१) रामराज्य में एक कुत्ते ने आकर रामजी से विनय की कि हे दीनानाथ ! एक तीर्थ-सिद्ध नाम ब्राह्मण ने बिना अपराध लकड़ी से मेरा सिर फोड़ दिया है। रामजी ने ब्राह्मण को बुलवाया और उससे कुत्ते के मारने का वृत्तान्त पूछा। ब्राह्मण ने कहा मैं भीख माँगता फिरता था इसको मार्ग में से मैंने हटाया पर जब यह न हटा तब मैंने इसे लकड़ी मार दी। यह सुन कर भगवान् विचारने लगे कि ब्राह्मण को कैसे दण्ड दूँ। बड़ा अधर्म है। इतने में कुत्ता बोला कि हे महाराज ! आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इस ब्राह्मण को कालञ्जर का महन्त बना कर दण्डित कर दीजिए। यह सुन रामजी ने ऐसा ही किया और कुत्ते से पूछने पर उन्हें विदित हुआ कि पहले वह वहाँ का महन्त था और उसने उसी कर्म से इस योनि को पाया था। यों बदला देकर रामजी ने ब्राह्मण से कुत्ते का पीछा छुड़ाया।

इसकी पूरी कथा वाल्मीकि के उ० का० में ७० वें सर्ग में है।

संकेत—गुसाईंजी ने बगले और कुत्ते का न्याय लिखा है। परन्तु वाल्मीकि-रामायण में उल्लू और कुत्ते का है। बगले का कदाचित् किसी अन्य रामायण में हो।

देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी।
करहिं सबै सिर मेरेई फिरि परै अनैसी ॥४॥
बड़े अलेखी लखि परैं परिहरे न जाहीं।
असमंजस मेंा मगन हौं लीजै गहि बाँहीं ॥५॥
वारक बलि अवलोकिए कौतुक जन जी को।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥६॥

हे कृपासिन्धु ! मैं रात-दिन इसलिए मन मारे रहता हूँ कि हे महाराज ! अपनी जाँघ उघाड़ने से अपने को ही लाज होती है (अर्थात् अपना पाप कहने से अपने को ही शरम आती है) ॥ १ ॥ ये काम आदि (क्रोध, लोभ, मोह) बड़े दुष्ट हैं, मिले रहने पर भी मुझे मारा चाहते हैं (जो कहो कि इन्हें छोड़ क्यों नहीं देता तहाँ कहते हैं कि मैं तो इन्हें बहुतेरा छोड़ूँ पर) ये मेरे बिना रहते तो नहीं और छल करके मेरी ही छाती जलाते हैं ॥ २ ॥ मैंने अपना भला जान कर और इनको अपने हृदय में बसा कर इन सबकी रुचि पूरी कर दी (अर्थात् काम की रुचि के लिए स्त्री से सम्भोग किया, क्रोध की रुचि रखने को सबसे वैर किया, लोभ की रुचि के लिए ठग-विद्या करता हूँ, मोह के लिए अहङ्कार करता हूँ) पर इन दुष्ट-कर्म करानेवाले कुचालियों ने मुझे कत्थक की लकड़ी बना रक्खा है (अर्थात् जैसे गानेवाला एक लकड़ी में घूँघरू बाँध कर लड़के को नाचना सिखाता है और लड़का उस लकड़ी के अनुसार नाचता है वैसे ही ये मुझे लकड़ी बना कर मेरे मन को नचाते हैं) ॥ ३ ॥ मैंने ऐसी आपनधाप न तो आज तक देखी और न सुनी कि ये (कामादि) सब करते तो आप हैं और फिर मेरे सिर पर सब खोट पड़ती है (अर्थात् पहले तो मन के द्वारा नेत्र आदि इन्द्रियों से बुरे बुरे कर्म कराते हैं और जब उनका फल मिलता है तब जीव को भोगना पड़ता है) ॥ ४ ॥ (हे प्रभो !) ये (कामादि) बड़े अलेखी हैं (अर्थात् अज्ञान-दृष्टि से) देखने में नहीं आते और जो (ज्ञान-दृष्टि से) दीख भी पड़ें तो छोड़े नहीं जाते। सो मैं इस दुविधा में पड़ा हुआ हूँ (न तो मैं उनको सङ्ग रखना चाहता हूँ और न वे मुझे छोड़ते हैं इसलिए उसमें से) तुम मुझे बाँह पकड़ कर निकाल लो ॥ ५ ॥ तुम्हारी बलैया लूँ तुम एक बार दास के जीव का तमाशा तो देख लो (तुम्हारे देखने मात्र से) सहज ही में तुलसी का संकट मिट जायगा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—दण्ड = लकड़ी । अनैसो = खोट, बुराई । अलेखो = जो देख नहीं । असमंजस = दुबधा । बारक (बार + एक) = एक बार ।

[१४८]

कहौं कौन मुँह लाइ कै रघुबीर गुसाईं ।
सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दोहाई ॥१॥
सेवत बस सुमिरत सखा सरनागत सो हौं ।
गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥२॥
कृपासिंधु बंधुदीन के आरत हितकारी ।
प्रनतपाल बिरदावली सुनि जानि बिसारी ॥३॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहिब राम सों भरि पेट बिगारी ॥४॥
नाथ गरीबनिवाज हैं मैं गहि न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओर ते बनि परै सो कीबी ॥५॥

हे रघुवंश के वीर ! हे गुसाईं ! कौन सा मुँह लेकर मैं तुमसे कहूँ । स्वामी की सौगन्द मैं अपनी सब (करनी) को समझ कर आप ही सकुचाया जाता हूँ (अर्थात् लाज के मारे सामने नहीं हो सकता) ॥ १ ॥ तुम सेवा करने से वश में होते हो, स्मरण करने से मित्र-भाव रखते हो और (दीन के) शरण होने पर सामने होते हो (अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन देते हो) परन्तु हे राम ! तुम्हारे ऐसे गुण-गणों को मैं कभी चित्त में भी नहीं लाता ॥ २ ॥ तुम दया के समुद्र, दीनों के बन्धु, दुखियों का हित करनेवाले, और दीनों के पालनकर्त्ता हो, मैं तुम्हारी विरुदावली को सुन कर और जान कर भी भूल गया ॥ ३ ॥ सेवा नहीं की, ध्यान नहीं किया और न स्मरण करके तुम्हारे चरणों में सुन्दर प्रीति की (वरन्) राम सरीखा मालिक पाकर भी (बुरे कर्म करके जीव के नाश के लिए) पेट भर कर बिगाड़ कर दिया ॥ ४ ॥ हे नाथ ! तुम तो ग़रीबों के ऊपर कृपा करनेवाले हो और (मैं ऐसा नीच हूँ कि) मुझे ग़रीबी भी नहीं ग्रहण करती, सो हे प्रभो ! अपनी ओर से जो बन पड़े सो इस तुलसी के लिए करो ॥ ५ ॥

संधि-विभाग—विरुद (बाना) + अवली (पङ्क्ति) ।

[१४६]

कहाँ जाउँ का सों कहौं और ठौर न मेरे।
जनम गँवायो तेरेही द्वार किंकर तेरे ॥ १ ॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें।
तोहिं कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें ॥ २ ॥
दिन दुरदिन दिन दुरदसा, दिन दुख दिन दूषन।
जौलों तू न बिलोकि है रघुबंसबिभूषन ॥ ३ ॥
दई पीठ बिनु डीठ हौं तू बिस्वबिलोचन।
तोसो तुही न दूसरो नत सोचबिमोचन ॥ ४ ॥
पराधीन देव दीन हौं स्वाधीन गुसाईं।
बोलनिहारे सों करै बलि बिनय कि झाईं ॥ ५ ॥
आपु देखि मोहिं देखिये जन मानिय साँचो।
बड़ी वोट राम नाम की जेहि लयो सो बाँचो ॥ ६ ॥
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों कर कृपा तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

मैं कहाँ जाऊँ और किससे कहूँ; मेरे दूसरी जगह है ही नहीं। तेरे दास ने तो तेरे ही द्वार पर जन्म बिता दिया ॥ १ ॥ मैंने जो तुझ स्वामी से बिगाड़ किया सो दुःख के वश (क्योंकि दुखी को बुराई भलाई का ज्ञान नहीं रहता) परन्तु तू तो कृपा का समुद्र है, तुझे मेरी सी करना कैसे बन सकता है ॥ २ ॥ तब तक दिन पर दिन खोटे दिन, दिन दिन खोटी दशा, दिन दिन दुःख और दिन दिन बदनामी ही होती रहेगी कि जब तक हे रघुवंश के आभूषण ! तू नहीं देखेगा ॥३॥ (जो कहो कि हमसे तो दृष्टि करने को कहता है आप पीठ फेरे रहता है तहाँ कहते हैं कि मैंने जो तुझे) पीठ दे रक्खी है (अर्थात् तुझसे विमुख हो रहा हूँ) सो मैं तो अन्धा हूँ (अर्थात् मेरे ज्ञान-दृष्टि नहीं) पर तू तो संसार भर का देखनेवाला है (भाव--सबके बाहर भीतर का प्रकाशक है) तुझ सरीखा तूही है, गरीबों के सोच को दूर

करनेवाला दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥ हे देव ! मैं ग़रीब पराये अधीन हूँ और तू स्वाधीन स्वामी है । मैं तेरी बलैया लूँ क्या बोलनेवाले से (अर्थात् चैतन्यरूप से) उसकी परछाईं विनती कर सकती है ? (अर्थात् नहीं कर सकती । चैतन्य, जड़ परछाईं से जो चाहे सो करा सकता है) ॥ ५ ॥ सो तू अपनी ओर देख कर मुझे देख, तब दास को सच्चा मान । हे राम ! बड़ा सहारा तेरे नाम का है । जिसने उसे लिया है वही बचा है ॥ ६ ॥ हे राम ! तेरी रहनि और रीति मेरे हृदय में नित्य फूली नहीं समाती । जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे दया कर क्योंकि तुलसीदास तेरा है (किसी और का नहीं है) ॥ ७ ॥

[१५०]

राम भद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं ।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं ॥ १ ॥
नातो बड़े समर्थ सों एक ओर किधौं हूँ ।
तोको मोसे अति घने मोको इक तो हूँ ॥ २ ॥
बड़ि गलानि हिय हानि है सरवज्ञ गुसाईं ।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं ॥ ३ ॥
भलो पोच कहैं राम को मोहिं सब नर नारी ।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहब सिर गारी ॥ ४ ॥
असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै ।
दीनबंधु कीजै सोई बनिपरै जो बूझै ॥ ५ ॥
बिरदावली बिलोकिए तिन्ह में कोई हो हैं ।
तुलसी प्रभु को परिहर्यो सरनागत सो हैं ॥ ६ ॥

हे राम ! हे कल्याण की मूर्ति ! मुझे अपना सोच है भी और नहीं भी है । (सोच तो यों नहीं है कि) संसार में सब जीव सन्ताप के पात्र हैं (अर्थात् सबको शुभ अशुभ कर्मों का भोग भोगना पड़ता है फिर मुझे क्यों न भोगना पड़े) ॥ १ ॥ (और सोच इस बात का है कि) क्या तुझ (सरीखे) बड़े समर्थ से केवल मेरी तरफ़ से ही नाता है (तू मुझसे नहीं मानता कारण) तुझे तो मुझसे बहुत से हैं और मुझे तो तू

एक ही है ॥ २ ॥ इस हानि से मेरे मन में बड़ा भारी दुःख यों है कि स्वामी तो सर्वज्ञ (भीतर बाहर को सब जाननेवाला) है और मैं कुटिल और बुरा (नमकहराम) सेवक (होने पर भी) सेवक की सी बातें मारता हूँ (सो सर्वज्ञ के सामने कहाँ तक छिपेगा और कैसे बनेगी) ॥ ३ ॥ और मैं बुरा हूँ या भला हूँ (लोग इसे क्या जाने) सब स्त्री पुरुष कहने तो मुझे राम का ही हैं (सो मेरी बुराई से तेरी भी बुराई होगी जैसे) नौकर और कुत्ते के बिगड़ने से मालिक के सिर गालियाँ पड़ती हैं (भाव—कटखने कुत्ते को तो कोई गाली नहीं देता, पालनेवाले को गाली देते हैं कि अमुक मनुष्य ने अच्छा कुत्ता पाला। ऐसे ही मैं तेरा सेवक बाजता हूँ। खोटे कर्म करूँगा तो तेरी बात में भी अवश्य बट्टा लगेगा) ॥ ४ ॥ (जो कहो कि अच्छे सेवक होने का उपाय क्यों नहीं ढूँढ़ता तहाँ कहते हैं कि) मुझे वह उपाय नहीं सूझता कि जिससे मन की दुविधा मिटे सो हे दीनबन्धु! जो तुझे सूझे और तुझसे बन पड़े सो तू हो कर ॥ ५ ॥ (जो कहो कि तू आप ही कुसेवक बनता है हम क्या कृपा करें तहाँ कहते हैं कि) तू अपनी विरदावली कहिए यश की पाँति को देख (अर्थात् भक्तवत्सल, प्रणतपाल, दीनबन्धु, पतितपावन, इत्यादि जो तेरे बाने हैं उनके चिट्ठे में देख) उनमें से मैं (भक्त, प्रणत, दीन, पतित) कोई हूँ या नहीं (इनमें से कोई तो होऊँगा इस नाते से कृपा कर नहीं तो) प्रभु का त्यागा हुआ तुलसी सामने शरणागत होकर पड़ेगा (और जब तुझे छोड़ कर कहीं नहीं जायगा तब तू स्वयं कृपा करेगा) ॥ ६ ॥

[१५१]

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो ।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥ १ ॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो ।
बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥२॥
जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो ।
सीतापति संमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥३॥
राम सुहातो तोहिं जो तू सबहिं सोहातो ।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥४॥
रामनाम अनुरागही जिय जो रतिआतो ।

स्वारथ परमारथपथो तोहि सब पतिआतो ॥५॥
सेई साधु सुनि समुझिकैं पर पीर पिरातो ।
जनम कोटि को काँदलो हृद हृदउ थिरातो ॥६॥
भवमगु अगमु अनंत है बिनु स्रमहि सिरातो ।
महिमा उलटे नाम की मुनि भयौ किरातो ॥७॥
अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो ।
होतो मङ्गलमूल तू अनुकूल विधातो ॥ ८ ॥
जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहि रातो ।
तुलसी रामप्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो ॥ ६ ॥

(रे मन!) जो तू राम की चाकरी करने में नहीं लजाता तो तू दाम (कहिए सोने का खरा माल) होकर भी कुदाम (कहिए काँसे पीतल) की तरह हाथ हाथ नहीं बिकता डोलता (भाव यह है रामजी की सेवा करता तो सब जगह तेरा आदर होता जैसे जिस सोने के पासे पर सरकार को मोहर होती है उसे सब आदर से लेते हैं और जिस पर नहीं है उस पर लोग बट्टा माँगते हैं) ॥ १ ॥ जो तू जीभ से रघुनाथ जी के नाम को जपने में आलस्य नहीं करता (भाव—नाम लेने में सूमपना न करता) तो हे मूर्ख! बाज़ीगर के सूम की तरह धूल नहीं फाँकनी पड़ती (अर्थात् जैसे बाज़ीगर कपड़े वा काठ का पुतला बना रखते हैं और जब कहीं तमाशा होता है और सूम आदमी कुछ नहीं देता है तब उस पुतले को सूम कह कर और उसके मुँह में धूल भर कर उसे गाली देते हैं सो तेरा वैसा हाल न होता। भाव यह है कि तू घट में ही ब्रह्मानन्द-सुख पाता और विषयादि में नहीं लगता) ॥ २ ॥ हे मन! जो तू मेरे कहने से राम नाम कमाता तो रामजी के सामने जाकर सुखी होता और सब जगह (कहिए लोक, परलोक में) समा सकता (अर्थात् तेरा आदर होता) ॥ ३ ॥ जो तुझे रघुनाथजी अच्छे लगते तो तू भी सबको अच्छा लगता और काल, कर्म जो सब कारण हैं (अर्थात् बुरे भले काम करने की प्रेरणा करनेवाले हैं इनमें से) कोई भी तुझ पर रोस नहीं करता ॥ ४ ॥ हे मन! जो तू जी में राम नाम से ही प्रेम और प्रीति करता तो स्वारथ (इस लोक के) और परमार्थ (परलोक) के रास्तेगीर सब तेरा पतयारा करते (अर्थात् तेरे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध होते) ॥ ५ ॥ जो तू साधुओं की सेवा

करता और दूसरों का दुःख सुनकर और समझकर दुखी होता तो तेरे हृदयरूपी तालाब में करोड़ों जन्म का मैल नीचे बैठ जाता (अर्थात् तेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाता) ॥ ६ ॥ और संसार का मार्ग ऐसा कठिन है कि जिसका अन्त नहीं सो बिनाही श्रम के पूरा हो जाता (क्योंकि) भगवान् के उलटे नाम की महिमा से वाल्मीकि किरात से मुनि हो गये ॥ ७ ॥ और हे मूर्ख ! तूने जो अमर और दुर्लभ शरीर पाया था सो वृथा नहीं जाता और तू आनन्द की जड़ (अर्थात् ब्रह्मस्वरूप) हो जाता और विधाता (तुझ पर) प्रसन्न होता (कि मेरा बनाना सफल हुआ) ॥ ८ ॥ हे मन ! जो तू प्रीति और विश्वास से रामनाम में लगता तो तुलसीदास रामजी के प्रसाद से (संसार के) तीनों तापों से नहीं तचता (अर्थात् सदा आनन्द में रहता) ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—कोहातो = गुस्सा होता । विरातो = दुखी होता । काँदला = कीचड़, मैल । जाय = वृथा । रातौ = प्रीति करता ।

[१५२]

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।
जुग जुग जानकिनाथ को जग जागत साको ॥ १ ॥
ब्रह्मादिक विनती करी कहि दुख बसुधा को ।
रविकुलकैरवचन्द भो आनन्द सुधा को ॥ २ ॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को ।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥ ३ ॥
हत्यो पाप आप जाइकै संताप सिला को ।
सोचमगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को ॥ ४ ॥
रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को ।
चितवत भाजन कर लियो उपसम समता को ॥ ५ ॥
मुदित मानि आयसु चले वन मातु पिता को ।
धर्मधुरन्धर धीर धुर गुन सीलजिता को ॥ ६ ॥
गुह गरीब गत-ज्ञातिहूँ जेहि जिउ न भखा को ।
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को ॥ ७ ॥

सद्गति सबरी गीध की सादर करता को।
सोचसींव सुग्रीव को संकट हरता को ॥ ८ ॥
राखि विभीषन को सकै अस काल-गहा को।
आजु विराजत राज हो दसकण्ठ जहाँ को ॥ ९ ॥
वालिस वासी औध के बूझिये न खाको।
ते पाँवर पहुँचे तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥ १० ॥
गति न लहै रामनाम सों विधि सो सिरजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै वल्लभ गिरिजा को ॥ ११ ॥
अकनि अजामिल की कथा सानन्द न भा को।
नाम लेत कलिकालहूँ हरिपुरहि न गा को ॥ १२ ॥
राम नाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी वेद पुरान हैं तुलसी तन ताको ॥ १३ ॥

राम ने अपनी भलाई से किसका भला नहीं किया (अर्थात् सबका ही किया) जुग जुग में जो काम जानकीनाथ ने किया सो संसार में प्रकट है ॥ १ ॥ ब्रह्मादि देवताओं ने पृथ्वी का दुःख कह कर (उसका भार उतारने के लिए) विनती की थी सो सूर्यकुलरूपी कुमुदवन को (खिलाने के लिए) चन्द्ररूप और अमृत-समान आनन्द-दायक (रामजी) उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ विश्वामित्र, स्त्री (ताड़का) के तेज को देख कर (सूर्य के तेज से) ओले की तरह गले जाते थे (सो उसे मार कर) प्रभु ने शत्रु को भी मित्र का फल दिया और क्रोध करके भी कृपा ही की (भाव—ताड़का को शत्रु मान क्रोध कर नरक भेजना चाहिए था परन्तु कृपाकर उसे स्वर्ग दिया) ॥ ३ ॥ और आप ही जाकर शिला (अहिल्या) का पाप और संताप दूर किया। मिथिला का राजा (जनक धनुष-भङ्ग और जानकीजी के विवाह के) सोच (समुद्र) में डूब रहा था सो (धनुष को तोड़ उसे सोच-समुद्र से) जीता-जागता बाहर निकाल लिया ॥ ४ ॥ परशुरामजी जो क्रोध की मूर्त्ति और अहंकार तथा ममता के धनी थे (अर्थात् धन की जगह उनके पास यही था और बड़े भारी अहंकारी थे कि मेरे समान कोई पृथ्वी का

जीतनेवाला नहीं—मेरे समान कोई माता-पिता में ममता करनेवाला नहीं सो) उनको देखते ही शान्ति और समता का पात्र कर लिया (अर्थात् उन्हें शान्त करके ऐसा कर दिया कि सबको समान देखने लगे) ॥ ५ ॥ माता-पिता की आज्ञा मान प्रसन्न होकर वन को चल दिये। सो धर्म्म के भार को धारण करनेवाला, बड़ा धीर, गुण तथा शील को जीतनेवाला (उनके सिवा दूसरा) कौन है ॥ ६ ॥ निषाद ग़रीब और नीच जाति था और ऐसा कौन सा जीव है कि जिसे उसने न खाया हो। उसने भी पवित्र (निष्कपट) प्रेम से मित्र का सा आदर पाया (अर्थात् भगवान् ने उसे अपना सखा बना लिया) ॥ ७ ॥ फिर शवरी और गिद्ध की मोक्ष आदर से कौन करता और सोच की सीमा (अर्थात् बड़े सोच में पड़े हुए) सुग्रीव के संकट को कौन दूर करता ॥ ८ ॥ (जब विभीषण को रावण ने निकाल दिया था) उस समय ऐसा कौन काल के वश हो गया था जो उसे रखता कि जिस समय लङ्का का राजा रावण विराजमान था ॥ ९ ॥ अयोध्या का रहनेवाला धोबी ऐसा मूर्ख था कि कुछ पूछो ही मत। (जिसने रावण के यहाँ रहने से सीताजी की निन्दा की थी) ऐसे ऐसे नीच भी वहाँ (परम धाम को) पहुँच गये जहाँ पर जाने में मुनीश्वरों का मन भी थक जाता है (अर्थात् जहाँ के लिए बड़े बड़े मुनि यत्न करते करते अपने मन में हार जाते हैं और नहीं पहुँच सकते) ॥ १० ॥ राम नाम लेने से जिसकी मोक्ष (१) न हो ऐसा ब्रह्मा ने किसको बनाया है (अर्थात् किसी को नहीं बनाया) जिस (राम नाम) का महादेवजी (२) स्मरण करते हैं (और दूसरों को) उपदेश देकर प्रचार करते हैं ॥ ११ ॥ अजामेल की कथा को सुन कर ऐसा कौन है जो आनन्द में मगन नहीं हुआ हो और कलिकाल में भी नाम लेकर हरिपुर (वैकुंठ) में कौन नहीं गया ॥ १२ ॥ राम-नाम की महिमा ऐसी है कि आक के वृक्ष को भी कल्प-वृक्ष बना देती है। इसके साक्षी वेद और पुराण हैं और (प्रत्यक्ष में देखना हो तो) तुलसी के शरीर को देख लो (कैसा नीच था कि मूल नक्षत्र में पैदा होने से बाप तक ने फेंक दिया था सो अब राम-भक्त कहाता है) ॥ १३ ॥

---

(१) अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात्। सत्यार्थः।

(२) अध्यात्म में शिवजी ने राम से कहा है:—

अहो भवन्नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥ १ ॥

अर्थात् मैं आपका नाम जपता जपता कृतार्थ होकर पार्वतीजी के साथ काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी को मुक्ति के लिए हे राम! तुम्हारे नाम-मन्त्र का उपदेश करता हूँ।

शब्दार्थ—साको (साका) = काम। कैरव = कुमुदिनी। रासि = समूह। उपसम = शांति। गत = नीच। जिउ = जीव। दसकंठ = रावण। बालिस = मूर्ख। खाको (खा = रज + क = रजक) = धोबी। वल्लभ = पति। गिरिजा = पार्वती। अकनि = सुनकर (संस्कृत के आकर्ण्य का अपभ्रंश है) गा = गया। काम (मनोरथ) + भूरुह (वृक्ष) = कल्प-वृक्ष। ताको = देखो।

[१५३]

मेरे रावरिए गति है रघुपति बलि जाउँ।
निलज नीच निरधन निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥१॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर-बंधु विभीषन-हित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥२॥
प्रनतारतिभंजन जनरंजन सरनागत पबिपंजर नाउँ।
कीजे दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ॥३॥

हे रघुनाथजी ! मैं तुम्हारी बलैया लेता हूँ, मुझे तो तुम्हारी ही शरण है क्योंकि बेशरम, नीच, कंगाल और निरगुनी के लिए संसार में न तो ऐसा मालिक है और न ठिकाना है ॥ १ ॥ (यों तो) संसार में घर घर बहुत से अच्छे अच्छे मालिक भरे पड़े हैं पर सबको अपना ही दाव सूझता है (अर्थात् सब पूजा लेकर फल देनेवाले हैं)। सुग्रीव के बंधु और विभीषण के हितकारी ऐसे रामचन्द्रजी के बिना मैं कहीं नहीं समा सकता (अर्थात् दूसरे देवता के यहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी) ॥ २ ॥ तुम भक्तों के दुःखनाशक और दासों को प्रसन्न करनेवाले हो और शरणागतों के लिए तुम्हारा नाम वज्र के पिंजरे के समान है (अर्थात् जीव को फिर किसी प्रकार की बाधा नहीं होती) सो अब तुलसीदास को अपना दास कर लो (जो कहो कि ऐसे नीच, पापी को हम मोल लेकर क्या करेंगे, तहाँ कहते हैं कि) हे कृपासिन्धु ! मैं अब बिना मोल के ही बिकता हूँ (अर्थात् बिना अपने स्वारथ के आपका दास हुआ चाहता हूँ) ॥ ३ ॥

संधि-विभाग—प्रणत (दास) + आरत (दुःख)

शब्दार्थ—पवि = वज्र। पंजर = पिंजरा।

[१५४]

देव दूसरो कौन दीन को दयालु।
सीलनिधान सुजान सिरोमनि सरनागत प्रिय प्रनतपालु ॥ १ ॥

को समर्थ सर्वज्ञ सकल प्रभु सिव-सनेह-मानस-मरालु ।
को साहिब किये मीत प्रीति वस खग निसिचर कपि भील भालु ।।२।।
नाथ हाथ माया प्रपञ्च सब जीव दोष गुन करम कालु ।
तुलसिदास भल पोच रावरो नेकु निरखि कीजै निहालु ।। ३ ।।

हे देव! दीनों पर दया करनेवाला दूसरा कौन है। तुम शील के स्थान अर्थात् बड़े सुशील, सुजान कहिए आत्मज्ञानियों के शिरोमणि, शरणागतों के प्यारे और भक्तों की रक्षा करनेवाले हो ॥ १ ॥ तुम्हारे समान कौन समर्थ है; तुम सब जानने-वाले और सब (ब्रह्मा आदि) के प्रभु हो। तुम शिवजी के स्नेहरूपी मान-सरोवर को हंसरूप हो (अर्थात् सदा शिवजी के स्नेह के कारण उनके हृदय में ऐसे बास करते हो कि जैसे हंस मानसरोवर पर रहता है)। कौन सा स्वामी है कि जिसने प्रीति के वश होकर खग (जटायु) निशिचर (विभीषण) कपि (सुग्रीव) निषाद और रीछ (जाम्बवन्त) को मित्र बनाया हो ॥ २ ॥ हे नाथ! तुम्हारे ही हाथ माया का प्रपंच (कहिए करना, धरना) और सब जीवों का दोष, गुण, कर्म और काल है। तुलसीदास भला बुरा तुम्हारा ही है; नेक देख कर इसे निहाल कर दो ॥ ३ ॥

[१५५]

राग सारंग।

बिस्वास एक राम नाम को ।
मानत नहीं परतीति अनत ऐसोइ सुभाउ मन वाम को ।। १।।
पढ़िबो पर्‌यो न छठी छमत रिगु जजुर अथरवन साम को ।
ब्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छाम को ।।२।।
करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
ज्ञान बिराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ।।३।।
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुनग्राम को ।
बैठे नाम कामतरु तर डर कौन घोर घन-घाम को ।। ४ ।।

को जाने को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिँ बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥ ५ ॥

मुझे एक राम-नाम का ही भरोसा है। मेरे कुटिल मन का ऐसा ही स्वभाव है कि वह दूसरे का पतयारा नहीं करता ॥ १ ॥ छः मत (कहिए छओं शास्त्र) और ऋक्, यजु, साम, और अथर्वण इनका पढ़ना मेरी छठी में ही नहीं पड़ा (अर्थात् विधाता ने मेरे भाग्य में नहीं लिखा। अब रहे) तीरथ, व्रत और तप सो इनके सुनते ही (कठिनता के कारण) मन घबरा जाता है कि कौन पचि पचि कर मरे और शरीर को दुबला करे ॥ २ ॥ और कलियुग में (यज्ञ आदि) कर्म-जाल कठिन है और उसका अच्छा साधन होना दामों के अधीन है (अधिक द्रव्य हो तो हो सके) और ज्ञान, वैराग, जोग, जप, तप (इनके करने) में काम, क्रोध, लोभ, मोह का डर लगा हुआ है (न ये छुटेंगे और न ज्ञान, योग आदि होंगे) ॥ ३ ॥ सब दिन सब (देने के) लायक़ और शिवजी भी जिसे गाते हैं ऐसा रामजी के गुण-गण के समान कौन है (अर्थात् कोई नहीं है) और जो राम-नामरूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं उनको (संसाररूपी) बादल और (संतापरूपी) कड़ी धूप का क्या डर है ॥ ४ ॥ यह कौन जानता है कि यमपुरी को कौन जायगा और कौन स्वर्ग और वैकुण्ठ को जायगा (यहाँ तो देह को कष्ट भोगना पड़ता है, इसलिए) तुलसीदास को तो संसार में राम का ग़ुलाम होकर जीना बहुत अच्छा लगता है।

शब्दार्थ—वाम = टेढ़ा। सहमना = घबरा जाना। छाम (क्षाम) = दुबला। भव = शिवजी। ग्राम = समूह। परधाम (परम धाम) = वैकुंठ।

[१५६]

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥ १ ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥ २ ॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूँच मुकाम को ॥ ३ ॥

कलियुग में राम का नाम ही कल्पवृक्ष है। वह दरिद्रता, अकाल, दुःख और दोष-रूपी महा कड़ी तपन का नाश करने के लिए मेघरूप है ॥ १ ॥ (देखो जब विधाता रोस कर अपने मन को हटा लेता है तब सब काम उलटे होने लगते हैं, परन्तु) राम-नाम लेने से टेढ़े विधाता का टेढ़ा मन सीधा हो जाता है (अर्थात् वह प्रसन्न होकर मनुष्य को भाग्यवान् बना देता है) सो उलटे-सीधे नाम के महातम को मुनीश्वर (वाल्मीकि) और महादेवजी कह सकते हैं (अर्थात् शिवजी ने सीधा नाम जपा सो हलाहल विष पी गये और काशी में मुक्ति के दाता हो गये और वाल्मीकि ने उलटा जपा सो बहेलिया से मुनीश्वर हो गये) ॥ २ ॥ उसका भला लोक और परलोक दोनों में होता है कि जिसको अत्यन्त सुन्दर (राम-नाम) का बल है। हे तुलसी ! राम-नाम से संसार में कूच (अर्थात् आवागमन) और मुकाम (गर्भ-वास) का सोच जाना नहीं जाता (अर्थात् मुक्ति हो जाती है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ललित, ललाम = दोनों शब्दों का अर्थ सुन्दर है।

[१५७]

सेइय सुसाहब राम सो।
सुखद सुसील सुजान सूर सुचि सुंदर कोटिक काम सो ॥१॥
सारद सेस साधु महिमा कहैं गुन गन गायक साम सो।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चन्द्र-ललाम सो ॥ २ ॥
गमन विदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको विदित विभीषन बैठो है अविचल धाम सो ॥ ३ ॥
टहल सहल जन महल महल जागत चारिउ जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो ॥ ४ ॥
जाके भजे तिलोक तिलक भये त्रिजग-जोनि तनु ताम सो।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न ताहि विधाता वाम सो ॥

राम सरीखे सुन्दर स्वामी की सेवा करनी चाहिए। वे सुख के देनेवाले, सुन्दर स्वभाववाले, बड़े चतुर, सूरमा, पवित्र और करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर

हैं ॥ १ ॥ उनकी महिमा को सरस्वती, शेषनाग और साधु बखानते हैं और साम-वेद-सरीखा उनके गुण-समूहों को गाता है और प्रेम से नाम का स्मरण करके शिवजी सरीखे भी उनसे प्रीति चाहते हैं ॥ २ ॥ उनको विदेश (वन) जाने में दुःख का लेश भी नहीं हुआ और जो कोई एक बार (१) भी प्रणाम करे तो वे सकुचा जाते हैं (कि मैं इसका क्या भला करूँ; जो करूँ, सो थोड़ा है) इसका गवाह विभीषण विख्यात है कि जो किसी से हिल न सके ऐसे धाम लङ्का में बैठा है ॥ ३ ॥ उनकी सेवा सीधी है और वे (भक्तजनों के हृदयरूपी) महल महल में चारों युग और चारों प्रहर में जागते रहते हैं और उन्हें दोष के देखने पर रोष नहीं होता है और वे सेवक के गुणसमूहों को सुनकर प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥ उनका भजन करने से तिर्यक् योनिवाले (रीछ, बन्दर, जटायु) और तामसी शरीरवाले (कोल, किरात आदि) तीनों लोकों में उत्तम हो गये । हे तुलसी ! जो ऐसे प्रभु को नहीं भजता है उस पर विधाता उलटा है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—चन्द्रललाम = चन्द्र है आभूषण जिनका ऐसे शिव । सकृत = एक बार । त्रिजगजोनि = पशु, पक्षी, रीछ, बन्दर आदि । तिलक = श्रेष्ठ ॥

[१५८]

राग नट ।

कैसे देउँ नाथहि खोरि ।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि ।
देउ सिष सिखयो न मानत मूढ़ता असि मोरि ॥ २ ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखत चोरि ।
संग वस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥ ३ ॥
करों जो कछु धरों सचि पचि सुकृत सिला बटोरि ।
पैठि उर वरवस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥ ४ ॥

---

(१) पद्मपुराण में कहा है:—

सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति । सरलार्थः ।

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि॥ ५॥

एतेहुँ पर तुम्हरोइ कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहिं छोरि॥ ६॥

स्वामी को दोष कैसे दूँ। हे राम! मेरा मन तुम्हारी भक्ति को छोड़ कर काम का लोभी हुआ घूमा करता है (कि कहीं सुन्दर स्त्री मिले)॥ १॥ मेरी प्रीति अपने पुजाने में तो बहुत है (अर्थात् लोग भेट ला लाकर मुझे पूजें) पर तुम्हारे पूजने में बहुत थोड़ी है (भाव—तुम्हारा पूजन नहीं बनता) और मैं (दूसरों को तो) शिक्षा देता हूँ पर मैं किसी की नहीं मानता ऐसी मेरी मूर्खता है॥ २॥ बड़ी प्रीति से जो पाप किये हैं उनको तो मैं हिरदे में चुरा चुरा कर रखता हूँ (कि कहीं किसी को उजागर न हो जायँ जिससे वैष्णवपने में बट्टा लगे) पर (अच्छे) संगवश जो शुभ (काम बन पड़ते) हैं उन्हें सब दुनिया को निहोरा करके सुनाता फिरता हूँ (कि जिसमें लोग मुझे धर्मात्मा कहें)॥ ३॥ और जो कुछ अच्छा धर्मकार्य्य करता भी हूँ तो उसे रचिपचि अर्थात् बड़े यत्न से खेत में पड़े अन्न के दाने के समान बीन बीन कर धरता हूँ परन्तु हे दयानिधान! पाखंड उसे भी हृदय में धस कर बरजोरी से बाहर निकाल लेता है (अर्थात् पाखंड करने से वह थोड़ा सा सुकृत भी जाता रहता है)॥ ४॥ और लोभ मेरे मन को आशारूपी डोर से ऐसा नचाता है कि जैसे बाज़ीगर बन्दर के गले में डोरी गेर कर उसे नचाता है (और मैं लोभ के कारण) सुन्दर बैराग के तत्त्व की बातें पण्डितों की तरह बना बना कर सुनाता फिरता हूँ॥ ५॥ इतने पर भी तुम्हारा (भक्त) कहाता हूँ सो मैं शरम को तो मानों घोलकर पी गया हूँ। हे राम! इस बेशरमाई पर रीझ कर तुलसी को छोड़ दो (अर्थात् भव-बन्धन से मुक्त कर दो)॥ ६॥

शब्दार्थ—अजोरि = जोड़ना नहीं अर्थात् निकालना। सिला = खेत में पड़े हुए अन्न के दाने। निचोड़ = तत्त्व।

[१५९]

है प्रभु मेरोई सबु दोसु।
सीलसिन्धु कृपाल नाथु अनाथ आरतपोसु॥ १॥

वेष वचन विरागु मनु अघ औगुनन्हि को कोसु ।
रामप्रीति प्रतीति पोली कपट करतब ठोसु ॥ २ ॥
रागु रंगु कुसंग ही सों साधु संगति रोसु ।
चहत केहरि जसहिँ सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥ ३ ॥
संभु सिखवन रसनहूँ नित रामनामहिँ घोसु ।
दंभ हूँ कलि नामु कुंभजु सोच-सागर सोसु ॥ ४ ॥
मोद मंगल मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।
राम नाम प्रभाउ, सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! यह सब मेरा ही दोष है। तुम तो शील के समुद्र, कृपालु और अनाथों के नाथ हो, सो मुझ दुखिया का तुम ही पालन करो ॥ १ ॥ मेरे भेष में और मेरी बातों में तो वैराग है (अर्थात् तुलसी की माला पहिर, और रामफटाका तिलक की छाप लगा कर वेदांत की बातें मारा करता हूँ) परन्तु मेरा मन पाप और औगुनों का ख़ज़ाना है (अर्थात् जब देखो तब पाप और ठगविद्या में लगा रहता है) और (वह मन) रामजी की प्रीति और प्रतीति के लिए तो पोला है (भाव—उसके भीतर न तो राम की प्रीति है न पतयारा है कोरा ऊपर का दिखावा ही दिखावा है) और कपट के कामों से ठोस है (अर्थात् कपटों से भरा है) ॥ २ ॥ वह बुरे संग से प्रीति करके तो प्रसन्न और साधु-संगति से गुस्सा रहता है सो (ऐसे है कि) जैसे ख़रगोश गीदड़ की सेवा करके सिंह का यश चाहै, (भाव—जैसे ख़रगोश गीदड़ के बल से हाथी को मार के सिंह का सा यश चाहै सो गीदड़ तो आप ही ख़रगोश को खा जाता है फिर उसके बल से यश मिलना तो दूर रहा, जान भी नहीं बचेगी तैसे ही मैं कुसंग के द्वारा रामभक्त का यश चाहता हूँ सो यश तो दूर रहा वह मेरे थोड़े से गुन का भी नाश कर देगा) ॥ ३ ॥ शिवजी की शिक्षा जीभ से यही है कि सदा राम-नाम की रटना किया कर (जो कहो कि चित्त शुद्ध नहीं है तो बाहर से राम-नाम रट कर क्या होगा, तहाँ कहते हैं कि) कलियुग में पाखण्ड से भी राम का नाम शोकरूपी समुद्र के सोखने को अगस्त्यरूप है (अर्थात् इससे लोक, परलोक सबका शोक मिट जाता है) ॥ ४ ॥ वह (राम-नाम) आनन्द-मङ्गल की जड़ (और अपने भक्तों पर) ऐसा भारी प्रसन्न रहता है कि जिसकी तुलना नहीं हो सकती और राम-नाम का प्रभाव सुन कर तुलसी को भी बड़ा संतोष होता है (भाव—मैं भी नाम के सहारे हूँ, मेरा भी वह उद्धार कर देगा) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कोसु = ख़ज़ाना। दम्भ = पाखण्ड। निरजोसु = निर = नहीं है जोसु (जोखु) = तोल जिसकी अर्थात् अतोल।

[१६०]

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन दोउक बानक बने॥ १॥
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात का पै गने॥ २॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दासतुलसी सरन आयो राखिये आपने॥ ३॥

हे राम! मैंने सुना है कि तुम पापियों के पवित्र करनेवाले हो। सो मैं तो पापी हूँ, और तुम पापियों के तारनेवाले हो, दोनों का बानक बन गया (अर्थात् तुम मेरे गाहक हो और मैं तुम्हारा गाहक। अच्छा मेल मिला)॥ १॥ (मैंने क्या सुना था सो कहता हूँ कि) व्याध (वाल्मीकि उलटा नाम लेते ही महामुनि हो गये), गणिका (वेश्या थी, बड़ा पाप करती थी पर अपने पाले हुए तोते से रामनाम सुन कर तर गई), गजराज (जब उसे ग्राह ने पकड़ा और उसने तुम्हारा स्मरण किया तब तुमने उसे भी तारा), अजामेल (महापापी था पर मरते समय अपने पुत्र नारायण को पुकारने से वह भी तरा) इनकी गवाही वेद कह रहे हैं अर्थात् दे रहे हैं। (इनको छोड़) और अनेक नीचों को तुमने तारा है वे किससे गिने जा सकते हैं॥ २॥ जिन्होंने जान कर या बे-जाने तुम्हारा नाम लिया है उनके लिए नरक और यमपुर में जाने की मनाई हो गई (अर्थात् वहाँ कोई नहीं जा सका। यही सुन कर) तुलसीदास तुम्हारी शरण आया है। इसे भी अपना करके रक्खो॥ ३॥

शब्दार्थ—बानक = काम। निगम = वेद। अधम = नीच।

[१६१]

राग मलार।

तोसो प्रभु जोपै कहुँ कोउ होतो।
तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लटि ऐसो घटि को तो॥

कृपासुधा जलदानि माँगिबो कहों सो साँच निसोतो ।
स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत चित चातक को सो पोतो ॥२॥
काल करम वस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो ।
ज्यों मुदमय बसि मीन वारि तजि उछरि भभरि लेतो गोतो॥३॥
जितो दुराउ दासतुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो ।
तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो ॥ ४ ॥

(हे राम !) जो तुझसा कहीं और कोई समर्थ होता तो ऐसा नीच कौन था जो ऐसे बड़े निरादर को सह कर और रात दिन (तेरा नाम) रटते रटते दुबला होता (अर्थात् जब दुनिया भर में कोई दूसरा नहीं है तब तो द्वार पर पड़ा अनादर सह रहा हूँ) ॥१॥ मैं जो कृपारूपी अमृतजल का दान माँगने को कहता हूँ वह (माँगना) सचों ही निराला है। (उसमें निरालापन क्या है कि) मेरा चित्तरूपी चातक का बच्चा स्नेहरूपी स्वाति के सुख-रूपी जल को चाहता है (सो चातक तो थोड़े दिन ठहर सकता है पर मेरा चित्त बच्चा है, ठहर नहीं सकता सो जल्दी कृपा कर) ॥२॥ काल तथा कर्म के वश कभी कभी मेरे मन में बुरे काम की कुछ इच्छा हुई भी तो (वह उससे ऐसा भागता है) जैसे मछली आनन्द से जल में रहती है और कभी कभी उसमें से उछल कर फिर भड़भड़ा कर गोता ले जाती है (भाव—जब मन में विकार आता है तब उसे छोड़ फिर झट आपके सन्मुख आ जाता है) ॥३॥ तुलसीदास के हृदय में जितना कपट है उतना कैसे कहने में आ सकता है (अर्थात् मेरी तो बड़ी भारी नीचता है और मुझे संसार से तरने में सन्देह है पर तेरा भरोसा है क्योंकि) हे राजा दशरथ के लाड़ले ! तेरे राज्य में (खेत) बिना जोते बोये (सब लोगों ने नाज) पाया है। (अर्थात् तेरे प्रभाव से प्राणियों ने बिना ही जप, तप, तीर्थ-यात्रा आदि साधनों के मुक्ति पाई है) ॥४॥

शब्दार्थ—निपट = बड़ा। घटि = नीच। भो = हुई। निसोतो = निराला। पोत = बच्चा। ओतो = उतना।

[१६२]

राग सोरठा ।

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥ १ ॥

जो गति जोग बिराग जतनकरि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति दई गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥ २ ॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावनसिव पह लीन्ही।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥ ३ ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो ॥ ४ ॥

संसार में ऐसा कौन उदार है जो बिना सेवा किये दास पर प्रसन्न हो जाता हो; ऐसा रामचन्द्रजी के बराबर कोई भी नहीं है ॥ १ ॥ जिस गति (अर्थात् मोक्ष) को मुनि और ज्ञानी योग और वैराग (अनेक) यत्न करने से भी नहीं पाते हैं उस (मोक्ष) को गीध और भीलनी को देने में रामजी ने अपने जी में बहुत नहीं समझा, (अर्थात् थोड़ा ही समझा कि मैंने इन्हें कुछ नहीं दिया) ॥ २ ॥ जिस सम्पत्ति को रावण ने अपने दश शिर भेट करके शिवजी से पाया था, उसी सम्पत्ति को रामजी ने विभीषण को बहुत शरमा कर दिया (कहने लगे हमने इसे क्या दिया यह तो इसका हक़ ही था) ॥ ३ ॥ (तुलसीदास कहते हैं कि) हे मेरे मन ! जो तू भाँति भाँति के सब सुख पाना चाहता है तो रामचन्द्रजी का भजन कर। वे कृपानिधान तेरी सब इच्छाओं को पूरा करेंगे ॥ ४ ॥

[१६३]

एकै दानि सिरोमनि साँचो।
जिहि जाँच्यो सो जाचकताबस फिरि बहु नाच न नाचो ॥१॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये।
कोसलपाल कृपाल कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाये ॥ २ ॥
हरि हु और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई।
लै चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बाल मिताई ॥ ३ ॥
कपि सबरी सुग्रीव बिभीषन को नहिं कियो अजाँची।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस पिसाची ॥४॥

हे राम! एक तू ही दाताओं का सच्चा, शिरोमणि है। जिसने तुझसे माँगा फिर वह (प्राणी) माँगने के लिए बहुत सा नाच नहीं नाचा (अर्थात् तूने एक ही बार उसे ऐसा निहाल कर दिया कि उसे अन्य देवताओं से माँगने की इच्छा नहीं रही) ॥ १ ॥ देवता, दैत्य, मनुष्य और मुनीश्वर ये सब स्वार्थी हैं; कोई बिना (भेंट-पूजा) लिये नहीं देता। पर हे राम! तू ऐसा दयावान् और कल्पवृक्ष, कि एक ही बार शिर नवाने पर कृपालु हो जाता है ॥ २ ॥ (दूसरे देवताओं की क्या कहें विष्णु भगवान् के किसी अवतार में भी यह गुण नहीं है क्योंकि) विष्णु भगवान् ने अपने और और अवतारों में वेद की बड़ाई तो रक्खी (अर्थात् अपने चलाये वेद-धर्म की यह रक्षा तो करी कि शङ्खासुर वेद चुरा ले गया था उसे मच्छरूप धारण करके वेद ले आये। वाराहरूप धर के पृथ्वी लाये, नरसिंहरूप से प्रह्लाद भक्त की रक्षा की इत्यादि पर ये अवतार प्रयोजनमात्र करके तुरन्त लुप्त हो गये, अब रह गया कृष्णावतार सो उसमें भी श्रीकृष्ण ने दर्शन-मात्र से किसी को ऐश्वर्य्य नहीं दिया। जो कहा कि सुदामा को निहाल कर दिया सो भी नहीं, क्योंकि) यद्यपि सुदामा से लड़कपन की मित्रता थी तो भी उससे चिरुआ लेकर सम्पत्ति दी (यह कुछ उदारता नहीं, और मुक्ति तो उद्धव आदि साथियों को भी नहीं दी) ॥ ३ ॥ और हे राम! तूने कपि हनुमान्, शबरी, सुग्रीव और विभीषण इनमें से किसको याचना-रहित नहीं किया (तेरे दर्शनमात्र से जिसने जो चाहा सो पाया और मुक्ति को तो तूने कौड़ी की तरह बाँटा) हे दयानिधान! अब तुलसी को कठिन आशारूपी पिशाचिनी दुःख देती है (सो इससे छुड़ा कर इसकी याचना भी पूरी कर) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—द्रवत = कृपा करते हो। सकृत = एक बार। निधि = संपत्ति। दारुन = कठिन।

[१६४]

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेहु सगाई ॥१॥
नेह निवाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहुँ पितु ते अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई ॥ २ ॥
तियबिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‌यो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदै अधिकाई ॥ ३ ॥

घर गुरु-गृह प्रिय-सदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहैं सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई ॥ ४ ॥
सहज सरूप कथा मुनि वरनत रहत सकुचि सिरनाई।
केवट मीत कहे सुख मानत वानर बंधु बड़ाई ॥ ५ ॥
प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई।
तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानि है को सेवकाई ॥६॥
तुलसी राम सनेह सील सुनि जो न भगति उर आई।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु तरुनता गँवाई ॥७॥

रामजी ही प्रीति की रीति को जानते हैं। सब नातों को छोड़ कर रामजी केवल प्रेम का नाता रखते हैं ॥१॥ जिन दशरथजी ने प्रेम निभा कर और शरीर को छोड़ कर अचल यश फैलाया ऐसे पिता से भी अधिक उन्होंने गिद्ध पर ममता करी (अर्थात् उसका पिण्डदान किया) और उसका बड़ा गुण माना (अर्थात् सीताजी के लिए उसने अपने प्राण दिये थे और वह शुद्ध स्नेह रखता था, इसलिए भगवान् ने उसको दिव्य देह से अपने धाम भेज दिया) ॥ २ ॥ अपने मित्र सुग्रीव को स्त्री के विरह में देख कर अपने प्राणों से प्यारी (सीताजी) को भूल गये, (अर्थात् पहले जब बाली को मार के सुग्रीव को स्त्री का सुख करा दिया तब चार मास पीछे उससे सीताजी के लिए उपाय कराया) फिर युद्ध में (शक्ति लगने से) भाई (लक्ष्मण) तो (घायल) पड़े (उनका तो सोच नहीं किया) और हृदय में विभीषण का ही बड़ा सोच हुआ (कि यदि लक्ष्मण न रहेंगे तो मेरे प्राण भी जायँगे और वानर-भालु अपने अपने घर जा रहेंगे पर विभीषण बेचारा कहाँ जायगा) ॥ ३ ॥ अपने घर, गुरु के घर, प्यारों के घर और सासरे में जब जहाँ मिहमानी हुई तब (किसी के भोजन की सराहना न की) वहाँ यही कहा कि शवरी के बेरों का सा स्वाद और मिठास मुझे कहीं नहीं आया (भाव—औरों को अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड था और शवरी ने सच्ची भक्ति से अमान होकर बेर भेंट किये थे) ॥ ४ ॥ जब मुनिजन (भगवान् के) सहज स्वरूप (सच्चिदानन्द परब्रह्म) की कथा का वर्णन करते हैं (यथा—रामस्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर। अविगत अगम अपार नेति नेति नित निगम कह)

तब भगवान् शरम के मारे नीचा सिर करके रह जाते हैं (कि हमको तो ऐश्वर्य्य छिपा कर नर-लीला करनी है ये हमारा भेद क्यों खोलते हैं) और निषाद का मित्र कहने से तो सुख और बन्दरों का भाई कहने से अपनी बड़ाई मानते हैं ॥ ५ ॥ हे भाई! प्रेम से दबाव माननेवाला रघुनाथजी के समान समर्थ कोई तीनों लोकों और तीनों कालों में नहीं है। जिन्होंने हनूमान्‌जी से कहा कि "मैं तेरा ऋणी हूँ" उनके समान सेवा को कौन मानेगा ॥ ६ ॥ हे तुलसीदास! रामजी का प्रेम और स्वभाव देख कर जो हृदय में भक्ति नहीं हुई तो हे मूर्ख! माता ने तुझे वृथा जन कर अपने शरीर की जवानी खोई ॥ ७ ॥

[१६५]

रघुबर रावरी इहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥ १ ॥
थके देव साधन अनेक करि सपनेहुँ नहिं देइ दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई ॥ २ ॥
मिलि मुनिवृंद फिरे दंडकवन सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
स्वान कहेते कियो पुर बाहर जती गयंद चढ़ाई।
तियनिंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥ ४ ॥
यह दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ॥ ५ ॥

हे रघुवीर! तुम्हारी यही बड़ाई है। अभिमानियों का निरादर कर ग़रीबों का आदर और उन पर बड़ी कृपा करते हो ॥ १ ॥ देवता अनेक साधन करके थक गये परन्तु उनको स्वप्न में भी दिखाई नहीं दिये (क्योंकि उनको देवतापन का घमण्ड था) पर निषाद, बुरे स्वभाव के रीछ बन्दर और राक्षस (विभीषण) इन सबका भाई का सा संग दिया (क्योंकि ये सब मानरहित थे) ॥ २ ॥ दंडक-वन में विचरते समय अनेक मुनियों से मिले उस चर्चा को तो नहीं चलाया (क्योंकि उनको योग,

तप आदि का मद था) पर बार बार गिद्ध और शवरी की सुन्दर प्रीति का बखान करते रहे (क्योंकि ये दोनों नीच, ग़रीब और मानरहित थे) ॥ ३ ॥ कुत्ते के कहने से संन्यासी (१) को तो हाथी पर चढ़ा कर नगर के बाहर कर दिया (क्योंकि उसने घमण्ड से कुत्ते के सिर में लकड़ी मारी थी) पर सीताजी की निन्दा करनेवाले, महामूर्ख धोबी को अपनी प्रजा जान नीति से नगर में बसाया (क्योंकि उसे ग़रीब और सच्चा समझा) ॥ ४ ॥ सो इस दरबार में ग़रीब के आदर करने की रीति सदा से चली आई है पर हे दीनदयाल ! इस दीन तुलसी की याद आपको किसी ने नहीं दिलाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गनी = अभिमानी वा धनी । स्वान = कुत्ता । जती = संन्यासी । गयन्द = हाथी । रज = धोबी । नय = नीति । कौनप = राक्षस ।

[१६६]

ऐसे राम दीनहितकारी ।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ॥ १ ॥
साधन-हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि-नारी ।
गृह ते गवनि परसि पद पावन घोर सापतें तारी ॥ २ ॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाइ अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरनगये भय टारी ॥ ४ ॥
बिहँगजोनि आमिष अहार पर गीध कौन ब्रतधारी ।
जनकसमान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधमजाति सबरी जोषित सठ लोक बेद ते न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥

---

(१) १४६ वें भजन की टिप्पणी देखो ।

कपि सुग्रीव बंधुभय व्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ॥ ७॥
रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते वानर रीछ विकारी।
वेदविदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥ ९ ॥
कहँ लौं कहौं दीन अगनित जिन्ह की तुम विपति निवारी।
कलिमल ग्रसित दासतुलसी पर काहे कृपा बिसारी ॥ १० ॥

रामचन्द्रजी ग़रीबों का ऐसा भला करनेवाले हैं। वे बड़े कोमल, दया के स्थान और बिना प्रयोजन दूसरों का उपकार करनेवाले हैं ॥ १ ॥ (तप, जप आदि) साधनों से रहित और ग़रीब (गौतम) मुनि की स्त्री (अहिल्या) जो अपने पाप के वश शिला हो गई थी, उसे घर से जाकर और अपने पवित्र चरण से छूकर बड़े भारी शाप से तार दिया ॥ २ ॥ हिंसा में प्रीति करनेवाला और जिसका तामसी शरीर था ऐसा निषाद पशु के समान वन में फिरता था। उससे प्रेम के वश छाती से छाती लगाकर मिले और उसकी जाति तथा कुल का कुछ भी विचार नहीं किया ॥ ३ ॥ और यद्यपि इन्द्र के पुत्र (जयन्त) ने (सीताजी के पैर में चोंच मार कर) ऐसा भारी वैर किया था जो कहा नहीं जा सकता पर जब वह सब लोकों में (रक्षक) देख फिरा और (झख मार कर) शोक का मारा शरण में आया तब उसका भय दूर कर दिया ॥४॥ और पक्षी की योनि और मांस के भोजी गिद्ध ने कौन सा व्रत धारण किया था जो अपने हाथ से पिता के समान उसकी क्रिया कर सब भाँति उसकी (बात) सुधार दी ॥ ५ ॥ नीच जाति शवरी महामूर्ख स्त्री थी कि जो संसार और वेद से अलग थी (अर्थात् न तो कोई उसे छूता था और न उसकी जाति की वेद में बड़ाई थी) पर उसकी प्रीति समझ कर और उसे अपना दर्शन देकर कृपालु रामजी ने उसका भी उद्धार कर दिया ॥ ६ ॥ सुग्रीव बन्दर भाई के डर से घबरा कर जब पुकारता हुआ शरण में आया तब दास का कठिन दुःख न सह सके और बाली को मार उसकी गालियाँ सहीं ॥ ७ ॥ वैरी का भाई विभीषण राक्षस किस भजन का अधिकारी था। पर जब शरण में आया तब उसे (रामजी ने) आगे होकर लिया और भुजा पसार कर उससे मिले ॥८॥

जिनका स्मरण करने से बुराई हो ऐसे बुरे मुँह के जो रीछ बन्दर थे उन सबको पवित्र कर दिया। हे नाथ! यह तुम्हारी महिमा वेद में प्रकट है॥ ९॥ मैं कहाँ तक कहूँ अनेक ग़रीब हैं जिनकी विपत्ति तुमने दूर की है। पर न जाने इस तुलसीदास पर, कि जिसे कलियुग के पापों ने पकड़ रक्खा है, कृपा करना क्यों भूल गये॥ १०॥

शब्दार्थ—अघ = पाप। आमिष = मांस। जोषित् = स्त्री। बिकारी = बुरे मुँह के।

[१६७]

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जाने सो जेहि बनि आई॥ १॥
जो जेहि कला कुसलता कहुँ सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहे गज भारी॥ २॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै॥ ३॥
सकल दृस्य निज उर मिलि के सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिसय द्वैत वियोगी॥ ४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसा हीन संसय निरमूल न जाहीं॥ ५॥

रामचन्द्रजी की भक्ति करने में बड़ी कठिनता है। (पहले तो सहज कह आये हैं अब कठिन क्यों कहते हैं उसका समाधान यों है कि) कहने में तो सीधी है पर उसके करने की रीति का पार नहीं है; उसे वही जानता है जिसने किया है॥ १॥ जो जिस कला के करने में चतुर है उसको ही वह (कला करना) सीधा और सदा सुख-कारी है (दूसरे को नहीं) जैसे गंगाजी के जल की धार के सामने (छोटी सी) मछली तो चली जाती है और बड़ा हाथी (जो पैरना नहीं जानता) बह जाता है॥ २॥ और जैसे खाँड़ रेत में मिल जाती है तो उसे कोई बल से अलग नहीं कर सकता परन्तु रस की ख़ूब जाननेवाली छोटी सी चींटी बिना परिश्रम के ही उसे पा लेती है (अर्थात् अलग कर खा लेती है)॥ ३॥ (अब राम-भक्ति की रीति कहते हैं) जो योगी (संसार भर के) सब दीखनेवाले पदार्थों को अपने हृदय में धर कर और (अज्ञान) निद्रा

को छोड़कर सोता है (अर्थात् आत्मस्वरूप में तन्मय हो जाता है) और विशेष कर द्वैत से अलग रहता है (अर्थात् किसी वस्तु में भेद भाव न मान उसे ब्रह्ममय समझता है) वही हरि के पदों (अर्थात् परम सुख ब्रह्मानन्द) का अनुभव करता है (इसका भाव यह है कि जो संसार में स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि जितने दीखनेवाले पदार्थ सच्चे जान पड़ते हैं उन सबकी ममता को झूठा मान उन्हें त्यागता है और संसारी वस्तु-मात्र में भेद नहीं जानता है उसे आत्मज्ञान होता है) ॥ ४ ॥ (इसके होने से क्या होगा सो कहते हैं कि) उसमें दुःख, मोह, भय, आनन्द, रात, दिन, देश और काल ये नहीं हैं (भाव—इनका उसमें कुछ ज्ञान नहीं रहता) हे तुलसीदास ! इस दशा के बिना (जीव के) संशय (अर्थात् झूठे पदार्थों को सच्चा मानना इत्यादि) जड़ से नष्ट नहीं होते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सफरी = मछली । सिकता = बालू, रेत । पिपीलिका = चींटी ।

[१६८]

जोपै रामचरन रति होती ।
तौ कत त्रिविधसूल निसि बासर सहते बिपति निसोती ॥ १ ॥
जो संतोष सुधानिसि वासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत विषय बिलोकि झूँठ जल मन कुरंग ज्यों धावै ॥ २ ॥
जो श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥ ३ ॥
जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु विश्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे ॥ ४ ॥
नहिं एको आचरन भजन को बिनै करत हौं तातें ।
कीजै कृपा दासतुलसी पर नाथ नाम के नातें ॥ ५ ॥

जो रामचन्द्रजी के चरणों में तेरी प्रीति होती तो रात दिन तीन प्रकार के दुःख और विपत्ति के प्रवाह क्यों सहने पड़ते ॥ १ ॥ जो रात दिन में कभी सुपने में भी संतोषरूपी अमृत पाता तो यह तेरा मनरूपी कुरंग विषय (रूपी मृगतृष्णा) के झूठे जल को देखकर क्यों दौड़ता (भाव यह है कि जो तुझे थोड़ा सा भी अमृत समान आत्मज्ञान

होता तो मृग समान तेरा मन मृगतृष्णा के जल समान संसार के झूठे विषय-पदार्थ की ओर क्यों जाता) ॥ २ ॥ जो भगवान् की महिमा को हृदय में विचार कर और उनमें प्रीति बढ़ा कर भजन करता तो द्वार द्वार पर कुत्ते की तरह ख़ाली पेट क्यों दिखाता फिरता ॥ ३ ॥ जो लोभी आशा के चेले हो गये हैं वे सभी के ग़ुलाम हैं (अर्थात् सब जाति की नौकरी करते फिरते हैं) और जिन्होंने प्रभु का भरोसा कर रक्खा है और आशा को जीत लिया है वे भगवान् के दास हैं ॥ ४ ॥ मुझमें भजन करने का एक भी साधन नहीं है इसी लिए विनती करता हूँ कि हे नाथ ! तुलसीदास पर अपने नाम के नाते से दया कीजिए (अर्थात् मैं तो केवल तुम्हारा नाम लेता हूँ यही मेरा तुमसे नाता है) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—त्रिविध सूल = गूढ़ार्थ में देखो । निसोती = प्रवाह । कुरङ्ग = हरिण ।

[१६९]

जौपै मोहिं राम लागते मीठे ।
तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥१॥
वंचक विषय विविध तनु धरि अनुभए सुने अरु डीठे ।
यहु जानत हूँ हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥२॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल वचन कहत अति ढीठे ।
नाम कि लाज राम करुनाकर केहि न दिये करि चीठे ॥३॥

(रामजी कड़ुवे लगते हैं इसलिए विषय-भोग मीठे लगते हैं परन्तु) जो मुझे रामजी मीठे लगते तो नौ रस और छः रस सब रस बेरस और फीके हो जाते ॥ १ ॥ (संसार के) विषय ठग हैं (जीव के ज्ञान आदि धन को लूटते हैं । कर्म के अनुसार) मैंने तरह तरह के शरीर धारण करके उनका अनुभव किया; उन्हें सुना और देखा और मैं अपने हृदय में यह जानता हूँ कि सपने में भी इनसे अघाकर नहीं उकताऊँगा ॥ २ ॥ पर मैं तुलसीदास एक ही बल पाकर भगवान् से बड़े ढीठ वचन कहता हूँ कि हे राम ! तुमने अपने नाम की लाज से करुणा करके किस किसको (भव-बन्धन से छूटने का) परवाना नहीं दिया है (अर्थात् जिसने नाम लिया उसे ही दिया है फिर मुझे भी दो ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—डीठे = (दीठ, दृष्टि) = देखे । नव रस और छः रस को गूढ़ार्थ में देखो । उबीठना = उकताना ।

[१७०]

योँ मन कबहूँ तो तुम्हहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाउ निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ॥१॥
ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के ।
त्यों न साधु सुरसरि-तरंगन विमल गुनगन रघुवर के ॥२॥
ज्यों नासा सुगंध रस वस रसना षट रस रतिमानी ।
राम प्रसाद माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥३॥
चंदन चंदवदनि भूषण पट ज्यौं चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति पद पदुम परस को तन पातकी न तरस्यो ॥४॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेइ वपु वचन हियेहूँ ।
त्यों न राम सु कृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ ॥५॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे ।
रामसीय आस्रमनि चलत सपने न भये स्रमित अभागे ॥६॥
सकल अंगपद विमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है ।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है ॥७॥

इस रीति से मेरा मन तुमसे कभी नहीं लगा कि जिस प्रकार कपट को छोड़ स्वभाव से ही विषयों में सदा लगा रहता है ॥ १ ॥ (मेरे नेत्र) जैसे पराई स्त्री के देखने में लगते हैं और (मेरे कान) जैसे घर घर के पाप और क़िस्से सुनने में लगते हैं वैसे (नेत्र) संत और गंगाजी की निर्मल तरंगें देखने में और (कान) रामजी के पवित्र गुण-गणों के सुनने में नहीं लगते ॥ २ ॥ जैसे यह नाक सुगन्ध रस के वश है (अर्थात् पुष्प, इतर आदि सूँघना चाहती है) और जीभ छः रस से प्रीति मानती है वैसेही (यह नाक) रामजी की चढ़ी माला के लिए और जीभ (उनके) प्रसाद के लिए ललक कर नहीं ललचाती ॥ ३ ॥ जैसे यह नीच शरीर चन्दन, चन्द्रवदनी और गहने कपड़े आदि का स्पर्श करना चाहता है वैसे यह पापी (शरीर) रामचन्द्रजी के चरण-कमलों के छूने के लिए नहीं तरसता है ॥ ४ ॥ जैसे इस

शरीर ने सब भाँति से कुदेव (भूतादिक) और नीच स्वामियों की मन वचन से सेवा की वैसी पुण्य को माननेवाले और एक बार प्रणाम करने पर ही सकुचानेवाले रामजी की सेवा नहीं की ॥ ५ ॥ जैसे ये चञ्चल (डोलू) चरण लोभ के लिए लोभी की भाँति संसार में घर घर भागते फिरते हैं वैसेही राम सीता के (चित्रकूट, अयोध्या आदि) आश्रमों में चल कर ये अभागे कभी सुपने में भी नहीं थकते ॥ ६ ॥ हे नाथ ! मेरे (शरीर के सब) अंग तुम्हारे चरणों से विमुख हैं केवल मेरे मुख ने तुम्हारे नाम की ओट ले रक्खी है (क्योंकि) इस तुलसीदास को एक ही भरोसा है कि तुम्हारी मूर्ति दया का रूप है (अर्थात् तुम सब प्राणियों की रक्षा करते हो तो अपने नाम की लाज से मेरी भी रक्षा करोगे) ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—निरंतर = सदा । रसना = जीभ । सकृत = एक बार ।

[१७१]

कीजै मोको जग जातनामई ।
राम तुमसे सुचि सुहृद साहिबहि मैं सठ पीठि दई ॥१॥
गरभवास दस मास पालि पितु मातु रूप हितु कीन्हों ।
जड़हि विवेकु सुसील खलहि अपराधहिँ आदरु दीन्हों ॥२॥
कपट करौं अन्तरजामिहुँ सों अघ ब्यापकहिं दुरावौं ।
ऐस कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मनवावौं ॥३॥
उदरु भरों किंकर कहाइ बेच्यों विषयन्हि हाथ हियो है ।
मोहिँ से वंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोहु कियो है ॥४॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके ।
भिदेउ न कुलिसहु ते कठोरु चितु कबहुँ नेह सिय पी के ॥५॥
स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज, साँइ दोहाई ।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिसि गरुआई ॥६॥
एतेहुँ पर हित करत नाथ मेरो करि आए अरु करिहै ।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनोड़ाइ भरिहै ॥७॥

(गोसाईंजी अपने ऊपर भगवान् की कृपा देख कर और अपने को उनसे विमुख देख कर कहते हैं) हे नाथ! मुझे संसार की यातना में लिप्त कर दो (अर्थात् मुझे जन्म-मरण आदि कर्मों में डाल दो); हे राम! मुझ मूर्ख ने तुम सरीखे पवित्र और हितकारी स्वामी को पीठ दे रक्खी है (अर्थात् तुमसे विमुख हो रहा हूँ)॥ १॥ गर्भ में मेरा तुमने दश महीने तक पालन कर माता-पिता की भाँति हित किया। मुझ मूर्ख को तुमने ज्ञान दिया, मुझ दुष्ट को तुमने सुशील किया, और अपराध करने पर भी तुमने मेरा आदर ही किया॥ २॥ तो भी अन्तःकरण की जाननेवाले तुमसे मैं छल करता हूँ, और घट घट के वासी तुमसे अपने पापों को छिपाता हूँ। ऐसे भी दुर्बुद्धि और बुरे सेवक पर हे राम! तुमने अपने मन को टेढ़ा नहीं किया॥ ३॥ मैं तुम्हारा दास कहला कर तो अपना पेट भरता हूँ, पर मैंने अपने हृदय को विषयों के हाथ बेच रक्खा है (अर्थात् मेरा मन विषयों में ही लगा रहता है) तो भी मुझ सरीखे ठग पर हे कृपालु! तुमने मेरे छल को क्षमा करके कृपा ही की है॥ ४॥ तुम्हारे पल पल के उपकारों को अच्छी तरह जान कर, समझ कर और (दूसरे से) सुन कर भी हे जानकीपते! तुम्हारा प्रेम मेरे वज्र के समान कठोर हृदय में कभी भीतर पार नहीं हुआ (अर्थात् कोरा सुन कर और मन में समझ कर ही रह जाता हूँ)॥ ५॥ स्वामी की सौगन्द (खाकर कहता हूँ कि) स्वामी मुझ सेवक पर जितना हित करते हैं उसको तो सब लेकर और अपने कुटिलपन में से थोड़ा सा लेकर मैंने अपनी बुद्धिरूपी तराज़ू पर तोल कर देखा तो मेरी तरफ़ ही (कुटिलता का पलड़ा) भारी रहा॥ ६॥ इतने पर भी हे नाथ! मुझ पर हित करते हो, (पूर्वजन्म में) कर आये हो और (इसी से निश्चय होता है कि) आगे भी करोगे। तुलसीदास अपनी ओर से जानता है कि मुझ सरीखे कनोड़े का प्रभु ही पालन करेंगे॥ ७॥

शब्दार्थ—बावों (वाम = बायां) = टेढ़ा। तुला = तराज़ू। कनोड़ा = अहसान से दबा हुआ।

[१७२]

कबहुँक हों येहि रहनि रहोंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा ते संत सुभाउ गहोंगो॥१॥
जथा लाभु संतोष सदा काहू सों कछु न चहोंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहोंगो॥२॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहोंगो।

विगत मान सम सीतल मन पर गुन औगुन न कहोंगो ॥३॥
परिहरि देहजनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहोंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहोंगो ॥४॥

क्या मैं कभी इस रहन से भी रहूँगा और कृपालु श्रीरामचन्द्रजी की दया से संतों का सा स्वभाव ग्रहण करूँगा ॥ १ ॥ जो कुछ मिलेगा उसी में सन्तोष कर सदा किसी से कुछ नहीं चाहूँगा और निरन्तर (सदा) पराये भले में लग कर मन, कर्म और वचन से नेम निबाहूँगा ॥ २ ॥ कानों से बड़े कठोर और असहन वचनों को सुन कर उनकी आग से नहीं जलूँगा (अर्थात् क्रोध नहीं करूँगा) और अभिमान को छोड़ कर चित्त को एक सा शान्त रक्खूँगा। पराये गुणों को कहूँगा, और दोषों को नहीं कहूँगा ॥ ३ ॥ और शरीर से उत्पन्न हुई चिन्ता छोड़ कर सुख, दुख को समान बुद्धि से सहूँगा (अर्थात् सुख, दुख को एक सा जानूँगा) और हे प्रभो ! मैं तुलसीदास भी इस मार्ग में रह कर (कभी) भगवान् की अचल भक्ति पाऊँगा ॥ ४ ॥

[१७३]

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
येहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो ॥१॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पायेहिं पै जानिबो करम-फलु भरि भरि वेदु परोसो ॥२॥
आगम विधि जप जोग करत नर, सरत न काज खरो सो ।
सुख सुपनेहु न जोग सिधि साधत, रोगु वियोगु धरो सो ॥३॥
काम कोह मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरो सो ।
बिगरतु मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥
बहुमत मुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहूँ लागत राज-डगरो सो ॥५॥
तुलसी विनु परतीति प्रीति फिर फिरि पचि मरै मरो सो ।
राम नाम बोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो ॥६॥

(रामनाम को छोड़ मेरे मन में) दूसरे साधनों का भरोसा नहीं होता (कि कर्मयोग आदि साधनों से कोई संसार के पार हो सके क्योंकि) इस कलियुग में सब साधनरूपी वृक्ष तो हैं पर श्रमरूपी फलों से फल रहे हैं (अर्थात् सब साधनों में कोरा श्रम ही श्रम है कार्य की सिद्धि नहीं है) ॥ १ ॥ तप, तीरथ, व्रत, दान और यज्ञ जिसको जो सुहावे वह उसे करै। पर इन कर्मों का फल मिलने पर जान पड़ेगा (कि अमुक तप, तीरथ आदि का यह फल मिला), यों तो वेद ने (इन कर्मों के फल को) ख़ूब भर भर कर परोसा है (अर्थात् हर एक यज्ञ-व्रत आदि का यही फल लिख मारा है कि इसी से चारों पदार्थ मिलेंगे पर यह कठिन है इसलिए वृथा है) ॥२॥ मनुष्य शास्त्र की विधि से जप और योग करते हैं परन्तु उनसे ठीक ठीक काम नहीं चलता (क्योंकि) योग सिद्धि के साधने में सपने में भी सुख नहीं है (वरन्) उसमें रोग और (प्यारों का) वियोग धरा है (जब सुख ही नहीं है तब कैसे सिद्धि होगी इसलिए उसका करना वृथा है) ॥ ३ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह ने मिल कर ज्ञान और वैराग को हर रक्खा है (अर्थात् काम आदि के मारे ये नहीं हो सकते, ये भी वृथा गये) और संन्यास के लेने से मन ऐसा बिगड़ता है कि जैसे पानी गेरने से कच्चा घड़ा गल जाता है (कारण कठिनता देख नियमों का पालन नहीं हो सकता सो यह भी वृथा है) ॥ ४ ॥ और मुनियों के बनाये बहुत से मत हैं (जैसे जैमिनि की मीमांसा, गौतम का न्याय इत्यादि) और पन्थ भी बहुत से हैं (जैसे नानकपन्थ, दादूपन्थ आदि) और पुराण भी बहुत से सुने हैं परन्तु जहाँ देखो वहाँ झगड़ा सा ही है (कोई एक बात नहीं कहता, इसलिए मेरे) गुरु ने तो मुझे राम भजन कह दिया है (कि यह किया कर) और मुझे भी यह राम के राज्य का सीधा रास्ता अच्छा लगता है ॥ ५ ॥ और हे तुलसी ! बिना पतयारे और प्रीति के (अन्य साधनों में) बार बार पचि पचि के मरे सो भले ही मरे (मेरा तो पक्का सिद्धान्त यही है कि) राम का नाम संसारसागर के लिए नाव है। जो कोई तरना चाहे सो तरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मख = यज्ञ। आगम = शास्त्र। आम = कच्चा। उगरा = सीधा रास्ता। बोहित = नाव।

[१७४]

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम जद्यपि परमसनेही ॥१॥
नाते नेह रामहि के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अंजनु कहा आँखि जेहि फूटै बहुत हों कहों कहाँ लों ॥२॥

तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बधु भरत महतारी।
बलि गु तज्यो कंत ब्रज बनितनि भये जग मंगलकारी ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जाते होइ सनेह राम ते इतनोइ मतो हमारो ॥४॥

जिसको सीता-रामचन्द्रजी प्यारे नहीं हैं उसे करोड़ों वैरियों के बराबर समझ कर छोड़ देना चाहिए। भले ही वह बड़ा प्यारा हो ॥ १ ॥ जहाँ तक मित्र और सुन्दर पूज्य हों (उन्हें अपना सम्बन्धी और मित्र) रामचन्द्रजी के सम्बन्ध और प्रेम से मानना चाहिए। बहुत कहाँ तक कहूँ, वह अंजन किस काम का कि जिससे आँख फूट जाय (अर्थात् संबन्धी तो वही अच्छा जिससे जीव का भला हो, और जिससे हानि हो उसे लेकर क्या करें) ॥ २ ॥ प्रहलाद ने पिता को, विभीषण ने भाई को, और भरतजी ने माता को छोड़ दिया। राजा बलि ने गुरु को छोड़ दिया, ब्रज की स्त्रियों ने पति छोड़ दिये और (ये सब छोड़नेवाले) संसार में मङ्गल के करनेवाले हुए (अर्थात् किसी की बुराई नहीं हुई) ॥ ३ ॥ हे तुलसीदास ! वही सब तरह से बड़ा, हितू, पूज्य और प्राणप्यारा है कि जिससे रामजी में प्रीति हो, इतना ही हमारा मत है ॥ ४ ॥

[१७५]

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर से जाइ जियत जगमाहीं ॥१॥
काम कोह मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबहीं के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो तो सनेह सिय पी के ॥२॥
सूर सुजान सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
विनु हरिभजन इँदारुन के फल तजत नहीं करुआई ॥३॥
कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

जो रामचन्द्रजी से प्रीति नहीं है तो मनुष्य गदहा, कूकर और शूकर के समान हैं और जगत् में वृथा जीते हैं (भाव—विद्या पद के रामनाम के प्रेम बिना मनुष्य गदहे

के समान भार ढोनेवाला, कुत्ते के समान भौंकनेवाला, और शूकर के समान भक्ष्य-अभक्ष्य खानेवाला है) ॥ १ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, निद्रा, भय, भूख और प्यास ये तो सब ही को होते हैं परन्तु देवता और सन्तजन जो मनुष्य के शरीर की सराहना करते हैं सो केवल, सीतापति (रामचन्द्रजी) के स्नेह से करते हैं ॥ २ ॥ (मनुष्य को) शूर, चतुर, सपूत, सुन्दर लक्षणवाला और भारी गुणी (भले ही) गिन लो परन्तु भगवान् के भजन बिना (ये सब गुण) इन्द्रायन के फलों के समान हैं, जो कि अपने कडुप्पन को नहीं छोड़ते (अर्थात् जैसे इन्द्रायन के फल ऊपर से अच्छे होते हैं, और भीतर से महाकडुए होते हैं ऐसे ही मनुष्य चाहे जैसा गुणी और सुन्दर हो बिना राम-भक्ति उसके भीरत की नीचता नहीं जाती) ॥ ३ ॥ यश, कुल, कर्म, संपत्ति भी अच्छी हो और स्वभाव और रूप भी सुन्दर हो पर हे तुलसीदास ! प्रभु की प्रीति बिना वे ऐसे हैं कि जैसे बिना नोन के शाग-भाजी हो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गरुआई = भारीपन । सालन = भाजी वा बड़े, पकौड़ी, रायता आदि ।

[१७६]

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो ।
एतो अनादर हूँ तोहि ते न हातो ॥ १ ॥
जोरे नए नाते नेह फोकट फीके ।
देह के दाहक गाहक जीके ॥ २ ॥
अपने अपने को सब चाहत नीको ।
मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को ॥ ३ ॥
जीवन को जीवन प्रान को प्यारो ।
सुखहू को सुख राम सो विसारो ॥ ४ ॥
कियो करै करैगो तोसे खल को भलो ।
ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल क्यों चलो ॥ ५ ॥
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै ।
राढउ राउत होत फिरि कै जूझै ॥ ६ ॥

अरे नीच ! तूने रामचन्द्रजी सरीखे सुन्दर स्वामी से प्रेम और नाता नहीं रक्खा । इतना अनादर होने पर भी उन्होंने तुझे नहीं छोड़ा (अर्थात् तेरे ऊपर कृपा ही करते रहे) ॥ १ ॥ (तूने जो जन्म जन्म में स्त्री पुत्रादि से) नये नये नाते और स्नेह जोड़े सो सब बिना रस के फीके थे (अर्थात् सब वृथा थे ऐसा एक भी नहीं हुआ कि जिससे तेरा भला होता और तू भवबन्धन से छूटता इसलिए) वे देह के जलानेवाले और तेरे शरीर के गाहक कहिए लेनेवाले ही थे ॥ २ ॥ अपना और अपने (सगों) का सब भला चाहते हैं पर दोनों की (भले की) जड़ अर्थात् करनेवाले तो सीतापति रामजी हैं ॥ ३ ॥ वे जीवों के जीवन हैं (अर्थात् आत्मरूप से सबमें प्रकाशित हैं) और प्राणों के प्यारे हैं (अर्थात् पाँचों प्राणों (१) के अन्तर्यामीरूप से चैतन्य करनेवाले हैं) और सुख के भी सुख हैं (अर्थात् भक्तों को बड़ा सुख देनेवाले हैं; उनके बिना संसारी स्त्री पुत्रादि का सुख-भोग नहीं हो सकता) ऐसे रामजी को तू भूल गया ॥ ४ ॥ जिन्होंने (पहले भी) किया और (फिर भी) तुझ सरीखे दुष्ट का भला करेंगे ऐसे सुन्दर स्वामी से तू ऐसी बुरी चाल क्यों चला (भाव—विमुख क्यों हुआ) ॥ ५ ॥ हे तुलसी ! जो तू अब भी समझे तो तेरा भला हो सकता है क्योंकि कायर भी फिर से लड़कर सूरमा हो जाता है (भाव—अब तक जो आयु गई उसे जाने दे और विषयों को छोड़ भगवान् का भजन कर जिससे तेरा कल्याण हो) ॥६॥

शब्दार्थ—हतौ = छोड़ा । फोकट = नीरस । सी = सीता । राढ = कायर । राउत = (रावत) = शूरवीर ।

[१७७]

जो तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागों ।
परिहरि पाँय काहि अनुरागों ॥१॥
सुखद सुप्रभु तुमसों जग माहीं ।
स्रवन नयन मन गोचर नाहीं ॥२॥
हौं जड़ जीव ईस रघुराया ।
तुम मायापति हौं बस माया ॥३॥

---

(१) गूढ़ार्थकोश में देखो ।

हौं तो कुजाचक स्वामी सुदाता।
हौं कुपूत तुमहीं पितु हित माता ॥४॥
जौ पै कहुँ कोउ बूझतो बातो।
तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥५॥

हे रघुनाथजी! जो तुम मुझे छोड़ दोगे तो भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा क्योंकि तुम्हारे चरणों को छोड़ मैं किससे प्रेम करूँगा ॥१॥ तुम्हारे समान सुख का देनेवाला और सुन्दर स्वामी इस संसार में, न कान से (सुनने में आता है), न आँख से (देखने में आता है) और न मन से (समझने में) आता है ॥२॥ हे राम! मैं तो जड़ जीव हूँ और तुम ईश्वर हो और तुम तो माया के पति हो और मैं माया के अधीन हो रहा हूँ ॥ ३ ॥ मैं तो कंगाल मँगता हूँ और तुम बड़े दानी हो (पात्र कुपात्र बिना देखे दान देते हो। अजामेल ने भ्रम से नाम लिया उसका उद्धार कर दिया फिर मैं तो रात दिन नाम लेता हूँ मेरा उद्धार क्यों न करोगे) मैं तुम्हारा कपूत हूँ और तुम मेरे माता पिता हो (मैं सपूत होता तो हर कोई रख लेता, कपूत को तो माँ बाप ही रखते हैं सो मेरा पालन करो) ॥ ४ ॥ (हे प्रभो!) जो कोई भी कहीं (दुनिया में) मेरी बात पूछता तो तुलसीदास बिना मोल बिक जाता (भाव—कोई मुझसे नीच और निठल्ले को लेकर क्या करे इसलिए सिवाय तुम्हारे मेरा कोई गाहक नहीं है, तुम्हीं अपनी शरण में रक्खो) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—स्रवन = कान। गोचर = इन्द्रियों का काम, देखना, सुनना आदि। बातो = बात।

[१७८]

भये हूँ उदास राम मेरे आस रावरी।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥१॥
जीवन को दानि घनु कहा ताहि चाहिये।
पेम नेम के निबाहे चातकु सराहिये ॥२॥
मीन ते न लाभु लेस पानी पुन्य पीन को।
जल बिनु थल कहाँ मीचु बिनु मीन को ॥३॥
बड़े हि की ओट बलि बाँचि आये छोटे हैं।

चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥ ४ ॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहुँ बाम को।
मोको सुभदायक भरोसो राम नाम को ॥ ५ ॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥ ६ ॥

हे रघुनाथजी! तुम मुझसे उदासीन होगे तो भी मुझे तो तुम्हारी ही आशा है (भाव—जो तुम न देखोगे तो भी तुम्हारे द्वार पर आशा लगाये पड़ा हो रहूँगा क्योंकि) जो दुखी और स्वारथी होते हैं वे सब पागलों की सी बातें कहा करते हैं (उन पर दृष्टि न कर मेरी कामना पर ध्यान दो) ॥१॥ पानी के देनेवाले मेघ को क्या चाहिए (वह बिना स्वारथ चातक को स्वाति जल देता है) परन्तु प्रीति और नेम के निबाहने से चातक की सराहना होती है (कि वह मेघ से प्रेम कर नेम से स्वाति का ही जल पीकर जीता है सो तुम्हारी उदारता से मेरी भी सराहना होगी) ॥ २ ॥ और पवित्र और पुष्ट करनेवाले जल को मछली से कुछ भी लाभ नहीं है पर मछली को बिना जल के कौन सी जगह मृत्यु-रहित है (अर्थात् जहाँ उसकी मृत्यु न हो। सो जैसे मछली का जीवन-आधार जल है ऐसे ही तुम्हें मुझ सरीखे पापी से कुछ लाभ नहीं पर तुम्हारी शरण बिना मेरा कल्याण नहीं हो सकता) ॥३॥ मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। बड़ों के सहारे से ही छोटे बचते आये हैं (जैसे अजामेल तुम्हारे नाम के सहारे से यमयातना से बच गया) और खरे (रुपयों) के साथ में खोटे (रुपये) भी इधर-उधर चल जाते हैं (भाव—जैसे रुपये पर राजा का नाम देखकर कोई खोट नहीं देखता ऐसे ही जहाँ तुम्हारे अनेक अच्छे अच्छे भक्त हैं उनमें वैसाही भेस बनाये एक मैं भी खोटा पड़ा रहूँगा) ॥ ४ ॥ (मुझे अपने उद्धार में संदेह नहीं है क्योंकि) इस राम-दरबार में भले बुरे दोनों के लिए ही भलाई होती है (अर्थात् जो भजन करते हैं उनकी भी और जो शत्रुता कर मरते हैं उनकी भी) और हे राम! मुझे तो शुभदायक तुम्हारे नाम का भरोसा है (कि जिससे सब पापी तर गये) ॥ ५ ॥ और हे नाथ! कहने से तो बात बिगड़ जायगी (भाव—भीतर का भरम खुल जायगा इसलिए) हृदय में ही रखना अच्छा है और तुम तो तुलसीदास के मन की जानते ही हो ॥६॥

शब्दार्थ— जीवन = जल। पीन = पुष्ट करनेवाला।

[१७९]

राग बिलावल ।

कहाँ जाउँ कासों कहों कौन सुने दीन की ।
तिभुवन तुही गति सब संगहीन की ॥१॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ॥२॥
गजराज काज खगराज तजि धायो को ।
मो से दोस कोस पोसे तोसे माय जायो को ॥३॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध को ।
कियो बड़े मोल तैं करैया गीधस्राध को ॥४॥
तुलसी की तेरे ही बनाये बलि बनैगी ।
प्रभु की विलंब अंब दोष दुख जनैगी ॥५॥

हे नाथ ! मैं कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ और मुझ ग़रीब की कौन सुनता है। तीनों लोकों में जिनका कोई संगी नहीं उनको तेरी ही शरण है ॥ १ ॥ संसार में जगत् के स्वामी तो घर घर बहुत से बन बैठे हैं पर जिसको किसी का भी सहारा नहीं है उसको सहारा देनेवाले तेरे ही बहुत से गुण हैं ॥ २ ॥ (ऐसे जाना कि) गजेन्द्र के काम करने के लिए (अर्थात् उसे ग्राह से बचाने के लिए) गरुड़ को छोड़ कर कौन दौड़ा था और तूने मुझ सरीखे दोषों के ख़ज़ाने का (अर्थात् महापापी का) भी पालन किया सो (कौशल्या) माता ने तुझ सरीखा किस दूसरे को जना है (अर्थात् नहीं जना; तुझ सरीखा तो तू ही है) ॥ ३ ॥ मेरे समान दुष्ट, काहिल, कपूत और जो आधी कौड़ी का है उसको हे गिद्ध के श्राद्ध करैया ! तैंने बड़े मोल का कर दिया (अर्थात् तेरे नाम के प्रताप से मुझे सब संसार मानने लगा) ॥ ४ ॥ मैं तेरी बलैयाँ लूँ इस तुलसी की (बिगड़ी बात) तो तेरी ही बनाई बनेगी और जो तुझ समर्थ की ओर से देर होगी तो (देररूपी) माता दुःख और दोष को जनेगी (भाव—जो तू देर करेगा तो जाने मैं क्या पाप कर बैठूँगा कि जिससे दुःख होगा इसलिए देर करना ठीक नहीं) ॥ ५ ॥

[१८०]

बारक विलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो ।
राय दसरथ के तू उथपन-थापनो ॥१॥
साहब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेत हीं सुखेत होत ऊसरो ॥२॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥३॥
कौने कियो समाधान सनमान सीला को ।
भृगुनाथ सों रिषी जितैया कौन लीला को ॥४॥
मातु पितु बंधु हित लोक वेद पाल को ।
बोल को अचल नत करत निहाल को ॥५॥
संग्रही सनेहबस अधम असाधु को ।
गीध सबरी को कहो करिहै सराध को ॥६॥
निराधार को अधार दीन को दयालु को ।
मीत कपि केवट रजनिचर भालु को ॥७॥
रंक निरगुनी नीच जेते निवाजे हैं ।
महाराज सुजन-समाज ते बिराजे हैं ॥८॥
साँची बिरदावली न बढ़ि कहि गई है ।
सीलसिन्धु ढील तुलसी की बार भई है ॥९॥

हे नाथ ! मैं बलैयाँ लेता हूँ एक बार (मेरी ओर) देख कर मुझे अपना कर ले । हे दशरथ-नन्दन ! तू उखड़े हुओं को फिर जमानेवाला है (अर्थात् सुग्रीव, विभीषण जो जड़ से उखड़ गये थे उन्हें फिर राज्य पर जमा दिया) ॥ १ ॥ शरणागतों का पालक और ऐसा बली दूसरा स्वामी नहीं है । तेरा नाम लेते ही ऊसर भी सुन्दर (उपजाऊ) खेत हो जाता है (भाव—राक्षस, गणिका, कोल, किरात आदि जो ऊसर के समान थे उनमें तेरा नाम लेने से भक्तिरूपी धान खूब होने लगा) ॥ २ ॥ तेरे वचन और

(पतितपावनता, दीनदयालुता आदि) कर्म मेरे मन में गड़ रहे हैं। संसार में जितने बड़े बड़े हैं उनको मैंने आप देखा (पुराणों से) सुना और समझ लिया ॥ ३ ॥ (उनमें से) किसने अहिल्या का समाधान किया (अर्थात् शाप दूर कर चित्त का संशय मेटा) और आदर किया और लीला से परशुराम-सरीखे ऋषि का (कि जिन्होंने सहस्राबाहु तक को मारा था) जीतनेवाला कौन है (तेरे प्रताप से ही वे हार कर वन को चले गये) ॥ ४ ॥ माता, पिता, भाई इनका हितकारी तथा लोक और वेद का पालनेवाला कौन है? किसका वचन अचल (सत्य) है और प्रणाम करते ही कौन निहाल कर देता है ॥ ५ ॥ प्रेम के वश नीच और दुष्टों का कौन इकट्ठा करनेवाला (अर्थात् शरण देनेवाला) है और शबरी और गिद्ध का कहो कौन श्राद्ध करेगा ॥ ६ ॥ जिनको सहारा नहीं है उनको सहारा देनेवाला और गरीबों पर दया करनेवाला कौन है। कपि, केवट, राक्षस और रीछ इनका मित्र कौन है ॥ ७ ॥ कंगाल, निरगुनी और नीच जितनों को तैंने निवाजा है (अर्थात् जिन जिन पर तैंने कृपा की है) हे महाराज! वे सब सुन्दर भक्तजनों के समाज में (ऊँचे पद पर) विराज रहे हैं ॥ ८ ॥ यह तेरी सच्ची बड़ाई है कुछ बढ़ा कर नहीं कही है (सब वेद पुराण गाते हैं) पर हे शील के समुद्र! तुलसीदास की बिरियाँ बड़ी देर हो रही है ॥ ९ ॥

[१८१]

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिये।
मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिये ॥१॥
सहस सिला ते अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं कौने गति पाहनहिं दई है ॥२॥
पद राग जाग चाहौं कौसिक ज्यों कियो हों।
कलि मल खल देखि भारी भीति भियो हों ॥३॥
करम कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हों।
चाहत अनाथ नाथ तेरी बाँह बस्यो हों ॥४॥
महामोह रावनविभीषन ज्यों हयो हों।
त्राहि तुलसीस त्राहि तिहूँ ताप तयो हों ॥५॥

हे कृपासिन्धु ! किसी तरह मेरी ओर देख। मुझे और जगह नहीं है, एक तेरा ही सुन्दर सहारा है ॥ १ ॥ (तेरा ही सहारा इसलिए है कि अहिल्या पति के श्राप से एक शिला हो गई थी) और मेरी बुद्धि (कलि के शाप से) हज़ार शिलाओं से भी बढ़ कर जड़ हो गई है (सो उसे शुद्ध करने के लिए) किससे कहूँ और (तेरे सिवाय) किसने पत्थरों को मोक्ष दी है (तू ही उसे शुद्ध कर सकता है) ॥ २ ॥ हे हरे ! मैं तेरा पदराग कहिए चरण-प्रेमरूपी यज्ञ किया चाहता हूँ कि जैसा विश्वामित्र ने किया था। परन्तु कलियुग से प्रेरित (काम क्रोधादि) पापी दुष्टों को देखकर मैं बड़े भय से डर गया हूँ (भाव—उस यज्ञ की रक्षा तो तूने ताड़का, मारीच और सुबाहु आदि से की थी और इस पदरागरूपी यज्ञ की रक्षा कुमतिरूपी ताड़का और काम, लोभरूपी मारीच सुबाहु से करके इसे पूर्ण करा दे नहीं यह काहे को होगा) ॥ ३ ॥ (कुटिल) कर्मरूपी वानरों का राजा बालि बड़ा बली है उसके डर से मैं (सुग्रीव की भाँति) डरा हुआ हूँ और हे अनाथों के नाथ ! तेरी बाहु की छाया में बसना चाहता हूँ। (भाव यह है कि जैसे बालि ने सुग्रीव को उसकी स्त्री और धन आदि छीन कर निकाल दिया था और तूने बालि को मार सुग्रीव की रक्षा की थी ऐसे ही कर्मरूपी बालि ने मेरी सुमति-रूपी स्त्री को हर कर मेरा संतोष वैरागरूपी सब धन हर के मुझे निकाल दिया है सो उसका नाश कर मुझे अपनी रक्षा में रख) ॥ ४ ॥ जैसे रावण ने विभीषण को मारा था वैसे ही महा मोह मेरा नाश कर रहा है और यह तुलसीदास तीनों तापों से तप्त रहा है, इसकी रक्षा कर, रक्षा कर ॥ ५ ॥

[१८२]

नाथ गुननाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिवे को जानो भगति न भाउ सो ॥१॥
करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउँ सो।
सुधन न सुतन न सुमन सुआउ सो ॥२॥
जाँचो जल जाहो कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहों काहू सों न बढ़त हीआउ सो ॥३॥
बाप बलि जाउँ आपु करिये उपाय सो।
तेरेही निहारे परै होरहू सुदाउ सो ॥४॥

तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥५॥
नाम अवलंब अंबु दीन मीन-राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहों जीह जरि जाउ सो ॥६॥
सब भाँति बिगरी है एक सोबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥७॥

हे नाथ! तुम्हारे गुणों की कथा सुन कर मेरे मन में आनन्द होता है पर हे राम! मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए भक्ति और भाव को नहीं जानता हूँ ॥१॥ क्योंकि न तो मेरा अच्छा कर्म है, न अच्छा सुभाव है, न अच्छा (सतयुग) समय है, न मेरा कोई धनी धोरी है, और न मेरा कहीं ठिकाना है (भाव—पूरा लावारसी हूँ)। फिर न बहुत सा धन है, न सुन्दर शरीर है, न सुन्दर मन है, और न बड़ी आयु है (अर्थात् थोड़ी सी रह गई है उसमें क्या हो सकता है) ॥ २ ॥ जिससे जल भी माँगता हूँ (कि भैया एक लोटा जल दे दे) वह उल्टा मुझसे कहता है कि मुझे अमृत पिला दे (भाव—जिससे भोजन माँगता हूँ वह मुझे सिद्ध जान धन, पुत्र आदि ऐश्वर्य्य माँगता है सो "देवी दिन काटे, पंडे परचा माँगें" कहावत हो रही है) पर इस बात को किससे कहूँ। किसी से कहने का हियाव नहीं पड़ता ॥ ३ ॥ हे पिताजी! मैं तुम्हारी बलैयाँ लूँ। तुम इसका उपाय करो। क्योंकि तुम्हारे देखने से हारने पर भी सुन्दर दाँव पड़ जाता है (भाव—जो विषयी नरक के अधिकारी थे वे भी तुम्हारी दृष्टि से परम पद के भागी हो गये जैसे किरात भील आदि) ॥ ४ ॥ तुम्हारे सुझाने से असूझ पदार्थ भी सूझने लगता है सो उसे सुझाओ। तुम्हारे ही समझाने से नहीं समझने योग्य (ऐसा वेद का तत्त्व) समझा जाता है उसे समझाओ ॥५॥ मुझे इसी प्रकार तुम्हारे नाम का सहारा है जैसे ग़रीब मच्छों के राजा को जल का है (सो जैसे छोटी मछली हो तो थोड़े पानी में रह जाय और बड़ा मच्छ नहीं रह सकता ऐसे ही और लोगों का काम तो छोटे साधनों से हो सकता है पर मेरा काम तो तुमसे ही होगा)। जो मैं प्रभु से बना कर कहता होऊँ तो मेरी जीभ जल जाय ॥ ६ ॥ सब तरह से मेरी बिगड़ गई है पर एक सुन्दर बानक बन रहा है कि तुलसीदास ने अपने सुन्दर स्वामी को जता दिया है (कि मैं किसी लायक नहीं हूँ) ॥ ७ ॥

[१८३]

राग आसावरी।

राम प्रीति की रीति आपु नीके जनियत है ॥
बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करै ऐसी विरुदावलि बलि वेद मनियत है ॥१॥
गीध को कियो सराध भीलनी के खाये फल सोऊ साधु सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक वेदहू आदरियत जोग ज्ञान हू ते गरू गनियतु है ॥२॥
प्रभु की कृपा कृपाल कठिन कलिहूँ काल महिमा समुझि उर अनियतु है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस दीनबंधु द्वारे हठ ठनियत हैं ॥३॥

हे राम! प्रीति की रीति तुम अच्छी तरह जानते हो। मैं बलि जाऊँ; वेद में तुम्हारी विरुदावली ऐसी मानी गई है कि वह बड़े की बड़ाई (घमंड) और छोटे की छोटाई (दरिद्रता) दूर करनेवाली है ॥ १ ॥ तुमने गिद्ध का श्राद्ध किया, भीलनी के वेर खाये, यह बात भी सन्तजनों की मण्डली में अच्छी भाँति कही जाती है। तुम जिसका आदर करते हो उसका आदर सब लोग और वेद भी करते हैं; और उसे योग और ज्ञान से भी भारी गिनते हैं ॥ २ ॥ हे कृपालु! प्रभु की कृपा से कठिन कलिकाल में भी तुम्हारी महिमा को (भक्तजन) समझ कर मन में भरोसा करते हैं (कि भगवान् अवश्य हमारे ऊपर कृपा करेंगे)। हे दीनबन्धु! तुलसीदास पराये (कहिए संसारी विषयों के) वश हो, रस (कहिए चरणों के प्रेम) से अनरस नाम विमुख हो रहा है तो भी तुम्हारे द्वार पर हठ ठान रहा है (अर्थात् धरना देकर बैठा है; बिना कृपा के नहीं हटेगा) ॥३॥

[१८४]

राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि।

कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ॥१॥
करम कलाप, परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फूले रूष फोकट फरनि।
दंभलाभ लालच उपासना बिनासि नीके सुगति साधन भई उदर भरनि ॥२॥
जोग न समाधि निरुपाधिन, विराग ज्ञान वचन विसेष, वेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि, सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥३॥
मरत महेश उपदेस है कहा करत सुरसरि तीर कासी धरम धरनि।
रामनाम को प्रताप, हर कहैं जपैं आप, जुगजुग जानै जग वेदहूँ बरनि ॥४॥
मति रामनाम हीं सों रति रामनाम हीं सों गति रामनाम हीं की विपति हरनि।
रामनाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥५॥

रामनाम के जपने से मन की जलन मिट जाती है। कलियुग में (यज्ञ, तप आदि) दूसरे साधन तो ऐसे लँगड़े हो गये हैं जैसे अँधेरा दूर करने के लिए चित्र में लिखे सूर्य्य हो (भाव—सब साधनों का पैर तो धर्म है, इसी से सब साधन चल सकते हैं, जब कलि ने धर्म का ही नाश कर दिया तब फिर क्या हो सकता है) ॥ १ ॥ कर्म तो बहुत से हैं पर वे सब सन्ताप और पाप से सने हैं (अर्थात् अश्रद्धा-पूर्वक करने से फल न मिलने पर सन्ताप के, और बीच बीच में विषय की चाह से उलटे पाप के दाता हो रहे हैं) जैसे वृक्ष में सुन्दर फूल तो फूलें पर फल कुछ न लगें (इसी तरह कलि में यज्ञादि साधन वृथा हैं)। पाखंड, लोभ और लालच ने उपा-

सना का अच्छी तरह से नाश कर डाला, क्योंकि यह मोक्ष का साधन (लोगों के) पेट भरने की जीविका हो गई (अर्थात् लोग दुनिया को झूठे झूठे साधन दिखा दिखा कर और ठग ठग कर अपना पेट भरने लगे) ॥ २ ॥ न योग है और न समाधि उपाधि-रहित रही, (अर्थात् थोड़ी आयु के होने से उसमें अनेक खटके लगे हैं) और विराग और ज्ञान केवल वचन और वेष में रह गये, (अर्थात् साधुओं का सा वेश दिखा कर ज्ञान की लम्बी-चौड़ी बातें चाहे जितनी करा लो) बाक़ी करना-धरना कहीं कुछ नहीं। कपट, करोड़ों तरह के कुमार्ग, कहन और रहन (सब) खोटे हो गये। पर तो भी सब लोग अपने अपने चलन की सराहना करते हैं ॥ ३ ॥ (सो सब धर्म का मार्ग जाता रहा है अब केवल रामनाम का प्रताप बाक़ी रहा है वह कैसा है कि) गंगाजी (१) का तो किनारा (कि स्नान करते ही पाप दूर हो) फिर काशी सी (२) धर्मभूमि (कि मरने पर स्वयं मुक्ति हो जाय,) फिर मरते समय शिवजी (३) क्या उपदेश करते हैं कि रामनाम के प्रताप का वर्णन करते हैं और (४) आप उसे रटते और जपते हैं। युगानुयुग से (सतयुग में वाल्मीकि ने जपा सो व्याध से मुनि हुए, ऐसे ही त्रेता में शवरी, द्वापर में श्वपच, कलि में रैदास आदि हुए) संसार जानता है और वेद बखान रहे हैं ॥ ४ ॥ कलि में (लोगों को चाहिए कि) रामनाम में ही अपनी बुद्धि को लगावें, रामनाम से ही प्रीति करें और रामनाम की ही शरण रक्खें—यही विपत्ति का दूर करनेवाला है। रामनाम पर भरोसा और प्रीति रखने से, हे तुलसीदास ! कभी न कभी रामचन्द्रजी अपनी ढरनी से (अर्थात् अपने कारुणिक स्वभाव से) दया करेंगे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तरनि (णि) = सूर्य। कलाप = समूह। धरनि = पृथ्वी।

---

(१) गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।

(२) काश्यां मरणान्मुक्तिः।

(३) पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्पन् जल्पन् प्रकृति-विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशी-निवासी। अर्थात् कोई काशी-निवासी जटाधारी प्राणियों के कान में गली गली यह कहता फिरता है कि, सुन्दर राम नाम बार बार सुनना चाहिए और मन में बारम्बार निरन्तर उसी का ध्यान करना चाहिए कि जो तारकमन्त्र के समान है अर्थात् साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है।

(४) आदिपुराणे— अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदि स्थले ॥ सरलार्थः। स्कन्दपुराण में कहा है। भवन्नामामृतं पीत्वा गीत्वा च भवतां यशः। शिवोऽहं सर्वदेवानां पूजनीयो दयानिधे ॥२॥ अर्थात् हे दयानिधान राम ! आपके नामरूपी अमृत को पीकर और यश गाकर मैं शिव सब देवों का पूज्य हो गया।

[१८५]

लाज लागत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोचत जिश्र जो हरि तुम कहँ भावत ॥१॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जोग बनावत ।
मो सम मंद महा खल पाँवर कौन जतन तेहि पावत ॥२॥
हरि निरमल मलग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥३॥
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत ।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत नसावत ॥४॥
भवसरिता कहँ नाउ संत, यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिन्ह सो करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत ॥५॥
नाहिंन और ठौर मो कहँ ताते हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार चूड़ामणि तुलसिदास गुन गावत ॥६॥

(हे राम !) तुम्हारा दास कहलाने में मुझे लाज आती है क्योंकि हे हरे ! जो तुम्हें अच्छा लगता है उस आचरण को छोड़ मैं मन में वृथा सोच करता हूँ ॥ १ ॥ मुनीश्वर जिसका भजन सब संग (अर्थात् इन्द्रियों के विषय की अभिलाषा) को छोड़ कर करते हैं, और (जिसके लिए) जप, तप और योग साधते हैं उन (रामजी) को मुझ सरीखा मूर्ख, बड़ा खल, और नीच किस उपाय से पा सकता है ॥ २ ॥ भगवान् तो निर्मल हैं और मेरे हृदय को (विषयरूपी) पापों ने घेर रक्खा है सो मुझे यह दुविधा जान पड़ती है कि जिस तालाब में काक, गिद्ध, बगुले और शूकर रहते हैं, वहाँ हंस क्यों आवेगा (भाव—रामरूपी हंस तो वहाँ आवेगा कि जिसके हृदय-तड़ाग में प्रेमरूपी सुन्दर निर्मल जल भरा है, ज्ञान-विरागरूपी कमल खिल रहे हैं, और सन्तोष-विवेकरूपी मुक्ता उत्पन्न होते हैं; मेरे हृदयरूपी तड़ाग में, कि जहाँ संसारी-विषयरूपी बड़ा गँदला जल भर रहा है और कामरूपी शूकर, लोभरूपी बगुले, क्रोधरूपी काक और मोहरूपी गिद्ध रहते हैं और चिन्ता-वासनारूपी जहाँ खाली सीपियाँ पड़ी हैं, उसका आना कैसे हो सकता है) ॥ ३ ॥ जिसको शरण

में जाकर कोविद (कहिए बड़े बड़े वेद वेदान्त के तत्त्व जाननेवाले) बड़े कठिन तीनों तापों को बुझाते हैं, वहाँ जाने पर भी मुझे तो अधिक मद, मोह और लोभ बढ़ेगा क्योंकि स्वर्ग में भी सौत का डाह नहीं मिटता (भाव यह है कि जैसे किसी पति की दो स्त्रियाँ होती हैं वे पति के संग स्वर्ग जाने पर भी आपस का डाह नहीं छोड़तीं, ऐसे ही जीव की प्रवृत्ति और निवृत्ति दो स्त्रियाँ हैं। जीव कहीं जाय ये उसका साथ नहीं छोड़तीं। फिर इन दोनों का बड़ा कुनबा है, प्रवृत्ति के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि पुत्र और ममता, वासना पुत्री हैं। उधर निवृत्ति के सत्य, शील, ज्ञान, वैराग्य आदि पुत्र और शान्ति, निर्लोभता आदि पुत्री हैं सो यह यम का सा लश्कर भगवान् के शरण जाने पर भी पीछा नहीं छोड़ता) ॥ ४ ॥ संसाररूपी नदी के लिए संतजन ही नौकारूप हैं यह कह कह कर मैं औरों को समझाता हूँ पर हे भगवन्! मैं उनसे भी बड़ा भारी वैर करके तुमसे अपना भला मनाता हूँ (यह तो मेरी शरणागति का हाल है फिर इस सन्तों के विरोधी पर तुम क्यों कृपा करोगे) ॥५॥ (जो कहो कि तू हमारे सन्तों से वैर करता है हम तुझे नहीं रखते और जगह चला जा सो) मुझे और जगह नहीं है (अर्थात् कोई ऐसा कृपालु नहीं है जिसकी शरण जाऊँ) इसी लिए मैं तुमसे अड़ कर नाता लगाता हूँ। तुम तो दाताओं के शिरोमणि हो (भला, बुरा न देख के सबको दान देते हो) अपनी शरण में रक्खो यह तुलसीदास तुम्हारे गुण गा रहा है ॥ ६ ॥

संधिविभाग—महा + अबल ।

शब्दार्थ—कंक = गिद्ध । सावत = सौत की डाह । चूड़ा = शिर ।

[१८६]

कौन जतन विनती करिये ।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये ।
जाते विपति जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥
जानतहूँ मन वचन करम परहित कीन्हें तरिये ।
सो विपरीत, देखि परसुख विनु-कारन ही जरिये ॥३॥
स्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये ।

निज अभिमान मोह इरषा वस तिन्हहिँ न आदरिये ॥४॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जा ते भवनिधि परिये।
कहो अब नाथ कौन बलते संसार सोग हरिये ॥५॥
जब कब निजु करुना सुभाउ ते द्रवहु तो निस्तरिये।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं कत पचि पचि मरिये ॥६॥

हे राम ! किस उपाय से तुम्हारी विनती करूँ। जब अपने आचरण को विचारता हूँ और समझता हूँ तब हृदय में हार मान कर डरता हूँ ॥ १ ॥ हे हरे ! जिस साधन से तुम अपना दास जान कर कृपा करते हो उसे मैं अड़ कर छोड़ता हूँ। और जिस विपत्ति जाल से रात दिन दुःख मिलता है उसी मार्ग में जाता हूँ ॥ २ ॥ जानता भी हूँ कि जो मन, कर्म और वचन से दूसरों की भलाई करूँगा तो तर जाऊँगा, पर उससे उलटा (करता) हूँ कि पराये सुख को देख बिना कारण ही जला मरता हूँ ॥ ३॥ वेद और पुराण सबका यह मत है कि संतों का संग पक्के होकर करना चाहिए, पर मैं अपने अभिमान, मोह और ईर्ष्या के वश उनका भी आदर नहीं करता (अर्थात् उनके पास तक नहीं फटकता हूँ) ॥ ४ ॥ मुझे संतत अर्थात् नित्य वही अच्छा लगता है कि जिससे संसाररूपी समुद्र में ही सदा पड़ा रहूँ। हे नाथ ! अब तुम ही कहो कि किस बल से संसार का शोक दूर हो ॥ ५ ॥ जब कभी तुम अपने दयावन्त स्वभाव से प्रसन्न होगे तब मेरा निस्तारा हो जायगा क्योंकि तुलसीदास को और का भरोसा नहीं है फिर पच पच कर क्यों मरे (अर्थात् अन्य साधनों में क्यों परिश्रम करे) ॥ ६ ॥

[१८७]

ताहि ते आयो सरन सबेरे।
ज्ञान विराग भगति साधन कछु सुपनेहु नाथ न मेरे ॥१॥
लोभ मोह मद काम कोह रिपु फिरत रैनि दिन घेरे।
तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥२॥
दोष निलय यह विषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे।
जानतहूँ अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥३॥

विष पियूष सम करहु अगिनि हिम तारि सकहु बिनु बेरे ।
तुम सम ईस कृपाल परमहितु पुनि न पाइ हौं हेरे ॥४॥
जह जिय जानि रह्यौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे ।
तुलसिदास यहि विपति वागुरा तुम सों बनिहि निबेरे ॥५॥

(हे राम ! मुझे किसी का भरोसा नहीं है) इसी लिए मैं तुम्हारी शरण जल्दी (अर्थात् मृत्यु के पहले) आया हूँ। हे नाथ ! मेरे पास ज्ञान, वैराग, भक्ति आदि कुछ साधन (१) स्वप्न में भी नहीं है ॥ १ ॥ मुझे तो लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध-रूपी वैरी रात दिन घेरे फिरते हैं। उनके सङ्ग से मेरा मन बुरे मार्ग में लग रहा है सो वह तुम्हारे फेरने से ही फिरेगा ॥ २ ॥ क्योंकि यह विषय पाप का घर और शोक का देनेवाला है ऐसा सन्त और वेद पुकार पुकार कहते हैं। (तो भी नहीं मानता इससे) जानता हूँ कि इस (विषय) में भी जो मेरी अधिक प्रीति है वह भी आप ही की प्रेरणा से (२) है। (नहीं तो जिस बात में दुःख हो उसमें जान बूझ कर कौन पड़ता है) ॥ ३ ॥ तुम विष को अमृत समान और अग्नि को बरफ़ के समान कर देते हो और बिन बेड़े (संसार-समुद्र से) तार सकते हो। तुम सरीखे दयावन्त और हितकारी स्वामी को फिर (अर्थात् जन्मान्तर में भी) ढूँढ़ने से नहीं पाऊँगा ॥ ४ ॥ इस बात को मन में जान कर और सबको छोड़ कर हे रघुकुल के वीर ! मैं तुम्हारे ही भरोसे रहता हूँ। सो तुलसीदास का यह विपत्तिरूपी जाल तुमसे ही दूर करते बनेगा (अर्थात् तुम्हारे ही काटे कटेगा। भाव—तुमही इस संसाररूपी बन्धन से छुड़ाओगे) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—निलय = घर। स्रुति = वेद। पियूष = अमृत। हेरे = ढूँढ़ने से।

[१८८]

मैं तौ अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहि मोहिँ हरि के बल प्रगट कपट आगार ॥१॥

---

(१) भागवते— "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ।" सरलार्थः ।

(२) "जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः । केनाऽपि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि" ॥ सरलार्थः ।

देखत ही कमनीय कछू नाहिन पुनि पुनि कियें बिचार ।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निसरै सार ॥२॥
तेरे लियें जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार ।
महा घोर मृगजल सरिता महुँ बोरो हों बारहिं बार ॥३॥
सुनि खल छल बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार ।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥ ४ ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं व्यवहार ॥ ५ ॥
निज हितु सुनि सठ हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि भजहि जहाँ मद मार ॥६॥

अरे संसार! अब मैंने तुझे जान लिया। तू सचमुच कपट का घर है पर मेरे पास भगवान् का बल होने से तू मुझे नहीं बाँध सकता (अर्थात् अपने फन्दे में नहीं ले सकता) ॥ १ ॥ तू देखने में ही सुन्दर है पर बार बार समझने से कुछ भी नहीं है (अर्थात् बिलकुल झूठा है) जैसे केले के वृक्ष के बीच में देख लो कभी गूदा नहीं निकलता (अर्थात् कोरे पत्ते ही पत्ते हैं सो तुझमें भी राज, धन-धान्य आदि देखने-मात्र का है) ॥ २ ॥ मैं तेरे लिए अनेक जन्म लेता फिरा परन्तु तेरा पार नहीं पाया (पार तो तब मिले कि जब तू सच्चा हो) और तूने मुझे महा-मोहरूपी मृगतृष्णा की नदी में बार बार डुबाया ॥ ३ ॥ हे दुष्ट! सुन ले, जो (भगवान् का) बड़ा भक्त है वह तेरे करोड़ों छलबल करने से भी तेरे क़ाबू में नहीं आ सकता। सो तू अब (अपने कामादि) साथियों समेत वहाँ जाकर बस कि जिनके हृदय में नन्दनन्दन (श्रीकृष्णचन्द्र) न रहते हों ॥ ४ ॥ उसी से अपनी चतुराई छाँट कि जो तेरे भेद को न जानता हो क्योंकि वही (पुरुष) पड़ी हुई जेवड़ीरूपी सर्प से डर और मर सकता है कि जो उसके व्योहार को (अर्थात् असली कारण को) न जानता हो (कि यह वही रस्सी है जो हमने पटकी थी) ॥ ५ ॥ अरे शठ! सुन, जो तू अपना भला और अपने कुनबे की ख़ैर चाहे तो हठ मत करे और तुलसीदास के प्रभु रामचन्द्रजी के भक्तों को छोड़ कर जहाँ मद और काम हों वहाँ भाग जा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आगार = घर। कमनीय = सुन्दर। सार = गूदा। मार = कामदेव। अहि = सर्प। मद = अहङ्कार।

[१८९]

राग गौरी।

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि परयेहु पुनि छूटत अति कठिनाई रे ॥१॥
बाँस पुरान साज सब अठखठ सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चंद मंद मोल बिनु डोला रे ॥२॥
विषम कहार मारमदमाते चलहिं न पाँव बटोरें रे।
मंद विलंद अभेरा दलकनि पाइय दुख झकझोरे रे ॥३॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम संग नहिं संबल नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

(अरे भाई जो हुआ सो हुआ अब) तू राम राम कहता चल (अर्थात् जब तक जिये तब तक राम नाम रटता रह) नहीं तो संसार की बेगार में फिर पड़ेगा और छूटने में बड़ी कठिनता होगी (भाव यह है कि किसी राजा के यहाँ बेगार में पकड़े जाने से तो दो चार दिन में मनुष्य छूट जाता है पर यह संसाररूपी बेगार ऐसी कठिन है कि ८४ लाख योनि भुगतने पर भी जन्म-मरणरूपी भार ढोने से छूटने में सन्देह है। इससे छूटने का यही उपाय है कि संसार के स्वामी रामजी का नाम ले जिससे तुझे उनका सेवक जान कर आगे कोई नहीं पकड़े अर्थात् संसार से तेरा आवागमन मिट जाय क्योंकि जो किसी राजा का मुख्य नौकर होता है और वह उसका नाम ले देता है तो कोई पुलिसवाला उसे बेगार के लिए नहीं पकड़ता। राम नाम न लेने से जिस बेगार में तू आगे फिर पड़ेगा सो अभी वर्तमान है उसे देख ले) ॥१॥ (जैसे खटोले में एक नया लम्बा बाँस लगा होता है कि जिसे दोनों ओर से कहार लेकर चलते हैं और वह खटोला चार पट्टी और पायों से चौकोन तथा रस्सी से बुना होता है और बढ़ई उसे अच्छा मज़बूत बना कर देता है वैसे ही इस शरीररूपी खटोले में अनादि

काल की अविद्या अथवा विषयसुख की वासना तो) पुराना बाँस है और इसका सब साज टेढ़ा मेढ़ा (कारण कि यह पंचतत्त्व से बना है) और (नाशवान् होने से) सरल कहिए सड़ा हुआ है (और इसमें बाल, युवा, वृद्धावस्था की तीन पाटी हैं और सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के तीन पाये हैं और यह सुखदुखरूपी डोरी से बुना हुआ है) ऐसा यह तिकोना खटोला है और दुखदाई कर्म (रूपी बढ़ई) ने हमें चन्द कहिए चन्द्रडोले के बहाने यह निकम्मा डोला बना कर बिना मोल दे दिया है (अर्थात् नाहीं करते करते मुफ़्त में इसे हमारे सिर मढ़ दिया है) ॥ २ ॥ (अब डोला उठाने के लिए कहार चाहिए सो कहते हैं। देखो चन्द्रडोले को तो जोड़ के दो, चार आदि कहार बिना नशा पिये उठाते हैं और पैरों को एक सा करके चलते हैं और नीची ऊँची भूमि तथा दरार दलदल आदि को छोड़ एक सी भूमि पर मनुष्य को चन्द्रडोले में बैठा कर ऐसे ले जाते हैं जिसमें उसे झटका न लगे; और शरीररूपी बुरे डोले के) कहार एक तो विषम हैं (अर्थात् दो या चार—जोड़े के—नहीं हैं। नेत्र, जिह्वा, नासिका, त्वचा और कान ये पाँच हैं) और ये कामरूपी मद में मतवाले हो रहे हैं (अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन अपने अपने विषयरूपी मदिरा के नशे में चूर हो रहे हैं और धुन बाँधे जीव को शरीररूपी खटोले में बैठाये अपनी अपनी ओर खींचे लिये जाते हैं) पाँव एक सा करके नहीं चलते (अर्थात् नेत्ररूपी कहार रूपविषय की ओर, जिह्वारूपी कहार रसविषय की ओर, नासिकारूपी कहार गंधविषय की ओर, त्वचारूपी कहार स्पर्शविषय की ओर और कानरूपी कहार शब्दविषय की ओर खींचे लिये जाता है। जैसा कहा है—

("कान निरन्तर गान तान सुनिबोही चाहत।
आँखें चाहत रूप रैन दिन रहत निहारत।
नासा अतर सुगन्ध चहत फूलन की माला।
त्वचा चहत सुख सेज सङ्ग कोमल तन बाला।
रसना हू चाहत रहत नित खाटे मीठे चरपरे।
इन पंचन इहिं परपंच सों भूपन कों भिच्छुक करे" ॥)

और (इस संसाररूपी मार्ग में, पराया अपवाद, धनहरण आदि नीच कर्म की इच्छा) नीची जगह और (भूषण, वसन, राज्यसुख और स्वर्ग आदि ऊँचे कर्म की इच्छा) ऊँची जगह, और (स्त्री-पुत्रादि का वियोग) दरार तथा (गृहस्थाश्रम के धन्धे) दलदल, इनके होने से (जीव को) बड़ा दुःख होता है और धक्के लगते हैं ॥ ३ ॥ (फिर वहाँ अच्छे मार्ग

में चलने से न तो पैरों में कंकरी और काँटे चुभते हैं, न बेल लिपटती है, न झाड़ियों में कपड़े उलझते हैं और न जगह जगह रुकना पड़ता है पर इस संसाररूपी मार्ग में कुकर्म से हुए तीनों ताप तथा विषयरूपी) कंकरी और काँटे चुभते हैं, (स्त्री पुत्रादि की ममतारूपी) बेल (इन्द्रियों से) इलझती है और (८४ योनिरूपी) झाड़ियाँ (कपड़ों से) लिपटती हैं (इन कारणों से) जगह जगह रुकना पड़ता है (अर्थात् जन्म जन्म में बन्धन होता चला जाता है। फिर सीधे मार्ग से जाने में तो जहाँ जाना हो वह जगह पास आती जाती है और रास्ते में दूसरा कोई साथी भी मिल जाता है और इस संसाररूपी मार्ग में) ज्यों ज्यों आगे चलना होता है (अर्थात् विषयमार्ग में बढ़ता जाता है) त्यों त्यों अपने पहुँचने की (आत्मरूप) जगह दूर होती जाती है। कारण जाना तो आत्मस्वरूप रूपी पूर्व दिशा का है और इन्द्रियरूपी कहार अपने विषयरूपी उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर उलटे उलटे खींचे लिये जाते हैं फिर वहाँ पहुँचने की क्या आशा) और (कोई संतरूपी) साथी भी नहीं मिलता (कि जो सीधे रास्ते से साथ ले जाय) ॥ ४ ॥ फिर मार्ग सीधा हो, खाने-खर्चने के लिये दाम पास हों और गाँव का नाम याद हो तो प्राणी खाता पीता, पूछता हुआ चला जाय पर इस संसार का एक तो) मार्ग बड़ा टेढ़ा (कि जैसा पहले कह आये) और साथ में (ज्ञान, वैराग्यरूपी) खाना-खर्च नहीं (जो हो तो खाता, खर्चता चला जावे और खानाखर्च न रही—गाँव का नाम तो याद हो, पर संसारी विषयों में पड़ने से आत्मस्वरूप) गाँव का नाम तक भूल गया है (इसलिए बिना हरि की कृपा से नहीं जा सकता) सो हे राम ! अब तुम्हीं कृपालु होकर इस तुलसीदास के (आवागमनरूपी) संसारी भय को दूर करो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ अटखट = टेढ़ा-मेढ़ा। सरल = सड़ा (मागधी बोली का शब्द है)। कुटिल = दुखदायी। करि = बनाकर। मन्द = बुरा, नीच। चन्द्रडोला = बैठने की सवारी। विषम = बिना जोड़ के। मार = काम। मद = नशा। माते = मतवाले। बटोरना = एक सा करना। मन्द = नीची। बिलन्द = ऊँची (बुलन्द फ़ारसी का शब्द है)। अभेरा = (अ = नहीं + भेरा = भिड़ा) दरार जो कीचड़ सूखने पर फट जाती है। कुराइ = कंकरी। दलकन = दलदल। लपेटन = एक तरह की बेल। लोटन = झाड़ी। बझाऊ = रुकना। लगाऊ = साथी। सम्बल = कलेवा, खाना-खर्च। भव = संसार। त्रास = भय।

[१९०]

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह।
ताते भव-भाजनु भयो सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥ १ ॥

ज्यों मुख मुकुर विलोकिये अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहु न आपने मातु पिता सुत नारि॥ २॥
दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे मनमेचक तन सेत॥ ३॥
करि बीत्यो अब करतु है करिबे हित मीत अपार।
कबहूँ न कोउ रघुबीरसो नेहु निवाहनिहार॥ ४॥
जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि।
ताते कछू समझो नहीं कहा लाभ कह हानि॥ ५॥
साँचो जान्यो झूठ कै झूठ कै साँचो जानि।
को न गयो को न जात है को न जैहै करि हित हानि॥ ६॥
वेद कह्यो बुध कहत हैं अरु हौंहु कहत हों टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू तूँ हिये की आँखिन्ह हेरि॥ ७॥

तूने स्वभाव से ही स्नेह करनेवाले रामचन्द्रजी से सुभाव ही से स्नेह नहीं किया। इसी से संसार का पात्र हुआ (अर्थात् तेरा जन्ममरण नहीं छूटा) सो अब यह शिक्षा सुन॥ १॥ जैसे दर्पण में मुख देख पड़ता है और वह सूरत उसके चित कहिये भीतर नहीं होती (देख चुकने के पीछे जाती रहती है) वैसेही ये माता, पिता, पुत्र, स्त्री सेवा करने पर भी अपने नहीं हैं (भाव यह है कि जैसे शीशे में मुख देख पड़ता है पर असल में उसमें नहीं होता है ऐसे ही संसार में जो स्त्री पुत्रादि (१) दीखते हैं वे सब मतलब के लिए देखने मात्र के हैं पर कोई किसी का नहीं है)॥ २॥

(१) यहां एक दृष्टान्त देते हैं—ऋषि वाल्मीकि पहले व्याध थे और मनुष्यों को लूट मार कर कुटुम्ब पालते थे। एक बार उनको कई ऋषि मिले और जब वाल्मीकि ने उन्हें लूटना चाहा तब उन्होंने कहा कि तू पाप कर्म करके कुटुम्ब पालता है सो तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है अथवा तुझे जो पाप का फल मिलेगा उसका भी साथी है। यह सुन वाल्मीकि ने अपने कुटुम्बियों से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो खाने के साथी हैं, पाप के नहीं। फिर तो उन्होंने सबको त्याग ऋषियों के पास जाकर धर्म-विषय सुना और भगवान् का उलटा नाम मरा मरा जपते जपते वे ऐसे महामुनि हो गये कि भगवान् ने उन्हें घर बैठे दर्शन दे कृतार्थ किया।

जैसे (फुलेल के लालच से) फूल दे देकर तिलों को सुगन्धित करते हैं (वैसेही धन के लिये स्त्री, पुत्र आदि मनुष्य की ख़ातिर करते हैं) और (जैसे तिलों में से) रस (फुलेल) लेकर खली को छोड़ देते हैं (ऐसे ही घरवाले जब तक मनुष्य कमाता है तब तक उसकी ख़ातिर करते हैं पर बुढ़ापे में उसको छोड़ उसका निरादर करते हैं, कोई उसकी बात नहीं पूछता)। अपने मतलबी तो धरती पर भरे पड़े हैं पर वे मन के काले और (ऊपरी) उजले शरीर के हैं (अर्थात् मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे) ॥ ३ ॥ मैं बहुत से मित्र कर चुका, अब कर रहा हूँ और आगे करने के लिए धरे हैं पर रामचन्द्रजी के समान प्रेम का निबाहनेवाला कभी कोई हुआ ही नहीं ॥ ४ ॥ जिनसे सब नाते सच्चे प्रतीत हों उनसे तैंने पहचान नहीं की इसलिए तू कुछ नहीं समझता कि किसमें क्या तो लाभ और किसमें क्या हानि होती है ॥५॥ तूने झूठे (शरीर) को सच्चा और सच्चे (ईश्वर) को झूठा जान रक्खा है। ऐसे अपने हित की हानि कर (इस संसार से) कौन नहीं गया, कौन नहीं जा रहा है और कौन नहीं जायगा (भाव—यहाँ ही भूले फिरेंगे और मुक्त नहीं होंगे) ॥ ६ ॥ इस बात को वेदों ने कहा है और बड़े बड़े वेदान्ती कहते हैं और मैं भी पुकार कर कहता हूँ कि हे तुलसी! केवल प्रभु ही सच्चे हितू हैं तू अपने हृदय की आँखों से (अर्थात् ज्ञान-दृष्टि से) देख ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—मुकुर = शीशा। चित = चित्त, भीतर, बीच। अनुहार = सूरत। सुमन = फूल। खरि = खल, फोक। मेचक = काला। फुर = सच्चा।

[१९१]

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेमकनोड़ो रामसों नहिं दूसरो दयालु ॥ १ ॥
तनु साथी सब स्वारथी सुर ब्योहार सुजान।
आरत अधम अनाथहित को रघुबीर समान ॥ २ ॥
नादु निठुर समचर सिखी सलिलु सनेह न सूर।
ससि सरोग दिनकरु बड़े पयदु प्रेमपथ कूर ॥ ३ ॥
जाको मनु जासों बँधो ताको सुखदाइकु सोइ।
सरलसील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥ ४ ॥
सुनि सेवा सहि को करै परिहरै को दूषन देखि।

केहि दिवान दिन दीन को आदरु अनुराग बिसेखि ॥ ५ ॥
खग सबरी पितु मातु ज्यों माने कपि कौं किये मीत।
केवटु भेंट्यो भरत ज्यों ऐसो को कहो पतित पुनीत ॥ ६ ॥
देइ अभागेहि भाग को को राखे सरन सभीत।
वेद बिदित बिरुदावली कवि कोविद गावत गीत ॥ ७ ॥
कैसेउ पाँवर पातकी जे न लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो राम सो परख्यो न फेरि खर खोट ॥ ८ ॥
मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृतकाज।
सो तुलसी कियो आपनो रघुबीर गरीब निवाज ॥ ९ ॥

एक सच्चे सनेही केवल रामचन्द्रजी ही हैं। प्रीति से दबनेवाला रामजी सरीखा दूसरा दयालु नहीं है ॥ १ ॥ शरीर के जितने (स्त्री पुत्रादि) साथी हैं वे सब मतलबी हैं (धन देखकर बात करते हैं वरन् कोई कौड़ी को नहीं पूछता) और देवता भी ब्योहार में पक्के हैं (अर्थात् सेवा पूजा करने से प्रसन्न होते हैं) परन्तु दुखी, नीच और अनाथ का भला करनेवाला रघुवीर के समान कौन है ॥ २ ॥ (देखो) बाजा तो निर्दयी है (अर्थात् उसके दया नहीं क्योंकि राग को सुन कर हरिण राग गानेवाले के पास आ जाता है और वह उसे बाँध लेता है पर राग को कुछ भाँय नहीं कि उस हरिण को बचावे) इसी चाल का दिया होता है (पतङ्ग तो उसके रूप को देख उस पर पड़ता है और जल जाता है पर दीपक को उस पर दया नहीं कि उसे बचावे) और इसी चाल का पानी है (अर्थात् मछली पानी के न रहने से मर जाती है पर पानी को कुछ परवा नहीं, वह उसे बचाने का उपाय नहीं करता। भाव—नाद, दिया और जल ये तीनों निठुर और स्नेह में शूर नहीं हैं) ऐसे ही चन्द्रमा रोगी है (अर्थात् उसमें पीलापन और धब्बा है पर चकोर उसके अवगुणों को न देख उसके धोखे में अँगारे चुगता है, उसके प्रेम में मगन होता है और फिर उसे मनुष्य पकड़ लेता है पर चन्द्रमा उसे नहीं बचाता) और सूर्य और मेघ ये बड़े होने पर भी प्रेम के मार्ग में निर्दयी हैं (देखो सूरज जब संसार को प्रकाशित करता है यह तो इसका बड़प्पन हुआ और निर्दयीपना यह है कि कमल सूर्य से ऐसा प्रेम रखता है कि बिना उसके नहीं खिलता तो भी सूर्य जल के बिना उसे जला कर भस्म कर देता है और

बचाता नहीं है। फिर मेघ इतना तो बड़ा कि संसार भर में वर्षा करके अन्न उत्पन्न करता है कि जिससे सब लोग जीते हैं पर उसमें निर्दयापन ऐसा कि पपीहा उससे ऐसी तो प्रीति करता है कि उसके स्वाति जल के सिवाय और जल नहीं पीता, मर भले ही जाय तो भी वह उसे ओलों की वर्षा करके मारता है और समय पर स्वाति का जल देकर नहीं बचाता इसलिए चकोर, कमल और पपीहा ये ही प्रीति में चतुर हैं)॥ ३॥ (जो कहो कि ये उनसे अपनी प्रीति क्यों नहीं छोड़ देते तहाँ कहते हैं कि) जिसका मन जिससे बँधा है उसको वही सुख का देनेवाला है। रामचन्द्रजी सरीखा सदा सरल स्वभाववाला स्वामी कोई नहीं है ॥४॥ सुनते ही सेवा को कौन सही करता है (अर्थात् मान लेता है) और दोष को देख कर कौन छोड़ता है (अर्थात् उसका ख़याल नहीं करता) और किसके दरबार में ग़रीब का नित्य आदर और अधिक प्यार होता है ॥ ५॥ (भगवान् ने) गिद्ध और शबरी को पिता माता के समान माना और बन्दर (सुग्रीव) को मित्र बनाया। वे निषाद से भरतजी की तरह मिले। कहो ऐसा पापियों का पवित्र करनेवाला कौन है (अर्थात् सिवाय रामजी के कोई नहीं) ॥६॥ अभागे को कौन भाग देता है और डरे हुए को कौन अपने शरण में रखता है। उसका बड़ा यश वेदों में प्रकट है और उस (यश के) गीत को कवि (वाल्मीकि) और (वेद-वेदान्त वेत्ता) पण्डित गाते हैं ॥ ७॥ कैसा ही पापी और नीच (१) क्यों न हो जिसने उनके नाम का सहारा लिया उसको (राम ने) इस तरह अपना कर लिया जिस तरह कोई (भरोसा करके किसी के दिये हुए) धन को अपनी गाँठ में बाँध लेता है और फिर उसका खरा खोटापन नहीं परखता है ॥ ८॥ मैं कैसा मन का पापी हूँ कि कलियुग में जिसके किये हुए कर्मों को सुनते ही (दूसरा सुननेवाला) पापी हो जाय। ऐसे तुलसीदास को भी अपना दास कर लिया। रघुनाथजी ऐसे ग़रीब-निवाज हैं॥ ९॥

शब्दार्थ—कनौड़ा = नेकी से दबा हुआ। समचर = समान व्यवहारवाला। सिखी = जिसमें शिखा (लौ) हो, दीपक। पयद = पय नाम जल देनेवाला, मेघ। दिवान = दरबार। कोविद = पण्डित। किलविषी = पापी।

[१९२]

जोपै जानकीनाथ सों नातो नेह न नीच।

(१) अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः।
परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ सरलार्थः।

स्वारथ परमारथ कहाँ कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १ ॥
धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिन बेष देखिये ज्यों सरीर बिनु प्रान ॥ २ ॥
वेदविहित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि ।
राम प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिन बारि ॥ ३ ॥
नाना पथ निरवान के नाना विधान बहुभाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे जपु रामनाम दिन राति ॥ ४ ॥

हे नीच ! जो रामजी से तेरा प्रेम और नाता नहीं है तो स्वारथ (अपना भला) और परमार्थ (पराया भला) ये कहाँ ? (अर्थात् दोनों नहीं हो सकते) तुझे कुटिल कलियुग ने बीच में ही ठग लिया (न स्वारथ का रक्खा न परमारथ का रक्खा) ॥ १ ॥ (कैसे जाना कि कलि ने बीच में ही ठगा कि) वर्ण और आश्रमों (१) के धर्म पुराणों की पुस्तकों में ही पाये जाते हैं उन्हें करता धरता कोई नहीं कोरा भेस ही देख लो (सो वह ऐसा बेप्रयोजन का है कि) जैसा बिना प्राण के शरीर हो ॥ २ ॥ वेदों में कथित जो (यज्ञ आदि) सब साधन हैं उनको सुनते हैं कि चारों फलों के देनेवाले हैं, पर बिना रामजी के प्रेम के उन्हें ऐसा जानो जैसा बिना पानी के (सूखे) नदी तालाब हो ॥३॥ निर्वाण कहिए मोक्ष होने के और भी बहुत से तरह तरह के मार्ग और भाँति भाँति के अनेक साधन हैं, पर हे तुलसी ! तू तो मेरे कहने से रात दिन राम नाम को ही जपा कर (और कुछ मत कर) ॥ ४ ॥

[१६३]

अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ ।
कहँ तू कहँ कोसल-धनी तोको कहा कहत सब कोइ ॥ १ ॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू कब खीझि दई तोहिं गारि ।
दरपन बदन निहार कै सो विचार मान हिय हारि ॥ २ ॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरत पल लगे न आधु ।

(१) गूढ़ार्थ कोश में देखो ।

पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ॥३॥
बालमीकि केवट तथा कपि भील भालु सनमान ।
सुनि सनमुख जो न राम सों तेहिं को उपदेसे ज्ञान ॥४॥
का सेवा सुग्रीव की का प्रीति रीति निरवाहु ।
जासु बंधु बध्यो व्याध ज्यों सो सुनत सोहात न काहु ॥५॥
भजन विभीसन को कहा, फल कहा दियो रघुराज ।
राम गरीबनिवाज के बड़ी बाँह बोल की लाज ॥६॥
जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चालु ।
सुमुख सुखद साहब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥७॥
सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक सरीर ।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भवभीर ॥८॥
प्रभु कृतज्ञ सरवज्ञ हैं परिहरु पाछली गलानि ।
तुलसी तोसों राम सों कछु नइ न जान-पहिचानि ॥९॥

(अरे तुलसी!) अब भी अपने रामचन्द्रजी के करतबों को समझने से तेरा भला हो सकता है। कहाँ तो तू और कहाँ रघुनाथजी। तुझे सब लोग क्या कहते हैं (अर्थात् जिनकी सेवा को ब्रह्मा आदि देवता चाहते हैं और नहीं मिलती उन राम का तू नीच होकर दास कहाता है) ॥ १ ॥ देख अच्छे काम से स्वामी प्रसन्न होता है और बुरे काम से क्रोधित होकर निकाल देता है सो) रामजी ने तुझे प्रसन्न होकर कब निहाल किया है और क्रोधित होकर कब गाली दी है। तूने तो आपही सुन्दर विचाररूपी दर्पण में मुख देख कर हृदय में हार मान ली है (अर्थात् अपने कर्मों को देख आप ही डर गया है कि मैं शरण योग्य नहीं हूँ) ॥ २ ॥ उनको अनेक जन्मों की बिगड़ी हुई को सुधारने में आधे (१) पल की भी देर नहीं लगती है। "हे कृपानिधान (२) रक्षा करो, रक्षा करो" यों प्रेम से कहने पर रामजी ने किसको

(१) सन्मुख होइ जीव मोहिँ जबहीं। कोटि जन्म अघ नाशों तबहीं ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना ॥

(२) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम। अर्थात् जो एक बार भी कहे कि मैं तुम्हारा हूँ उस शरणागत को मैं सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।

साधु नहीं किया (अर्थात् जिसने कहा उसी को किया) ॥ ३ ॥ वाल्मीकि और केवट की कथा (प्रसिद्ध ही) है और सुग्रीव, निषाद और जाम्बवंत का आदर हुआ है इस (कथा) को सुनकर भी जो रामचंद्रजी के सन्मुख नहीं हुआ उसे कौन ज्ञान का उपदेश कर सकता है (अर्थात् उसका कल्याण कभी न होगा) ॥ ४ ॥ सुग्रीव ने क्या सेवा की और उसने प्रीति की क्या रीति निबाही थी (राज पाकर सीता की सुध लाना भी भूल गया) कि जिसके भाई को रामजी ने व्याध की तरह (छिपकर) मारा कि जो बात सुन कर किसी को नहीं सुहाती ॥ ५ ॥ विभीषण ने क्या भजन किया था और उसे रामजी ने क्या फल दिया (अर्थात् लङ्का का अचल राज दिया) सो गरीबनिवाज रामचन्द्रजी को तो भरोसे का वचन देने की बड़ी लाज है ॥ ६ ॥ सो तू रघुनाथजी का ही नाम जप दूसरी चरचा मत चलावे क्योंकि ये स्वामी सुन्दर मुखवाले, सुखदायी, बुद्धिमान, समर्थ, कृपालु और भक्तों के पालन करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ आँखों में आँसू भर कर, गद्गद वाणी से, मन में लौलीन और शरीर में पुलकायमान होकर रामजी के गुणगणों के गाने से कहो किसका संसारी भय (आवागमन) नहीं मिटा है ॥ ८ ॥ प्रभु (रघुनाथजी) उपकार माननेवाले और बाहर भीतर की जाननेवाले हैं सो पिछले पछतावे को छोड़ दे (कि इतनी आयु तो योंही गई अब क्या करूँ) अरे तुलसीदास ! तुझसे और रामचन्द्रजी से कुछ नई जान पहचान नहीं है (अर्थात् परमेश्वर से तो जीव का अनादि सम्बन्ध है) ॥ ९ ॥

[१९४]

जो अनुराग न रामसनेही सों ।
तो लह्यो लाहु कहा नरदेही सों ॥ १ ॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भये सुमति राम अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ अवगुन अधम अभागी ॥ २ ॥
ज्ञान विराग जोग जप तप मख जग मुद मग नहिं थोरे ।
राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे ॥३॥
लोक विलोकि पुरान वेद सुनि समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति राम-पद-पंकज सकल सुमंगल खानी ॥४॥

अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय होइ पलक महँ नीको।
सुमिर सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसी को ॥५॥

जो रामचन्द्रजी सरीखे प्रेमी से प्रीति नहीं की तो मनुष्य के शरीर से क्या लाभ हुआ ॥ १ ॥ जिस शरीर को धारण कर सुन्दर बुद्धिवाले (ज्ञानी) सब सुख और भय को छोड़ कर रामचन्द्रजी में प्रेम करते हैं उस शरीर को पाकर तूने पेट भर कर पाप किये इसलिए तू बड़ा नीच और अभागी है ॥ २ ॥ ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप, यज्ञ आदि आनन्द पाने के मार्ग संसार में थोड़े नहीं हैं (अर्थात् इनके करने से सुख मिल सकता है), पर श्रीरघुनाथजी के प्रेम बिना ये नेम ऐसे वृथा हैं जैसे मृगतृष्णा के समुद्र में स्नान करना (अर्थात् जहाँ जल नहीं वहाँ स्नान कैसा) ॥ ३ ॥ संसार को देख कर, वेद पुराणों को सुन कर, और बड़े बड़े ज्ञानियों से समझ बूझ कर, रामजी के चरण-कमलों में प्रीति और भरोसा कर कि जो सब सुन्दर मंगलों की खान हैं (अर्थात् उनसे सब मङ्गल हो सकते हैं) ॥ ४ ॥ अब भी मन में समझ और अपने हृदय में हार मान ले (कि जो हुआ सो हुआ) तो भी पल भर में तेरा भला होगा। प्रेमसहित हितकारी रामजी का सुमिरन कर और तुलसीदास का यह मत मान ले ॥ ५ ॥

[१९५]

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं। कीजै कृपा आपनी नाईं ॥१॥
परमारथ सुरपुर साधन सब स्वारथ सुखद भलाई।
कलि सकोप लोपी सुचाल निज कठिन कुचाल चलाई ॥२॥
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव विषाद अधिकाई।
रुचि भावती भभरि भागहि समुहाहिं अमित अनभाई ॥३॥
आधि मगन मन व्याधि विकल तन वचन मलीन झुठाई।
एतेहुँ पर तुम सों तुलसी की सकल सनेह सगाई ॥४॥

हे नाथ रामचन्द्रजी! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। तुम अपनी सी (अर्थात् अपनी ओर देख कर) कृपा करो ॥१॥ क्योंकि मोक्ष के, स्वर्ग के और (इस लोक में) स्वारथ के, सुख देनेवाले और भलाई के (जप, तप, पूजा आदि) जितने साधन हैं उन सबकी सुन्दर रीतियों का कलियुग ने रोस करके लोप कर दिया और (झूठ कपट

पाखंड व्यभिचार आदि) अपनी कुचालें चलाई हैं ॥ २ ॥ जहाँ जहाँ चित्त अपना भला देखता है वहाँ नित्य नये दुःख बढ़ते जाते हैं और रुचि के अच्छी लगनेवाली (वस्तुएँ) डर कर भागती हैं और जो अच्छी नहीं लगती हैं वे समुहाहिं कहिए सामने इतनो चली आती हैं कि जिनका ठिकाना नहीं ॥ ३ ॥ मन चिन्ता में डूब रहा है और शरीर (ज्वर, खाँसी आदि) रोगों से बेचैन है और झूठ बोलते बोलते वचन मैला हो रहा है। इतना होने पर भी हे प्रभो! तुमसे तुलसीदास का (स्वामि-सेवक का) नाता और प्रेम पूरा पूरा हो रहा है (तुम्हें धन्य है) ॥ ४ ॥

[१९६]

काहे को फिरत मन करत बहु जतन मिटै न दुख विमुख रघुकुल वीर ।
कीजै जो कोटि उपाय त्रिविध ताप न जाइ कह्यौ जो भुज उठाइ मुनिवर कीर ॥१॥
सहज टेउँ बिसारि तुहीं धौं देखु विचारि, मिलै न मथत वारि घृत बिनु छीर ।
समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम, सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥२॥
आगम निगम ग्रंथ रिषि मुनि सुर संत सब ही को एक मत सुनु मतिधीर ।
तुलसिदास प्रभु बिन प्यास मरै पसु जद्यपि है निकट सुरसरि तीर ॥३॥

अरे मन ! तू क्यों बहुत से उपाय करता फिरता है। रघुकुल के वीर रामचन्द्रजी से विमुख (१) होकर दुःख नहीं मिटता। जो करोड़ों उपाय करो तो भी तीन प्रकार के ताप दूर नहीं होते यही श्रेष्ठ मुनि शुकदेवजी ने भुजा उठा कर कहा है ॥ १ ॥ अपने

---

(१) भागवते—घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिताः ।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥ सरलार्थः ।

स्वभाव की टेव को छोड़ कर तू ही इसे समझ देख कि बिना दूध के जल विलोने से घी नहीं मिलता है। सो समझ कर भ्रम को छोड़ और (रामचन्द्रजी के) दोनों चरणों का भजन कर जो (भगवान) सेवा से शीघ्र मिलते हैं और (क्षमा, शीलता आदि) गुणों के बड़े गहरे वन हैं॥ २॥ वेदशास्त्र आदि ग्रन्थ और ऋषि, मुनि, देवता और संत सबका एक मत है (अर्थात् यही सिद्धान्त है) सो बुद्धि स्थिर करके सुन और हे तुलसीदास! यद्यपि गंगाजी का तीर पास है पर बिना स्वामी के (खोले) पशु प्यासा ही मर जाता है (अर्थात् जैसे गंगाजी के तीर पर रस्सो से बँधा पशु बिना मालिक के खोले पानी नहीं पी सकता है वैसेही वेदशास्त्र-ग्रन्थों का पढ़ा हुआ जीव भी ब्रह्मानन्दरूपी गंगा के किनारे मायारूपी रस्सी से बँधा हुआ बिना रामजी की भक्ति के किये नरकों के दुःख से मुक्त नहीं हो सकता है)॥ ३॥

त्रिविधताप + गूढ़ार्थकोष में देखो। कीर = शुकदेवजी। छीर = दूध। जुगम (युग्म) = दो। गहन = वन। आगम = शास्त्र। निगम = वेद।

[१८७]

नाहिं न चरनरति ताहि ते सहौं बिपति कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर।
बसे जो ससिउछंग सुधा स्वादित कुरंग ताहि क्यों भरम निरखि रविकर नीर॥१॥
सुनिय नाना पुरान मिटत नहिं अज्ञान पढ़ै न समुझै जिमि खग कीर।
बँधत बिनहिं पास सेमर सुमनआस करत चरत तेइ फल बिनु हीर॥२॥
कछु न साधन सिधि जानो न निगम बिधि नहिं जप तप बस मन न समीर।
तुलसिदास भरोस परम करुनाकोस प्रभु हरि हैं बिषम भव-भीर॥३॥

मेरी प्रीति (रामचन्द्रजी के) चरणों में नहीं है इसी से दुःख सहता हूँ। यही सब वेद और स्थिर बुद्धिवाले मुनि जन कहते हैं क्योंकि जो हरिण चन्द्रमा की गोद में बस कर अमृत का स्वाद लेता है उसको मृगतृष्णा के जल को देख कर क्यों भ्रम हो सकता है (अर्थात् नहीं हो सकता। वह भ्रम तो जैसे जङ्गली मृग को ही होता है ऐसे ही जो भगवान् के विमुख हैं उनको ही संसारी महा दुःख होते हैं और जो भगवान् के भक्त हैं कि जिनकी दृष्टि में देह इत्यादि संसारी पदार्थ तुच्छ हैं उन्हें दुःख क्यों सतावेगा) ॥ १ ॥ अनेक पुराण सुनते हैं (और उनमें लिखा है कि संसार झूठा है) पर अज्ञान नहीं मिटता जैसे सुग्गा पक्षी (राम राम) पढ़ता तो है पर समझता नहीं और बिना पाश (चौगली पर बैठते ही अपने आप) बँध जाता है और सेमर के पुष्पों की आशा में उसके बिना हीर कहिए गूदे के फलों को खाता है (भाव यह है जैसे बिना समझ के तोता सेमर के फलों में गूदे के लालच से चोंच मारता है पर जब वहाँ रुई निकलती है तब पछताता है और फिर भूल जाता है ऐसे ही पुराण सुन कर भी यह जीव अज्ञान के कारण संसार के बन्धन में पड़ कर अच्छे फल की आशा कर विषय भोगता है) ॥ २ ॥ न तो मैं (जप, तप आदि) साधनों की कुछ सिद्धि जानता हूँ, न वेद की विधि जानता हूँ, न मन को वश में कर जप और तप (करना जानता हूँ) और न श्वास रोक सकता हूँ (अर्थात् प्राणायाम भी नहीं कर सकता) इस तुलसीदास को तो दया के भारी ख़ज़ाने ऐसे भगवान् का ही भरोसा है। वे ही संसार के कठिन क्लेश (कहिए आवागमन) से छुड़ावेंगे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—स्रुति = वेद। उछंग = गोद। कुरंग = हरिण। रविकर = सूर्यकिरण, मृगतृष्णा। कीर = तोता। समीर = हवा, स्वांस। कोस = ख़ज़ाना। विषम = कठिन। भीर = भय।

[१९८]

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु ही ते ॥१॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप बचै न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अंत चले उठि रीते ॥२॥
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते।
अंतहुँ तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते ॥३॥

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न कामअगनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते ॥४॥

हे मन! तू अवसर बीत जाने पर पछतावेगा। सो तू दुर्लभ (मनुष्य) देह को पाकर कर्म, वचन और मन से भगवान् के चरणों का भजन कर ॥ १ ॥ सहस्राबाहु और रावण आदि राजा भी बली काल से नहीं बचे (अर्थात् उन्हें भी काल खा गया कि) जिन्होंने हम हम करके (अर्थात् हम यों और हम यों—हमारी बराबर कौन है यों कह कर) धन और महल सँवार सँवार कर धरे थे। वे अन्त में ख़ाली उठ कर चले गये (स्त्री, पुत्र, धन, धाम का संग जाना तो दूर रहा देह ने भी साथ नहीं दिया) ॥२॥ पुत्र, स्त्री आदि (सब) अपने मतलब के लिए प्यार करते हैं यह जान कर तू इन सबसे प्रीति मत कर। अरे नीच! (ये सब तुझे) अन्त में भी तो छोड़ देंगे (कोई तेरा साथी न होगा) सो तू अभी से ही इन्हें क्यों नहीं छोड़ देता ॥ ३ ॥ अब तो तू अपने स्वामी (रघुनाथजी) से प्रीति कर और हे मूर्ख! जाग (अर्थात् संसार को छोड़। जो कहे कि पहले संसार का भोग भोग लूँ फिर छोड़ कर भजन करूँगा तहाँ कहते हैं कि) अपने मन से दुराशा (संसार के विषय की इच्छा) को तो छोड़ ही दे (क्योंकि हे तुलसी!) कामरूपी अग्नि कहीं विषयभोगरूपी बहुत से (१) घी से नहीं बुझती है (भाव—उससे तो और भभकती है इसलिए दुराशा को छोड़ राम का भजन कर) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ही = हृदय। दसवदन = रावण। वनिता = स्त्री।

[१९९]

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन सरोज सुधारसु रविकर-जल लय लायो ॥१॥
त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह वनिता सुत बंधु भये बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥२॥
जातें निरय निकाय निरंतर सो इन्ह तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ कटहिं भवबंधन सो मगु तो न बतायो ॥३॥
अजहुँ विषय कहुँ जतन करत जद्यपि बहुविधि डहँकायो।

(१) मनु—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

पावक काम भोग घृत तें सठ कैसेंउ परत बुझायो ॥४॥
विषयहीन दुख मिले बिपति अति सुखु सपनेहुँ नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत-पावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो ॥५॥
छिनु छिनु छीन होत जीवन दुरलभ तन वृथा गँवायो।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो ॥६॥

अरे मूर्ख मन! तू क्यों भागा भागा फिरता है। भगवान् के चरण-कमलों के अमृत-रस को छोड़ कर (संसाररूपी) मृगतृष्णा के जल में लौलीन हुआ है ॥ १ ॥ तिर्यक्, (अर्थात् पशु, पक्षी, सर्प आदि) देवता, मनुष्य, राक्षस और संसार में जो और हैं उन सबकी योनियों में तू भ्रम आया। सो (उन योनियों में) तेरे घर, स्त्री, पुत्र, भाई और माता, पिता कि जिन्होंने तुझे उत्पन्न किया बहुत से हो चुके ॥ २ ॥ उन्होंने तुझे वही सिखाया कि जिससे सदा बहुत से नरक भोगने पड़ें। पर जिसमें तेरा भला हो और तेरा संसार-बन्धन कटे सो मार्ग तुझे नहीं बताया ॥ ३ ॥ यद्यपि तू बहुत भाँति ठगाया जा चुका है तो भी अब तक विषय के लिए ही यत्न करता है (भाव—एक बार आदमी धोखे में आजाता है तो फिर धोखे में नहीं आता पर तू हज़ारों बार आकर भी उसी धोखे की टट्टी संसार में गिरना चाहता है) अरे मूर्ख! विषयरूपी अग्नि भोगरूपी घी के डालने से कैसे बुझ जायगी (अर्थात् नहीं बुझेगी, इसलिए विषय को छोड़) ॥ ४ ॥ क्योंकि (जिस जन्म में तू धन होने से विषय-सुख में लगा उससे तूने संसार का दुःख कमाया और जिस जन्म में धन न होने से) विषय-भोग नहीं किया उसमें भी (वासना पूरी न होने के कारण) तुझे दुःख मिले, तेरे ऊपर बड़ी विपत्ति पड़ी और स्वप्न में भी तूने सुख नहीं पाया। इसलिए वेदों ने (मिलने को और न मिलने को) दोनों भाँति से हो इस धन को मुरदे की आग के समान दुखदाई कहा है (जैसे मुरदे को न जलाया जाय तो वह सड़ जाय और जो जलाया जाय तो उसकी आग किसी काम की नहीं होती) ॥ ५ ॥ तेरा जीवन छिन छिन में घटता जाता है और तूने इस दुर्लभ शरीर को वृथा खो दिया। सो हे तुलसीदास! तू आशा को छोड़ भगवान् का भजन कर क्योंकि कालरूपी सर्प संसार को खाये जा रहा है (तुझे भी न जाने कब खा जाय) ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—निरय = नरक। निकाय = समूह, बहुत से। निरंतर = सदा। उरग = सर्प। पावक = अग्नि।

[२००]

तांबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो ।
नीचु मीचु जानत न सीस पर ईस निपट बिसरायो ॥१॥
अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत के न इन्हहिं अपनायो ।
काके भये गए सँग काके सब सनेह छल छायो ॥२॥
जिन्ह भूपनि जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें तू गिनती कब आयो ॥३॥
देखु बिचारि सार का साँचो कहा निगम निजु गायो ।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेश मन लायो ॥४॥

हे जीव ! (इस पानी भरी पखाल को तूने ऐसा समझ रक्खा है) मानों तूने ताँबे से मढ़ा हुआ शरीर पाया है (भाव—न यह गलेगा, न सड़ेगा योंही अमर रहेगा) हे नीच ! तू यह नहीं जानता कि मौत तेरे शिर पर खड़ी है। तू ईश्वर को बिलकुल ही भूल गया ॥ १ ॥ पृथ्वी, स्त्री, धन, महल, मित्र और बेटे इनको किसने अपना नहीं माना, पर ये किसके हुए और किसके साथ गये। सबके स्नेह में छल भर रहा है (अर्थात् सबका स्नेह झूठा देखने मात्र का है) ॥ २ ॥ जिन (रावण, हिरनाकुस आदि) राजाओं ने संसार को जीत कर और यम को बाँध कर अपनी बाँह के नीचे बसाया था, उनका भी काल कलेऊ कर गया सो तू किस गिनती में है ॥ ३ ॥ तू विचार कर देख क्या तो सार है क्या सच है और वेद ने निश्चय पूर्वक क्या कहा है (भाव—ईश्वर ही सार है राम ही सत्य है) हे तुलसी ! तू समझ कर अब भी उसे नहीं भजता है कि जिसका महादेवजी (१) ने मन में ध्यान किया है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—पीठि = मढ़ा हुआ। निपट = बिलकुल। अवनि = पृथ्वी। रवनि (रमणी) = स्त्री। निगम = वेद।

[२०१]

लाभ कहा मानुष तनु पायो ।
काय बचन मन सुपनेहुँ कबहुँक घटत न काज परायो ॥१॥

(१) शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं—अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्। श्रीसीतायाः स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदि स्थले ॥ सरलार्थः।

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बोलायो।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझायो ॥२॥
परदारा परद्रोह मोहवस किये मूढ़ मन भायो।
गरभवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसरायो ॥३॥
भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जायो।
सुरदुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवायो ॥४॥
गई न निज परबुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास बीते यह अवसर का पुनि के पछितायो ॥५॥

(अरे जीव) मनुष्य का शरीर पाने से क्या लाभ हुआ। तू शरीर, वचन और मन से कभी स्वपने में भी पराया उपकार नहीं करता है ॥ १ ॥ जो (इन्द्रियों का विषय) सुख स्वर्ग में, नरक में, घर में और वन में, बिना बुलाये आपही आ जाता है उस (इन्द्रियों के) सुख के लिए हे मन ! तू बहुत से उपाय करता है और समझाने से भी नहीं समझता है (कि विषयों में लगने से जीव का नाश हो जाता है) ॥ २ ॥ हे मूर्ख ! तूने मोह के वश (अर्थात् आत्मस्वरूप को भूल कर देहाभिमान से) पराई स्त्रियों से (प्रेम) और दूसरों से मनमाना बैर किया और (तूने अपनी माता के) गर्भ में रहने से जो बहुत से दुःख, पीड़ा और कठिन विपत्ति को (भोगा था उनको) तू भूल गया (भाव—फिर उसी मोह के मार्ग में चलता है) ॥ ३ ॥ भय, नींद, मैथुन और भोजन ये बातें संसार में सबकी एकसी पैदा होती हैं पर जो देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा (मनुष्य) शरीर धर के तू मद और अभिमान को छोड़ कर भगवान् का भजन नहीं करता है ॥ ४ ॥ जिसकी अपनी, पराई बुद्धि नहीं गई है और जो (अन्तःकरण से) शुद्ध होकर रामजी में लौ नहीं लगाता है, उसको हे तुलसीदास ! इस अवसर के बीतने पर (अर्थात् मनुष्य-देह पूरी होने पर) पछताने के सिवाय फिर क्या धरा है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—घटत = करता है। दारा = स्त्री। जातना = पीड़ा। तीव्र = कठिन।

[२०२]

काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो।
पर उपकार सार स्रुति को सो तो धोखेहु में न बिचार्‌यो ॥१॥

द्वैतमूल भय सूल सोगफल भवतरु टरइ न टारयो।
रामभजन तीछन कुठार तोइ सो नहिं काटि निवारयो ॥२॥
संसय सिंधु नाम बोहित भजि निज आतमा न तारयो।
जनम अनेक विवेकहीन, बहु जोनि भ्रमत नहिं हारयो ॥३॥
देखि आनकी सहज संपदा द्वेष अनल मन जारयो।
सम दम दया दीन पालन, सीतल हिय हरि न सँभारयो ॥४॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसारयो।
तुलसिदास एहि आस सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो ॥५॥

(अरे जीव !) तूने मनुष्य का शरीर धर कर क्या काम सँभाला। औरों के लिए उपकार करना वेदों का निचोड़ है उसे तूने धोखे में भी नहीं विचारा ॥ १ ॥ द्वैतभाव (अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में भेद मानना) जिसकी जड़ है, भय काँटे हैं और शोक जिसके फल हैं ऐसा संसाररूप वृक्ष है कि जो हटाने से भी नहीं हटता। उसको तूने रामजी का भजनरूपी तेज़ कुल्हाड़ा लेकर उससे काट कर दूर नहीं किया ॥ २ ॥ (झूठे संसार को सच्चा जानना इस) संशयरूपी समुद्र से राम-नामरूपी बोहित अर्थात् नाव का सेवन करके अपनी आत्मा को नहीं तार दिया और अनेक जन्मों में तू अज्ञानी होकर बहुत सी योनियों में घूमता घूमता नहीं हारा ॥ ३ ॥ दूसरों की सहज सम्पत (बढ़ती) देखकर तूने अपने मन को द्वेषरूपी अग्नि में जला दिया। शम, दम, दया और दीनों का पालन इनसे अपने हृदय को शीतल करके भगवान् को याद नहीं किया ॥ ४ ॥ अपने स्वामी, गुरु, पिता और सखा (रामजी) को तू मन, कर्म और वचन से भूल गया तो भी हे तुलसीदास ! यह आशा है कि जिन्होंने गिद्ध का उद्धार किया है वही तुझे शरण में रक्खेंगे ॥ ५ ॥

[२०३]

श्रीहरिगुरुपद कमल भजु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुखनिधान भगवान ॥१॥

परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि ।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥२॥
दुइज द्वैत मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर ।
विगत मोह माया मद हृदय सदा रघुबीर ॥३॥
तीज त्रिगुन पर परमपुरुष श्रीरमन मुकुंद ।
गुन सुभाउ त्यागे बिनु दुरलभ परमानंद ॥४॥
चौथि चारि परिहरै बुद्धि मन चित अहँकार ।
विमल विचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥५॥
पाँचइ पाँच परस रस सब्द गंध अरु रूप ।
इन्ह कर कहा न कीजिये बहुरि परब भवकूप ॥६॥
छठि षडवरग करिय जय जनकसुतापति लागि ।
रघुपति किरपा बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ॥७॥
सातैं सप्तधातु निरमित तनु करिय विचार ।
तेहि तनु केर एक फल कीजै पर उपकार ॥८॥
आठइं आठ परकृति पर निरविकार श्रीराम ।
केहि प्रकार पाइय हरि हृदय बसहिं बहुकाम ॥९॥
नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख लीन्ह ॥१०॥
दसइँ दसहु कर संजम जो न करिय जिय जानि ।
साधन वृथा होइँ सब मिलहिं न सारँगपानि ॥११॥
एकादसी एक मन बसकै सेवहु जाइ ।
सोइ ब्रत कर फल लहै आवागमन नसाइ ॥१२॥
द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक ।
पर हित निरत सो पारनहु बहुरि न व्यापत सोक ॥१३॥

तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत ॥१४॥
चौदसि चौदह भुवन चर अचर रूप गोपाल।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ॥१५॥
पूनो प्रेम भक्ति रस हरि रस जानहिं दास।
सम सीतल गत मान ज्ञानरत विषय उदास ॥१६॥
त्रिविध सूल होलिय जारिय खेलिय अस फागु।
जौं जिय चहसि परमसुख तौ यहि मारग लागु ॥१७॥
स्रुति पुरान बुध संमत चाँचरि चरित मुरारि।
करि विचार भवतरिय परिय न कबहुँ जमधारि ॥१८॥
संसय समन दमन दुख सुखनिधान हरि एक।
साधु कृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाइ अनेक ॥१९॥
भवसागर कहँ नाउ सुद्ध संतन के चरन।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥२०॥

अरे मन! तू अभिमान को छोड़ कर भगवद्रूपी गुरु के चरण-कमलों का भजन कर, जिनकी सेवा करने से सुख के स्थान (अर्थात् देनेवाले) विष्णु भगवान् मिलते हैं ॥ १ ॥ जैसे परिवा (सबसे पहिली तिथि है) ऐसे ही रामजी से मिलने का पहला उपाय प्रेम है; बिना प्रेम के रामजी का मिलना दूर है, यद्यपि वे पास अपने हृदय में ही कलासहित पूर्ण (चन्द्रमा के समान) निवास करते हैं ॥ २ ॥ (पड़वा के पीछे दूसरी तिथि) दूज है (अर्थात् दूसरी बात राम-मिलन की क्या है कि) द्वैत को छोड़ कर (अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में भेद न समझ कर) धीर (ज्ञानी) मनुष्य पृथ्वी-मण्डल में विचरता फिरे। मोह, माया और अहङ्कार से रहित हृदय में सदा रामचन्द्रजी निवास करते हैं ॥ ३ ॥ तीज तिथि (अर्थात् तीसरी बात राम-मिलन की) यह है कि परम पुरुष लक्ष्मी के पति मुकुन्द भगवान् तीनों गुणों से परे हैं इसलिए गुणों (१) के स्वभाव को

---

(१) यथा गीतायां—सत्वरजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्। जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

त्याग दे क्योंकि बिना छोड़े परमानन्दस्वरूप (परमेश्वर) को पाना कठिन है ॥ ४ ॥ चौथ तिथि (अर्थात् चौथी बात राम-मिलन की) यह है कि बुद्धि, मन, चित्त और अहङ्कार इन चारों को (चौथ के चन्द्रमा की तरह) त्याग दे। फिर निर्मल ज्ञान (अर्थात् आत्म-ज्ञान) से मोक्ष और अपने को वह (ब्रह्मानन्द) सुख होगा कि जो स्वभाव से ही उदार है ॥ ५ ॥ पंचमी तिथि (अर्थात् पाँचवीं बात राम-मिलन की) यह है कि रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श ये पाँच हैं। इनका कहा न करना चाहिए। नहीं तो फिर संसाररूपी कुएँ में पड़ना पड़ेगा (भाव—जो इन्द्रियों को उनके रस आदि विषयों में लगाओगे तो आवागमन से नहीं छूटोगे) ॥ ६ ॥ छठी तिथि (अर्थात् छठी बात राम-मिलन की) यह है कि जानकीपति (रामचन्द्र के भजन) में लग कर षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर) को जीतना चाहिए क्योंकि रामजी के कृपारूपी जल के बिना लोभरूपी आग नहीं बुझती है (भाव—लोभ से ही काम, क्रोध आदि होते हैं और रामजी की कृपा से लोभ का नाश होने से सब जाते रहेंगे) ॥ ७ ॥ सप्तमी तिथि (अर्थात् सातवीं बात राम-मिलन की) क्या है कि, विचार देखो यह शरीर (हाड़, चाम, लोहू, मांस, मज्जा, मेद और वीर्य) सात धातुओं से बना है। सो इस शरीर का एक यही फल है कि दूसरों का उपकार करे ॥ ८ ॥ अष्टमी तिथि (अर्थात् आठवीं बात राम-मिलन की) यह है कि श्रीरामजी (पंचभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार इन) आठों प्रकृतियों से अलग हैं और उनमें (उन प्रकृतियों का कोई) विकार नहीं है। (परन्तु जीव में ये सब प्रकृतियाँ हैं) सो जब हृदय में तो बहुत सा काम (विषय) भरा पड़ा है तब भगवान को किस प्रकार पावें (भाव—शुद्ध हृदय हो तो परमेश्वर मिलें) ॥ ९ ॥ नवीं तिथि (अर्थात् नवीं बात राममिलन की) यह है कि इस नौ द्वार (१) वाले नगर में बस कर जिन्होंने अपना भला नहीं किया, वे मनुष्य अनेक योनि में भ्रमते फिरेंगे और अपने को कठिन दुःख देंगे ॥ १० ॥ दशवीं तिथि (अर्थात् दसवीं बात राम-मिलन की) यह है कि जो अपने मन में समझ कर भी दश (२) (इन्द्रियों का) संयम नहीं करेगा, उसके (धारणा, ध्यान और समाधि) सब संयम वृथा हो जायँगे और उसे हाथ में धनुष लिये (भगवान्) नहीं मिलेंगे ॥ ११ ॥ एकादशी (अर्थात् ग्यारहवीं बात राम-मिलन की) यह है कि (दशों इन्द्रियों का स्वामी) एक मन है उसे अपने वश में करके सेवा करे। उसी से व्रत करने का फल पाता है और संसार से

---

(१)—(२) गूढ़ार्थ कोश में देखो।

आवागमन दूर हो जाता है ॥ १२ ॥ द्वादशी तिथि (अर्थात् बारहवीं बात राम-मिलन की) यह है कि ऐसा दान दे कि जिससे तीनों लोकों में निडर हो जाय और दूसरों का भला करने में लगा रहे यही (उस एकादशी के व्रत की) पारणा है। फिर शोक नहीं व्यापेगा (अर्थात् स्त्री पुत्रादि के मरने का दुःख नहीं होगा) ॥ १३ ॥ तेरस तिथि (अर्थात् तेरहवीं बात राम-मिलन की) यह है कि (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) तीनों अवस्थाओं को छोड़ कर भगवान् का भजन करे कि जो भगवान् मन, कर्म और वचन से परे और सबमें व्यापक हैं और व्याप्य अर्थात् स्वयं ब्रह्माण्डरूप हैं और उनका अंत नहीं है (अर्थात् किसी ने उनका पार नहीं पाया) ॥ १४ ॥ चौदस तिथि (अर्थात् चौदहवीं बात राम-मिलन की) यह है कि चौदहों लोक भगवान् का स्थिररूप है (अर्थात् भगवान् सब चर-अचर में अंतर्यामी रूप से व्याप्त हैं) परन्तु भेद (अर्थात् जीव में द्वैतबुद्धि) के दूर हुए बिना रामचन्द्रजी इस संसार के (मोह, ममता आदि) बड़े जाल को दूर नहीं करते (इसलिए भगवान् को अभेद बुद्धि से भजना चाहिए) ॥ १५ ॥ पूनों तिथि (अर्थात् १५ वीं बात राम-मिलन की) यह है कि प्रेम और भक्ति के रस से भक्तजन भगवान् के रस को जानते हैं और फिर वे सबको समान समझनेवाले, शान्त और अहङ्कार से रहित हो जाते हैं और उनको ज्ञान प्यारा लगता है और (संसार के स्त्री, भूषण, वसन आदि) विषयों से वैरागी हो जाते हैं (भाव—विषय उनके पास नहीं फटकते) ॥ १६ ॥ यों तो पूनों हर मास में होती है परन्तु यहाँ भक्ति को फागुन की पूनों मान कर) तीन प्रकार के (दैहिक, भौतिक और दैविक) क्लेशों को (वैरागरूपी) होली में जला कर अब फाग खेले (भाव यह है कि जब जीव विषयों को छोड़ देगा तब पाप न होंगे, और पाप न होने से तीन प्रकार के क्लेश स्वयं भस्म हो जायँगे और जीव बेखटके हो जायगा) सो जो तू अपने मन में परमानन्द सुख चाहता है तो इस मार्ग से लग (अर्थात् यह काम कर) ॥ १७ ॥ वेद पुराण और ज्ञानियों की यही सम्मति है कि भगवान् के चरित्र ही होली में गाने के गीत हैं (इनका ही गान सुनना चाहिए) ऐसा विचार कर संसाररूपी समुद्र से तर जाना चाहिए और यम की सेना के समान उस संसार की कठिन धार अर्थात् आवागमन में कभी नहीं पड़ना चाहिए ॥१८॥ संशय (अर्थात् संसार झूठा है या सच्चा इस संदेह) के नाशक, (रोग, वियोग, हानि आदि) दुःख के दूर करनेवाले और सुख के स्थान ऐसे एक भगवान् ही हैं परन्तु वे सन्तों की दया बिना (कर्म, योग, ज्ञान, विराग आदि) अनेक उपाय करने पर भी नहीं मिलते हैं ॥ १९ ॥ इसलिए संसाररूपी समुद्र से तरने के लिए सन्तों के पवित्र चरण ही नावरूप हैं। हे तुलसीदास ! (उनकी कृपा से) दुःख के दूर करनेवाले रामचन्द्रजी बिना परिश्रम के मिल जाते हैं ॥ २० ॥

सन्धिविभाग—लोभ + आगि ।

शब्दार्थ—बुताई = बुझावे।

[२०४]

राग कान्हरा।

जो मन लागै रामचरन अस।
देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥
द्वन्द्व रहित गत मान ज्ञान रत विषय-विरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होइ बस ॥२॥
सर्वभूतहित निर्व्यलीकचित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक रस।
तुलसिदास जइ होइ तबै जब द्रवै ईस जेहि हत्यो सीसदस ॥३॥

जो रामचन्द्रजी के चरणों में ऐसा मन लगे कि जैसा बिना उपाय किये शरीर, घर, पुत्र, धन और स्त्री में मगन रहता है ॥ १ ॥ तो मनुष्य द्वन्द्वभाव (अर्थात् गरमी, सरदी, दुख, सुख) रहित हो जाता है, उसका अभिमान जाता रहता है और उसकी प्रीति ज्ञान में हो जाती है और वह (संसार के) विषयों से ऐसे अलग हो जाता है कि जैसे कस के पात्रों में धरी अनेक खट्टी वस्तुओं से (मन फिर जाता है)। फिर सुख के स्थान, सुन्दर चतुर ऐसे कोशलपति (रामचन्द्रजो) कहो क्यों नहीं प्रसन्न होकर वश में हो जायँगे ॥ २ ॥ (वह मनुष्य) सब जीवों का भला करने लगता है, उसका चित्त शुद्ध हो जाता है और फिर उसमें (भगवान् की) भक्ति, प्रेम और नेम ये पक्के और एक से हो जाते हैं। पर हे तुलसीदास ! यह बात तभी हो सकती है कि जब वह स्वामी प्रसन्न हो कि जिसने रावण को मारा है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—कलत्र = स्त्री। कस = एक तरह की धातु—उसके पात्र में खट्टी वस्तु धरने से पितला जाती है। निर्व्यलीक = (व्यलीक = पीड़ा, दुःख जिसमें ये न हों वह निर्व्यलीक अर्थात्) शांत या शुद्ध। द्रवै = कृपा करे। सीसदस = रावण।

[२०५]

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु।
तौ तजि विषय विकार सार भजु अजहूँ जो मैं कह्यौं सोइ करु ॥१॥

सम संतोष विचार विमल अति सतसंगति ए चारि दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥
स्रवन कथा मुख नाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु।
नैननि निरखि कृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीतावरु ॥३॥
इहै भगति वैराग ज्ञान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सुपनेहुँ नाहिं न डरु ॥४॥

हे मन, जो तू भगवान्‌रूपी कल्पवृक्ष को भजा चाहता है तो विषय-वासना को छोड़ कर साररूप (भगवान्) का भजन कर और अब भी जो मैं कहता हूँ उसे कर ॥ १ ॥ समता, संतोष, अत्यन्त निर्मल विचार और सत्संग इन चारों को पक्का करके धारण कर ले (इनसे क्या होगा कि समता से मन की विषमता जाती रहेगी; सन्तोष से मन की चाह न रहेगी; निर्मल विचार से बुद्धि शुद्ध होगी और सत्संग से अहंकार जाता रहेगा) और (इनके दृढ़ रखने के लिए) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, राग और द्वेष इन सबको बिलकुल छोड़ दे ॥ २ ॥ (फिर तू राम-प्राप्ति के लिए) कानों से (भगवान् की) कथा सुन, मुख से (भगवान् का) नाम रट, हृदय में भगवान् (का ध्यान धर) और माथे से (भगवान् को) नमस्कार कर। हाथों से (भगवान् की) सेवा कर और आँखों से दया के समुद्र ऐसे भगवान् का दर्शन कर जो चर और अचर रूप (सब संसार) के राजा हैं और जानकीजी के पति हैं ॥ ३ ॥ यही भक्ति है, यही वैराग है, यही ज्ञान है, और यही भगवान् का प्रसन्न करना है। इस शुभ व्रत का तू साधन कर। हे तुलसीदास! शिवजी का भी यही मत है। इस मार्ग में सदा चलने से सुपने में भी डर नहीं रहता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निसेष = बिलकुल। स्रवन = कान। अग = जो न चले। जग = जो चले। वर = पति। आचरु = कर।

[२०६]

नाहिं न और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति सम बिपति निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवक वस काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि औगुन कोटि विलोकि विसारन।
परम कृपाल भगति चिंतामनि विरद पुनीत पतितजन तारन ॥२॥
सुमिरत सुलभ दास दुख सुनिहरि चलत तुरत पटपोत सम्हारन।
साखि पुरान निगम आगम सब जानत द्रुपदसुता अरु वारन ॥३॥
जाको जस गावत कवि कोविद जिन्हके लोभ मोह मदमारन।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिवधू-उधारन ॥४॥

(इस संसार में) शरण के लायक और विपत्ति का दूर करनेवाला श्रीरामचन्द्रजी के सिवा कोई दूसरा नहीं है। ऐसा किसका सहज स्वभाव है कि जो सेवक के वश हो और किसकी भक्तों पर अकारण प्रीति है ॥ १ ॥ (भगवान् ही ऐसे हैं कि) दासों के थोड़े से भी गुणों को सुमेरु पर्वत के बराबर गिनते हैं और करोड़ों औगुनों को देख कर भी भूल जाते हैं। बड़े दयावान् हैं और भक्तों के लिए चिन्तामणि के समान हैं। पवित्र करने का जिनका बाना है और जो पापी जीवों का उद्धार करनेवाले हैं ॥ २ ॥ भगवान् याद करते ही सहज में मिलनेवाले हैं और दास के दुःख को सुनते ही वे तुरन्त चल देते हैं और अपना पीतांबर सँभालने की भी याद नहीं रहती (अर्थात् भक्त का दुःख दूर करने के लिए तुरन्त जाने को तैयार हो जाते हैं) इस बात के गवाही सब वेद, पुराण और शास्त्र हैं और द्रोपदी तथा गजेन्द्र भी इसे जानते हैं ॥ ३ ॥ उनके यश को (वाल्मीकि आदि) कवीश्वर और (शुकदेवजी आदि) ज्ञानी गाते हैं कि जिनके (मन में) लोभ, मोह, मद और काम नहीं है। हे तुलसीदास! सब आशाओं को छोड़ कर उन कोशलपति (रामजी) को भज कि जिन्होंने मुनिवधू (अहिल्या) को तारा है ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—चिन्तामनि = एक मणि जो मनमांगा देती है। आगम = शास्त्र। वारन = हाथी। कोविद = पण्डित। मार = काम।

[२०७]

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिं न।
आनँदभवन दुखदमन सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहिं न ॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूँ जे समाहिं न।

सुमिरत नाम विवसहु बार एक पावत सो पद जहाँ सुर जाहिं न ॥२॥

जाके पदकमल लुब्ध मुनि मधुकर विरति जे परम सुगतिहु लुभाहिं न।

तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥३॥

(इस संसार में) भजन करने के लायक, सुख देनेवाला और शरण देनेवाला रामचन्द्रजी के समान दूसरा नहीं है। वे आनन्द के मन्दिर, दुःख के दूर करनेवाले, शोक का नाश करनेवाले और लक्ष्मी के पति हैं जिनके गुण गिनते गिनते पूरे नहीं होते ॥ १ ॥ दुखिया (सुग्रीव आदि), नीच (जटायु), बुरी जाति (शवरी), कुटिल (बानर), दुष्ट (राक्षस), पतित (यवन) जो डर के मारे कहीं नहीं समा सकते, (अर्थात् बच सकते) थे वे उन भगवान् के नाम को भूले भटके एक बार (१) याद करने से ही उस पदवी को पहुँच गये कि जहाँ देवता भी नहीं पहुँचते हैं ॥ २ ॥ जिनके चरण-कमलों में वे मुनिरूपी भौंरे लुभाये रहते हैं कि जो वैरागी हैं और जिनको परम सुन्दर गति जो मोक्ष है उसका भी लोभ नहीं है। हे मूर्ख तुलसीदास ! तू उनका भजन क्यों नहीं करता है जो दया की मूर्ति हैं और अनाथों के दाये (अर्थात् उन पर कृपालु) होते हैं ॥ ३ ॥

[२०८]

राग कल्याण।

नाथ सौं कौन विनती कहि सुनावौं।

त्रिविध विधि अमित अवलोकि अघ आपने संमुख होत सकुचि सिरनावौं ॥१॥

विरचि हरिभगत को वेष वर टाटिका कपटछल विपुल पल्लवहि रचि छावौं।

---

(१) सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्। शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

नाम लग लाइ लासा ललित बचन कहि व्याध ज्यों विषय विहँगनि बझावों ॥२॥
कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर वारिएहि साधु गनती मैं पहिलहिं गनावों ।
परम बर्बर खर्ब गर्ब-पर्वत चढ्यो अज्ञ सर्वज्ञ जन-मनि जनावों ॥३॥
साँच कैधौं झूठ मोको कहत कोउ कोउ राम रावरो होहुँ तुम्हरो जनु कहावों ।
विरुद की लाज करि दासतुलसिहिं देव लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावों ॥४॥

हे नाथ ! तुम्हें कौन भाँति विनती कह कर सुनाऊँ । अपने (मन, कर्म और वचन के) तीन प्रकार के बेहद पाप देख कर तुम्हारे सामने आने में शरम के मारे अपना सिर नीचे को कर लेता हूँ ॥१॥ (सामने आने में क्यों शरमाता हूँ कि कण्ठ में तुलसी की माला पहरे, रामफटाका तिलक छापा लगाये, पीताम्बर पहरे और रामायण हाथ में लिये इत्यादि) हरिभक्तों का वेष बनाये रहना सो ही तो हुई सुन्दर टट्टी और (मुँह से राम राम कहता हूँ और भीतर काम, क्रोध आदि भरा है ऐसे) कपट-छल ही मानों बहुत से पत्ते हैं उनसे उस टट्टी को छावता हूँ । आपका नाम (अर्थात् लोगों के सामने नाम का माहात्म्य कहना) मानों लग्गी है और (उसके साथ ही दृष्टान्त देकर) जो सुन्दर सुन्दर वचन कहता हूँ सोई लासा है उसे लगा कर व्याध की तरह (अर्थात् जैसे व्याधा पक्षी पकड़ने के लिए बाँस की टट्टी बना कर उस पर हरे हरे पत्ते छाकर उसकी ओट से लग्गी लासा लगा कर पक्षी को पकड़ता है ऐसे मैं संसारी) विषय ठहरे पक्षी उन्हें फाँस लेता हूँ (भाव यह हुआ कि कपट से हरिभक्त का वेष बना कर मुँह से रामराम कहता हुआ नाम-माहात्म्य की कथा कह कह कर भाँति भाँति के विषय-सुख भोगता हूँ । कोई माला लाता है उसे सूँघता पहरता हूँ, कोई भोजन लाता है उसे खाता हूँ, स्त्रियाँ दर्शन को आती हैं उन्हें देखता हूँ, उनका गान सुनता हूँ इत्यादि ॥ २ ॥ सौ करोड़ बुरे स्वभाववाले (पापी) मेरे एक एक रोम पर निछावर कर दिये जायँ (ऐसा तो खोटा हूँ) तो भी मैं सन्तों की गिनती में अपने को पहले गिनता हूँ (अर्थात् सबका शिरोमणि बनता हूँ) बड़ा बकवादी,

बौना (तुच्छ) होकर भी मैं घमण्डरूपी पर्वत पर चढ़ा हुआ हूँ (अर्थात् बड़ा घमण्डी हूँ) और मूर्ख होकर भी अपने ताईं सर्वज्ञ कहिए वेदवेदान्तों के ज्ञाता जनों का शिरोमणि जतलाता हूँ ॥ ३ ॥ (ऐसा अज्ञानी होकर तुम्हारे सामने कुछ कह तो नहीं सकता पर) हे राम ! यह बात जाने सच है कि जाने झूठ है (मेरा वेष देखकर) कोई कोई जीव मुझे तुम्हारा बतलाते हैं (कि यह राम का गुलाम है) और मैं भी लोगों से तुम्हारा कहलवाता हूँ । सो हे देव ! अपने (दीनबन्धु, पतितपावन, प्रणत-पाल आदि) बाने की लाज करके इस तुलसीदास को अपना लो और अब टाल टूल मत करो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—लग्गी = बाँस का डण्डा । लासा = चेप । बर्बर = बकवादी । खर्ब = बौना, तुच्छ ।

[२०६]

नाहिनै नाथ अवलंब मोहि आन की ।

करम मन वचन पन सत्य करुनानिधे एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥१॥

कोह मद मोह [illegible] कहैं [illegible] जानि मन बात नहिं जाति कहि ज्ञान विज्ञान की ।

काम संकल्प उर निरखि बहु बासनहिं आस नहिं एकहू आँक निरवान की ॥२॥

वेद बोधित करम धरम बिनु अगम अति जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की ।

सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की ॥३॥

भगतिदुरलभ परम संभु सुकमुनि मधुप प्यास पदकंज मकरंद मधु पान की ।

पतित पावन सुनत नाम बिस्रामकृत भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की ॥४॥

नरक अधिकार मम घोर संसारतम कूप कहि भूप मोहिं सकति आपान की।
दासतुलसी सोऊ त्रास नहिं गनत मन सुमिरि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥५॥

हे नाथ! अब मुझे और का आसरा नहीं है। हे दयानिधान! कर्म से, मन से और वाणी से हे राम! मेरा सच्चा प्रण है कि मुझे एक तुम्हारी जूतियों का ही सहारा है ॥ १ ॥ मन को क्रोध, मद, मोह, ममता का स्थान जान कर मुझसे ज्ञान और विज्ञान के साधने की बात ही नहीं कही जाती (अर्थात् मन में तो काम, क्रोध आदि होने से देहाभिमान बढ़ रहा है ज्ञान की चर्चा कैसे हो सकती है) काम के संकल्प से (अर्थात् मन में जो काम ही की लगी रहती है उससे) अपने हृदय में बहुत सी वासनाओं को देख कर मुझे एक विस्वे भी मोक्ष की आशा नहीं है (भाव यह है कि इन्द्रियों (१) के विषय में लगने से कामना बढ़ेगी और कामना पूरी न होने से क्रोध होगा फिर मोह आदि से अंत में जीव का नाश होगा) ॥२॥ यद्यपि वेदों में समझाये हुए जो कर्म, धर्म हैं उनके बिना किये (स्वर्ग में जाना) बहुत हो कठिन है तो भी मेरे मन में स्वर्ग में जाने की लालसा लग रही है। (अणिमादि) सिद्धियाँ, देवता, मनुष्य (कार्तवीर्य्य आदि) और राक्षस आदि की सेवा भी बड़ी कठिन है क्योंकि (सिद्धियाँ) हठ योग करने से, (देवता यज्ञ का) भाग देने से और राक्षस (बकरे आदि के) प्राणों के बलि देने से प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ (जीव के कल्याण करनेवाली) भक्ति है सो (मुझ सरीखे जीवों को) बड़ी भारी कठिन है क्योंकि शिवजी और शुकदेवमुनिरूपी भौंरों को भी तुम्हारे चरण-कमलों के मीठे मकरन्द पान करने की प्यास लगी रहती है (फिर मुझ सरीखे पापी की क्या गिनती है)। सुनता हूँ कि तुम्हारा पापियों को पवित्र करनेवाला नाम विश्राम का दाता है पर चित्त में अभिमान की गाँठ पड़ी समझ फिर चित्त बैक जाता है (अर्थात् स्थिर नहीं रहता क्योंकि जब जीव देहाभिमानी है तो विषय में लगेगा तुम्हारा नाम क्यों जपेगा) ॥ ४ ॥ हे राजन्! अपनी शक्ति अर्थात् कर्मों से मुझे अधिकार तो नरक के समान भयङ्कर संसाररूपी अंधे कुएँ में पड़ने का है, पर तुलसीदास

---

(१) जैसा गीता में कहा है:—"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ १ ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ॥ २ ॥ सरलार्थः।

अपने मन में निषाद, गिद्ध, गज और हनूमानजी को जाति याद करके उसके भय को नहीं गिनता है (भाव—ऐसों का भला किया है फिर मेरा क्यों न करेंगे) ॥५॥

सन्धिविभाग—ममता+आयतन (घर)। दनुज+आदि ।

शब्दार्थ—पदत्राण = पैरों का रक्षक, जूता । आंक = बिस्वे । निर्वान = मोक्ष । तन = बढ़ता हुआ ("तनु विस्तारे" धातु का) ।

[२१०]

और कहँ ठौर रघुवंसमनि मेरे ।
पतितपावन प्रनतपाल असरन सरन बाँकुरो विरुद विरुदैत केहि केरे ॥१॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम के करत नहिं कान विनती वदनु फेरे ।
तदपि ह्वै निडरु कहौं करुनासिंधु क्यों बरहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥२॥
मुख्य रुचि हेतु बसिबे के पुर रावरे राम तेहि रुचिहिं कामादि गन घेरे ।
अगमु अपवर्गु अरु सुरगु सुकृतैक फलु, नाम बल क्यों बसों जम नगर नेरे ॥३॥
कतहुँ नहिं ठाउँ कहुँ जाउँ कोसलनाथ दीनु वितहीन हौं विकल बिनु डेरे ।
दास तुलसिहिं वास देहु अब करि कृपा वसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

हे रघुवंशमणि ! (तुम्हारे सिवाय) मेरे और कहाँ जगह है ? तुम पापियों के पवित्र करनेवाले, ग़रीबों का पालन करनेवाले, और जिसको कोई भी शरण न दे उसको शरण देनेवाले हो । तुम्हारा सा बाँका बाना कहो किस बानावाले वीर का है ॥१॥ हे राम ! अपने

जी में मेरे दोषों को समझ बड़ा क्रोध करते होगे इसी से तुम मेरी विनती को नहीं सुनते और मुँह फेर लेते हो, तो भी मैं बेधड़क होकर कहता हूँ कि हे दयासागर! मेरी बात को बिना सुने और बिना विचारे तुम क्यों बहरा जाते हो (अर्थात् क्यों आनाकानी करते हो) ॥२॥ (जो कहो कि तेरी क्या कामना है तहाँ कहते हैं कि कामनायें तो बहुत हैं पर) मुख्य कामना तो तुम्हारे पुर (अर्थात् वैकुण्ठ) में बसने की है परन्तु हे राम! उस कामना को काम आदि के समूहों ने घेर रक्खा है (अर्थात् ये उसे पूरी नहीं होने देंगे) और मोक्ष का होना भी कठिन है (क्योंकि वह पूरा आत्मज्ञान हो तब मिले) और स्वर्ग एक बड़े पुण्य का फल है (अर्थात् बड़े बड़े यज्ञ, दान, तप आदि पुण्य करो तब स्वर्ग मिले सो मैंने किये नहीं हैं इसलिए स्वर्ग भी नहीं मिल सकता) मुझे तो तुम्हारे नाम का बल है (अर्थात् कभी कभी तुम्हारा नाम ले लेता हूँ) सो उससे यमपुर के पास भी नहीं रह सकता हूँ (नाम के प्रभाव से वहाँ यम नहीं आने देगा) ॥३॥ सो हे कोशलनाथ! मुझे कहीं भी (रहने का ठिकाना नहीं है। अब मैं कहाँ जाऊँ क्योंकि मैं ग़रीब और निर्धन हूँ और बिना रहने की जगह के घबरा रहा हूँ। सो तुलसीदास को अब कृपा करके (वहाँ रहने को) जगह दीजिए कि जिस गाँव में गजेन्द्र, गिद्ध और व्याध आदि रहते हैं (भाव—जैसे इन पापियों पर कृपा की है मुझ पर भी कृपा करो) ॥४॥

शब्दार्थ—विरुद = बाना। विरुदैत = बानावाला वीर। हेरे = विचारे। सुकृतैक = (सुकृत + एक) पुण्य ही एक।

[२११]

कबहुँ रघुवंसमनि सोइ कृपा करहुगे।
जेहि कृपा व्याध गज विप्र खल नर तरे, तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥१॥
जोनि बहु जनमि किए करम खल विविधविधि, अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे।
दीनहित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल चित मृदुल निज-गुननि अनुसरहुगे ॥२॥
मोह मद मान कामादि खल मंडली सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे।

जोग जप जज्ञ विज्ञान ते अधिक अति अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥३॥
मंदजन-मौलिमनि, सकल साधनहीन कुटिल मन-मलिन जिय जानि जौ डरहुगे।
दासतुलसी वेद विदित विरदावली विमल जस नाथ केहि भाँति विस्तरहुगे ॥४॥

हे रघुवंशमणि! कभी तो उस कृपा को (मुझ पर) करोगे, कि जिस कृपा से व्याध, गजेन्द्र, ब्राह्मण (अजामेल) और दुष्ट मनुष्य (भील आदि) इस संसाररूपी समुद्र से तर गये। उन्हीं के समान मुझे समझ कर हे नाथ! कभी मेरा भी उद्धार करोगे॥१॥ मुझ मूर्ख ने बहुत सी योनियों में जन्म ले लेकर अनेक प्रकार के बड़े खोटे खोटे काम किये हैं (आशा है कि तुम) अपने हृदय में उन बुरे आचरणों को कुछ नहीं धरोगे और ग़रीबों का भला करना, किसी से हारना नहीं, सब प्राणियों की इच्छा जानना, सब काम करने की सामर्थ्य रखना, दासों का पालन करना और कोमल स्वभाव रखना इन सब अपने गुणों के अनुसार चलोगे (अर्थात् इन गुणों से मेरा भी उद्धार करोगे)॥२॥ मोह, मद, अभिमान और काम आदि दुष्टों की मण्डली को कुटुम्ब समेत जड़ से उखाड़ कर मेरे कठिन दुःख को दूर करोगे और योग, जप, यज्ञ और आत्मज्ञान से भी बहुत बड़ी और निर्मल अचल भक्ति मुझे देकर बहुत सुख से भरोगे (अर्थात् आत्मानन्द के सुख से परिपूर्ण रक्खोगे)॥ ३॥ जो तुलसीदास को, नीच जनों का शिरोमणि, सब साधनों से रहित, खोटा और मलिन मन का समझ कर अपने मन में डरोगे (कि ऐसे नीच पापी का मैं कैसे उद्धार करूँ दुनिया नाम धरेगी) तो हे नाथ! वेदों में प्रकट अपनी (पतितपावन, प्रणतपाल आदि) बाने की पंक्ति को और अपने निर्मल यश को तुम किस भाँति फैलाओगे (तुम्हारी बात में बिलकुल बट्टा आ जायगा)॥ ४॥

शब्दार्थ—मौलि = शिर।

[२१२]

राग केदारा।

रघुपति विपति दवन।
परम कृपालु प्रनतप्रतिपालक पतित पवन ॥१॥

कूर कुटिल कुलहीन दीन अतिमलीन जवन।
सुमिरत नाम राम पठए सब आपने भवन ॥२॥
गज पिंगला अजामिल से खल गनैधौं कवन।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी रवन ॥३॥

रामचन्द्रजी विपत्ति का नाश करनेवाले हैं। वे बड़े दयालु, भक्तों के पालनेवाले, और पापियों को पवित्र करनेवाले हैं ॥१॥ क्रूर (व्याध), खोटे (कोल किरात), नीच कुल (शवरी), ग़रीब (निषाद) और बड़े मलिन म्लेच्छों को भी नाम स्मरण करते ही रामचन्द्रजी ने अपने भवन (वैकुण्ठ) में भेज दिया ॥ २ ॥ हाथी, पिङ्गला (वेश्या) और अजामेल ऐसे ऐसे दुष्टों को कौन गिने। हे तुलसीदास! समर्थ जानकीजी के पति ने किस किसको मोक्ष नहीं दी (अर्थात् सबको मोक्ष दी फिर तुझे क्यों न देंगे) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पवन = पवित्रकारक। रवन (रमण) = पति।

[२१३]

हरि सम आपदाहरन।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह दुखसागर तरन ॥ १ ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो जों सरन।
दीन वचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनामधरन ॥ २ ॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ॥ ३ ॥
इहै जानि सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ॥ ४ ॥

भगवान् के बराबर विपत्ति को दूर करनेवाला, स्वभाव से कृपा करनेवाला और कठिन दुःखरूपी समुद्र से तारनेवाला कोई नहीं है ॥ १ ॥ जब हाथी अपने बल को देख कर और कमल पकड़ (अर्थात् सूँड़ से कमल को भेट कर हरि की) शरण में गया, तब सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले (भगवान् उसी

समय उसके) दीन वचन सुन कर और गरुड़ को भी छोड़ कर (पैदल) चल दिये ॥२॥ (जब दुःशासन द्रौपदी को नङ्गी करने लगा तब उसके) हे भगवान्! रक्षा करो रक्षा करो—ऐसा कहते ही तरह तरह के रङ्ग के कपड़े बढ़ने लग गये ॥३॥ इसी को समझ कर देवता, मनुष्य (ध्रुव आदि), मुनीश्वर और कवीश्वर सब भगवान् के चरणों की सेवा करते हैं। हे तुलसीदास! नृग (१) राजा के उद्धार करनेवाले भगवान् ने किसको अभय नहीं किया है (अर्थात् सबको ही किया है फिर तुझे क्यों न करेंगे) ॥४॥

[२१४]

राग कल्याण।

ऐसी कौन प्रभु की रीति।
विरुद हेत पुनीत परिहरि पाँवरने पर प्रीति ॥ १ ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥ २ ॥
काममोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्हि।
जगतपिता विरंचि जिन्ह के चरन की रज लीन्हि ॥ ३ ॥
नेम ते सिसुपाल दिन प्रति देतु गनि गनि गारि।
कियो लीन सो आप में हरि राजसभा मँझारि ॥ ४॥
व्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़मति मृगजानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥ ५ ॥
कौन तिन्ह की कहै जिन्ह के सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥ ६ ॥

प्रभु की यह क्या रीति है जो अपने यश के लिए पवित्र (जीवों) को छोड़ कर नीचों पर प्रीति रखते हैं (अर्थात् ऋषियों को छोड़ कर शवरी आदि नीचों से प्रीति करते हैं) ॥१॥ पूतना (२) कुचों में कालकूट अर्थात् ज़हर लगा कर उनको मारने

---

(१) राजा नृग ने एक गाय पुण्य करके धोखे से दूसरी बार फिर वही गाय पुण्य कर दी थी इस कारण उसने गिरगट की योनि पाई। भगवान् ने उसका उद्धार किया। पूरी कथा भागवत में है।

(२) पूतना राक्षसी थी। कंस ने उसे श्रीकृष्ण को मारने भेजा था। भगवान् ने उसे मार स्वर्ग भेज दिया। पूरी कथा भागवत में है।

गई थी सो दीनदयाल यादवों के राजा (कृष्णचन्द्रजी) ने उसे माता की सी गति दी ॥ २ ॥ काम से मतवाली (गोपियों) के ऊपर उन्होंने ऐसी अलोल कृपा की कि उन (गोपियों) के पैरों की धूल को संसार के पिता ब्रह्माजी ने (अपने माथे पर) लगा लिया ॥ ३ ॥ राजा शिशुपाल (१) नेम से हर दिन गिन गिन कर गालियाँ देता था, उस (शिशुपाल) को भगवान् ने राजाओं की सभा में अपने में मिला लिया ॥४॥ जिस मूर्ख-बुद्धि व्याध (२) ने बड़े ध्यान से मृग जान (भगवान् के) चरण में (तीर) मारा था, उसे अपनी बानि को पकड़ करके शरीर समेत निज लोक (वैकुण्ठ) को भेज दिया ॥ ५ ॥ फिर उनकी कौन कहे कि जिनके पुण्य और पाप दोनों हैं (अर्थात् जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों किये थे उन्हें श्रीकृष्णचन्द्र ने वैकुण्ठ दिया तो क्या अहसान किया। रामजी ने तो) जो प्रत्यक्ष पाप का रूप था उस तुलसीदास को भी अपनी शरण में रख लिया ॥ ६ ॥

बानि = आदत।

[२१५]

श्री रघुवीर की यह बानि।
नीचहूँ सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥ १ ॥
परम अधम निषाद पाँवर कौन ताकी कानि।
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम की पहिचानि ॥ २ ॥
गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि।
जनक ज्यों रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥३॥
प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुनखानि।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥४॥
रजनिचर अरु रिपु विभीषन सरन आयो जानि।

(१) शिशुपाल चन्देरी का राजा था। श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी के विवाह-समय इसके बड़े दांत खट्टे किये। फिर पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में जब इसने भगवान् को गालियाँ दीं तब उन्होंने सुदर्शन चक्र से इसका सिर काट धड़ से अलग कर दिया।

(२) जब यादवों का नाश हो चुका और भगवान् की वैकुण्ठ जाने की इच्छा हुई तब व्याध ने मृग के धोखे से इनके चरणों में बाण मार दिया था। यह पूरी कथा भागवत में है।

भरत ज्यों उठि ताहि भेटत देहदसा भुलानि ॥५॥
कौन सुभग सुसील वानर जिनहिं सुमिरत हानि।
किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ॥६॥
राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

(अब नीचों से प्रीति करने का कारण बताते हैं)

श्रीरामचन्द्रजी की यह टेव है कि वे मन में सुन्दर प्रीति को समझ कर नीच से भी प्रेम कर लेते हैं ॥१॥ (देख कि) निषाद बड़ा भारी पापी और नीच था उसकी क्या इज्ज़त थी। पर उसके प्रेम को पहचान कर (भगवान ने) उसे पुत्र के समान छाती से लगा लिया ॥ २ ॥ गिद्ध कौन सा दयावान् था जिसको विधाता ने हिंसा में सान कर बनाया था, पर रामचन्द्रजी ने पिता के समान उसे अपने हाथों से पानी दिया ॥ ३ ॥ शवरी स्वभाव ही से मैली, नीच जाति और सब औगुनों की खान थी। (भगवान् ने) उसके दिये हुए (बेर) फल बड़े स्वाद से बड़ाई कर करके खाये ॥ ४ ॥ जाति का राक्षस और वैरी ऐसे विभीषण को अपने शरण में आया जान कर उससे भरत की तरह उठ कर ऐसे मिले कि शरीर की दशा भूल गये ॥५॥ बन्दर कौन से सीधे और सुन्दर स्वभाव के थे (वरन) उनका नाम लेने से हानि होती है, परन्तु उन सबको मित्र बनाया और अपने घर लाकर उनका (वस्त्र आभूषण से) आदर किया ॥६॥ रामचन्द्रजी सहज ही कृपा करनेवाले, कोमल और ग़रीबों के हितू हैं और नित्य दान देनेवाले हैं। सो हे कुटिल तुलसी! ऐसे प्रभु का भजन कपट करके मत करे ॥७॥

[२१६]

हरि तजि और भजिये काहि।
नाहिनै कोउ राम सों ममता प्रनत पर जाहि ॥१॥
कनककसिपु विरंचि को जनु करम मन अरु बात।
सुतहि दुखवत विधि न वरज्यो काल के घर जात ॥२॥
संभु सेवक जान जग बहु बार दिए दससीस।

करत रामविरोध सोउ सुपनेहुँ न हटक्यो ईस ॥३॥
और देवन्हि की कहौं कहा स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गये सभीत ॥४॥
को न सेवत देत संपति लोक हूँ यह रीति।
दास तुलसी दीन पर एक राम ही कें प्रीति ॥५॥

(अरे जीव) भगवान् को छोड़ कर और किसका भजन करना चाहिए। रामचन्द्रजी के बराबर ऐसा कोई भी नहीं है कि जिसकी दासों पर ममता हो ॥१॥ (देख) हिरण्यकशिपु (१) कर्म, मन और वचन से ब्रह्माजी का भक्त था, पर बेटे को दुःख देने से उसे ब्रह्माजी ने मने नहीं किया (तमाशा देखते रहे पर मन में जानते थे) कि वह काल के घर में जा रहा है (अर्थात् मरे बिना नहीं रहेगा। फिर दास पर ममता कहाँ रही) ॥२॥ सब जगत् (रावण को शिवजी का सेवक जानता था और उसने भी अपने दश शिर (काट काट कर अनेक बार शिवजी की) भेंट किये थे। वह रामचन्द्रजी से वैर करता रहा; उसे शिवजी ने सुपने में भी मने नहीं किया (देखते देखते कुटुम्बसहित नष्ट करा दिया। यह दास पर कैसी ममता) ॥३॥ और (इन्द्र आदि) देवताओं की क्या कहूँ सब अपने स्वारथ के ही मित्र हैं (पूजा भेंट ले लेकर फल देते हैं और जो सेवा में चूक हो जाय तो सिड़ी कर दें) पर कभी किसी ने किसी भयभीत शरणागत को नहीं रक्खा ॥४॥ सेवा करने से कौन धन नहीं देता है (अर्थात् सेवा करने से सब धनी धन दे देते हैं इसमें क्या बड़ाई हुई) यह संसार की रीति ही है, परन्तु हे तुलसीदास! ग़रीब पर तो एक रामचन्द्रजी की ही प्रीति है ॥५॥

[२१७]

जोपै दूसरो कोउ होइ।
तो हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥१॥
काहि ममता दीन पर काको पतितपावन नामु।

---

(१) हिरण्यकशिपु एक दैत्य था वह भगवान् से बड़ा द्वेष रखता था। अपने पुत्र प्रह्लाद को राम, नाम कहने पर बड़ा दुःख देता था। भगवान् ने प्रह्लाद भक्त की रक्षा के लिए नृसिंह अवतार लेकर उसे मार भूमि का भार दूर किया—यह कथा भागवत में है।

पापमूल अजामिलहिँ कें दियो अपनो धामु ॥२॥
रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।
सोकसरि बूड़त करीसहिँ दई काहुँ न टेक ॥३॥
बिपुल भूपति सदसि महुँ नर नारि कह्यौ प्रभु पाहिँ ।
सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हें ताहि ॥४॥
एक मुख क्यों कहों करुनासिंधु के गुनगाथ ।
भगतहित धरि देह कहा न कियो कोसलनाथ ॥५॥
आप से कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात ।
दास तुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ॥६॥

हे राम ! जो दूसरा कोई हो तो हे प्रभो ! मैं बार बार रोकर अपना दुःख तुम्हें क्यों सुनाऊँ ॥१॥ ग़रीबों पर किसकी ममता है और किसका नाम पतित-पावन है। पाप की जड़ अजामिल को अपना धाम किसने दिया (अर्थात् उसे वैकुण्ठ किसने भेजा) ॥२॥ शिव, ब्रह्मा और इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे, पर शोक-रूपी नदी में डूबते हुए हाथियों के राजा को किसी ने भी सहारा नहीं दिया ॥३॥ जब बड़े बड़े राजाओं की सभा में अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ने कहा कि हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो—(उस समय) वहाँ सभी समर्थ थे पर किसी ने उसे वस्त्र नहीं दिया ॥४॥ हे करुणासिंधु ! एक मुँह से तुम्हारे (बहुत से) गुणों की कथा कैसे कहूँ। भक्तों के भले के लिए अवतार लेकर हे राम ! तुमने क्या क्या नहीं किया (अर्थात् नीच, ऊँच सबको पार कर दिया) ॥ ५ ॥ जो तुम मुझसे बहुत घिनाते हो (कि यह हमारे योग्य नहीं है) तो मुझे तुम्हारे समान जो हो उसे सौंप दो (नहीं तो) तुलसीदास और भाँति तुम्हारे चरण छोड़ कर क्यों जायगा ॥ ६ ॥

संधिविभाग—करीस (करि + ईस) हाथियों का राजा।

शब्दार्थ—विपुल = बहुत । सदसि = सभा । नर = अर्जुन । गाथ = कथा ।

[२१८]

कबहुँ देखाइहो हरि चरन ।
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगलकरन ॥१॥

सरद भव सुंदर तरुनतर अरुनवारिज बरन ।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥२॥
गंग जनक अनंगअरि-प्रिय कपट्ट बटु बलि-छरन ।
विप्रतिय नृग बधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥३॥
सिद्ध-सुर-मुनि-वृंद-वंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सुकृत उर आनत जिन्हहिं जन होत तारनतरन ॥४॥
कृपासिंधु सुजान रघुवर प्रनत आरति हरन ।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥५॥

हे भगवन्! मुझे कभी अपने (उन) चरणों के दर्शन भी कराओगे कि जो कलियुग के सब दुःखों का नाश करनेवाले और सब मङ्गलों के करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जिन (चरणों) का शरद्ऋतु में उत्पन्न हुए, सुन्दर और तुरन्त के खिले लाल कमलों का सा रङ्ग है, जिनको लक्ष्मीजी ने सुन्दर हाथों की हथेलियों से दाबा है और जो उपमा-रहित शोभा को धारण किये हैं ॥ २ ॥ जो (चरण) गङ्गाजी के पिता हैं (अर्थात् गङ्गाजी जिनसे उत्पन्न हुई हैं), महादेवजी के प्यारे हैं और जिन्हों ने छल से ब्राह्मण का रूप धर कर राजा बलि को ठगा है और जो ब्राह्मण की स्त्री (अहिल्या), राजा नृग और निषाद के दुःख और कठिन शाप का नाश करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सिद्ध, देवता और मुनीश्वरों के समूह जिनको नमस्कार करते हैं और जो सबको सुख और शरण देनेवाले हैं और एक बार भी जिनको हृदय में लाने से (अर्थात् जिनका ध्यान धरने से भक्त)- जन तरन-तारन (अर्थात् खुद तरते हैं और पापियों को तारनेवाले) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ हे दया के समुद्र, बड़े चतुर, रघुकुल में श्रेष्ठ और अपने भक्तों की विपत्ति को दूर करनेवाले रामजी! तुलसीदास तुम्हारे (उन चरणों के) दर्शन की आशारूपी प्यास से मरा चाहता है (सो अब तुम दर्शन कराओ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तरुनतर = अधिक तरुन। लच्छि = लक्ष्मी। अनंगअरि = कामदेव के शत्रु, शिव। बटु = ब्राह्मण। छरन = (छलन) छलना।

[२१६]

द्वारे हौं भोरही को आजु ।
रटत ररिहा आरि और न कौरही को काजु ॥१॥

कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाजु ।
नीच जन मन ऊँच जैसे कोढ़ में की खाजु ॥२॥
हहरि हिय में सदय बूझ्यौ जाइ साधुसमाजु ।
मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराजु ॥३॥
दीनता दारिद दलै को कृपावारिधि बाजु ।
दानि दसरथ राइ के तू बानइत सिरताजु ॥४॥
जनम को भूखो गरीब हाँ तू गरीबनेवाजु ।
पेट भरि तुलसी जेंवाइय भगति सुधा सुनाजु ॥५॥

हे भगवन्! मैं आज सवेरे से ही तुम्हारे द्वार पर हाहा खाता हूँ। (राजाओं के द्वार पर भिखारी गाली सुनते हैं, धक्का खाते हैं, घसीटे जाते हैं, पर जिस चीज़ के लिए अड़ जाते हैं उसके लिए बिना माँगना नहीं छोड़ते) सो यह झगड़ालू भी अड़ करके (धन, धाम, भूषण, वसन आदि) और कुछ नहीं (चाहता) केवल तुम्हारे (एक जूँठे) टुकड़े से ही काम रखता है (अर्थात् थोड़ी सी भक्ति चाहता है) ॥ १॥ (जो कहो कि टुकड़ा क्यों माँगता है कुछ व्यापार कर जो पेट भर रोटी मिले तहाँ कहते हैं कि) यह कलि बड़ा भयङ्कर है इसमें (धर्म का) कठिन अकाल पड़ रहा है और सब रीति और सब सामान बुरे हैं (अर्थात् समय पर धर्मरूपी पानी न बरसने से शुद्ध भक्तिरूपी खेतियाँ सूखी जाती हैं और ज्ञानरूपी धान न होने से विषय-वासनारूपी कंगाली फैल गई सो जीव का इसमें कैसे निर्वाह हो)। मनुष्य तो नीच होते हैं और उनके मन ऊँचे होते हैं (सो ऐसे हैं कि) जैसे कोढ़ में खुजली चलती है (अर्थात् जैसे कोढ़ी के शरीर में खुजली चलती है और वह उसे खुजलाता है उस समय वह कोढ़ रोग का दर्द भूल खुजली के आनन्द में आकर अपने को सुखी मान लेता है पर पीछे बड़ी पीड़ा होती है वैसे ही जीव संसार के आवागमन के कोढ़रूपी दुःख को तो भूल जाता है और विषयरूपी खुजली के आनन्द को पाकर महा दुःख भोगता है) ॥ २ ॥ मैंने हृदय में डर कर दयावान् साधुओं के समाज से जाकर पूछा कि कहो मुझ सरीखे को भी कहीं कोई (शरण देनेवाला) है। उन्होंने कहा कि (और तो कोई नहीं एक) कोशलदेश के राजा (रामचन्द्रजी) हैं ॥ ३ ॥ वे ग़रीबी और दरिद्र (रूपी पक्षियों) का नाश करने को

बाज़रूप हैं (जो कहो कि बाज़ तो निर्दई होता है सो नहीं) वे दया के समुद्र हैं (अर्थात् जीव-मात्र की रक्षा करते हैं)। हे दशरथ राजा के पुत्र (रामचन्द्रजी), तुम दाताओं का बाना रखनेवालों के शिरोमणि हो (मैं यह सुनकर आया हूँ) ॥ ३ ॥ सो मैं तो जन्म का भूखा हूँ और तुम ग़रीबनिवाज हो, सो तुलसीदास को पेट भर कर भक्ति-रूपी अमृत का पकवान खिलाओ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ररिहा = झगड़ालू । आरि = अड़ कर । बानइत = बाना । सुधा = अमृत ।

[२२०]

करिय सँभार कोसलराय ।
और ठौर न और गति अवलंब नाम बिहाय ॥१॥
बूझि आपनि आपनो हित, आपु बापु न माय ।
राम राउरनाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय ॥२॥
राम राज न चले मानस मलिन के छल छाय ।
कोपि तेहि कलिकाल कायर मुयहि घालत घाय ॥३॥
लेत केहरि सों बयर ज्यों भेक हनि गोमाय ।
त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥४॥
अकनि जाके कपट करतब अमित अनय अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परिच्छितहि पछिताय ॥५॥
कृपासिंधु बिलोकिअहि जन मन की साँसति नसाय ।
सरन आयो देव दीन दयाल देखन पाय ॥६॥
निकट बोलि न बरजिये बलिजाउँ हनिय न हाय ।
देखिहैं हनुमानु गोमुख नाहरनि के न्याय ॥७॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नैन, रोष कषाय ।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥८॥
बिनय सुनि बिहँसे अनुज सो बचन के कहि भाय ।

भलि कही कह्यो लषन हूँ हँसि बने सकल बनाय ॥९॥
दई दीनहि दादि सो सुनि सुजन सदन बधाय।
मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप निकाय ॥१०॥
पेखि प्रीति प्रतीत जन पर अंगु अनघ अमाय।
दासतुलसी कहत मुनिगन जयति जय उर गाय ॥११॥

हे कोशलराय! (रामचन्द्रजी!) मेरी सँभाल करो। तुम्हारे नाम को छोड़ कर मुझे न तो और जगह है, न दूसरे की शरण है और न सहारा है ॥ १ ॥ अपनी समझ से मेरा भला करनेवाले जैसे तुम हो वैसे माता-पिता भी नहीं हैं। हे रामचन्द्रजी! तुम्हारा नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक है ॥ २ ॥ हे राम! तुम्हारे राज में मैले मनवाले (कलियुग) के छल की छाया अर्थात् माया नहीं चलती पर वह कायर कलिकाल कोप करके मुझ मरे हुए पर चोटें मारता है ॥ ३ ॥ जैसे गीदड़ मेढ़क को मार कर सिंह के वैर का बदला लेता है, वैसे ही मुझे रामचन्द्रजी का ग़ुलाम जान कर भी नीच दुःख दे रहा है ॥ ४ ॥ इसके छल के अनगिनती करतब और अनीति की चालें सुनकर, सुख से वैकुण्ठ में बस कर भी राजा परीक्षित (१) को पछतावा होता है ॥ ५ ॥ हे कृपासिन्धु! इस दास पर कृपादृष्टि करो कि जिससे इस जन के मन की पीड़ा दूर हो। हे दीनदयाल! मैं ग़रीब तुम्हारे चरणों के दर्शन करने के लिए शरण आया हूँ ॥ ६ ॥ हे नाथ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ जो तुम कलि को पास बुलाकर मने न करना चाहो या उसकी हाय के मारे (ख़ुद) न मारा चाहो (कि यह हाय हाय कर रोवेगा, तो तुम हनूमान्‌जी को इशारा कर दो) जब हनूमान्‌जी इस तरह उसकी ओर देखेंगे जैसे गाय-बैल की तरफ़ व्याघ्र देखता है ॥ ७ ॥ और जब उनका लाल लाल मुँह और बाँकी भौंहें हो जायँगी और वे अपनी पीली पीली आँखों को क्रोध के मारे लाल कर लेंगे, तब पवन के पुत्र वीर (हनूमान्) का स्मरण करके चंचल चित्तवाले (कलि) का चाव घट जायगा (अर्थात् वह अपनी करनी भूल जायगा) ॥ ८ ॥ इस विनती को सुन कर (राम-

(१) पद्मपुराण में यह कथा है कि राजा परीक्षित एक बार दिग्विजय करने को जाते थे उस समय उन्होंने कलिकाल को प्रत्यक्ष देखा और उसकी अनीति देखकर उसे मारना चाहा पर कलिकाल ने उसकी शरण ली। इसलिए उसे मारा तो नहीं पर उससे यह कह दिया कि हमारे राज्य में तू अपनी प्रभुता मत करियो पर वह न माना सो अब उसकी उस कठिन कुचाल को समझ कर राजा सोच करते हैं कि ऐसे दुष्ट को क्यों छोड़ा।

चन्द्रजी) हँसे और छोटे भाई (लक्ष्मणजी) को इन बातों का आशय समझाया (कि तुलसीदास ने कैसी बात बनाई है) फिर लक्ष्मणजी ने भी हँस कर कहा (कि तुलसीदास ने अच्छा तो कहा) अब सब बानक बन जायगा॥ ६॥ भगवान् ने ग़रीब को दाद दी (अर्थात् उसका इन्साफ़ किया) यह सुनकर सज्जनों के घरों में मङ्गलाचार होने लगे और कष्ट, सोच और नीच (कलियुग) का छल और पाप के समूह मिट गये॥ ६॥ और निर्गुण, पवित्र और निष्कपट (ऐसे रामचन्द्रजी) की दास पर प्रीति और विश्वास देख कर तुलसीदास कहता है कि मुनीश्वरों के समूह जय जय कह कर हृदय में (भगवान् का) गुणानुवाद करने लगे॥ ११॥

शब्दार्थ— मानसमलिन = कलि। घाय = घाव, चोट। भेक = मेढ़क। गोमाय = गीदड़। कुदाय = दुःख। अकनि (आकर्ण्य) = सुनकर। अनय = अनीति के। अपाय = चाल। दादि = मदद, इन्साफ़। कपाय = लाल। भाय = भाव, आशय। निकाय = समूह।

[२२१]

नाथ कृपहिको पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होय धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति॥१॥
सुगुनज्ञान विराग भगति सुसाधननि की पाँति।
भजे विकल विलोकि कलि अघ औगुननि की थाति॥२॥
अति अनीति कुरीति भइँ भुइँ तरनिहूँ ते ताति।
जाउँ कहँ बलिजाउँ कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति॥३॥
आप सहित न आपनो कोउ बाप कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिये तुलसी सालि सफल सुखाति॥ ४॥

हे नाथ! मैं ग़रीब रात दिन तुम्हारी कृपा की राह देखता रहता हूँ पर हे दीन-दयालु! (वह कृपा) किस समय होगी यह नहीं जानता॥ १॥ (क्षमा, दया, शांति, संतोष आदि) सुन्दर गुण, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और सुन्दर साधनों की पाँति ये तो कलियुग को देखते ही व्याकुल होकर भग गये और (पर-स्त्री-गमन आदि) पाप और (वैर-विरोध आदि) अवगुणों की स्थिरता हो गई (अर्थात् वे रह गये)॥ २॥ बड़ी अनीति और बुरी रीति फैल गई कि जिससे धरती तरनि

नाम सूर्य्य से भी तत्ती हो गई। तुम्हारी बलैया लूँ मैं कहाँ जाऊँ, कहीं जगह नहीं है और मेरी मति घबरा रही है ॥ ३ ॥ और हे बाप! अपनी देह समेत अपना कोई नहीं है और जो हैं सो कठोर और बुरी भाँति के हैं (भाव—अपने मतलब के साथी हैं) इसलिए तुलसीदासरूपी धान की फली फलाई खेती सूखी जाती है उसे हे श्याम मेघ के समान शरीरवाले! तुम मेघरूप होकर सींचो ॥ ४ ॥

[२२२]

बलि जाउँ और कासों कहों।
सदगुनसिंधु स्वामि सेवक हित कहुँ न कृपानिधि सों लहों ॥१॥
जहँ जहँ लोभ लोल लालचवस निजहित चित चाहनि चहों।
तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु कोटर गहों ॥२॥
काल सुभाउ करम विचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहों।
मोको सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहों ॥३॥
उचित अनाथु होइ दुखभाजनु भयो नाथ किंकरु न हों।
अब राउरो कहाय न बूझिये सरनपाल साँसति सहों ॥४॥
महाराज राजीव विलोचन मगन पाप संताप हों।
तुलसी प्रभु जब जेहि तेहि बिधि राम निबाहे निरबहों ॥५॥

मैं तुम्हारी बलि जाता हूँ; (अपने दुख को) और किससे कहूँ। सुन्दर गुणों का समुद्र और दासों पर हित करनेवाला ऐसा स्वामी कृपानिधान की बराबर कहीं भी नहीं पाता ॥ १ ॥ जहाँ जहाँ लोभ और लालच के वश अपने चंचल मन में भले की कामना करता हूँ, वहाँ वहाँ से ही जैसे उल्लू सूरज की तरफ़ देखते ही भटक कर बुरे वृक्ष के कोटर में घुस जाता है उसी भाँति मैं भी (जीविका के लोभ से धनवानों के पास जाता हूँ और उनका बुरा स्वभाव देख, अपनी कुटी में आ घुसता हूँ ॥ २ ॥ काल, स्वभाव और कर्म (जो जगत् के कारण हैं) उनको अनोखे फल का देनेवाला सुन कर अपने सिर को धुन धुन कर रह जाता हूँ और मुझे तो ये सब सदा एक से हैं (अर्थात् कभी सुखदाई न हुए) इसलिए दुसह और कठिन जलन से जलता रहता हूँ ॥ ३ ॥ सो हे नाथ! (जब तक) मैं तुम्हारा दास नहीं हुआ था

और अनाथ था (तब तक तो) दुख का पात्र हुआ सो ठीक था, पर अब तुम्हारा कहाता हूँ और तुम शरणागतों के पालनेवाले होकर मुझे नहीं पूछते और मैं दुःख सह रहा हूँ (ऐसा नहीं चाहिए) ॥ ४ ॥ हे महाराज कमलनयन रामजी ! मैं पाप और संताप में डूब रहा हूँ। हे राम ! तुम समर्थ हो; तुलसीदास तो जब और जिस विधि से तुम निभाओगे उस विधि से ही निभेगा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तरनि = सूर्य्य । राजीव = कमल । विलोचन = नेत्र ।

[२२३]

आपनो कबहूँ करि जानिहो ।
राम गरीबनिवाज राजमनि बिरद लाज उर आनिहो ॥१॥
सीलसिंधु सुंदर सब लायक समरथ सद्गुन खानि हो ।
पाल्यो है पालत पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहो ॥२॥
वेद पुरान कहत जग जानत दीनदयालु दीन दानि हो ।
कहि आवत बलि जाउँ मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हो ॥३॥
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हो ।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत भय भानिहो ॥४॥

हे राम ! कभी मुझे तुम अपना करके भी जानोगे । हे राम ! तुम ग़रीबनिवाज और राजाओं के शिरोमणि हो । अपने बाने की लाज (कभी तो) हृदय में लाओगे ॥ १ ॥ तुम शीलता के समुद्र, सुन्दर, सब लायक़, समर्थ और सब अच्छे गुणों की खान हो । हे प्रभो ! (इस दास को) पहले तुमने पाला है, अब पाल रहे हो, आगे पालोगे और भक्त के प्रेम को पहिचानोगे ॥ २ ॥ वेद और पुराण कहते हैं और संसार जानता है कि तुम ग़रीबों पर दया करनेवाले और ग़रीबों को दान देनेवाले हो । मैं तुम्हारी बलि जाता हूँ कहने में तो आता ही है कि मेरी बिरियाँ तुम मानों अपनी टेव को भूल गये हो ॥ ३ ॥ (कदाचित्) तुम दुखी, दीन और अनाथों के हितू होने पर भी लोक की कानि (भय) मानते हो (अर्थात् कोई यह न कहे कि मुझसे नीच का कैसे ग्रहण किया) पर तुलसीदास का अन्त में भला ही होगा क्योंकि तुम शरणागत के भय का भानि कहिए दूर करनेवाले हो ॥ ४ ॥

[२२४]

रघुवरही कबहुँ मन लागिहै।
कुपथ कुचालि कुमति कुमनोरथ कुटिल कपटु कब त्यागिहै ॥१॥
जानत गरल अमिय विमोहवस अमिय गनत करि आगिहै।
उलटी रीति प्रीति अपनी की तजि प्रभुपद अनुरागिहै ॥२॥
आखरु अरथ मंजु मृदु मोदक राम प्रेमु पगि पागिहै।
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों, पाइ है जो मुहुँ माँगिहै ॥३॥
तू यहि विधि सुख सयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागिहै।
रामप्रसाद दासतुलसी उर रामभगति जोगु जागिहै ॥४॥

हे मन ! तू कभी रामचन्द्रजी से भी लगेगा और बुरा मार्ग, बुरी चाल, बुरी बुद्धि, बुरी इच्छा और छल इनको हे कुटिल ! तू कब छोड़ेगा ॥१॥ तू अधिक अज्ञान के वश जहर को अमृत समझता है और अमृत को आग के बराबर गिनता है (अर्थात् विषय में पड़ कर रामभक्ति से मुँह छिपाता है)। इस उलटी रीति को और (विषय से) अपनी प्रीति को छोड़ कर रामचन्द्रजी के चरणों से (कब) प्रीति करेगा ॥ २ ॥ (भगवान् के यश के) अक्षर और उनके अर्थ सोई हुए मंजु नाम सुन्दर नरम नरम लड्डू उन्हें रामचन्द्रजी के प्रेमरूपी चाशनी में (कब) पागेगा (अर्थात् प्रीति समेत भगवान् के यश को कब गावेगा। जो कहो कि इससे क्या होगा तहाँ कहते हैं कि) ऐसे गुणों को गाकर और स्वामी को रिझा कर जो कुछ मुहँ से माँगेगा सोई पावेगा ॥ ३ ॥ और तू इस साधन से सुख की सेज पर सोवेगा और तेरे मन की भारी जलन भाग जायगी और रामचन्द्रजी के प्रसाद से हे तुलसीदास ! तेरे हृदय में रामचन्द्रजी की भक्तिरूपी योग जगेगा (अर्थात् देहाभिमान का नाश होकर तुझे रामचन्द्रजी की भक्ति मिलेगी) ॥ ४ ॥

[२२५]

भरोसो औरु आइहै उर ताके।
कै कहुं लहै जो रामहिं सो सहबु कै अपने बल जाके ॥१॥

कै कलि-कालु करालु न सूझत मोह मार-मद-छाके।
कै सुनि स्वामि सुभाउ रह्यो न चित जो हित सब अँग थाके ॥२॥
हौं जानतु भलीभाँति अपनपो प्रभु जू सों सुन्यो न साके।
उपल भील खग मृग रजनीचर भले भये करतब काके ॥३॥
मोको भयो रामनामु सुरतरु सो प्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोचु राज ज्यों बालक माय बबा के ॥४॥

उसके हृदय में और देवता का भरोसा आवेगा कि जिसे या तो कहीं रामचन्द्रजी के समान स्वामी मिल जाय या जिसको (साधन आदि का) अपना बल हो ॥ १ ॥ या जिसको मोह और कामरूपी मद में छक जाने से कठिन कलियुग का समय नहीं सूझता हो या जिसके चित्त में सब अंग कहिए साधनों से हारे हुओं से भी हित करनेवाले स्वामी का (ग़रीबनिवाज) स्वभाव सुनकर भी उसकी याद न रही हो ॥२॥ मैं तो अपनी सामर्थ्य को अच्छी भाँति जानता हूँ (कि मुझसे जप, तप, व्रतादि नहीं हो सकता) और ऐसा दूसरे स्वामी का (पतितपावन आदि) साका (अर्थात् बहादुरी का काम) भी नहीं सुना है (फिर किसका भरोसा करूँ। देख कि) पाषाण (अहिल्या), भील (निषाद), खग (गीध), मृग (मारीच), रजनीचर (विभीषण) इनमें से किसके काम अच्छे हुए थे (अर्थात् किसी के नहीं हुए फिर भी सबको भगवान् ने तारा) ॥ ३ ॥ मेरे लिए तो राम-नाम कल्पवृक्ष हो गया सो वह भी कृपालु रामजी की कृपा के प्रसाद से हुआ है। हे तुलसी ! तू उससे ऐसा सुखी और बेखटके है कि जैसा बालक मा-बाप के राज्य में होता है ॥ ४ ॥

[२२६]

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ॥१॥
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो ॥२॥
चाटत रहौं स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

सो हों सुमिरत नाम सुधारस पेषत परुसि धरो ॥३॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो ॥४॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर हों सिसु अरनि अरो ॥५॥
संकर साखि जो राखि कहों कछु तौ जरि जीभ गरो।
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहिं समुझि परो ॥६॥

जिसको दूसरे का भरोसा हो वह करे मुझे तो कलियुग में रामचन्द्रजी का नाम कल्पवृक्ष है। वह कल्याणरूपी फलों से फला है (अर्थात् उसी से सब कल्याण मिल सकते हैं) ॥ १ ॥ कर्म, उपासना, ज्ञान ये तीनों वेद के मत से हैं (अर्थात् इनका करना वेद में लिखा है) सो सब भाँति से खरा है (खोटा नहीं)! परन्तु मुझे तो सावन के अंधे की तरह हरा ही हरा रंग दीखता है (अर्थात् जैसे जो सावन के महीने में हरी हरी घास देखते देखते अंधा हो जाता है उसे और महीनों में भी हरा ही हरा सूझता है ऐसे ही मेरा सब काम तो रामजी से हुआ है। मुझे कर्म, उपासना और ज्ञान से क्या मतलब। क़ायदे की बात है कि जिसका काम जिससे होगा उसे वही सूझेगा) ॥ २ ॥ पहले मैं कुत्ते की तरह (जूठी) पत्तलों को चाटता रहा पर कभी मेरा पेट नहीं भरा (अर्थात् पहले मैंने तरह तरह के साधन किये परन्तु मेरी कामना कभी पूरी नहीं हुई) सो (अब) मैं रामजी का नाम स्मरण करने से अमृत रस का परोसा धरा देखता हूँ (अर्थात् अब सब कामनाओं से पेट भर रहा है) ॥ ३ ॥ यह (राम-नाम) स्वारथ और परमारथ दोनों के लिए है। इसमें "हाथी या मनुष्य" की सी (झूठ सच्च बात) नहीं है (अर्थात् मैं युधिष्ठिर की सी झूठ मिली सत्य नहीं कहता कि (१) हाथी मरा या मनुष्य अर्थात् अश्वत्थामा। क्योंकि राम-नाम के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण) सुना जाता है कि समुद्र में पत्थरों

(१) जब कौरवों की ओर से द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे और अर्जुन इनसे लड़ने के लिए राज़ी नहीं हुए तब कृष्णजी की सलाह से भीमसेन ने अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारा और युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के पास जाकर "अश्वत्थामा मारे गये" यों साफ़ साफ़ ख़ूब ज़ोर से कह कर धीरे से यों भी कह दिया कि हाथी मारा गया। पहली बात तो द्रोणाचार्य ने सुन ली, पर पिछली नहीं सुनी। यों युधिष्ठिर की बात पर विश्वास कर पुत्र शोक के कारण उनके छक्के छूट गये और इस बीच में धृष्टद्युम्न ने उनका शिर काट धड़ से अलग कर दिया—इसकी पूरी कथा महाभारत में है।

का पुल बना कर बन्दरों की फौज़ उतर गई ॥ ४ ॥ (जो कहो कि अन्य जप, तप आदि का क्यों निरादर करते हो उससे भी तो लोगों का भला होता है तहाँ कहते हैं कि) जहाँ जिसकी प्रीति और भरोसा है वहाँ ही उसका काम सिद्ध होता है। मेरे तो माँ और बाप ये दोनों (रा+म) अक्षर ही हैं और इन ही से मैं बालक की तरह हठ से अड़ करता हूँ (अर्थात् जैसे बालक माता पिता से किसी वस्तु को लेने को हठ करता है तो लेकर पीछा छोड़ता है तैसे मैं भी जो माँगता हूँ वह राम से लेकर रहता हूँ) ॥ ५ ॥ जो इसमें मैं कुछ (भेद) रख कर अर्थात् झूठ कहता होऊँ तो शिवजी की सौगन्ध है मेरी जीभ जल कर गिर जाय। तुलसीदास को तो अपना भला राम-नाम से ही जान पड़ा है ॥ ६ ॥

[२२७]

नाम राम रावरोई हितु मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों हौं भुज उठाइ कहौं टेरे ॥१॥
जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु विधिहु सृज्यो हौं अवडेरे।
मोहूँसे कोउ २ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरें ॥२॥
फिरौं ललात बिनु नाम उदरलगि दुखउ दुखित मोहिँ हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरें ॥३॥
साधत साधु लोक परलोकहि सुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलंब नाम ही को एक गाँठि कई फेरे ॥४॥

हे राम! तुम्हारा नाम ही मेरा तो हित करनेवाला है। (माता पिता आदि) स्वार्थ के और (साधु ब्राह्मण आदि) परमार्थ के साथियों से भुजा उठा कर पुकार कर कहता हूँ ॥ १ ॥ क्योंकि माता-पिता ने जन्म देकर और कर्महीन जान कर मुझे छोड़ दिया था और विधाता ने भी मुझे अभागा पैदा किया था, तो भी कोई कोई मुझे राम का दास कहते हैं वह किसके प्रसंग से कहते हैं (अर्थात् राम-नाम के प्रसंग से ही कहते हैं क्योंकि जिस राम के दास होने से शिवादिक देवता भी अपनी बड़ाई मानते हैं वह मुझसे अभागे को भी मिली) ॥ २ ॥ मैं बिना राम-नाम लिये पेट के लिए ललचाता फिरता था और मुझे देख कर दुःख भी दुखी होता था। अब उस नाम

के अनुग्रह से मैं बबूर और बहेड़े (के वृक्षों) से आम के फल लेता हूँ (अर्थात् जो दुष्ट मुझे नीच जान धक्का और गाली देते थे वे राम-नाम लेने से मेरी पूजा करते हैं) ॥ ३ ॥ सन्त लोग (शास्त्रों को) सुन कर और (बुद्धि से) विचार कर अनेक उपायों से इस लोक और परलोक का साधन करते हैं, पर तुलसीदास को तो राम-नाम का ही भरोसा है जैसे कि (किसी वस्तु में डोर के) कितने ही लपेटे लगाओ पर गाँठ तो एक ही है (उसी से सब लपेटे पक्के रहते हैं, ऐसे ही राम-नाम से सब साधन हो सकते हैं) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ— अबडेरे = (अ नहीं बडेरे कहिए बड़ा) भाग्यहीन। हेरे = देखकर। रसाल = आम।

[२२८]

प्रिय राम नाम ते जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो ॥१॥
सकुचत समुझि नाममहिमा मद लोभ मोह कोह कामो।
राम नाम जपि निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥२॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो।
जो सुनि सुमिरि भागभाजन भइ सुकृत सील भील भामो ॥३॥
वालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।
उलटे पलटे नाम महातम गुँजनि जितो ललामो ॥४॥
राम ते अधिक नाम करतब जेहि किए नगर गत गामो।
भयेउ बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥५॥

जिसको रामजी भी राम-नाम से अधिक प्यारे नहीं हैं (भाव—और साधनों की क्या गिनती है राम से भी अधिक जिसे उनका नाम प्यारा है) उसका कठिन कलियुग में भी आदि, मध्य और अंत में भला होगा ॥ १ ॥ नाम की महिमा (१) को समझ कर मद, लोभ, मोह, क्रोध और काम ये भी शरमाते हैं (अर्थात् अपना बल

(१) हनुमद्वाक्यम्—राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चला मतिः।
त्वया तु तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥
अर्थात् हे राम! तुमसे तुम्हारा नाम अधिक है यह मेरी निश्चल मति है क्योंकि तुमने तो अयोध्या को ही तारा और नाम ने तीनों भुवनों को तार दिया।

४०

नहीं कर सकते हैं) और राम-नाम के जप में जो लगे रहते हैं उन भक्तों पर कड़ी धूप भी छाया करती है (अर्थात् उनको दुखरूप संसार भी सुख देता है) ॥ २ ॥ नाम के प्रभाव से पत्थर में कमल पैदा हुआ ऐसा कोई कहे तो भी सच है क्योंकि उस (राम-नाम) को सुनने और जिसका स्मरण करने से भील की स्त्री (शवरी) भी शील, पुण्य और भाग्य की पात्र हो गई (अर्थात् सुशील, पुण्यात्मा और भाग्यवती हो गई) ॥ ३ ॥ वाल्मीकि तथा अजामेल इनके पास साधन सामान कुछ भी तो नहीं था, परन्तु उलटे पलटे नाम के माहात्म्य से घुँघचियों ने रत्नों को जीत लिया (अर्थात् वाल्मीकि उलटा नाम मरा मरा जपते जपते ऐसे महामुनि हुए कि सौ कोटि रामायण रच सके और अजामेल ने सीधा नाम नारायण कह पुत्र को पुकारा सो भी तर गया, मानों दुनिया में ये दोनों घुँघची के समान थे सो रत्नसदृश पूजने योग्य हो गये) ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी से नाम का कर्तब अधिक है कि जिसने गाँवों को शहर में बसा दिया (अर्थात् संसार के नीच जीव यवन आदि भी वैकुण्ठवासी हो गये) और जिस (नाम) को जप कर तुलसीदास सरीखा टेढ़ा भी डङ्का देकर सीधा हो गया ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—परिनाम = अन्त। कोह = गुस्सा। सरोरुह = कमल। भामो (भामा) = स्त्री। सामो = समान। गुँजनि = चिरमिटी। ललाम = लाल। गामो = गांव। वाम = टेढ़ा। दाहिना = सीधा।

[२२९]

गरैगी जीह जों कहों और को हों।
जानकि जीवन जनम जनम जग ज्यायो तिहारो कौर को हों ॥१॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हों।
तुम्हसों कपटु करि कलप कलप कृमि ह्वैहों नरक घोर को हों ॥२॥
कहा भयो जो मनु मिलि कलिकालहि कियो भुरूटु भोंर को हों।
तुलसिदास सीतल नित एहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हों ॥३॥

यदि मैं कहूँ कि मैं और का हूँ तो मेरी जीभ गल जायगी क्योंकि हे जानकी-जीवन ! इस संसार में जन्म जन्म में (अर्थात् जब जब जन्म लिया है तब तब) तुम्हारे ही टुकड़े का जिलाया हुआ हूँ ॥ १ ॥ मैं तीनों लोकों में और तीनों कालों में तुम्हारे जोड़ का हित करनेवाला नहीं देखता। तुमसे कपट करता होऊँ तो कल्प कल्प में मैं

घोर नरक का कीड़ा होऊँ ॥ २ ॥ क्या हुआ जो कलियुग ने मेरे मन को मैला कर उसे भँवर का भुरूट वा भौनुवा नाम कीड़ा कर दिया (अर्थात् मेरी कुछ हानि नहीं है जैसे काले रङ्ग का छोटा सा भुरट नाम भँवरा पानी के ऊपर ही फिरा करता है भीतर नहीं डूबता ऐसे ही मेरा मन संसार के विषयों में ऊपर से लगता है नाम के प्रताप से उनमें डूबता नहीं) तुलसीदास इस बल से नित्य शीतल रहता है कि मैं बड़े ठिकाने और जगह का हूँ (अर्थात् रघुनाथजी के दरबार का ग़ुलाम हूँ इसलिए भवसागर में डूब नहीं सकता) ॥ ३ ॥

[२३०]

अकारन को हितू और को है ।
विरद गरीबनिवाजु कौनु को भौंह जासु जन जोहै ॥१॥
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो विरंचि विरचो है ।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालहि सोहै ॥२॥
काको नामु अनख आलस कहें अघ औगुननि बिछोहै ।
को तुलसी सो कुसेवकु संग्रह्यो सठ सब दिन साँई द्रोहै ॥३॥

बिना कारण (रामजी के सिवा) दूसरे का हित करनेवाला कौन है । ग़रीब-निवाज बाना किसका है कि भक्तजन जिसकी भौंह तकते रहते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मा ने छोटा और बड़ा जिसे जैसा पैदा किया है सब अपना अपना मतलब चाहते हैं (अर्थात् सब स्वारथ के साथी हैं) । दुष्ट, भील, बन्दर, रीछ इनको पालना (सिवाय रामजी के) और किस दयावान् को शोभा देता है ॥ २ ॥ किसका नाम अनख (क्रोध) और आलकस से भी लेने पर पाप और औगुनों को दूर कर देता है और किसने तुलसी सरीखे बुरे सेवक को भी शरण में रक्खा है कि जो मूर्ख सब दिन अपने स्वामी से वैर रखता है ॥ ३ ॥

[२३१]

और मेरे को है काहि कहिहों ।
रंक राज ज्यों मन को मनोरथ केहि सुनाइ सुखु लहिहों ॥१॥
जमजातना जोनि संकट सब सहे हैं दुसह अरु सहिहों ।

मोको पै अगम सुगम तुम्हको प्रभु तौ फल चारि न चहिहौं ॥२॥
खेलिबे को खग मृग तरु किंकरु ह्वै रावरो रामहौं रहिहौं।
एहि नाते नरकहुँ सचु या बिनु परम पदहु दुख दहिहौं ॥३॥
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं।
दीजे वचनु कि हिये आनिये तुलसी को पनु निरवहिहौं ॥४॥

हे रामचन्द्रजी! मेरे दूसरा कौन है और मैं किससे कहूँगा। मैं हूँ तो गरीब पर मेरे मन का मनोरथ राजाओं का सा है (अर्थात् जप, तप, उपासना आदि तो पास नहीं और चाहता हूँ कि तुम्हारे सेवकों का शिरोमणि कहाऊँ) सो उस (मनोरथ) को किसे सुना कर सुख पाऊँगा ॥ १ ॥ यमयातना (अर्थात् नरक आदि के दुःख) और (गर्भवास के) कठिन क्लेश मैंने सब योनियों में सहे हैं और सहूँगा और हे प्रभो! (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों फल मुझे तो कठिन हैं पर तुम्हें सहज हैं (अर्थात् तुम दे सकते हो) तो भी मैं नहीं चाहूँगा ॥ २ ॥ (जो कहो कि कुछ तो चाहना हो ही गी, ऐसा क्या जो न हो; तहाँ कहते हैं कि) हे राम! मैं तो तुम्हारे खेलने का पक्षी, मृग, वृक्ष और सेवक होकर ही रहूँगा (अर्थात् जो पक्षियोनि में जन्म लूँ तो तुम्हारे खेलने का मोर, चकोर, शुक, सारिका आदि होऊँ; जो मृग कहिए पशु-योनि में जन्म पाऊँ तो तुम्हारा हाथी, घोड़ा, बैल और हरिण आदि होऊँ; जो वृक्षों में जन्म लूँ तो तुम्हारे अंगूर, अनार, शन्तरे आदि का वृक्ष होऊँ और मनुष्य-योनि में जन्म लूँ तो तुम्हारा भक्त होऊँ)। इस नाते से नरक में भी सचु (सुख) पाऊँगा और इसके बिना परमपद कहिए वैकुण्ठ में भी दुःख से जलूँगा (भाव यह है कि तुम्हारा किंकर होने से सब जगह आनन्द पाऊँगा ॥ ३ ॥ दास के जी में जितनी लालसा है उसे कहता हूँ कि तुम्हारी जूती पकड़े रहूँगा (अर्थात् जब कभी राज-दरबार में जाओगे तब बाहर जूतियों की रखवाली किया करूँगा) या तो वचन दे दो या इस बात को मन में ही रक्खो कि तुलसीदास का हठ पूरा करूँगा ॥ ४ ॥

[२३२]

दीनबंधु दूसरो कहँ पावों।

को तुम्ह बिनु पर पीर पाइहै केहि दीनता सुनावों ॥१॥
प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहि डोलावों।
इहै समुझि सुनि रहों मौन ह्वीं कहि भ्रमु कहा गँवावों ॥२॥
गोपद बुडिवे जोग करम करों बातनि जलधि थहावों।
अति लालची काम किंकरु मन मुख रावरो कहावों ॥३॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब अपनो सों कछुक जनावों।
सो कीजे जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावों ॥४॥

दूसरा दीनबन्धु कहाँ पाऊँगा। तुम्हारे बिना दूसरा कौन पराये दुःख को समझेगा। मैं किसे अपनी ग़रीबी सुनाऊँ ॥१॥ जहाँ जहाँ अपने मन को डुलाता हूँ वहाँ यही देखता हूँ कि जो समर्थ हैं उनके मन में दया नहीं है और जो कृपालु हैं (अर्थात् जिनके मन में दया है) वे कुछ लायक़ नहीं हैं। सो यह समझ कर और सुन कर चुप रह जाता हूँ क्योंकि कह कर भी अपना भरम क्यों खोऊँ ॥२॥ गऊ के खुर में डूबने लायक़ बुरे बुरे तो कर्म करता हूँ (कि शरम के मारे चिल्लू भर पानी में डूब मरूँ) और बातों से समुद्र की थाह लेता हूँ (अर्थात् बड़ी लम्बी चौड़ी वेदान्त की बातें मारता हूँ)। मेरा मन तो बड़ा लोभी और काम का ग़ुलाम है (अर्थात् परधन-हरन और विषय में ही लगा रहता है और मुँह से आपका (दास) कहाता हूँ ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! तुलसी के मन की तो तुम (बुरी भली) सब जानते ही हो तो भी मैं कुछ अपनी बात जतलाता हूँ कि वही करो जिससे मैं कपट छोड़ कर (अर्थात् झूठी संसारी विषय-वासना को छोड़ कर शुद्ध हृदय से) तुम्हारे द्वार पर पड़ा हुआ तुम्हारे गुण गाया करूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भ्रम (भरम) = भेद।

[२३३]

मनोरथ मन को एकै भाँति।
चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करम भूमि कलि जनमु कुसंघटु मति विमोह मद माति।

करत कुजोग कोटि क्यों पैयति परमारथ पथ साँति ॥२॥
सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजितांति।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरुकोसो ज्यों दरपन मुखकाँति ॥३॥

मन का मनोरथ भी एक (अनोखी) भाँति का है। मुनियों के मन का भी कठिन (अर्थात् जहाँ मुनियों के मन भी नहीं पहुँच सकते) ऐसे पुण्य के फल अर्थात् मुक्ति) को तो चाहता है और पाप करने से मनसा पूरी नहीं होती (फिर मुक्ति की क्या आशा है) ॥ १ ॥ कर्मभूमि होने पर भी (अर्थात् ऐसी भूमि कि जिसमें किया हुआ वृथा न जाय) कलियुग में जन्म, बुरी संगति, बुद्धि का महा अज्ञानरूपी मद में मतवाला होना, और फिर करोड़ों बुरे बुरे काम करना इनसे परमारथ पद और शान्ति कैसे मिल सकती है ॥ २ ॥ साधु और गुरु की सेवा करने से, वेद और पुराण के सुनने से वह ऐसी समझ पड़ती है कि जैसी (कहावत है कि) ताँत बाजी और राग पहचाना (अर्थात् जैसे सारङ्गी बजी और सुननेवालों ने जान लिया कि यह राग गावे। वैसेही गुरु की सेवा की और पुराण सुना कि परमपद और शान्ति का मिलना निश्चय हो गया)। हे तुलसीदास! प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव कल्पवृक्ष तो है (अर्थात् जो माँगो सो पाओ) पर ऐसा है जैसे दर्पण में मुँह की शोभा (अर्थात् दर्पण में टेढ़ा मुँह कर देखो तो टेढ़ा दीखता है सीधा कर देखो तो सीधा दीखता है ऐसे ही अच्छे बुरे कर्मों का भी फल मिलता है अच्छे कर्म करो अच्छा फल मिलेगा बुरे करोगे बुरा फल मिलेगा) ॥ ३ ॥

[२३४]

जनमु गयो वादिहि वर बीति।
परमारथ पाले न पर्यो कछु अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥
खेलत खात लड़कपन गो चलि जोवन जुवति लियो जीति।
रोग विजोग सोक स्रम संकुल बड़ी वय वृथहि अतीति ॥२॥
राग रोष इरषा विमोह वस रुची न साधु समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुवर के भइ न रामपद प्रीति ॥३॥

हृदय दहत पछिताय अनल अब सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु ते होइ सो कीजै समुझि बिरुद की रीति ॥४॥

सुन्दर जन्म वृथा ही बीत गया क्योंकि परमारथ तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा और हर दिन अधिक अधिक अनीति होती गई ॥ १ ॥ खेलते खाते लड़कपन चला गया और जवान स्त्री ने यौवन जीत लिया और रोग, (पुत्र, कलत्रादि के) वियोग का शोक तथा श्रम इनमें बुढ़ापा वृथा बीत गया ॥ २ ॥ राग, रोष, ईर्ष्या और महा अज्ञान इनके वश सन्तों की सभा अच्छी नहीं लगी। रामचन्द्रजी के गुणों के समूहों को न (अपने मुँह से) कहा और न सुना और न राम के चरणों में प्रीति हुई ॥ ३ ॥ अब संसार का कठिन भय सुन कर पछतावारूपी अग्नि में छाती जलती है। सो तुलसी के लिए अपने बाने की रीति को समझ कर जो कुछ प्रभु से हो सके सो करो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वाद = वृथा। संकुल = व्याप्त, में। समीति (समिति) = सभा। भीति = डर।

[२३५]

ऐसेहि जनम समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से। प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥१॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्हें कहुँ, हरि ते अधिक करि माने ॥२॥
सुख हित कोटि उपाइ निरंतर करत न पाँय पिराने।
सदा मलिन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ॥३॥
यहु दीनता दूरि करिबे को मैं अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥४॥

इसी भाँति बहुत से जन्म बीत गये। प्राणों के पति ऐसे रामचन्द्रजी से स्वामी को छोड़ कर और दूसरों के चरणों की सेवा करता है ॥ १ ॥ जो खोटे, कायर, दुष्ट और निरे कलियुग के पापों से सने हुए हैं, ऐसे मूरख जीवों की सराहना करते करते मुख सूखता है और उनको भगवान् से भी अधिक समझता है ॥ २ ॥ अपने सुख के लिए रात दिन करोड़ों उपाय करते करते तेरे पाँव नहीं दुखते

और तेरा हृदय मार्ग के जल के समान सदा मैला ही बना रहता है; कभी स्थिर नहीं होता ॥ ३ ॥ इस ग़रीबी के दूर करने के लिए अनगिनती उपाय मन में विचारे हैं, पर हे तुलसी! चिन्तामणि के बिना पहचाने चित्त की चिन्ता नहीं मिटती है। (भाव यह है कि जब राम-भक्ति से सन्तोष-धन मिले तब ग़रीबी की चिन्ता मिट सकती है नहीं तो १००) मिले २००) की चिन्ता होगी और ऐसे ही बढ़ती जायगी। इन्द्रासन मिलने पर भी नहीं मिटेगी) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—निरंतर = सदा। चिंतामनि = एक प्रकार का रत्न है कि जिससे जो मांगो सो मिले।

[२३६]

जां पै जिय जानकीनाथ न जाने।
तौ सब करम धरम स्रमदायक ऐसेइ कहत सयाने ॥१॥
जे सुर सिद्ध मुनीस जोगविद वेद पुरान बखाने।
पूजा लेत देत पलटे सुख, हानि लाभु अनुमाने ॥२॥
काके नाम धोखे हूँ सुमिरत पातकपुंज सिराने।
विप्र बधिकु गजु गीधु कोटि खल कौन के पेट समाने ॥३॥
मेरु से दोष दूरि करि जन के रेनु से गुन उर आने।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहिं न अजहुँ अयाने ॥४॥

हे जीव! जो तूने जानकीनाथ को जी में नहीं जाना तो (तेरे जप, तप आदि) सब कर्म और धर्म श्रम के देनेवाले हैं (अर्थात् सब वृथा हैं)। चतुर मनुष्य ऐसा ही कहते हैं। १॥ जो देवता, सिद्ध और मुनीश्वर योग के जाननेवाले हैं (उनके विषय में) वेद पुराण कहते हैं कि वे पूजा लेकर उसके बदले में (पुत्र, स्त्री, धन, धाम आदि का) सुख देते हैं, पर अपने हानि या लाभ की अटकल करते रहते हैं (अर्थात् इतना नहीं देते कि जिससे फिर पूजा भजन करना छोड़ दे ॥ २ ॥ किसका नाम धोखे (१)

---

(१) आदिपुराण में कहा है—

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि। तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः ॥

अर्थात् जो मनुष्य पृथ्वी पर श्रद्धा से वा धोखे से भी नाम का उच्चारण करते हैं हे पार्थ! उनको राम-नाम के प्रसाद से कभी भय नहीं होता।

से भी सुमिरने से पापों के समूह दूर हो जाते हैं। विप्र (अजामिल), वधिक (वाल्मीकि), हाथी, गीध, ऐसे ऐसे करोड़ों दुष्ट हैं वे किसके पेट में समा गये (अर्थात् दूसरा कौन है जो इनको अंगीकार करता) ॥ ३ ॥ (फिर रामजी कैसे गुणग्राहक हैं कि) भक्तों के सुमेरु पर्वत के बराबर दोषों को दूर करके बालू के कन के बराबर भी उनके गुण को अपने हृदय में रख लेते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे मूर्ख जीव ! अब भी सब आशाओं को छोड़ कर उनको नहीं भजता है ॥ ४ ॥

[२३७]

काहे न सना रामहिं गावहि ।
निसिदिन पर अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ॥१॥
नमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकरजल कहँ धावहि ॥२॥
काम कथा कलि कैरव चन्दिनि सुनत स्रवन दै भावहि ।
तिन्हहिं हटकि कहि हरि की कीरति करन कलंकु नसावहि ॥३॥
जात रूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि ।
सरन सुखद रविकुल सरोज रवि रामनृपहिं पहिरावहि ॥४॥
वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चितु लावहि ।
तुलसिदास भवतरइ तिहूँ पुर तूँ पुनीत जसु पावहि ॥५॥

हे जीभ ! रामचन्द्रजी का भजन क्यों नहीं करती है। रात दिन दूसरों की बुराई कह कह कर क्यों वृथा राग बढ़ाती है ॥१॥ मनुष्य के मुखरूपी सुन्दर और पवित्र महल में रह कर उसे मत लजावे। चन्द्रमा के पास रह कर और अमृत को छोड़ कर मृगतृष्णा के पानी के लिए क्यों दौड़ती है (अर्थात् चन्द्रसमान मुख में रह कर अमृत-सम भगवत्‌यश को छोड़ मृगतृष्णा के समान विषय की बातें क्यों वृथा करती है) ॥ २ ॥ विषय की बातें कलियुगरूपी कुमोदनी (के खिलाने) के लिए चाँदनी रूप हैं और कान लगा कर सुनने से अच्छी लगती हैं। सो उन कानों को (उधर से) रोक कर भगवान् की सुन्दर कीर्ति का भजन कर जो कानों के कलङ्क का नाश कर दे (अर्थात् जिसमें उन्हें विषय की बातें सुनने का कलङ्क न लगे) ॥ ३ ॥ और (जैसे लोग

सुवर्ण और सुन्दर मणियों का हार बना कर राजाओं की भेंट करते हैं ऐसे ही) बुद्धि (भगवान् का यश सो ही हुआ) सुवर्ण और (उनका नाम हुआ) मणि इन (दोनों) का अपनी युक्ति से रच रच कर सुन्दर हार तैयार करे उसे तू शरणागतों के सुखदाता और सूर्यकुलरूपी कमल को (खिलाने के लिए) सूर्यरूप राजा रामचन्द्रजी को पहना (अर्थात् भगवान् के यश और नाम की सुन्दर कविता बुद्धि से बनवा कर तू उनके अर्पण कर अर्थात् उनको सुना कि जिससे तू भी पवित्र हो जाय) ॥ ४ ॥ तू वाद और विवाद के स्वाद को छोड़कर भगवान् को भज और उनके उस रसीले चरित्र में मन लगा कि जिससे तुलसीदास संसार से तर जाय और तू तीनों लोकों में पवित्र यश पावे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रविकरजल = सूर्य्य की किरणों का जल— मृगतृष्णा का जल। कैरव = कुमोदनी। जातरूप = सुवर्ण और सुन्दर अक्षर जिसमें हों। जुगुति = युक्ति (उक्ति)। रचना = कविता।

[२३८]

आपनो हित रावरे सो जौं पै सूझै।
तौ जनु तन पर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥१॥
निज अवगुन गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ॥२॥

(हे रामचन्द्रजी !) जो अपना हित अपने से ही होता सूझ पड़े, तो यह (मनुष्य अपनी) देह पर, शिर के होने की सुध भूल कर कबन्ध की तरह क्यों जूझता फिरे (भाव यह है कि जैसे बिना शिर के भी धड़ थोड़ी देर तक युद्ध किया करता है, अपना पराया कुछ नहीं देख सकता, जो सामने आवे उसी को मारता है क्योंकि जो शिर हो तो अपने पराये, भले, बुरे का ज्ञान रहे ऐसे ही जो इस जीव को आपही अपने बुरे भले का ज्ञान होता तो भगवान् का सुमिरन छोड़ वृथा विषय की बातों में क्यों फँसता) ॥ १ ॥ हे राम ! अपने तो औगुन और तुम्हारे गुणों को देख कर और सुनकर मेरा मन और बुद्धि रुक जाते हैं (अर्थात् मन, बुद्धि से बहुतेरा तुम्हारी शरण में आना विचारता हूँ पर अपने औगुन देखकर कुछ अपने भले की आशा नहीं होती) तुलसी की रहन, कहन और समझन तुम सरीखे दयाल बिना और कौन समझ सकता है (अर्थात् तुम ही अन्तर्यामी होने से समझ सकते हो) ॥२॥

शब्दार्थ—अछत = (अ = नहीं। छत = नाश) हमेशा रहनेवाला। कबन्ध = धड़। रूझना = रुकना।

[२३९]

जाको हरि दृढ़ करि अँगु कर्यो ।
सोइव सुसील पुनीत वेदविद विद्या गुननि भर्यो ॥१॥
उतपति पंडुसुतन्ह की करनी सुनि सतपंथ डर्यो ।
ते त्रैलोक्य-पूज्य पावन-जस सुनि सुनि लोक तर्यो ॥२॥
जो निज धरम वेद बोधित सो करत न कछु बिसर्यो ।
बिन औगुन कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधर्यो ॥३॥
ब्रह्म बिसिष ब्रह्मांड-दहन-छम गरभ न नृपति जर्यो ।
अजर अमर कुलिसहुँ नाहिंन वध सो पुनि फेन मर्यो ॥४॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं बिगर्यो ।
उनको कियो सहाय बहुतहुँ को संताप हर्यो ॥५॥
गनिका अरु कंदरप ते जग महुँ अघ न करत उबर्यो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि भवन धर्यो ॥६॥
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तो न जानि पर्यो ।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जीवत पंथ खर्यो ॥७॥

भगवान् ने जिसे पक्का करके अंगीकार कर लिया वही सुशील, पवित्र, वेद का जाननेवाला और विद्या तथा गुण का भरा पूरा है ॥१॥ (इसका प्रमाण देते हैं कि) पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि) की उत्पत्ति (१) और (पाँचों का एक द्रोपदी के साथ संभोग करना इस) करनी को सुन कर धर्ममार्ग तक डर गया (भाव—उसके रोम खड़े हो गये कि ऐसे पाप कर्मों से मैं कैसे रहूँगा) पर वे (भगवान् की कृपा से) तीनों लोक में ऐसे पूज्य और पवित्र हो गये कि उनके यश (महाभारत) को सुन सुनकर संसार तरने लगा ॥२॥ (नृग राजा) वेदों में समझाये हुए जो अपने धर्म हैं उन्हें करने में कुछ नहीं भूला था और वह बिना ही दोष के गिरगट (२) होकर कुएँ में डूब रहा था

---

(१) पांचों पाण्डव, धर्मराज, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार से उत्पन्न थे। पूरी कथा महाभारत में है।

(२) राजा नृग भूल से पहली पुण्य की हुई गाय को दूसरी बार पुण्य करने के कारण ब्राह्मण के शाप से गिरगट हुए थे। यह कथा भागवत में है।

उसको हाथ से खींच कर उसका उद्धार कर दिया ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी का बाण ब्रह्माण्ड को जला देने को समर्थ है उससे राजा (परीक्षित (१) माता के) गर्भ में नहीं जला और (नमुचि दैत्य) ऐसा अजर अमर कि (इन्द्र के) वज्र से भी नहीं मरा पर वह (भगवान् की कुदृष्टि होते ही समुद्र के) झाग से मर गया (अस्त्र-शस्त्र की कथा चलाई है) ॥४॥ अजामेल ब्राह्मण और इन्द्र से कौन सी बात नहीं बिगड़ी (अर्थात् अजामेल वेश्या के साथ सब भाँति के कुकर्म करता था और इन्द्र के भी पुराणों में अहिल्या आदि के साथ अनेक तरह के बुरे कर्म करना लिखा है)। उनकी भी (भगवान् ने) बहुत सहायता की (अर्थात् दैत्य राक्षसों को मार इन्द्र को अभय किया और अजामेल को यमदूत नरक को लिये जाते थे सो उसे स्वर्ग भेजा) और यों उनके मन के सन्तापों को दूर कर दिया ॥ ५ ॥ वेश्या तथा कामदेव के मारे संसार में पाप करने से कोई भी नहीं बचा (भाव—वेश्या भी सबको मोह कर पाप में लगाती है और कामदेव भी सबके मन को बाधा करता है) सो उनके भी कर्मों को पवित्र समझ कर भगवान् ने अपने हृदयरूपी घर में धरा (सो काम तो उनका पुत्र ही है और वेश्या का (२) चरित्र भगवान् ने ऊधोजी को सुनाया) ॥ ६ ॥ भगवान् किस आचरण से भला मानते हैं सो नहीं जान पड़ता। तुलसीदास तो रघुनाथजी की कृपा की सुन्दर राह देखता रहता है ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—कृकलास = गिरगट। विसिख = बाण। छम = लायक़। अजर = जो बूढ़ा न हो। कुलिस = वज्र। कन्दर्प = कामदेव। खस्यो = अच्छा।

[२४०]

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि तुम रीझे।
गनिका गीध वधिक हरिपुर गये लै कासी प्रयाग कब सीझे॥१॥
कबहुँ न डग्यो निगम मगु ते पग नृप जग जानि जिते दुख पाये।
गज धौं कौन दीछित जाके सुमिरत लै सुनाभ वाहन तजि धाये॥२॥
सुर मुनि विप्र विहाइ बड़े कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हों।

---

(१) जब परीक्षित गर्भवास में थे तब उनका नाश करने के लिए अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र मारा था पर वे भगवान् की कृपा से बच गये।

(२) पिंगला नाम वेश्या थी—पूरी कथा भक्तमालसार में देखो।

बावों दियो विभव कुरुपति को भोजन जाइ विदुर घर कीन्हों ॥३॥
मानत भलहि भलो भगतिहि ते कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसी सहज सनेह रामबस श्रौर सबै जल की सी चिकनाई ॥४॥

हे राम! तुम जिस पर प्रसन्न हुए वही धर्मात्मा, पवित्र और सच्चा है। वेश्या, गिद्ध श्रौर निषाद को वैकुण्ठ में ले गये सो इन्होंने काशी श्रौर प्रयाग में कब स्नान किये थे॥ १॥ राजा (नृग) का कभी वेद के मार्ग से पैर नहीं डिगा था परन्तु जग जानता है कि उसने कितने दुःख पाये थे। हाथी ने (यज्ञ में) कौन सी दीक्षा ली थी कि जिसके स्मरण करते ही तुम वाहन (गरुड़) को छोड़ सुदर्शन चक्र लेकर दौड़े थे॥ २॥ देवता, मुनीश्वर श्रौर ब्राह्मण इन बड़े कुलों को छोड़ कर तुमने गोकुल में ग्वाल के घर जन्म लिया श्रौर राजा दुर्योधन की सम्पत्ति का (१) अनादर करके विदुर के घर जाकर भोजन (२) किया॥ ३॥ भगवान् अच्छे भक्तों से भला मानते हैं इसकी थोड़ी सी रीति तुमने अर्जुन (३) को बतलाई थी। हे तुलसीदास! रामचन्द्रजी सहज प्रीति के वश हैं श्रौर सब (जितने साधन हैं वे तो) ऐसे हैं कि जैसे पानी की चिकनाई (अर्थात् जैसे जब पानी शरीर पर पड़ता है तब शरीर चिकना जान पड़ता है पर धूप लगते ही सूख जाता है ऐसे ही जप, तप श्रादि से थोड़ी शुद्धता तो होती है पर विषय-बयार लगते ही सब मिट जाती है इससे रामजी वश में नहीं होते॥४॥

शब्दार्थ—निगम = वेद। दीछित = वह पुरुष जो यज्ञ में दीक्षा लेता है। बावों = टेढ़ा, अनादर। कुरुपति = दुर्योधन। पारथ = अर्जुन।

[२४१]

तो तुम्ह मोहूँ से सठनि हठि गति न देते।
कैसेहुँ नाम कहो कोउ पाँवर सुनि सादर श्रागे होइ लेते ॥१॥

---

(१) श्रीकृष्ण पाण्डवों की श्रोर से दूत बन कर गये थे तब का हाल है।

(२) विदुर का साग प्रसिद्ध है। जब विदुर की स्त्री पैर धोने लगी तब भगवान् ने कहा कि पैरों को रहने दे भूख के मारे प्राण निकले जाते हैं सो कुछ खाने को ला। वह खाने को केले लाई श्रौर प्रेम के मारे गूदा तो ज़मीन पर गेरती गई श्रौर छिलके खाने को देती गई श्रौर भगवान् खाते रहे। जब विदुर ने आकर यह देखा तब बड़े क्रोधित हुए श्रौर श्राप छील छील कर गूदा खिलाने लगे। भगवान् ने कहा इसमें छिलकों का सा स्वाद नहीं हम अब न खायँगे।

(३) अर्जुन की शुद्ध प्रीति से उसके सारथि बने। उसके लिए जरासन्ध के पास जाकर ब्राह्मण बन भीख माँगी। लाख के भवन में जलने से बचाया, द्रौपदी का चीर बढ़ाया इत्यादि।

पापखानि जियजानि अजामिल जमगन तमकि तईं हो ताको भेते।
लिये छुड़ाइ चले कर मींजत पीसत दाँत गये रिसिरेते ॥२॥
गौतमतिय गज गीध विटप कपि है नाथहि नीके मालुम तेते।
तिन्ह जिन्ह काज साधु समाज तजि कृपासिंधु तब तब उठि गे ते॥
अजहुँ अधिक आदरु यहि द्वारे पतित पुनीत होत नहिं केते।
मेरे पासंगहू न पुजिहैं ह्वै गए हैं होने खल जेते ॥४॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरें चेते।
अब तुलसी पूतरा बाँधि है सहि न जात मोपै परिहासें एते ॥५॥

(जो तुमने और दुष्टों को गति नहीं दी होती) तो तुम मुझ सरीखे दुष्ट को भी अड़ कर मोक्ष न देते (इसमें मुझे कुछ बुरा लगने की बात न थी) पर तुम तो कोई नीच कैसे ही नाम लेता हो सुनते ही बड़े आदर से उसे आगे होकर लेते हो ॥ १ ॥ (जो कहो कि हमने ऐसे कौन से पापी को तारा है तहाँ कहते हैं कि) यम के दूतों ने मन में अजामेल को पाप की खान जान कर उसे तमक कर भयपूर्वक ताप दिया पर (उसने जो मरते समय तुम्हारा नारायण नाम लिया था इस कारण) तुमने उसे (यमगणों से) छुड़ा लिया और वे हाथों को मसलते हुए और क्रोध में भर दाँतों को पीसते हुए ख़ाली हाथ चल दिये ॥ २ ॥ अहिल्या, हाथी, गिद्ध, (ताल) वृक्ष और बन्दर जैसे थे तैसे भगवान् को मालूम ही हैं, परन्तु जब जब उनका काम हुआ तब तब हे कृपासिंधु! तुम सन्तों की सभाओं को भी छोड़ उठ कर गये॥ ३ ॥ अब भी इस द्वार पर पापियों का सबसे बढ़ कर आदर होता है और न जाने कितने पवित्र नहीं होते हैं। (इस संसार में) जितने दुष्ट हो गये और होंगे वे मेरे पासङ्ग में भी पूरे न होंगे (अर्थात् वे सब मिल कर भी मेरी बराबर तोल में नहीं) ॥ ४ ॥ मैं अभी तक तुम्हारे करतब की ओर देख रहा था (अर्थात् अब भी कृपा करें) पर तुम नहीं चेते (अर्थात् मुझ पर अब तक कृपा नहीं की)। अब यह तुलसीदास तुम्हारा पुतला बाँधेगा (अर्थात् तुम्हारा एक मिट्टी का पुतला बना कर बाँस में लगा कर गाँव गाँव में उठाये डोलेगा और जब कोई पूछेगा कि यह कौन है तब कह देगा कि यह अयोध्या के राजा सूम रघुनाथजी हैं यों तुम्हारी धूल उड़ावेगा) क्योंकि मुझसे इतनी हँसी नहीं सही जाती (कि लोग मेरी ताली पीटें कि यह रामजी का बनता है वे तो इस पर कुछ भी दया नहीं करते) ॥५॥

शब्दार्थ—भेते = भय से।

[२४२]

तुम्ह सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग तुम्ह सम हरि न हरन कुटिलाई ॥ १ ॥
हौं मन वचन करम पातकरत तुम्ह कृपालु पतितन्हि गतिदाई।
हौं अनाथ तुम्ह प्रभु अनाथ हित चित यह सुरति कबहुँ जिनि जाई ॥२॥
हौं आरत आरति नासन तुम्ह कीरति निगम पुराननि गाई।
हौं सभीत तुम्ह हरन सकल भय कारन कवन कृपा बिसराई ॥
तुम्ह सुख धाम राम स्रमभंजन हौं अति दुखित त्रिविध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहुँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई॥

हे राजा रामचन्द्रजी ! सुनो तुम सरीखा तो दीनबन्धु और मेरे बराबर ग़रीब कोई नहीं है। मेरे बराबर तो दुष्टों का सिरताज और हे भगवान्! तुम्हारे बराबर कुटिलता का दूर करनेवाला संसार में नहीं है॥ १ ॥ मैं तो मन, वचन, कर्म से पापी हूँ और हे कृपालु, तुम पापियों के मोक्ष देनेवाले हो। मैं अनाथ हूँ और तुम अनाथों का हित करनेवाले हो। मेरे मन से यह याद कभी नहीं जाती॥ २॥ मैं दुखी हूँ और तुम क्लेशों के दूर करनेवाले हो यह तुम्हारा यश वेद और पुराण गाते हैं। मैं (संसार से) डरा हुआ हूँ और तुम (संसार के) सब भय के हरनेवाले हो फिर क्या कारण है कि तुमने कृपा करना छोड़ दिया॥ ३॥ हे राम! तुम सुख के घर अर्थात् देनेवाले हो और (जन्म-मरण के) श्रम के नाशक हो। मैं तीन प्रकार के श्रमों से बड़ा दुखी हो रहा हूँ सो अपने मन में यह जान कर और अपनी प्रभुता को समझ कर तुम तुलसीदास को अपनी शरण में रख लो॥ ४॥

शब्दार्थ—मौलि = शिर। त्रिविध स्रम (ताप) गूढ़ार्थकोश में देखो।

[२४३]

इहै जानि चरनन्ह चित लायो।
नाहिंन नाथ अकारन को हित तुम्ह समान पुरान स्रुति गायो॥

जननि जनक सुत दार बंधुजन भये हैं बहुत जहँ २ हौं जायो।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित काहू नहिँ हरिभजनु सिखायो।।
सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर मैं तन धरि सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप पापवस काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ।।
जतन अनेक किये सुख कारन हरिपदविमुख सदा दुख पायो ।
अब थाक्यो जलहीन नाउ ज्यों देखत विपति जाल जग छायो ।।
मो कहँ नाथ बूझिये यह गति सुखनिधान निजपति बिसरायो ।
अब तजि दोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो ।।

यह जान कर मैंने तुम्हारे चरणों में मन लगाया है कि हे नाथ ! बिना कारण हित करनेवाला तुम्हारे समान कोई नहीं है; यह वेद और पुराणों में कहा है ॥ १ ॥ जहाँ जहाँ मैंने जन्म लिया (वहाँ वहाँ) माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाईबन्धु बहुत से हुए, और वे सब अपने मतलब के लिए प्यार करते रहे पर उनके मन में कपट रहा क्योंकि किसी ने मुझे भगवान् का भजन नहीं सिखाया ॥ २ ॥ (इन्द्र आदि) देवता, (कश्यप आदि) मुनि, (कार्त-वीर्य्य आदि) मनुष्य, दैत्य, (वासुकि करकोट आदि) नाग और किन्नर इनमें से किसको मैंने शरीर धर कर शिर नहीं नवाया (अर्थात् सबको नवाया) और पाप के वश तीनों तापों से जलता हुआ फिरा किया परन्तु हे प्रभो ! किसी ने भी दया करके मुझे शीतल नहीं किया (अर्थात् मेरे पापों के ताप को किसी ने नहीं मिटाया) ॥ ३ ॥ सुख के लिए पूजा-पाठ आदि अनेक उपाय किये परन्तु हे भगवन् ! तुम्हारे चरणों के विमुख होने से सदा दुःख ही पाया किया । संसार में (जन्म, जरा, मरण आदि) विपत्ति के जाल को फैला हुआ देख कर मैं अब ऐसा थक गया हूँ जैसे बिना पानी के नाव थक जाती है (अर्थात् नहीं चलती) ॥ ४ ॥ सो हे नाथ ! समझ लो मेरा यह हाल इसलिए हुआ है कि मैं सुख के स्थान अपने स्वामी को भूल गया था (पर अब ऐसा होना उचित नहीं है) हे हरे ! अब मेरे दोषों का ख़याल न करके दया करो क्योंकि यह तुलसीदास तुम्हारी शरण में आया है ॥ ५ ॥

[२४४]

याहि ते मैं हरि ज्ञान गँवायो ।

परिहरि हृदय कमल रघुनाथहि बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥ १ ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरमु नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल परम सुगंध कहाँ ते धौं आयो ॥ २ ॥
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हों सठ चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।
व्यापत त्रिविधताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम सुरतरु तजि विषय बबूर बाग मन लायो।
तुम सम ज्ञाननिधान मोहिं सम मूढ़ न आनि पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥ ५ ॥

हे भगवान्! इसी से मैंने ज्ञान खो दिया कि अपने हृदय-कमल में जो रामचन्द्रजी हैं उन्हें छोड़ कर बाहर घबराया हुआ ऐसे दौड़ता फिरा (अर्थात् अज्ञान के कारण घट में परब्रह्म को न जान कर तीर्थ-यात्रा आदि करके उसे इस तरह ढूँढ़ता फिरा) ॥१॥ जैसे हरिण महाबुद्धिहीन होने से अपने शरीर में सुन्दर कस्तूरी के होने पर भी उसका भेद नहीं पाता और पहाड़, वृक्ष, बेल, धरती और बिले ढूँढ़ता फिरता है कि यह बड़ी भारी सुगन्धि कहाँ से आ रही है ॥ २ ॥ फिर जैसे तालाब निर्मल पानी से ख़ूब भरा है और ऊपर से कुछ काई और (मोथा आदि) घास छा रही है (इस कारण उसमें जल न मान) उस (तालाब) को छोड़ कर मैं दुष्ट अपने हृदय को जलाता हूँ और इस भाँति (अर्थात् ऐसे निर्मल जल के तालाब को छोड़) अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ (भाव यह है कि हृदयरूपी तड़ाग में रामरूपी निर्मल जल भरा है और उस पर विषयवासनारूपी काई और कामरूपी तृण छा रहा है। उसे अज्ञान से छोड़ संसारी ताप से हृदय जलाता हुआ शान्ति चाहता हूँ अर्थात् तुम्हें भूल कर सुख की इच्छा करता हूँ सो कैसे हो) ॥ ३ ॥ एक तो शरीर में तीनों भाँति के कठिन ताप व्याप रहे हैं और तिस पर भी जो सहा नहीं जाय ऐसा दरिद्र सता रहा है क्योंकि

अपने ही (हृदयरूपी) घर में (भगवान् के) नामरूपी कल्पवृक्ष को छोड़ कर विषयरूपी बबूरों के बाग़ में मन लगाया है (सो वहाँ सिवा काँटों में फँसने के श्रौर क्या धरा है ॥ ४ ॥ पुराणों में कहा है कि तुम्हारे बराबर ज्ञान का स्थान दूसरा नहीं है श्रौर मेरे समान दूसरा मूर्ख भी नहीं है। हे नाथ! तुम समर्थ हो इस बात को जी में समझ कर मन में जो अच्छा लगे सो इस तुलसीदास का करो (अर्थात् इसे अपना दर्शन दो वा दूर हटाओ) ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—रुचिर = सुन्दर । मद = कस्तूरी। सिवार = काई। त्रिविधताप = गूढ़ार्थकोश में देखो।

[२४५]

मोहिं मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनम जनम दुख रोयो ॥१॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो।
बहुँ भाँतिन स्रम करत मोहबस वृथहिं मन्दमति वारि विलोयो ॥२॥
करम कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि विहाय सठ फिरि २ विकल अकास निचोयो ॥३॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासतहीं गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ॥४॥

(जो कहो कि जान-बूझ कर आत्मस्वरूप को भूल कर क्यों दुःख सहा तहाँ कहते हैं कि) मुझे तो इस मूर्ख मन ने बहुत ख़राब किया श्रौर हे करुणामय! सुनो इसके लिए संसार में मैं जन्म जन्म में अपने दुख ही रोता रहा ॥ १ ॥ शीतल श्रौर मीठा अमृत (कि जो जीव को अमर करनेवाला है) उसके समान सहज सुख (अर्थात् अखण्ड आत्मानन्दसुख) कि जो पास (हृदय में) रहता है उसे (मन के कहने से ऐसे) खो दिया मानों वह दूर हो श्रौर मोह के वश बहुत भाँति का श्रम करके मुझ मूर्ख ने वृथा पानी को विलोया (अर्थात् तुम्हारे दर्शनरूपी घृत पाने के लिए विषयरूपी पानी विलोया सो श्रम वृथा गया वहाँ त्रिकाल में भी घृत नहीं) ॥ २ ॥ (कैसे श्रम वृथा गया कि) जी में जानता था कि कर्म-कीच है (इसमें पड़ूँगा तो अवश्य

फँसूँगा और बिना फल भोगे नहीं छूटूँगा) तो भी चित्त को उसी में साना (अर्थात् विषयों में गेरे बिना नहीं रहा) और मैं खोटा ऐसा हूँ कि मल से मल को धोया चाहता हूँ (अर्थात् जिस प.प-कर्म से जीव मलीन हुआ उसे ही करके आत्मज्ञान चाहता हूँ सो ऐसा है कि) जैसे कोई मूर्ख प्यास का मारा गंगाजी को छोड़ कर घबरा के बार बार आकाश को निचोड़ता फिरे (भाव- गङ्गा-स : रामभक्ति को छोड़ सुख के लिए विषयों को करता फिरे) ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! इसलिए अब तुम मुझ तुलसीदास पर कृपा करो क्योंकि मैंने अपना दोष तुमसे कुछ नहीं छिपाया है और मुझे बिछौना बिछाते बिछाते सब रात बीत गई पर हे नाथ ! मैं कभी पूरी नींद नहीं सोया (अर्थात् सुख के लिए उपाय करते करते उमर बीत गई परन्तु तुम्हारी कृपा बिना सुख कभी नहीं मिला) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—पीयूष = अमृत। वारि = जल। गोयो = छिपाया।

[२४६]

लोक वेदहूँ विदित बात सुनि समुझि मोहमोहित विकल मति थिति न लहति।
छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे राम रावरे निबाहे सबही की निरबहति ॥ १ ॥
होती जो आपने वस रहती एकही रस, दुनी न हरष सोक साँसति सहति।
चहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥ २ ॥
करम काल सुभाउ गुन दोष जीव जग माया ते सो सभय भौंह चकित चहति।
ईसनि दिगीसनि जोगीसनि मुनीसनिहूँ छोड़ति छोड़ाये ते गहाये ते गहति ॥ ३ ॥
सतरंज को सो राज काठ को सब समाज महाराज बाजी रची प्रथम न हति।

तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ बहु वेष बहु मुख सारदा कहति ॥ ४ ॥

संसार और वेदों में जो बात विदित है उसे सुन कर और विचार कर भी मेरी बुद्धि मोह से मोहित (अर्थात् उसके वश में होने से) ऐसे चक्कर में पड़ी है कि स्थिरता नहीं पाती है क्योंकि हे राम ! छोटे और बड़े, बुरे और भले, मोटे और दुबले, इन सबकी तुम्हारे निभाने से निभती है ॥ १ ॥ जो (वह मति) अपने वश में होती तो एक रस (अर्थात् एक सी) रहती और दुनिया के हर्ष, शोक और पीड़ा को नहीं सहती। जो कोई जो जो चाहता सोई सोई पाता और किसी तरह किसी की इच्छा बाक़ी नहीं रह जाती ॥ २ ॥ संसार में जीव के कर्म, काल, स्वभाव, गुण और अवगुण सब तुम्हारी माया से हैं सो यह डरती हुई भौचक्की सी तुम्हारी भृकुटि को तकती रहती है (अर्थात् जैसा तुम्हारा रुख़ देखती है वैसा करती है)। शिव, ब्रह्मा, और (इन्द्र आदि आठ) दिक्पालों को (मार्कंडेय आदि) योगियों को और (वशिष्ठ आदि) मुनीश्वरों को वह तुम्हारे छुड़ाने से छोड़ती है और पकड़ाने से पकड़ती है ॥ ३ ॥ इस (माया) का राज शतरञ्ज का सा (कोरा देखनेमात्र का) है क्योंकि इसमें (हाथी, घोड़ा, प्यादा, वज़ीर, बादशाह) सब साज काठ का है और हे महाराज ! तुमने यह बाज़ी रची है पहले यह नहीं थी (अर्थात् संसाररूपी शतरञ्ज का सब खेल तुमने बनाया है)। हे तुलसी के नाथ ! इस बाज़ी का हारना, जीतना तुम्हारे ही हाथ में है। यह बात सरस्वती बहुत से वेश और बहुत से मुखों से कहती है। (भाव—यह बात अनेक भाषाओं में अनेक प्रकार से कही गई है) ॥ ४ ॥

[२४५]

राम जपु जीह जानि प्रीति सों प्रतीति मानि रामनाम जपे जैहै जिय की जरनि ।

रामनाम सों रहनि रामनाम की कहनि कुटिल कलि मल सोक संकट हरनि ॥ १ ॥

रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ कियो न दुराउ कही आपनी करनि ।

भवसागर को सेतु कासीहूँ सुगति हेतु जपत सारद संभु सहित घरनि ॥ २ ॥

वालमीकि व्याध हैं अगाध अपराध निधि मरा मरा जपें पूजे मुनि अमरनि।
रोक्यो विंध सोख्यो सिन्धु घटज हूँ नामबल हार्‌यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि॥ ३॥
नाम महिमा अपार सेस सुक बार बार मति अनुसार बुध वेद हूँ बरनि।
नामरति कामधेनु तुलसी को कामतरु रामनाम है विमोह-तिमिर-तरनि॥ ४॥

हे जीभ! तू राम-नाम (१) को जप, उस (राम-नाम) को ही पहचान और प्रीति से उस (राम-नाम) का ही विश्वास कर। राम-नाम के जपने से तेरे जी की जलन मिट जायगी। रामनाम की ही शरण रहना और राम-नाम का ही कहना, कुटिल कलियुग (२) के पाप, शोक और संकट का दूर करनेवाला है॥ १॥ राम-नाम के प्रभाव से ही (सबसे पहले) गणेशजी (३) पूजे जाते हैं। इसमें उन्होंने कुछ छिपाव नहीं किया है। अपनी करनी को आप ही कहा है और

---

(१) भगवान् ने कहा है—"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अर्थात् सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण को प्राप्त हो।

(२) रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

अर्थात् राम इन दो अक्षरों को सदा आदरपूर्वक जपने से मनुष्य मुक्ति पाता है। इस कलि-काल में पापी मनुष्यों को और धर्म करने का अधिकार नहीं है।

"कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥

अर्थात् दोषों के निधि ऐसे कलियुग में एक बड़ा भारी गुण है कि कृष्ण भगवान् के कीर्तन से मनुष्य मुक्ति पाता है।

(३) पद्मपुराण के रामसहस्रनाम में लिखा है कि—पहले गणेशजी ऐश्वर्य्य को पाकर बावले हो गये थे तब और ऋषियों के आश्रमों का नाश कर बहुत से ऊधम मचाने लगे। शिवजी अपने पुत्र के इस आचरण को देखकर बड़े दुखी हुए और रामचन्द्रजी का ध्यान किया और ध्यान करने से जब रामचन्द्रजी प्रकट हुए तब उन्होंने गणेशजी का सब दूषण भगवान् से कह कर विनती की और कहा कि मेरे पुत्र की निन्दा न हो ऐसा कीजिए। रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि राम-नाम का जप कुछ दिन करेगा तब वह योग्य होगा। यह सुन कर शिवजी ने गणेशजी को राम-नाम के जपने की आज्ञा दी। गणेशजी ने हज़ारों वर्ष तक समाधि चढ़ा कर राम-नाम का जप किया। उस जप के प्रभाव से गणेशजी पूजने योग्य हुए।

सरस्वती तथा शिवजी (१) पार्वती सहित (उस राम-नाम को) जपते हैं ॥ २ ॥ वाल्मीकि व्याध थे और बहुत पापों की खान थे पर मरा मरा जपने से उनको मुनि और देवताओं ने पूजा। अगस्त्य (२) मुनि ने राम-नाम के प्रभाव से ही विन्ध्य पर्वत को रोक दिया और समुद्र को सोख लिया था। ब्राह्मण (अर्थात् उन्हीं मुनि) के डर से वह जी में हार कर खारी हो गया ॥ ३ ॥ राम-नाम की महिमा का पार नहीं है यह शेषजी, शुकदेवजी, वेद और पण्डित इन्होंने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार बारम्बार कहा है। राम-नाम से प्रीति का होना तुलसीदास को कामधेनु और कल्प-वृक्ष है और राम-नाम ही महा अज्ञानरूपी अँधेरे के लिए तरनि अर्थात् सूर्य्य है ॥ ४ ॥

[२४८]

पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचंद्र सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन।
दीनबंधु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुन दुसह दर दुरित हरन ॥ १ ॥
जब जब जग जाल व्याकुल करम काल सब खल भूप भये भूत भरन।
तब तब तनु धरि भूमिभार दूरि करि थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन ॥ २ ॥

---

(१) अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥

अर्थात् शिवजी रामजी से कहते हैं कि मैं तुम्हारा नाम जपता हुआ पार्वतीजी सहित काशी में रहता हूँ और मरते हुए प्राणी की मुक्ति के लिए हे राम ! तुम्हारे नाम का उपदेश करता हूँ।

(२) एक समय जब सूर्य के तेज से विन्ध्याचल के वृक्ष आदि सब झुलस गये तब पर्वत सूर्य्य पर क्रोध कर ऐसा बढ़ा कि सूर्य्य को ढक दिया। यह देख देव-दानव आदि सूर्य्य के प्रकाश बिना दुखी हुए। फिर अगस्त्यजी पर्वत के पास आये और राम-नाम का स्मरण कर उसके सिर पर हाथ धरके उसे झुका दिया और कहा कि जब तक हम आवें ऐसा ही पड़ा रह। फिर वह वैसा ही रहा।

ऐसे ही एक बार अगस्त्यजी समुद्र के किनारे पूजन कर रहे थे। समुद्र उनकी पूजा की सब सामग्री बहा ले गया। अगस्त्यजी ने क्रोधित हो "राम" इस मन्त्र का उच्चारण कर तीन आचमन से समुद्र को सुखा दिया। फिर देवताओं की स्तुति करने से लघुशङ्का की राह से पानी निकाल उसे भर दिया।

वेद लोक सब साखी काहू की रती न राखी रावन की बंदि लागे अमर मरन।
शोक दे विसोक किये लोकपति लोकनाथ राम राज भयो धरम चारिहु चरन ॥ ३ ॥
सिला गुह-गीध कपि भील भालु रातिचर ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन तरन।
पीलउद्धरन सीलसिन्धु ढील देखियत तुलसी पै चाहत गलानिहू गरन ॥ ४ ॥

हे राम ! मेरी रक्षा करो, हे रामचन्द्रजी ! मेरी रक्षा करो। हे रामचन्द्रजी ! तुम्हारा सुन्दर यश कानों से सुन कर तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम ग़रीबों के भाई हो और महा कठिन और दुःसह ग़रीबी, दरिद्रता, सन्ताप, दोष, दुःख, भय और पाप इन सबके दूर करनेवाले हो॥ १॥ जब जब (सुर, नर, मुनि) काल और कर्म के वश संसाररूपी जाल में पड़ कर व्याकुल हुए और सब राजाओं के दुष्ट होने से पृथ्वी तल भर गया तब तब तुमने शरीर धारण कर (अर्थात् अवतार (१) लेकर) धरती का भार उतारा और मुनीश्वर देवता और सन्त इनके आश्रमों और वर्णों की रक्षा करी॥ २॥ इस बात के वेद और लोक सब गवाह हैं कि जब (रावण ने) किसी की प्रतिष्ठा नहीं रहने दी और उसकी क़ैद में देवता मरने लगे तब उनको भी तुमने आश्रय देकर शोकरहित कर दिया और लोकपति कहिए इन्द्रादिकों को उनके लोकों का स्वामी बनाया और हे राम! (सत्य, दया, तप, दान) इन चारों चरणों से धर्मराज्य हो गया॥ ३॥ शिला (अहिल्या), गुह (निषाद), गिद्ध, सुग्रीव, भील, भालु (जाम्बवन्त) और राक्षस (विभीषण) इनको हे कृपालु! तुमने खेल से ही आप तरने और दूसरों को तारनेवाला कर दिया। हे गज का उद्धार करनेवाले! हे सुन्दर स्वभाव के समुद्र! तुम्हारी ओर से तुलसी पर ढील दीख रही है सो वह (अपने मन की) ग्लानि में गला चाहता है (सो शीघ्र कृपा करो)॥ ४॥

शब्दार्थ—दर = भय (संस्कृत शब्द है)। दरप (दर्प) = घमण्ड। पील = हाथी।

---

(१) गीता में कहा है—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

[२४६]

भली भाँति पहिचाने जाने साहिब जहाँ लों जग जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम ।
प्रीति न प्रवीन नीति हीन, रीति के मलीन, मायाधीन सब किये काल हू करम ॥ १ ॥
दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम ।
रीझि रीझि दिये बर खीझि खीझि घाले घर आपने निवाजे की न काहू के सरम ॥ २ ॥
सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो सदगुनधाम राम पावन परम ।
सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहिं विदित विसेषि घट घट के मरम ॥ ३ ॥
तोसों नतपाल न कृपाल, न कंगालु मोसो, दया में बसत देव सकल धरम ।
राम कामतरु छाँह चाहै रुचि, मन माह तुलसी विकल बलि कलि कुधरम ॥ ४ ॥

संसार में जहाँ तक स्वामी हैं उनको मैंने अच्छी तरह से पहचान लिया और जान लिया कि वे थोड़े ही में शीतल (प्रसन्न) और थोड़े में ही गरम (क्रोधित) हो जाते हैं (अर्थात् सेवा करने से हाल ही तो वर देते हैं फिर थोड़ा ही चूकने से नाश का उपाय करते हैं)। न तो वे प्रीति के निवाहने में चतुर हैं और न नीति को जानते हैं और उनकी रीतियाँ बुरी हो गई हैं क्योंकि काल, कर्म और माया ने उन सबको अपने अधीन कर रक्खा है (जब उन्हीं का यह हाल है तब उनसे किसी का भला होने की क्या आशा है) ॥ १ ॥ जितने (हिरण्याक्ष आदि) बड़े बड़े दैत्य दानव हुए वे बड़े मूर्ख हुए (उनको अपना भला बुरा न सूझ पड़ा और ऐश्वर्य के मद में आकर कि हम

किसी से नहीं मारे जा सकेंगे, महात्माओं के) शिर पर चढ़े और उन्होंने लोकपालों को जीत लिया। हे नाथ ! तेरे बल का उनको भरम नहीं था (अर्थात् यह नहीं जानते थे कि हमारे ऊपर और भी कोई ईश्वर है या नहीं। ब्रह्मा आदि देवताओं ने) प्रसन्न हो होकर पहले तो इनको वर दिये और फिर (जब इन्होंने कष्ट दिया तब) व्याकुल हो होकर (तेरे द्वारा) इनके घरों का नाश करा दिया और अपने निवाजने की किसी को शरम नहीं आई (अर्थात् यह शरम नहीं आई कि हमने ही तो इनको कृपा कर बढ़ाया है और हम ही इन्हें क्यों बिगाड़ते हैं) ॥ २ ॥ हे राम ! जो सावधानी से सेवा करता है उसे तू अच्छी भाँति जानता है। तू सच्चा समर्थ है (अर्थात् ब्रह्मा आदि का भी वरदायक है) और अच्छे गुणों का स्थान, बड़ा पवित्र और सुन्दर रुख कहिए दयादृष्टि करनेवाला है। तेरा सुन्दर मुख है, तू एक रस (अर्थात् घटने बढ़नेवाला नहीं) है, एक रूप है (अर्थात् तेरा रूप कभी नहीं बदलता) और तुझे घट घट का भेद अच्छी भाँति विदित है ॥ ३ ॥ हे कृपालु ! तेरे समान तो भक्तों का पालक और कृपालु नहीं और मेरी बराबर कोई कंगाल नहीं सो हे देव ! दया में सब धरम बसते हैं (अर्थात् मुझ दीन पर दया की तो मानो सब धर्म कर चुका)। हे राम ! तू कल्पवृक्ष है मेरी रुचि तेरी छाया चाहती है तेरी बलि जाऊँ यह तुलसीदास कलियुग के बुरे धर्मों से मन में बड़ा घबरा रहा है ॥ ४ ॥

सन्धि-विभाग—माया + अधीन।

शब्दार्थ—मरम = भरम, भेद।

[२५०]

तो हौं बार बार प्रभुहि पुकारि कै खिजावतो न जोपै मोकहूँ होतो कहुँ ठाकुर ठहरु।
आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम अवध सहरु ॥ १ ॥
सेए न दिगीसन दिनेसन गनेस गौरी, हित कै न माने विधि हरिउ न हरु।
राम नाम हीं सों जोग छेम नेम प्रेम पन सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु ॥ २ ॥

समाचार साथ के अनाथ नाथ कासों कहौं नाथ ही के हाथ सब चोर ऊ पहरु।
निज काज सुर काज आरत के काज राज बूझिये विलंब कत कहूँ न गहरु॥ ३॥
रीति सुनि रावरी प्रतीति, प्रीति रावरे सों डरत हौं देखि कलि काल को कहरु।
कहैही बनैगी की कहाये बलिजाउँ राम तुलसी तू मेरौ हारि हिये न हहरु॥ ४॥

हे राम! जो मेरे लिए कोई (दूसरा) स्वामी होता या कहीं (दूसरी) जगह (ठहरने को) होती तो मैं स्वामी को बार बार पुकार कर नहीं चिढ़ाता। हे कृपालु! मुझ सरीखे आलसी अभागों को तुमने ही पाला पोसा है इसलिए हे राजा रामचन्द्रजी! तुम्हीं मेरे राजा हो और अवध (अयोध्या) मेरे रहने का स्थान है॥ १॥ क्योंकि न तो मैंने (इन्द्रादिक) लोकपाल, सूर्य्य, गणेश, और पार्वती की सेवा की और न ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपना हितू माना। मैंने तो क्षेम कहिए कल्याण के लिए राम नाम से ही नेम और प्रेमसहित प्रण करके योग साधा है (अर्थात् इन्द्रियों को विषय से रोक मन लगाया है) और यही (राम का) भरोसा मुझे अमृत के समान और दूसरा (साधन) मुझे ज़हर के समान है॥ २॥ हे अनाथों के नाथ! मेरे साथ के चोर और चौकीदार सब नाथ के ही हाथ में हैं इसलिए इनका हाल किससे कहूँ (तुम ही काम, क्रोध आदि चोरों को डाट दो और विवेक, वैराग, सन्तोषरूपी पहरुओं को जगा दो कि जिससे यह जीव लुटने न पावे नहीं तो ये चोर मेरा राम-नामरूपी रत्न लूट ले जायँगे)। अपने कामों में, देवताओं के कामों में और दुखी जीवों के कामों में हे राम! समझो तो तुमने कहीं देर नहीं की है फिर अब क्यों देर करते हो॥ ४॥ तुम्हारी रीति (१) सुन कर (कि तुमने अहिल्या आदि को तारा है) तुम्हारा भरोसा पड़ता है (कि मुझे भी तारोगे) इसी लिए तुमसे प्रीति

---

(१) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।

अर्थात् जो एक बार भी मेरी शरण आकर कहता है कि मैं आपका हूँ तो मैं उस शरणागत को सब प्राणियों से अभय कर देता हूँ यह मेरा व्रत है।

लगाई है परन्तु कलियुग का अन्याय देख कर डरता हूँ (कि वह औरों की तरह मुझे भी भवसागर में न गिरावे)। हे राम! तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ अब तो तुम्हारे कहने से ही बनेगी या (हनूमान् से) कहलाने से बनेगी कि अरे तुलसीदास! तू मेरा है हृदय में हार मान कर मत घबरावे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—छेम = कल्याण। पहर = पहरुआ। गहर = देर। कहर = सख़्ती वा अन्याय।

[२५१]

राम रावरो सुभाउ गुन सील महिमा प्रभाउ जान्यो हर हनुमान लषन भरत।

जिन्ह के हिये सुथल राम प्रेम सुरतरु लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ १ ॥

आप माने स्वामी कै सखा सुभाउ भाईपने ते सनेह सावधान रहत डरत।

साहिब सेवक रीति प्रीति परमिति, नीति नेम को निवाह एक टेक न टरत ॥ २ ॥

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं राम की भगति बड़ी विरत निरत।

जाने बिनु भगति न जानिबो तिहारे हाथ समुझि स ने नाथ पगनि परत ॥ ३ ॥

छ-मत विमत, न पुरान मत एक पथ, नेति नेति नेति नित निगम करत।

औरनि की कहा चली एकै बात भले भली राम नाम लिये तुलसीहूँ से तरत ॥ ४ ॥

हे राम! तुम्हारे सुभाव, गुण, शीलता और महिमा के प्रभाव को महादेव, हनूमान्, लक्ष्मण और भरत इन्होंने जाना है कि जिनके हृदयरूपी सुन्दर थामले में है

राम ! तुम्हारा प्रेमरूपी कल्पवृक्ष शोभायमान हो रहा है और उसमें रसभरे सुखरूपी फूल-फल लगते हैं (भाव यह है कि जो अपने हृदय में राम का स्मरण करता है उसे सब सुख मिलते हैं) ॥ १ ॥ तुमने शिवजी को स्वामी, हनूमानजी को स्वाभाविक मित्र और लक्ष्मण भरतजी को भाई माना है परन्तु वे सब प्रीति में सावधान और डरते रहते हैं। सो स्वामी और सेवक दोनों इसी रीति से प्रीति करें तो वह हद को भी पहुँच जाती है और नीति से अपने नेम का पक्की तरह निर्वाह करते रहें तो वह कभी टलती भी नहीं है (अर्थात् अन्त तक निभ जाती है) ॥२॥ शुकदेवजी, सनक आदि, प्रह्लाद, नारद आदि कहते हैं कि राम की बड़ी भक्ति, वैराग्य में लगने से (अर्थात् देहाभिमान और विषयसुख त्यागने से) होती है और बिना वैराग के) जाने भक्ति नहीं होती है और (वैराग्य का) जानना तुम्हारे हाथ है इस बात को समझ समझ करके चतुर लोग हे नाथ ! तुम्हारे चरणों में आकर पड़ते हैं ॥ ३ ॥ छहों शास्त्रों का मत अलग अलग है और पुराणों का भी एक मत और एक मार्ग नहीं है और वेद नित्य नेति नेति कहता है (अर्थात् वेद का यह हाल है कि धर्म कर्म तो बतलाता है पर जो परमेश्वर की गति पूछो तो कहता है कि भगवान् की महिमा का अंत हम नहीं जानते) फिर औरों की क्या चलाई है। सो एक ही सुन्दर बात में भला है कि राम-नाम (१) के लेने से तुलसीदास सरीखे भी तर जाते हैं ॥ ४ ॥

[२५२]

बाप आपने करत मेरी घानी घटि गई।
लालची लबार की सुधारिये बारक बलि रावरी भलाई सबही की भली भई ॥ १ ॥
रोगवस तनु कुमनोरथ मलिनमन पर अपवाद मिथ्या-वाद वानी हई।

---

(१) भागवत में शुकदेवजी ने कहा है—

भजन्ति ये विष्णुमनन्यचेतसस्तथैव तत्कर्मपरायणा जनाः। विनष्टरागादिविमत्सरा नरास्तरन्ति संसारसमुद्रमश्रमम् ॥

अर्थात् जो मनुष्य विष्णु भगवान् को एकाग्रचित्त से भजते हैं और उनके ही पूजा-पाठ आदि काम में लगे रहते हैं उनका रागद्वेष जाता रहता है और वे संसार-समुद्र से बिना श्रम पार हो जाते हैं।

साधन की ऐसी विधि साधन बिना न सिधि बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ॥ २ ॥

पतित पावन हित आरत अनाथनि को निराधार को अधार दीनबंधु दई ।

इन्ह में न एको भयो बूझि न जूझ्यौ न जयो ताहि ते त्रिताप तयो लुनियत बई ॥ ३ ॥

स्वाँग सूधो साधु को कुचालि कलि ते अधिक परलोक फीकी मति लोक रंग रई ।

बड़े कुसमाज राज आजु लौं जो पाए दिन महाराज केहू भाँति नाम ओट लई ॥ ४ ॥

राम नाम को प्रतापु जानियत नीके आपु, मोको गति दूसरी न विधि निरमई ।

खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु, रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ ५ ॥

हे पिताजी ! अपने कर्तबों से मेरी बात बिगड़ गई है, तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ (मुझ सरीखे) लालची-लबार की (बात) एक बार सुधार दो। तुम्हारी भलाई से सबकी बात सुधरी है (अर्थात् तुम्हारी कृपा बिना जीव क्या कर सकता है। भली, बुरी का होना सब तुम्हारे ही हाथ है) ॥ १ ॥ (मेरी कैसी बिगड़ी है सो सुनो) शरीर तो रोग के वश रहता है और (विषय आदि के) बुरे बुरे मनोरथों के कारण मन मैला हो रहा है (सो सत्कर्म में नहीं लगता) और दूसरों की निन्दा करने और झूठ बोलने से वाणी नष्ट हो गई (अर्थात् मन्त्र जपने लायक नहीं रही फिर मुझसे क्या हो सकता है) और (योग आदि) साधनों की ऐसी रीति है कि बिना साधन के उनकी सिद्धि नहीं होती, पर हे कृपानिधान ! तुम्हारी कृपा अनोखी है (कि चाहे जैसा पापी शरण में आवे उसे तार देना) वही मेरी बिगड़ी बात को बना देगी ॥ २ ॥ क्योंकि पापियों के पवित्र करनेवाले, दुखिया और अनाथों के हितकारी और

जिनको (यमलोक जाने में) किसी का सहारा नहीं है उनको (स्वर्ग के लिए) सहारा देनेवाले और ग़रीबों के भाई ऐसे तुम्हीं दयालु हो, परन्तु (पतित, आरत, अनाथ, निराधार और दीन) न तो इनमें से मैं एक भी हुआ और न विचार कर शत्रुओं से जूझा (अर्थात् ज्ञान की सेना साज कर न कभी मोह आदि से लड़ा) और न उनसे जीता (वरन् उनके कहे में आकर उलटा विषय-वासना में पड़ गया) इसलिए तीनों तापों से तच रहा हूँ। सो जैसा बोया वैसा काट रहा हूँ॥ ३॥ मेरा स्वाँग तो सीधे साधु का सा है (अर्थात् ऊपर से तो मैंने तिलक-छाप लगा कर तुलसी की माला पहर साधु का सा झूँठा वेष बना रक्खा है) और मेरी (चोरी, ठगई, मिथ्या, अपवाद आदि) चाल कलियुग से भी बढ़ कर है क्योंकि (विराग, ज्ञान आदि) परलोक की (बातें) फीकी लगती हैं और मेरी बुद्धि (स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि) संसार के रङ्ग (अर्थात् विषय आदि) में रङ्ग रही है। सो हे राजन्! ये बड़े बुरे सामान हैं और आज तक के दिन तो पाये गये (अर्थात् गये गुज़रे) पर हे महाराज! ज्यों त्यों करके अब तुम्हारे नाम का सहारा लिया है॥ ४॥ हे राम! अपने नाम का प्रताप तुम ही अच्छी तरह जानते हो (कि जिस पापी ने सहारा लिया वही तर गया और मैं भी तर जाऊँगा)। मेरे लिए तो विधाता ने सिवा राम-नाम के दूसरी गति रची हो नहीं है, पर तुम्हारे रोस होने के लायक़ तो मेरे करोड़ों बुरे बुरे कर्तब हैं और प्रसन्न होने के लायक़ (केवल) तुलसीदास की एक बेशरमाई है (अर्थात् तुम्हारा सहारा लेने पर भी मैं बुरे कर्म करता हूँ और फिर सन्मुख होकर बेशरमाई से अपने उद्धार की विनती करता हूँ)॥ ५॥

शब्दार्थ—बादि = वृथा।

[२५३]

राम राखिए सरन राखि आए सब दिन।
विदित तिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो आरत प्रनतपाल को है प्रभु बिन॥ १॥
लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी नाथ पै अनाथनि सों भए न उरिन।
स्वामी समरथ ऐसो हों तिहारो जैसो तैसो काल चाल हेरि होति हिए घनी घिन॥ २॥

खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार तुलसी तू मेरो बलि कहियत कि न।
जाहि सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल महाराज राम रावरी सों तेहि छिन ॥ ३ ॥

हे राम! तुम मुझे अपनी शरण में रक्खो क्योंकि सदा से तुम (ग़रीबों को) शरण में रखते आये हो। यह बात प्रकट है कि तीनों लोकों और तीनों कालों में तुम सरीखा दयावान् दूसरा कोई नहीं है और दुखी भक्तों का पालनेवाला प्रभु के बिना कौन है (अर्थात् कोई भी नहीं है) ॥ १ ॥ तुमने आलसी, कर्महीन और पापी इनका लाड़ किया, इनको पाला-पोसा और राज़ी रक्खा तिस पर भी हे नाथ! तुम अनाथों से उऋण नहीं हुए। हे स्वामी! तुम सब लायक़ हो और मैं जैसा (भला बुरा) हूँ तैसा तुम्हारा ही हूँ (अंत में तुम्हें हो तारना पड़ेगा। जो कहो कि ऐसा क्यों घबराया जाता है तहाँ कहते हैं कि कलि) काल की बुरी चाल देख कर मेरे मन में बड़ी घिन होती है ॥ २ ॥ मैं बलैयाँ लूँ तुम प्रसन्न होकर वा दुखी होकर, हँस कर वा रोस करके किसी तरह एक बार यों क्यों नहीं कह देते कि हे तुलसी! तू मेरा है। इतना कहते ही संसारी दुःख का जड़ से नाश हो जायगा और हे महाराज राम! तुम्हारी सौगन्द उसी क्षण से (सब) सुख सामने आकर मिलेंगे ॥ ३ ॥

[२५४]

राम रावरो नामु मेरो मातु पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहबु सखा सुखद राम नाम प्रेमु अविचल वितु है ॥ १ ॥
सत कोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि वामदेव नाम घृतु है।
नामु को भरोसो बलु चारिहूँ फल को फलु, सुमिरिए छाँड़ि छलु भलो कृतु है ॥ २ ॥

स्वारथ साधक परमारथदायकु नाम राम, नाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाउ कही साँचियै परैगी सही सीतानाथु नाथु नित चितहूँ को चितु है ॥ ३ ॥

हे राम! तुम्हारा नाम मेरा माता पिता है और हे राम! तुम्हारे नाम से अटल प्रेम ही मेरा कुटुम्ब, सम्बन्धी, गुरु, स्वामी, सुखद मित्र और धन है ॥ १ ॥ तुम्हारे सौ करोड़ (१) चरित्ररूपी अपार दही के समुद्र को बिलो कर शिवजी ने उसमें से नामरूप घृत काढ़ लिया है। नाम का भरोसा और बल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों फलों का फल है, उसे कपट छोड़ कर सुमरना चाहिए। वही अच्छा यज्ञ है ॥ २ ॥ अपने स्वारथ को साधनेवाला और परमारथ का देनेवाला नाम ही है। हे राम! नाम सरीखा हित करनेवाला और दूसरा नहीं है। तुलसी ने स्वभाव से कही है सो (यह बात वेद-पुराणों में जाँचने से) (२) सच्ची हो सही पड़ेगी। हे जानकीजी के पति! तुम्हारा नाम सदा चित्त का भी चित्त है (अर्थात् चैतन्य को भी चैतन्य करनेवाला है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—वितु = धन। क्रतु = यज्ञ।

---

(१) ऐसा लिखा है कि वाल्मीकिजी ने शतकोटि रामायण लिखी और उसे शिवजी के पास सुनाने के लिए ले गये। जब यह समाचार देवताओं को विदित हुआ कि कैलास पर्वत पर रामायण होती है तब सब देवता सुनने के लिए वहाँ पहुँचे। शङ्कर ने आदर से उन्हें वहाँ बैठाया और एक वर्ष में कथा समाप्त हुई। कथा सुन सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवजी से कहा कि रामायण में से हम लोगों को भी भाग मिले तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध करें। महादेवजी ने प्रसन्न होकर ३३ कोटि, ३३ लाख, ३३ हज़ार, ३३३ श्लोक और १० अक्षर ब्रह्मादि देवताओं को दिये सो वे लेकर स्वर्ग को गये और इतने ही शेषजी को दिये, सो पाताल को ले गये और इतना ही भाग मुनियों को दिया सो सात द्वीप और नौ खण्डों में बँट गया अब केवल दो अक्षर (राम) रह गये। इनके तीन भाग हो नहीं सकते थे सो महादेवजी ने लेकर इन्हें अपने हृदय में धरा।

(२) ये ये प्रयोगास्तंत्रेषु तैस्तैर्यत्साध्यते फलम्। तत्सर्वं सिध्यति क्षिप्रं रामनामानुकीर्तनात् ॥ अर्थात् जो जो प्रयोग तन्त्रों में कहे हैं उन उनसे जो फल होता है वह सब राम-नाम के कीर्तन से शीघ्र सिद्ध हो जाता है।

अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः। परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥ शिवजी का वचन है कि पुण्यात्मा हो वा संपूर्ण दोषों का पात्र पापी हो राम-नाम के कहने से परमपद पाता है।

[२५५]

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है।
सुमिरे त्रिविध घाम हरत पूरत काम सकल सुकृत सरसिज सरु है॥ १॥
लाभहू को लाभ सुखहू को सुख सरबसु पतितपावन डरहु को डरु है।
नीचेहुँ को ऊँचेहुँ को रंकहुँ को रायहुँ को सुलभ सुखद आपनो सो घरु है॥२॥
वेदहुँ पुरानहुँ पुरारिहुँ पुकारि कह्यो, राम नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है।
ऐसे राम नाम सों न प्रीति न प्रतीति मन मेरे जान जानिबो सोइ नर खरु है॥ ३॥
नाम सों न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु साहिब सुधी सुसील सुधाकरु है।
नाम सों निबाहु नेहु दीन को दयालु देहु दासतुलसी को बलि बड़ो वरु है॥ ४॥

हे राम! तुम्हारा नाम संत लोगों को कल्प-वृक्ष है। वह स्मरण करने से तीनों तापों को दूर करता है, सब कामनाओं को पूरी करता है और (पूजा, पाठ, जप, तप आदि) सब पुण्यरूपी कमलों का तालाब है (अर्थात् जैसे बिना तालाब कमल नहीं रह सकते ऐसे ही नाम बिना पुण्य नहीं ठहर सकता। पाप उसका नाश कर देता है)॥ १॥ वह लाभ का भी लाभ है (अर्थात् उससे बढ़कर कोई लाभ नहीं है) और सुखों का भी सरबस अर्थात् पूरा पूरा सुख है (भाव—उससे बड़ा कोई सुख नहीं है) और पापियों को पवित्र करनेवाला और डर कहिए मृत्यु को भी डरानेवाला है (अर्थात् राम के नाम से काल भी डरता है)। नीच (चांडाल) को और ऊँच (ब्राह्मण) को, दरिद्री को और राजा को, सबको सहज में सुख का देनेवाला अपने

घर के समान है (अर्थात् जैसे अपने घर में किसी बात का क्लेश नहीं होता ऐसे ही राम नाम के जपने में कुछ इस बात का क्लेश नहीं होता कि न्हाओ, धोओ, पूजा की सामग्री इकट्ठी करो इत्यादि) वेद, पुराण और शिवजी ने पुकार पुकार कर कहा है कि राम नाम से प्रेम करना (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों फलों का भी फल है। ऐसे राम नाम की जिसके मन में प्रीति और प्रतीति नहीं है मेरी समझ में उस मनुष्य को गधा जानना चाहिए ॥ ३ ॥ क्योंकि नाम की बराबर माता, पिता, मित्र, हित करनेवाला, सम्बन्धी, गुरु और स्वामी कोई नहीं है और वह मङ्गल करनेवाला और चन्द्रमा के समान सुन्दर शीलवान् (अर्थात् अमृत बरसा कर प्रसन्न करनेवाला) है सो हे दयालु ! मैं बलि जाऊँ तुम्हारे नाम से जिसमें प्रेमपूर्वक मुझ ग़रीब का निर्वाह हो जाय ऐसा बड़ा भारी वर तुलसीदास को दो ॥ ४ ॥

[२५६]

कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम रस न रहत ।
तुमसे सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुसाँसति सहत ॥ १ ॥
करत विचार, सार पैअत न कहूँ कछु, सकल बड़ाई सब कहाँ ते लहत ।
नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर, हेरि हारि कै कै हहरि हृदयउ दहत ॥ २ ॥
सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तो थोड़ी ही है सुधरैगो बिगरियो बलि राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥ ३ ॥

हे राम ! कहे बिना तो रहा नहीं जाता और कहने में रस नहीं रहता है। तुम सरीखे अच्छे स्वामी (कि जिनके सामने जाते ही सब पाप भय दूर हो जायँ) सो तुम्हारो ओट पाकर भी बुरा या भला मैं तुम्हारा दास काल और कर्म के बुरे क्लेशों को सहता हूँ (अर्थात् कलियुग तो मेरे पीछे काम, क्रोध आदि को लगाता है जिनके

कारण मैं दण्ड सहता हूँ और तुम तमाशा देखते हो यह नहीं चाहिए) ॥ १ ॥ विचार करता हूँ पर कहीं भी कुछ भेद नहीं पाता कि (वाल्मीकि, नारद, निषाद आदि) सब कहाँ से बड़ाई पाते हैं (अर्थात् किस स्वामी के करे से नीच ऊँचे हो गये। पर वेद, पुराण से) तुम्हारी महिमा सुन समझ कर (कि बड़े बड़ नीचों को दर्शन-मात्र से तार दिया। और अपनी ओर देख कर (कि मैं भी तुम्हारी शरण हूँ और मुझ पर कृपा नहीं करते) हार मान ली है और घबराहट से मेरी छाती जलती है (इसी से कटु वचन कहता हूँ) ॥ २ ॥ (तुमसे इसलिए मैं बार बार कहता हूँ कि) न मेरे कोई मित्र है, न कोई सुन्दर सेवक है, न सुन्दर स्त्री है और न स्वामी है। मेरे तो माता-पिता तुम ही हो (तुम्हारा ही आसरा है) तुलसी सच्ची कहता है। हे राम ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ मेरी तो थोड़ी सी है सुधरो या बिगड़ो पर तुम्हारी सौगन्द खाता हूँ कि मैं (तुम्हारी शरण में रह कर) तुम्हारी बात रही चाहता हूँ (अर्थात् कोई यह न कहे कि राम की शरण जाने पर भी कुछ नहीं हुआ। उनकी बड़ाई वेद पुराणों में झूठ है कि वे पतितपावन और ग़रीबनिवाज हैं) ॥ ३ ॥

[२५७]

दीनबंधु दूरि किये दीन को न दूसरो सरन।
आपको भले हैं [illegible] को कोऊ कहूँ सब को भलो है
राम रावरो चरन ॥ १ ॥
पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर काँच ते कृपानिधान
किए सुवरन।
दंडक पुहिमि पायँ परसि पुनीत भई उकठे विटप लागे
फूलन फरन ॥ २ ॥
पतितपावन नाम वामहूँ दाहिनो देव दुनी न दुसह दुख
दूषन दरन।
सीलसिंधु तोसो ऊँची नीचियो कहत सोभा भलो तोसो
तुही तुलसी की आरतिहरन ॥ ३ ॥

हे दीनबंधु ! तूने दूर तो कर दिया है पर इस ग़रीब को दूसरी शरण नहीं है

क्योंकि अपनी भलाई करने को तो सब भले हैं (अर्थात् अपना भला तो सब स्वामी करते हैं) पर अपने दासों का भला करनेवाला कोई कहीं कहीं है। हे राम ! सबको भले तो तेरे ही चरण हैं (अर्थात् सबका भला तो तेरे चरणों का ध्यान करने से ही होता है) ॥ १ ॥ पत्थर (अहिल्या), पशु (वानर), पतंग (गिद्ध), कोल, भील, राक्षस (विभीषण) इनको हे कृपानिधान ! तूने काँच से सोना कर दिया (अर्थात् नीचों को बड़े पद का अधिकारी बना दिया) और दण्डक वन की भूमि (कि जिसके सब वृक्ष शुक्राचार्य्य के शाप से भस्म हो गये थे) तेरे चरणों का स्पर्श होते ही पवित्र हो गई और सूखे वृक्ष फूलने फलने लगे ॥ २ ॥ तेरा पवित्र नाम दायें और बायें (अर्थात् सन्मुख और विमुख दोनों) पतितों को पवित्र करनेवाला है और हे देव ! तुझसा दुनिया में दुःसह दुःखों और पापों का नाश करनेवाला नहीं है। तू शील का समुद्र है इसलिए तुझसे नीची ऊँची कहने में भी शोभा है और तुलसी का दुख हरनेवाला तुझसा भला तूही है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—पाहन = पत्थर। पुहुमि = पृथ्वी। उकठा = सूखा।

[२५८]

जानि पहिचानि मैं विसारे हों कृपानिधान एतो मान ढीट हों उलटी देत खोरि हों।

करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन तासों क्यों हूँ जुरी सो अभागो बैठे तोरि हों ॥ १ ॥

मोसे दोस कोस को भुवनकोस दूसरो न आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हों।

गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हों ॥ २ ॥

बड़ो साईं-द्रोही न बराबरी मेरी को कोऊ नाथ की सपथ किए कहत करोरि हों।

दूरि कीजै द्वार ते लवारु लालची प्रपंची सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहों ॥ ३ ॥

राखिए नीके सुधारि नीचु को डारिये मारि दुहुँ ओर की विचारि अब न निहोरिहों।

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहों॥ ४॥

हे कृपानिधान! मैं जान-पहचान कर भी (कि जीव ब्रह्म का पूर्व सम्बन्ध है) तुम्हें भूल गया हूँ और घमण्ड के मारे इतना ढीठ हो रहा हूँ कि उलट कर तुम्हें ही दोष देता हूँ। जिससे प्रीति जोड़ने के लिए योगी लोग उपाय करते हैं उससे ज्यों त्यों कर (प्रीति) जुड़ गई थी सो मैं ऐसा अभागा कि उसे भी तोड़ बैठा हूँ॥१॥ मुझ सरीखा दोषों का ख़ज़ाना भुवनों के ख़ज़ाने में (अर्थात् १४ भुवनों में भी) दूसरा नहीं है क्योंकि अपनी समझ से मैं ढूँढ़ कर देख आया हूँ। गाड़ी के कुत्ते की भाँति (अर्थात् जैसे गाड़ी के पीछे लगा कुत्ता कभी गाड़ी के साथ चलता है कभी शिकार आदि देख भाग जाता है फिर आ जाता है ऐसे ही) मैं छिन छिन में तो माया, मोह की बड़ाई को छोड़ता हूँ और छिन भर में फिर उसी को करने लगता हूँ (अर्थात् छिन में तो माया और मोह की बड़ाई देख तुमसे विमुख हो विषयों में फँस जाता हूँ और जब वहाँ दुःख देखता हूँ तब छिन में विषयों को छोड़कर फिर तुम्हारे सम्मुख हो जाता हूँ)॥ २॥ स्वामी से अधिक द्रोह करने में मेरी बराबर दूसरा कोई नहीं है मैं नाथ की करोड़ों सौगन्दें खाकर कहता हूँ। सो या तो मुझे अपने द्वार से (निकाल कर) दूर कर दो (कि जिसमें तुम्हारे सामने न रहूँ) नहीं तो मैं ऐसा उचक्का, लोभी और छल छिद्रों का भरा हूँ कि अमृत सा जो पानी है उसे सुअरिया की तरह घंघोर डालूँगा (अर्थात् सामने रहूँगा तो निर्मल जल के समान तुम्हारे यश को गँदला कर दूँगा और सबसे कहता फिरूँगा कि रामजी का पतित-पावन यश केवल कहने का ही है करने का नहीं है)॥३॥ जो रखना है तो अच्छी तरह से सुधार कर (अर्थात् मेरे अंतःकरण को शुद्ध करके) रक्खो। न हो तो मुझ दुष्ट को मार डालो (जैसे राजा अपने से विमुख को मार डालता है) सो दोनों ओर की विचार लो (कि मुझे शरण में रखना या नहीं रखना) मैं अब तुम्हारा निहोरा नहीं करूँगा। तुलसी ने बार बार लकीर खींच कर सच्ची बात कह दी है जो देर करोगे तो नाम की महिमा की जो नाव है

उसे डुबो दूँगा (अर्थात् सब जगह कहता फिरूँगा कि मैंने बरसों तक राम नाम जपा कुछ नहीं हुआ। उसका आसरा करना वृथा है फिर कोई तुम्हारा नाम न लेगा ॥ ४ ॥

[२५६]

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरेगी मेरी कहौं बलि वेद किन लोकु कहा कहैगो ।
प्रभु को उदास भाउ जन को पाप प्रभाउ दुहूँ भाँति दीनबंधु दीन दुख दहैगो ।
मैं तो दियो छाती पवि लयो कलिकाल दवि साँसति सहत परवस को न सहैगो ।
बाँकी विरुदावली बनैगी पाले ही कृपाल अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो ॥२॥
करमी धरमी साधु सेवक विरतरत आपनी भलाई थलु कहाँ कौन लहैगो ।
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ॥३॥
काल पाय फिरत दसा दयालु सब ही की, तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।
वचन करम हिये कहौं राम सौंह किए तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥ ४ ॥

(जो कहो कि मैं तेरा भला किया चाहता हूँ तू आपही अपना बिगाड़ करता है तहाँ कहते हैं कि, तेरी सुधारी हुई मेरी (दशा) मेरे बिगाड़ने से बिगड़ जायगी तो मैं तेरी बलैयाँ ले कहता हूँ कि वेद और संसार क्या कहेगा (क्योंकि जब तूने बना दी और उसे मैंने बिगाड़ दिया तब वेद-विदित तेरी महिमा झूँठी हो जायगी और संसार मुझे ही ईश्वर मानेगा, कोई तेरा नाम न लेगा। उधर) प्रभु का तो उदास भाव (अर्थात् मेरी ओर कृपादृष्टि न करना) और (इधर) मुझ भक्त का पाप-प्रभाव (अर्थात् बड़ा पापी होना) हे दीनबन्धु ! दोनों भाँति से यह ग़रीब दुःख से जलेगा ॥१॥ मैंने तो अपनी छाती पर वज्र रख दिया है (अर्थात् मैंने तो वज्र की छाती कर

ली है) क्योंकि कलियुग ने मुझे दबा लिया है और मैं दुःख पा रहा हूँ सो जो पराये वश पड़ा है ऐसा कौन हज़ारों क्लेश नहीं सहेगा (अर्थात् पराधीन होने से सबको क्लेश सहने ही पड़ते हैं कुछ नई बात नहीं) परन्तु हे कृपालु ! अपनी बाँकी विरदावली से मुझे तो पालते ही बनेगा (नहीं तो तेरे पतित-पावन आदि यश में बट्टा लग जायगा। तुझे भले ही अब दया न आवे पर) अंत में जब मेरा हाल याद करेगा (अर्थात् जब यम के दूत मुझे पकड़ेंगे और मैं त्राहि त्राहि कर तुझे पुकारूँगा) तब तेरा यह मन नहीं रहेगा (भाव—तू अवश्य दौड़ कर मुझे छुड़ावेगा) ॥ २ ॥ कर्मी (जप तप, आदि के करनेवाले), धर्मी (वर्णाश्रम का धर्म पालनेवाले), साधु, सेवक और वैरागी ये अपनी अपनी भलाई से कौन कहाँ जगह नहीं पावेंगे (अर्थात् सब अपने अपने कर्मानुसार स्वर्ग आदि पावेंगे) पर तेरे मुख फेरने से मुझ सरीखे कायर, कपूत, खोटे, दुबले, विषय में सने हुए को कौन स्वीकार करेगा ॥ ३ ॥ यों समय पाकर तो सबकी ही दशा पलटती है पर हे दयालु ! तेरे बिना मुझे कभी कोई नहीं चाहेगा। हे राम ! मैं मन, वचन और कर्म से सौगन्द खाकर कहता हूँ कि तुलसीदास तो नाथ के निभाने से ही निभेगा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—पवि = वज्र। हेरना = स्मरण करना। लटपटा = कामी।

[२६०]

साहब उदास भये दास खास खीस होत, मेरी कहा चली हों बजाइ जाइ रह्यो हों।
लोक में न ठाउँ परलोक को भरोसो कौन हों तो बलिजाउँ राम नाम हीते लह्यो हों ॥१॥
करम सुभाउ काल काम कोह लोभ मोह ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हों।
छोरिबे को महाराज बाँधिबे को कोटि भट, पाहि प्रभु पाहि तिहुँ ताप पाप दह्यो हों ॥२॥
रीझि बूझि सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार, दूध को हो जरयो पिअत फूँकि फूँकि मह्यो हों।

रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो, जूठनि को लालची चहों न दूध नह्यो हों ॥३॥

अनत चह्यों न भलो सुपथ सुचाल चल्यो, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हों।

तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार आपनों सो नाथहूँ सों कहि निरवह्यो हों ॥४॥

स्वामी के उदासीन होने से (अर्थात् रुख फेर लेने से) ख़ास दास को भी खिसियाना पड़ता है फिर मेरी क्या चली है। मैं तो डङ्का बजा कर जा रहा हूँ (अर्थात् मनमाने बुरे कर्म कर रहा हूँ)। जब कि मेरा संसार में ही ठिकाना नहीं है तब परलोक का क्या भरोसा। हे राम ! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ मैंने तो तुम्हारे नाम का ही सहारा ले रक्खा है ॥१॥ (अपने बुरे) कर्म, (कुटिल) स्वभाव, (कलियुग सरीखा) काल और काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी बड़े भारी ग्रहों ने और घोर दरिद्रता ने मुझे ख़ूब ज़ोर से पकड़ रक्खा है। सो हे महाराज ! छुड़ाने के लिए तो तुम (अकेले) हो और बाँधने के लिए करोड़ों योधा हैं सो हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो क्योंकि मैं तीनों तापों और पापों से तच रहा हूँ ॥ २ ॥ (जो कहो कि किसी दूसरे से क्यों नहीं कहता तहाँ कहते हैं कि हम सरीखों की कहीं दाल नहीं गलेगी) हम सबकी तो रीझ-बूझ, प्रीति और प्रतीति एक तुम्हारे ही द्वार पर होगी। (जो कहो कि हम पर ही भरोसा है तो चुपका होकर बैठ, क्यों बार बार पुकारता है तहाँ कहते हैं कि यह तो सच है) पर मैं दूध का जला छाँछ को फूँक फूँक कर पीता हूँ क्योंकि मैं पुकारता पुकारता लट गया, मेरी जाति-पाँति और भाँति (अर्थात कुल की मर्यादा) सब घट गई (किसी काम का नहीं रहा)। हे प्रभो ! मैं तो तुम्हारी केवल जूठन का लालची हूँ कुछ दूध में नहाना नहीं चाहता हूँ (अर्थात् बड़ी बड़ी कामना नहीं चाहता; थोड़ी सी भक्ति का भूखा हूँ फिर क्यों देर लगा रक्खी है) ॥ ३ ॥ मैं और जगह (अर्थात् दूसरे देवताओं की शरण जाकर धर्मज्ञान के) सुन्दर मार्ग में अच्छी चाल चल कर (अर्थात् अच्छी तरह निर्वाह कर) अपना भला नहीं चाहता हूँ (क्योंकि कोई शरणागत-पाल नहीं है। सब ज़रा से चूकने पर निकाल बाहर करेंगे) और यहाँ (तुम्हारी शरण में) बिना चाहना का भी अच्छा हूँ इस बात को मैं जी में अच्छी तरह जानता हूँ।

तुलसी ने समझ कर मन को बार बार समझा दिया है (कि भगवान् की शरण छोड़ कहीं मत जा) और अपना सा (जहाँ तक हुआ) नाथ से कह कर भी निवट गया (आगे तुम्हारे हाथ है जो चाहो सो करो) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कोह = क्रोध । गहनि = कड़े ।

[२६१]

मेरी न बने बनाये मेरे कोटि कलप लौं राम रावरे बनाये बने पल पाउ में ।
निपट सयाने हो कृपानिधान कहा कहौं लिये बेर बदलि अमोलमनि आउ में ॥ १ ॥
मानस मलीन करतब कलिमल पीन, जीह हूँ जप्यो नाम बक्यो आउबाउ में ।
कुपथ कुचाल चल्यौ भयो न भूलिहुँ भलो, बाल दसाहू न खेल्यो खेलत सुदाउ में ॥ २ ॥
देखी देखा दंभ ते कि संग ते भई भलाइ, प्रगटि जनाइ कियो दुरित दुराउ में ।
राग रोष द्वेष पोषे गोगन समेत मन इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ में ॥ ३ ॥
आगिलो पाछिलो अब हूँ को अनुमानहीं ते बूझिअत गति कछु कीन्हों तो न काउ में ।
जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसीहू झूठे साँचे आसरो साहब रघुराउ में ॥ ४ ॥

हे राम ! मेरे बनाने से मेरी करोड़ों कल्प तक नहीं बनेगी और हे राम ! तुम्हारे बनाने से चौथाई पल में बन जायगी । हे कृपानिधान ! तुम तो (स्वयं) बड़े चतुर हो; तुमसे मैं क्या कहूँ, मैंने अनमोल मणि के समान आयु के बदले में बेर ले लिये (अर्थात् सुन्दर मनुष्य तन पाकर तो तुम्हारी भक्ति चाहिए थी सो इतनी आयु विषय में खो दी) ॥ १ ॥ (कैसे खो दी कि विषयों से) मेरा मन मैला

हो गया और जो काम किये सो भी कलियुग के पापों के कारण बढ़ते गये और जीभ ने भी तुम्हारा नाम नहीं जपा और मैं तो (जन्म भर) आँय बाँय ही बकता रहा हूँ। (लोक-वेद-प्रतिकूल) बुरे मार्ग में मैं तो कुचाल ही चलता रहा हूँ (अर्थात् पाप ही करता रहा हूँ) और भूल कर भी मुझसे किसी का भला नहीं हुआ और बचपन में भी खेलते समय मैं सुन्दर दाँव (अर्थात् रामलीला आदि) नहीं खेला ॥ २ ॥ (दूसरों की) देखा-देखी या पाखंड से वा संग से (जो कुछ) भलाई हो भी गई तो उसे मैंने सबको प्रकट जता दिया (कि मैंने ऐसे ऐसे पुण्य किये हैं) और जो पाप किये थे उन्हें छिपाया (अर्थात् किसी से भी नहीं कहा) और मैंने राग, रोष और द्वेष इनसे इन्द्रियगण समेत मन को ख़ूब मोटा कर लिया और इनकी ही भक्ति की और इन्हीं से प्रेम किया ॥ ३ ॥ अगली पिछली और हाल की (अपनी दशा) मैंने अटकल से ही जान ली कि कुछ कोई सा भी तो (भला) काम मैंने नहीं किया। परन्तु संसार कहता है (कि तुलसी रघुनाथजी का है) और तुलसी को भी (प्रणतपाल आदि महिमा सुन कर) रामजी की प्रतीति और उनसे प्रीति है सो मैं झूठा होऊँ वा सच्चा (जो कुछ हूँ) हे स्वामी रघुनाथजी! तुम्हारे आसरे हूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—आउ = आयु, उमर। पीन = मोटा। आउबाउ = बेमतलब की बात। दुरित = पाप। गो = इन्द्रियां।

[२६२]

कह्यो न परत बिनु कह्यो न रह्यो परत बड़ो सुख कहत बड़े सो बलि दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी प्रभु की पुनीतता आपनी पापपीनता ॥ १ ॥
दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता।
नाथ गुनगाथ गाए हाथ जोरि माथो नाए, नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥ २ ॥
यही दरबार है गरब ते सरब हानि, लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।

मोटो दसकन्ध सो न दूबरो विभीषन सों, बूझि परी रावरे की प्रेमपराधीनता ॥ ३ ॥

यहाँ की सयानप अयानप सहस सम, सूधे सतभाय कहे मिटति मलीनता ।

गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किए, होइगी न साईं सों सनेह हित हीनता ॥ ४ ॥

सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु सुमिरत होत कलिमल छलछीनता ।

करुनानिधान वरदान तुलसी चहत सीतापति-भगति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥ ५ ॥

हे भगवन्! (जो अपना कर्म विचारता हूँ तो) कहा भी नहीं जाता और विना कहे रहा भी नहीं जाता परन्तु, मैं बलैयाँ लूँ, बड़े से अपनी ग़रीबी के कहने में बड़ा सुख चाहिए (छोटे मुँह से बड़ी बात अच्छी नहीं लगती)। स्वामी की तो बड़ी बड़ाई और अपनी छोटी छोटाई, फिर स्वामी की तो पवित्रता और अपने पापों की मुटाई॥ १॥ दोनों ओर की (निचाई उँचाई) विचार कर मन शरम के मारे सहमता है (अर्थात् पीछे को हटता है) पर स्वामी की सुन्दरता सुन कर (कि बड़े पतितपावन हैं) फिर सम्मुख होता है और हे नाथ! तेरे गुणों की कथा गाने से और हाथ जोड़ कर शिर नवाने से नीच भी निहाल हो जाते हैं यह तुझमें प्रीति की रीति निबाहने की चतुराई है॥ २॥ इस दरबार में अभिमान करने से सब (तरह की) हानि है और बड़ी सादगी और ग़रीबी करने में सुख और कल्याण का लाभ है। रावण सरीखा तो मोटा (अर्थात् प्रतापी नहीं) और विभीषण सरीखा दुबला (कहिए दीन) नहीं (पर जब वह शरण में आया और उसने प्रणाम किया तब रावण को बिना मारे ही विभीषण को लङ्का का अकंटक राज दे दिया) इसी से तेरा प्रेम से पराधीन होना मुझे जान पड़ा॥ ३॥ यहाँ (तेरे सामने) चतुराई छाँटना हज़ारों मूर्खता के समान है (भाव—चतुराई करने से नारद की सी दुर्दशा होती है)

और सीधे और सच्चे भाव से कहने से मलीनता मिट जाती है (अर्थात् पाप अवगुण सब मिट जाते हैं। और गति दे चुकने पर भी) तू गिद्ध, शिला (अहिल्या) शवरी को हर दिन याद करता रहता है इसलिए स्वामी से सनेह करने से हित की हानि नहीं होगी ॥ ४ ॥ सुमरन करने से तेरा नाम-रूप कल्पवृक्ष सब कामनाओं को देता है और उससे कलियुग के पाप और कपट नष्ट हो जाते हैं। हे करुणानिधान रामचन्द्र! तुलसीदास यह वरदान चाहता है कि तेरी भक्तिरूपी गङ्गाजी के जल में मछली की तरह मग्न रहे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—समीचीनता = सुन्दरता, बड़ाई। प्रवीनता = चतुराई। जोग = सुख, कल्याण, क्षेम। मिसकीनता = अरबी शब्द है इसका अर्थ बहुत सादगी का है।

[२६३]

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन जिय की।
रावरो भरोसो नाहु कै सुप्रेम नेम लियो रुचिर रहनि रुचि मति तिय की ॥ १ ॥
दुकृत सुकृत बस सबही सों संगु पर्यो परखी पराई गति आपनेहुँ किय की।
मेरे भले को गोसाईं पोच को न सोच हौंहू सक किये कहौं सौंह साँची सिय पिय की ॥ २ ॥
ज्ञानहुँ गिरा के स्वामी बाहर अन्तरजामी यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हिय की।
तुलसी तिहारो तुम्हीं पै तुलसी के हित राखि कहि हैं तो ह्वै हैं माखी घिय की ॥ ३ ॥

हे नाथ! मुझ भक्त के जी की ठीक ठीक जान लेना। मेरी बुद्धिरूपी स्त्री को तुम्हारा भरोसा है और उसने स्वामी (अर्थात् तुम्हारे) साथ प्रेम करने का नेम किया है और सुन्दर आचरण में उसकी रुचि है॥ १ ॥ पाप और पुण्य के वश सबका ही संग करना पड़ा (अर्थात् जैसे कर्म किये वैसे

ही वैसे लोगों का संग मिला) सो उन दूसरों की दशा भी परखी और अपनी करनी को भी परखा। पर मुझ नीच का तो स्वामी ने सब तरह से भला ही किया। मैं रघुनाथजी की सौगन्ध खाकर सच्ची सच्ची कहता हूँ ॥ २ ॥ तुम ज्ञान के और वाणी के स्वामी हो और बाहर-भीतर की जाननेवाले हो सो यहाँ (तुम्हारे सामने) मुँह और मन की बात क्यों छिपेगी। पर तुलसीदास तुम्हारा है और तुम तुलसीदास का हित करनेवाले हो जो इसमें मैं (कुछ कपट) रख कर कहता होऊँ तो मैं घी की मक्खी हो जाऊँगा (अर्थात् स्वयं तुरन्त नष्ट हो जाऊँगा) ॥ ३ ॥

[२६४]

मेरो कह्यो सुनि जिय पुनि भावै तोहिं करि सो।
चारिहुँ विलोचन विलोकु तु तिलोक महुँ तेरो तिहुँकाल कहु को है हितु हरि सो ॥१॥
नए नए नेह अनुभये, देह गेह वसि, परिखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो।
सुहृद समाज दगाबाजिहि को सौदा सूतु, जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो ॥२॥
विबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके देत एक गुन लेत कोटि गुन भरि सो।
करम धरम स्रम फलु रघुवर बिनु राखु को सो होम है ऊसर को सो बरिसो ॥३॥
आदि अंत बीच भलो भलो करै सबही को जाको जसु लोक वेद रह्यो है बगरि सो।
सीतापति सारिखो सुसाहब सीलनिधान कैसे कल परै सठ बैठो सो विसरि सो ॥४॥
जीव को जीवन प्रान को परमहित, प्रीतम पुनीत कृत नीच निदरि सो।

तुलसी तोको कृपाल जो कियो कोसलपाल चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

अरे तुलसी ! एक बार तू मेरा कहा सुन ले पीछे तुझे अच्छा लगे सो करियो । (दो बाहर की और दो भीतर की) अपनी चारों आँखों से तीनों लोकों में देख ले; तीनों कालों में भगवान् के समान तेरा हित करनेवाला कहाँ और कौन है (अर्थात् सुर, नर, मुनियों में कोई भी नहीं है) ॥ १ ॥ इस शरीररूपी घर में रह कर (स्त्रीपुत्रादिकों से) तेरे नये नये नेह पैदा हुए और तूने उनके भी कपटभरे प्रेम को परखा (कि विपत्ति में किसी ने सहारा नहीं दिया) और वह अन्त में खुल गया । मित्रों का समाज दगाबाज़ी का सौदासूत (कहिए लेन-देन का व्यवहार) है जब जिसका काम पड़ता है तब वह मिल कर पैरों पड़ता है । (और बिना स्वारथ कोई बात नहीं करता, यह तो मनुष्यों का हाल है) ॥ २ ॥ देवता बड़े चालाक हैं । तूने उनको अच्छी तरह पहचाना या नहीं ? वे कोटि-गुना भर लेते हैं, (अर्थात् जप, तप आदि में परिश्रम करा लेते हैं) तब एक गुना देते हैं (और जो करने में चूक हो जाय तो उलटा विघ्न कर देते हैं) सो रामजी के बिना कर्म, धर्म करने का फल कोरा श्रम है (और कुछ नहीं) । वह राख का सा होम है (अर्थात् जैसे बिना अग्नि के कोई राख में होम करे तो साकल्य वृथा जाय और फल कुछ न मिले) और ऊसर धरती पर बरसने के समान है (अर्थात् ऊसर धरती में बीज बोओ और उस पर कितना ही मेंह बरसे लेकिन उसमें बीज नहीं जमता है) ॥ ३ ॥ जो पहले (गर्भ में), पीछे (अर्थात् मरण के पीछे) और बीच में (अर्थात् जीवनपर्यन्त) भले हैं और सब ही का भला करते हैं और जिनका यश संसार और वेदों में फैल रहा है ऐसा रामचन्द्रजी सरीखा सुन्दर स्वभाव का तेरा साहब है उसे भूल कर रे मूर्ख ! तुझे बैठे बैठे कैसे चैन मिलेगा ॥ ४ ॥ जो जीवों का जिलानेवाला, प्राणों का परमहित करनेवाला, बड़ा प्यारा और जिसने (भील-सरीखे) नीचों को पवित्र किया उसका निरादर करता है । हे तुलसीदास ! उस कृपालु रामचन्द्र ने तेरे लिए जो चित्रकूट में चरित्र किया था (अर्थात् तुझे साक्षात् दर्शन (१) दिया था) उसे चेत कर मन में याद कर ले ॥ ५ ॥

[२६५]

तन सुचि मन रुचि मुख कहों जनु हों सिय-पी को ।

---

(१) गोसाईं जी के जीवनचरित्र में देखो ।

केहि अभाग जानो नहीं जो न होइ नाथ सों नातो नेहु न नीको ॥ १ ॥
जलु चाहत पावकु लहों विषु होत अमी को।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही मोहि कछु फहमु न तरनि तमी को ॥ २ ॥
जानि अंधु अंजनु कहै वन बाघिनि घो को।
सुनि उपचार विकार को सुविचारु करौं जब तब बुधि बल हरै ही को ॥ ३ ॥
प्रभु सों कहत सकुचात हों परों जिनि फिरि फीको।
निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जी को ॥ ४ ॥

हे राम! (मैं अपनी जान में) शरीर को पवित्र रखता हूँ और मन में चाहता हूँ और अपने मुख से कहता हूँ कि मैं सीताजी के पति रामचन्द्रजी का दास हूँ परन्तु मैं नहीं जानता कि किस अभाग से नाथ के साथ सुन्दर नाता और प्रेम नहीं होता ॥ १ ॥ मैं पानी चाहता हूँ और अग्नि मिलती है (अर्थात् मैं तो चाहता हूँ कि चित्त शांत हो सो तो नहीं होता, उलटा तीनों तापों से तचता है) और अमृत का ज़हर हो जाता है (अर्थात् अमृतरूपी जो परमार्थ साधन करता हूँ सो पाखण्ड आदि करने से वह जीव के मारने को विषरूप हो जाता है)। सन्तों ने जो कलियुग की कुचालें कही हैं (कि कलियुग की ऐसी चाल है कि परमार्थ होने नहीं पाता) सो वे सब सही हैं, मुझे सूर्य्य और अँधेरे की कुछ समझ नहीं है (अर्थात् आत्मज्ञान और अविद्या की पहचान नहीं है) ॥ २ ॥ (हे स्वामी! कलिकाल का एक तमाशा देख लो वह) मुझे (ज्ञान का) अंधा जान कर वन की सिंहनी के घी का अंजन बताता है (कि तू वन की सिंहनी के घी को आँखों में आँजे तो तेरी दृष्टि खुल जायगी सो अपने नेत्रों के) इस विकार का उपाय सुन कर जब मैं विचार करता हूँ (कि पालतू बाघिनी हो तो कदाचित् घी की आशा भी हो और वन की बाघिनी तो पास जाते ही खा जायगी, घी कैसा? अर्थात् कलियुग की प्रेरणा से विषयरूपी घी के लिए संसाररूपी वन की विषय-वासना-रूपी बाघिनी के पास कैसे जाऊँ, जाने में तो नुक़सान है) तब वह (कलियुग) हृदय में से बुद्धि का बल हर

लेता है (सो मुझे उसी की बताई दवा अर्थात् विषय-भोग ही अच्छा लगता है इसी से जानता हूँ कि तुम्हारी प्रीति में कलियुग ही बाधक है) ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! (एक बात है उसे) कहने में शरमाता हूँ कि कहीं मैं फिर फीका न पड़ जाऊँ (अर्थात् कहीं मेरी बात ख़ाली न पड़े) इससे मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ कि (कलि को) पास बुला कर मने कर दो कि वह तुलसीदास सरीखे जड़ जीव का ख़याल छोड़ दे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अमी = अमृत । फ़हम = समझ, ज्ञान । तरनि = (तरणि) सूर्य । उपचार = उपाय ।

[२६६]

ज्यौं ज्यौं निकट भयो चहौं कृपालु त्यौं त्यौं दूरि पर्‌यो हौं ।
तुम्ह चहुँ जुग रस एक राम हौं हूँ रावरो जद्यपि अघ अवगुनन्हि भर्‌यो हौं ॥१॥
बीच पाइ नीच बीचहीं छरनि छर्‌यो हौं ।
हौं सुवरन कुवरन कियो नृप ते भिखारि करि सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं ॥२॥
अगिनित गिरि कानन फिर्‌यों बिनु आगि जर्‌यो हौं ।
चित्रकूट गयें मैं लखी कलि की कुचालि सब अब अपडरनि डर्‌यो हौं ॥३॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खर्‌यो हौं ।
चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सों गुदरि निबर्‌यो हौं ॥४॥

हे कृपालु ! ज्यों ज्यों तुम्हारे पास होना चाहता हूँ त्यों त्यों दूर पड़ता जाता हूँ । हे राम ! तुम चारों युगों में एक रस हो और यद्यपि मैं पाप और औगुणों से भरा हूँ तो भी तुम्हारा हूँ ॥ १ ॥ (जब मैं अज्ञान से तुम्हारे विमुख था तब नीच (कलि) ने बीच कहिए मौक़ा पाकर मुझे बीच ही में ऐसे ऐसे छल करके छला कि सुवर्ण से कुवर्ण (कहिए राँगा, सीसे के बराबर) कर डाला (अर्थात् मैं कुन्दन के समान

सच्चिदानन्द था सो मेरे पीछे माया लगा कर दाग़ी कर दिया और मैं इन्द्रिय मन आदि के। (रोक कर शरीररूपी देश में राज्य करता था, सो इन्द्रियों को विषय में आसक्त करा के) राजा से भिखारी कर दिया और ज्ञानवान् से मूर्ख कर डाला (भाव—मेरी बुद्धि जो परमेश्वर में लग रही थी उसे संसार के विषयों में लगा दिया) ॥ २ ॥ (पहले) मैं अनगिनती पहाड़ और वनों में डोलता फिरा और बिना आग के ही जलता रहा (अर्थात् चित्त का शांत रहना तो दूर रहा उलटा ताप ने मुझे जलाया) पर जब मैं चित्रकूट गया तब देखा कि यह सब कलियुग की कुचालें हैं सो अब उसके भय से मैं डर गया हूँ (क्योंकि वह सबल है और मैं निर्बल हूँ) ॥ ३ ॥ मैं हाथ जोड़े खड़ा हूँ और स्वामी से माथा नवा कर कहता हूँ कि पहचान लेने से चोर जीव के। मार डालता है सो मैं तुलसी इस कथा के। (लोगों से) सुनकर और प्रभु से पुकार मचा कर निबट चुका (भाव—कलियुग पहचाना हुआ चोर है मुझे जान से मारे बिना नहीं छोड़ेगा तुम्हें भावे सो करो) ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गुहराना = पुकार मचाना।

[२६७]

पनु करि हैां हठि आजु ते राम द्वार परयो हों।
तूँ मेरो यहु बिन कहें उठिहों न जनम भरि प्रभु की सौंह करि निवरयो हों ॥ १ ॥
दै दै धक्का जमभट थके टारयो न टरयो हों।
उदर दुसह साँसति सहि बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकरयो हों ॥ २ ॥
हैां माचलु लै छूटि हों जेहि लागि अरयो हों।
तुम्ह दयालु बनिहैं दिये बलि बिलंबु न कीजे जातु गलानि गरयो हों ॥ ३ ॥
प्रगट कहत जों सकुचिये अपराध भरयो हों।
तो मन में अपनाइयै तुलसीहि कृपा करि कलि बिलोकि हहरयो हों ॥ ४ ॥

हे रामजी ! आज से मैं हठ से प्रण कर (अर्थात् धरना देकर तुम्हारे द्वार पर पड़ा हूँ और "तू मेरा है" वह कहाये बिना जन्म भर नहीं उठूँगा। मैं प्रभु की सौगन्ध खाकर निचंत होगया हूँ ॥ १ ॥ जो कहो कि तू न हटेगा तो हम धक्के देकर उठवा देंगे तहाँ कहते हैं कि पहले पाप के कारण जब मैं नरक में गया और यमपीड़ा को भोग चुका तब) यम के दूत मुझे धक्के दे देकर थक गये (कि खबरदार अब यहाँ मत आइयो) पर मैं टाला नहीं टला और संसार में बार बार जन्म लेकर (माता के) पेट की दुःसह पीड़ा को सहा (और बार बार नरक में गया) और नरक का निरादर कर (अर्थात् नरकवालों का नाक में दम करके) निकला हूँ (सो धक्के खाने में भी बड़ा पक्का हूँ। याद रखना तुम्हारे धक्कों से कभी नहीं टलूँगा) ॥ २ ॥ मैं तो जिस लिए मचला हूँ और अड़ा हूँ उसे लेकर पीछा छोड़ूँगा । तुम दयावान् हो (जो मागूँगा) तुम्हें दिये ही बनेगा। मैं बलि जाऊँ अब देर मत करो। मैं दुःख से गला जाता हूँ (क्योंकि लोग कहेंगे कि ऐसे स्वामी के द्वार पर धरना देकर भी कोरा ही रहा, बड़ा अभागा है) ॥ ३ ॥ मैं अपराधों से भरा हूँ इसलिए जो (मुझे) अपना कहने में तुम सबके सामने शरमाते हो तो कृपा कर मुझ तुलसी को मन में ही अपना लो क्योंकि मैं कलि को देखकर घबरा रहा हूँ ॥ ४ ॥

[२६८]

तुम अपनायो तब जानिहों जब मन फिरि परिहै ।
जेहि सुभाय विषयन्हि लग्यो तेहिं सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छलु करिहै ॥ १ ॥
सुत की प्रीति प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै ।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों चहुँ बिधि चातक ज्यों एकटेक ते नहिं टरिहै ॥ २ ॥
हरषिहै न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै ।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलि कुचाल परिहरिहै ॥ ३ ॥
प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै नीर नयननि ढरिहै ।

तुलसिदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनद उमँगि उर भरिहैं ॥ ४ ॥

हे नाथ! तुमने मुझे अपनाया (अर्थात् अपना दास समझा) इस बात को मैं तब जानूँगा कि जब मेरा मन फिर जायेगा और हे नाथ! जिस स्वभाव से विषयों में लगा है उसी सहज स्वभाव से कपट छोड़ कर तुमसे स्नेह करेगा॥ १॥ जैसे बेटे से प्रीति करता है और मित्र का भरोसा करता है और राजा के डर से डरता है वैसे ही वह अपना सब स्वार्थ प्रभु से ही रक्खेगा (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वामी से ही होना मानेगा) और चारों ओर से पपीहे की भाँति एक टेक से नहीं हटेगा॥ २॥ बहुत आदर करने से खुश न होगा और अनादर करने से जल नहीं मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुःख, भलाई-बुराई इन सबों को एकसा समझेगा और कलियुग की बुरी चालों को छोड़ देगा॥ ३॥ प्रभु के गुण सुन कर मन में प्रसन्न होगा और आँखों में से जल गेरेगा (इतनी बातें जब होने लगेंगी) तब तुलसी को रामचन्द्रजी के दास होने का विश्वास होगा और इस प्रेम को देख कर आनन्द हृदय में भर कर उमंग जायगा (अर्थात् इतना आनन्द होगा कि हृदय में नहीं समावेगा)॥ ४॥

[२६९]

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसें नीर मीन कों।
सुख जीवन ज्यों जीव कों मनि ज्यों फनि कों हित ज्यों धन लोभलीन कों ॥ १ ॥
ज्यों सुभाय प्रिय नागरी नागर नवीन को।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥२॥
मनसा को दाता कहैं स्रुति प्रभु प्रवीन को।
तुलसिदास को भावतो बलि जाउँ दयानिधि दीजे दान दीन कों ॥ ३ ॥

हे राम! तुम मुझे भी कभी ऐसे प्यारे लगोगे जैसे मछली को पानी प्यारा लगता है, जीव को सुख से जीना प्यारा लगता है, साँप को मणि प्यारी लगती है। और लोभी को धन प्यारा लगता है॥ १॥ और जैसे तरुण पुरुष को स्वभाव से ही

नवयौवना स्त्री प्यारी लगती है। वैसे ही हे करुणाकर! (अपने चरणारविन्दों में) पवित्र प्रेम के पुष्ट होने की इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न कर दो ॥ २ ॥ वेद कहते हैं कि प्रभु मनसा के देनेवाले हैं और उनसा चतुर कौन है (कि जो पात्र कुपात्र विचारे बिना ही याचक-मात्र की कामना पूर्ण कर देते हैं) सो मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ, हे दयानिधान! तुलसीदास ग़रीब को भी मन का भावता दान दे दीजिए ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—फनि = सर्प। नवीन = तरुण। पीन = पुष्ट, दृढ़।

[२७०]

कबहुँ कृपा करि मोहूँ रघुबीर चितैहो।
भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि औगुन अमित बितैहो ॥ १ ॥
जनमु जनमु हैं मन जितो अब मोहिं जितैहो।
हों सनाथ ह्वैहों सही तुम्ह अनाथपति जौं लघुतहि न भितैहो ॥
विनय करों अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हो।
तुलसिदास कासों कहै तुम्हही सब मेरे प्रभु गुरु मात पितै हो।

हे रघुवीर! कभी दया कर मेरी ओर भी देखोगे और मन में अपना बुरा भला दास जान हे दयानिधि! मेरे अनगिनती औगुनों को भी बिता दोगे (अर्थात् माफ़ कर दोगे) ॥ १ ॥ और पहले जन्मों में तो मन मुझे जीतता रहा अब मुझे भी उससे जिताओगे। (ऐसा करने से) मैं सचों ही सनाथ हो जाऊँगा और तुम भी जो मेरी छोटाई (अर्थात् नीचपन) से न डरोगे तो अनाथों के पति कहाओगे ॥२॥ मैं अपने डर के मारे यों विनती करता हूँ क्योंकि तुम मेरे बड़े हितकारी हो। तुलसीदास और किससे कहे क्योंकि मेरे तो मालिक, गुरु, माता-पिता तुम ही हो ॥ ३ ॥

[२७१]

जैसो हों तैसो राम रावरो जनु जिनि परिहरिये।
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागतपालक ढरनि आपनीउ ढरिये ॥१॥
हों तो बिगरायल और को बिगरो न बिगरिये।

तुम सुधारि आए सदा सबकी सब हो विधि अब मेरियो सुधरिए ॥२॥
जग हँसिहै मेरे संग्रहे कत एहिँ डर डरिए।
कपि केवट कीन्हे सखा जेहिं सील सरल चित तेहिं सुभाय अनुसरिए ॥३॥
अपराधी तौ आपनो तुलसी न बिसरिए।
टूटियो बाँह गरे परै फूटे हूँ बिलोचन पीर होत हित करिए ॥४॥

हे राम! मैं जैसा हूँ तैसा तुम्हारा दास हूँ मुझे मत त्यागो। हे कृपासिन्धु! हे अयोध्यापति! हे शरणागतपाल! अपनी ढरनि पर ढरो (अर्थात् पापियों के पवित्र करने की जो तुम्हारी रीति है उस पर चलो) ॥ १ ॥ मैं तो औरों का बिगाड़ा हुआ हूँ (अर्थात् इन्द्रियों के विषयों ने मेरा नाश कर दिया है) सो मुझ बिगड़े हुए को और मत बिगाड़ो, क्योंकि तुम तो सदा सबकी सब तरह से सुधारते आये हो अब मेरी भी सुधारो। अर्थात् मुझे अपनी शरण में रक्खो) ॥ २ ॥ मेरा ग्रहण करने से संसार हँसी करेगा इससे क्यों डरते हो। तुमने जिस स्वभाव और सीधे मन से सुग्रीव, निषाद को मित्र बनाया था उसी स्वभाव के अनुसार चलो ॥ ३ ॥ यद्यपि मैं पापी हूँ परन्तु तुम्हारा ही हूँ इससे तुलसीदास को मत भूलो (क्योंकि अपना बुरा हो तो भी फेंका नहीं जाता) जैसे बाँह टूट जाय तो भी गले पड़ती है (अर्थात् निबाहनी पड़ती है कुछ काटी नहीं जाती) और आँखों के फूटी होने पर भी जब दर्द होता है तब उनकी दवाई की जाती है (कोई निकाल कर नहीं फेंक देता सो मुझे भी शरण में रक्खो) ॥ ४ ॥

[२७२]

तुम जनि मनु मैलो करो लोचन जिनि फेरो।
सुनहु राम बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूँ हितु मेरो ॥
अगुन अलायकु आलसी जानि अघनु अनेरो।
स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कैसो टोटकु औचट उलटि न हेरो ॥२॥

भगति हीन वेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवनिन्ह देव परिहर्यो अन्याउ न तिनको हौं अपराधी सब केरो ॥
नाम की ओट पेट भरत हौं पै कहावत चेरो ।
जगत विदित बात ह्वै परी समुझिए धौं अपनपै लोक कि वेद बड़ेरो ॥ ४ ॥

ह्वैहै जब तब तुम्हहिं ते तुलसी को भलेरो ।
दीन दिनहुँ दिन बिगरिहै बलिजाउँ बिलंबु किए अपनाइए सबेरो ॥५॥

हे राम ! तुम मन मैला मत करो और आँखों को मत फेरो (अर्थात् अन्तःकरण से अपना जानते रहो और कृपादृष्टि बनाये रहो)। हे राम ! तुम सुन लो कि इस लोक और परलोक में तुम्हारे सिवा मेरा भला करनेवाला कहीं भी कोई नहीं है ॥ १ ॥ क्योंकि मुझे गुणहीन, नालायक़, आलसी और निकम्मा जान कर कोई पास नहीं आने देता है और (माता पिता आदि) मतलब के साथियों ने भी मुझे तिजारी के टोटके की तरह भूल से भी उलट कर नहीं देखा (अर्थात् जैसे जब तिजारी बुख़ार आता है तब उसके लिए एक मट्टी की रकाबी में पुतला बना कर उसे पूज कर बीमार के ऊपर सात बार उतार कर चौराहे में धर आते हैं और उसे फिर कर नहीं देखते ऐसे ही मूलों में होने के कारण जिस दिन से मुझे माता पिता ने त्यागा उस दिन से मेरी कभी सूरत नहीं देखी) ॥ २ ॥ और मुझ भक्तिहीन, वेदमार्ग से बाहर और कलियुग के पापों से घिरे हुए को हे देव ! देवताओं ने भी छोड़ दिया है सो यह उनकी कुछ बेइन्साफ़ी नहीं है क्योंकि (उनका पूजन पाठ न करने से) मैं उन सबका अपराधी हूँ ॥ ३ ॥ (जो कहो कि तू ऐसा नीच है तो हम तुझे शरण में कैसे रक्खें तहाँ कहते हैं कि) मैं तो तुम्हारे नाम की ओट में (अर्थात् झूठे को तुम्हारा नाम लेकर) पेट भरता हूँ परन्तु कहाता गुलाम तुम्हारा ही हूँ। यह बात संसार को मालूम पड़ गई है सो तुम भी समझ लो कि लोक बड़ा है या वेद बड़ा है (मेरे जान में तो लोक बड़ा है क्योंकि वेद का कहा कोई भी नहीं करता है और जब लोक मुझे तुम्हारा कहता है तब क्यों नहीं मुझे शरण में रखते हो, लोक में बड़ाई भी तो तुम्हारी ही दी हुई है) ॥ ४ ॥ तुलसी का भला तो जब होगा तब तुमसे ही होगा और मैं बलि

जाऊँ, जो तुम देर करोगे तो यह ग़रीब दिन पर दिन और भी बिगड़ेगा (फिर सुधारने में देर लगेगी) इसलिए इसे सिद्धौसी अपना बना लो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अघन = पापी। तिजरा = तिजारी। औचट = भूल। हेरो = देखो।

[२७३]

तुम तजि हों कासों कहों और को हितु मेरे।
दीनबंधु सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोहु केहि केरे ॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरिन बिनु बेरे।
कृपा कोध सतिभायहूँ धोखेहुँ तिरिछेहुँ राम तिहारेहिं हेरे ॥२॥
जो चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे।
तुलसिदास अपनाइए कीजै न ढील अब जिवन अवधि निति नेरे ॥३॥

हे राम ! तुम्हें छोड़ मैं किससे कहूँ ? और कौन मेरा भला करनेवाला है। हे दीनबन्धु ! दास पर, मित्र पर, दुखी पर और अनाथ पर सहज स्वभाव से किसकी कृपा है ॥ १ ॥ हे राम ! कृपा से वा कोप से, सच्चे भाव से वा धोखे से, वा तिरछी दृष्टि से तुम्हारे देखने पर बहुत से पापी संसाररूपी समुद्र से बिना (साधनरूपी) नाव और बेड़े के तर गये ॥ २ ॥ जौनसी दृष्टि तुम्हें प्यारी लगे उसी से जल्दी देखो और तुलसीदास को अपना कर लो, अब देर न करो, क्योंकि जीवन का अन्त (अर्थात् मरण-काल) बहुत पास आ गया है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—छोह = कृपा। तरि = नाव। सौंधी = अच्छी। नेरे = पास।

[२७४]

जाऊँ कहाँ ठौर है कहाँ देव दुखित दीन को।
को कृपालु स्वामि सारिखो राखै सरनागत सब अँग बल हीन को ॥१॥
गुनिहिं गुनहिं साहब चहै सेवा समीचीन को।
अधम अगुन आलसिन्ह कों पालवो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥२॥

मुख कै कहा कहैं विदित है जी की प्रभु प्रवीन कों ।
तिहूँ काल तिहुँ लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन कों ॥३॥

हे देव ! मैं कहाँ जाऊँ मुझ दुखी ग़रीब का कहाँ ठिकाना है । तुम सरीखा दयावान् कौन है कि जो (जप, तप, आदि) सब साधनरूपी बल से रहित शरणागत को रक्खे ॥ १ ॥ मालिक तो, गुणवान् और पढ़े लिखे अच्छी सेवा करनेवाले (नौकर) को रखते हैं और नीच, औगुनी और आलसियों का पालन करना तो रामचन्द्रजी को ही फबता आया है जो सदा नये रहते हैं अर्थात् भक्तों का पालन करने से जिनका मन कभी नहीं उकताता है ॥ २ । मुख से क्या कहूँ चतुर स्वामी को मेरे जी की विदित ही है कि तुलसीदास सरीखे मन के पापी को तीनों काल और तीनों लोकों में एक तुम्हारी ही टेक है (अर्थात् तुम्हारा ही सहारा है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—गुनी = धनवान् । समीचीन = अच्छी । फबना = अच्छा लगना ।

[२७५]

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परी पा हूँ ।
हैं दयालु दुनी दसदिसा दुख दोष दलन छम कियो न संभाषन काहूँ ॥१॥
तनुज तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूँ ।
काहे को रोसु दोसु काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुवर और निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारे भय भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिनाहूँ ।
नाम की महिमा सीलु नाथ को मेरो भलो विलोकि अबते सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥४॥

हे प्रभो ! मैं द्वार द्वार पर दाँत निकाल कर और पैरों पड़ पड़ कर अपनी ग़रीबी कहता फिरा । दुनिया में ऐसे ऐसे दया करनेवाले हैं कि दशों दिशाओं में दुःख और

दोषों के दूर करने में समर्थ हैं परन्तु उनमें से किसी ने भी मेरी बात न पूछी ॥ १ ॥ (और तो क्या) अपने शरीर से पैदा होने पर भी मुझे (जन्मते ही अभागा जान) माता-पिता ने सर्प के समान त्याग दिया। काहे को रास करूँ और किसे दोष दूँ मेरे ही अभाग से (मुझे पास बैठाना तो दूर रहा) वे सब मेरी छाया तक छूने में रुकने लगे ॥ २ ॥ (जब मेरा यह हाल हुआ तब) सन्तों ने मुझे दुखी देख कर कहा कि तू मन में सोच मत करे। तुझ सरीखे नीच और पातकी पशुओं को भी शरण जाने पर रामचन्द्रजी ने नहीं छोड़ा और अन्त तक उनका निर्वाह किया ॥ ३ ॥ (यह सुन) तुलसीदास तुम्हारी प्रीति और प्रतीति के हुए बिना ही जब से तुम्हारा हुआ है तब से सुखी है। नाथ के नाम की महिमा और सुन्दर स्वभाव ने मेरा भला किया यह देख कर तब से मैं तुमसे सकुचता हूँ और तुम्हारी सराहना करता फिरता हूँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—रद = दांत। छम = योग्य। ओर = अन्त।

[२७६]

कहा न कियो कहाँ न गयो सीस काहि न नायों।
राम रावरो बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायों ॥१॥
आस विवस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायों।
हाहा करि दीनता कहि द्वार द्वार बार बार परी न छार मुँह बायों ॥२॥
असन वसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायों।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायों ॥३॥
नाथ हाथ कछु नहिं लग्यो लालच ललचायों।
साँच कहों नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥४॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थल पति तायों।

मूँड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन सरन तकि आयो ॥५॥
दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जस गायो।
तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह बोल दै बिरुदावली बुलायो॥

मैंने क्या नहीं किया और मैं कहाँ नहीं गया और मैंने किसको सिर नहीं नवाया। पर हे राम! बिना तेरे दास हुए संसार में जन्म जन्म कर दशों दिशाओं में दुःख ही दुःख पाया ॥१॥ आशा के वश ख़ास दास होकर मुझ नीच ने (अपना दुःख बहुत से) प्रभुओं को जताया और हाहा खाकर दरवाज़े दरवाज़े पर अपनी ग़रीबी को बार बार कहता हुआ मुँह बाये फिरा (पर भोजन की तो क्या चलाई है) मेरे मुँह में ख़ाक भी नहीं पड़ी (अर्थात् सबसे माँगा पर दरिद्र न गया) ॥२॥ बिना खाये और बिना वस्त्र पहने मैं पागल की तरह जहाँ तहाँ उठ दौड़ा और प्राणों से भी प्रिय जो महिमा और मान है (अर्थात् मान-प्रतिष्ठा) उसे त्याग कर दुष्टों के सामने छिन छिन में अपने ख़ाली पेट को खोल कर दिखाया ॥३॥ लालच के मारे बहुत ललचाया पर हे नाथ! मेरे हाथ कुछ नहीं आया। मैं सच सच कहता हूँ कि ऐसा नाच कौन सा है कि इस नीच लोभ ने मुझ बेशरम को न नचाया हो (अर्थात् सब पाखण्ड कराये) ॥४॥ कान, आँख और मन इनको रास्ते में लगाया (अर्थात् कान से बड़ाई सुनी, नेत्रों से दर्शन किये, मन से प्रीति करी) और सब जगह पति कहिए बड़े आदमियों को ताया छाना (की कुछ दे पर कुछ न मिला) फिर शिर पीट हिये में हार मान कर और अपना भला देख घबड़ा कर अब तेरे चरणों की शरण ताक कर आया हूँ ॥५॥ हे दशरथ के (पुत्र!) तू ही समर्थ है। (अर्थात् सब कुछ करने लायक़ है) और तेरे यश को तीनों लोकों में (सुर-नर मुनियों ने) गाया है। तुलसी प्रणाम करता है उसे देख, मैं बलैयाँ लेता हूँ तेरी विरदावली ने मुझे अपने भरोसे का वचन देकर बुलाया है ॥६॥

शब्दार्थ—छार = धूल। असन = भोजन। खिन (क्षण) = छिन। खलायो = ख़ाली। स्रवन = कान। हेरि = देख कर। हहरि = घबरा कर। विरुदावली = यश की पाँति।

[२७७]

रामराय बिन रावरे मेरे को हितु साँचो।

स्वामि सहित सब सों कहौं सुनि गुनि विसेषि कोउ रेख दूसरो खाँचो ॥१॥

देह जीव जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो ।
किये विचार सारु कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बीच काँचो ॥२॥

विनयपत्रिका दीन की बापु आप ही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिअहि पाँचो ॥३॥

हे राम राजा ! तुम्हारे बिना मेरा सच्चा हितू कौन है ? मैं इस बात को स्वामी समेत सबसे कहता हूँ उसे सुन कर और विचार कर कोई और बढ़ कर हो तो तुम दूसरी रेखा खींचो (अर्थात् दूसरे को बताओ) ॥ १ ॥ (जो कहो कि तेरे माता, पिता, भाई, बन्धु आदि बहुत से हितू हैं तहाँ कहते हैं) देह जीव के सम्बन्ध से (अर्थात् जब तक देह में जीव बना है तब तक) वे हितकारी (भासते) हैं पर (असल में) वे झूठी टाँकियों से छिले छिलाये हैं (अर्थात् बिलकुल मिथ्या हैं क्योंकि जिन टाँकियों से ये गढ़ कर बनाये गये हैं वे ही झूँठी हैं तो ये सच्चे कैसे हो सकते हैं) । विचार करने से ये केले के सार की तरह हैं (अर्थात् जैसे केले के वृक्ष में कोरे छिलके ही छिलके निकलते हैं भीतर कुछ गूदा नहीं निकलता, ऐसे ही ये ऊपर के हितू हैं इनके भीतर हित नहीं है । जो कहो कि ध्रुव, प्रहलाद, अंबरीष आदि तो लोक-व्यवहार से ही उत्तम भक्त हुए, इससे तो लोक-सम्बन्ध सच्चा ही दीखता है, उसे झूँठा कैसे कहता है, तहाँ कहते हैं कि) जैसे मणि और सुवर्ण के संग से बीच बीच में लघु अर्थात् झूठा काँच भी शोभा देता है (वैसे ही ईश्वररूपी मणि और जीवरूपी सोने के सम्बन्ध से उन हितूरूपी काँच के टुकड़ों की सजावट दीख रही है पर सुवर्ण और मणि से अलग होने पर वे झूठे हैं सच्चे नहीं) ॥ २ ॥ हे पिताजी ! इस ग़रीब की बनाई विनयपत्रिका को तुम ख़ुद बाँचो । तुलसी ने इसे अपने हृदय के विचार से (अर्थात् जितना उसमें विद्या-बुद्धि का बल है उससे) लिखी है, उस पर अपने (उस कोमल उदार) स्वभाव से (अर्थात् जिससे अहिल्या, केवट, गिद्ध, शबरी आदि को सही किया था उसी स्वभाव से) सही करके (कि ठीक है फिर

(जानकीजी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनूमान्) पाँचों से पूछो (कि कैसी है और जो बिना सही करे पूछोगे तो कदाचित् कोई कह देगा कि अच्छी नहीं बनी तो मेरा परिश्रम वृथा जायगा) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—टांचुन = टांकियाँ (जिनसे सन्तराश पत्थर को साफ़ करता है)। टाँचना = छीलना । कदलि = केला । सारु = गूदा । कनक = सोना । लघु = छोटा, कम क़ीमती ।

[२७८]

पवन सुवन रिपुदवन भरत लाल लषन दीन की ।
निज निज अवसर सुधि किये बलि जाउँ दास आस पूजिहै खास खीन की ॥१॥
राज-द्वार भली सबु कहैं साधु समीचीन की ।
सुकृत सुजसु साहिब कृपा स्वारथु परमारथु गति भये गतिबिहीन की ॥२॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालहि परमिति पराधीन की ॥३॥

हे पवनपुत्र ! हे शत्रुघ्नजी ! हे भरतजी ! हे लक्ष्मणलालजी ! मुझ ग़रीब की, अपने अपने अवसर से (अर्थात् जब तुम्हारा मौक़ा लगे) याद रखना; मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ; ऐसा करने से इस ख़ास और दुर्बल दास की आशा पूरी हो जायगी (अर्थात् रघुनाथजी मेरी विनयपत्रिका पसंद कर लेंगे) ॥ १ ॥ राजाओं के दरबारों में अच्छे सन्तों को तो सभी अच्छा कहते हैं, परन्तु मुझ सरीखे शरणरहित की गति हो जाने से तुम्हें पुण्य होगा, तुम्हारा सुन्दर यश फैलेगा, तुम्हारे ऊपर स्वामी की कृपा होगी और तुम्हारे स्वारथ और परमारथ (दोनों सिद्ध) होंगे ॥ २ ॥ सो समय को सँभार कर (अर्थात् मौक़ा देखकर) इस पापी तुलसी की (बात) सुधार देना और भक्तों के पालनेवाले कृपालु रामचन्द्रजी से मुझ पराधीन की प्रीति की रीति की हद को समझा देना (कि तुलसी कलियुग के अधीन होकर भी तुमसे बेहद प्रीति करता है—यह विनती है) ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ख़ास = मुख्य । खीन (क्षीण) = दुबला । समीचीन = अच्छा । नत = भक्त । परिमिति = हद ।

[२७६]

मारुति मन रुचि भरत की लषि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ नाम सों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥ १ ॥

सकल सभा सुनि लै उठी जानि रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब के साहिब बाँह गही है ॥२॥

बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ कि परी रघुनाथ हाथ सही है ॥३॥

(अब उस हाल को कहते हैं कि जो रामजी के दरबार में हुआ। दो पहर पीछे दरबार जुड़ा है। आज रामनवमी है, भगवान् के जन्मोत्सव का दिन है, भाँति भाँति के उत्सव और आनन्द-मङ्गल हो रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी जानकी सहित रत्न-जटित सिंहासन पर विराजमान हैं, बड़े बड़े राजा, सिंहासन के सामने बैठे हैं। मंत्री हाथ जोड़े खड़े हैं। सिंहासन के पास दाईं ओर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनूमान् और बाईं ओर सुग्रीव, जामवन्त आदि सब सेवा में खड़े हैं। इस समय भगवान् को बड़े प्रसन्न देख भरतजी और हनुमान्‌जी ने लक्ष्मणजी से कहा कि भगवान् के सामने तुलसीदास की विनयपत्रिका की चर्चा चलाने का यह अच्छा अवसर है। यह सुन कर और) हनूमान्‌जी का मन और भरतजी की इच्छा देख कर लक्ष्मणजी ने (रघुनाथजी से) कहा कि, हे नाथ ! कलि के समय में भी एक तुम्हारे दास (तुलसी) की तुम्हारे नाम से प्रीति और प्रतीति निभ गई (और उसकी रचित यह विनय-पत्रिका है) ॥ १ ॥ इस बात को सुन कर सब सभा बोल उठी कि हाँ हाँ उसकी रीति हमारी जानी पड़ी है (सच-मुच वह आपका पूर्ण भक्त है और उसको कलि की बाधा नहीं व्यापी। यह सुन कर भरतजी ने कहा) ग़रीबनिवाज रामचन्द्रजी की कृपा ऐसी ही है। स्वामी ने देखते देखते उस ग़रीब की बाँह पकड़ी है (फिर क्यों न निबहेगी) ॥ २ ॥ (सब सभावालों की और भरतजी की बात सुन कर) रामचन्द्रजी ने हँस कर

कहा कि यह तुम्हारा कहना सच है मुझे भी उसकी ख़बर मिल गई है (जानकीजी भी कई बार कह चुकी हैं)। फिर तुलसी सरीखे अनाथ की बनाई (विनयपत्रिका) पर रघुनाथजी के हाथ की सही हो गई (अर्थात् भगवान् ने उसे स्वीकार कर उस पर हस्ताक्षर कर दिये) और अपनी बात बनने से मैंने प्रसन्न होकर उनको मस्तक नवाया॥ ३॥

इति श्रीतुलसीदासकृता विनयपत्रिका आगरा-निवासि पं० रामेश्वरभट्ट-कृतसरलाटीकया संवलिता समाप्ता।

भक्तमालसार ।

१—वाल्मीकि ।

वाल्मीकि ऋषि पहले व्याध थे और मनुष्यों को लूटमार कर कुटुम्ब पालते थे। एक बार उन्हें कई ऋषि मिले। जब वाल्मीकि ने उन्हें लूटना चाहा तब उन्होंने कहा कि तू इस पाप-कर्म करके कुटुम्ब पालता है सो तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है, अथवा तुझे जो पाप का फल मिलेगा उसका भी साथी है? यह सुन वाल्मीकि ने कुटुम्बियों से पूछा, कि तुम लोग खाने के ही साथी हो या पाप के भी? जब उन्होंने कहा कि हम तो खाने के साथी हैं, पाप के नहीं तब वाल्मीकि ने सबको छोड़ ऋषियों के पास जाकर उनसे धर्म-विषय सुना और भगवान् का उलटा नाम मरा मरा जपते जपते वे इस परमगति को प्राप्त हुए कि उन्हें घर बैठे भगवान् का दर्शन हुआ और वे शतकोटि-रामायण बनाने में समर्थ हुए।

२—हनुमान् ।

हनुमान् रामजी के अनन्यभक्त थे। इन्होंने भगवान् के लिए दो कार्य बड़े अनोखे किये, एक तो समुद्र फाँद कर लङ्का से जानकीजी की खबर लाना और दूसरा संजीवनी बूटी के पहाड़ के पहाड़ को उठा लाना। यह बड़े बुद्धिमान्, सुशील, आज्ञाकारी और निःस्वार्थ थे। भगवान् को इनसे बड़ी सहायता मिली।

३—प्रह्लाद ।

हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी। एक दिन नारदजी ने आकर उसे ज्ञानोपदेश किया सो उसे तो ज्ञान न हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। यह वही प्रह्लाद है कि जिसके लिए विष्णु ने नृसिंहरूप धारण कर उसे राज्य दिया और दैत्यकुल का नाश किया।

४—अम्बरीष ।

राजा अम्बरीष विष्णु का बड़ा भक्त था। एकादशी का व्रत कर द्वादशी के दिन ब्राह्मण को भोजन कराकर आप पारणा करता था। एक बार इसने दुर्वासा ऋषि को

नेवता दिया। ये स्नान करने को गये, राजा ने द्वादशी थोड़ी जान ब्राह्मण की आज्ञा से चरणोदक ले भोजन कर लिया। जब दुर्वासाजी ने आकर यह जाना तब जटा का एक बाल भूमि पर पटका। उससे कृत्या राक्षसी उत्पन्न हो राजा को मारने चली। वह तो भूमि पर बेसुध होकर गिर पड़ा और ऋषि के पीछे सुदर्शनचक्र लगा तो ऋषि विष्णु की शरण में गये परन्तु इन्होंने न रक्खा बरन राजा की ही शरण में भेजा कि वही तुम्हारी रक्षा करेगा। फिर ऋषि राजा के यहाँ आये। राजा ने इन्हें आदर से बैठा कर चक्र का निवारण किया और ऋषि को षट्रस भोजन करा कर सत्कार-पूर्वक विदा किया।

५—ध्रुव।

स्वायंभू मनु और शतरूप के राजा उत्तानपाद हुए। इनकी दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी से ध्रुव हुए। एक दिन जब राजा छोटी रानी के पास, कि जिस पर अधिक स्नेह था, बैठे थे उस समय ध्रुव राजा की गोद में जा बैठे। इस पर छोटी रानी ने उन्हें गोद से उतार कर कहा कि, तुम मुझसे उत्पन्न होते तो इस गोद के योग्य थे। यह सुन कर ध्रुव को बड़ी लज्जा हुई और जब अपनी माता से तप की आज्ञा लेकर जाने लगे, तब राजा ने बहुत समझाया और राज्य तक देना चाहा पर वे न माने और नारद के उपदेश से तप कर अचल लोक के स्वामी हुए।

६—अजामिल।

अजामिल बड़ा पापी था। एक दिन वह बाहर गया था उस समय थोड़े से साधु उसके घर पर आये। उसकी गर्भवती स्त्री ने उनका अच्छे प्रकार से अतिथि-सत्कार किया। उन्होंने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया कि तेरे पुत्र होगा। तू उसका नाम "नारायण" रखियो। फिर उस स्त्री ने वैसा ही किया। अजामिल पुत्र को प्यार करने लगा और अन्त समय जब मरने लगा और अधिक पापी होने के कारण यमदूत उसे भय दिखाने लगे, तब उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा, नाम लेते ही भगवान् के दूत आये और उन्होंने उसको सुन्दर गति दी।

७—गजेन्द्र।

जब जल में ग्राह ने गजेन्द्र को पकड़ा और अधिक युद्ध होने पर ग्राह उसे जल में डुबाने लगा और सूँड़ का थोड़ा सा भाग ऊपर रह गया, तब गजेन्द्र ने भगवान् को पुकारा कि हे भगवन्! रक्षा करो, रक्षा करो। ऐसी टेर सुन भगवान् ने आकर उसे छुड़ाया।

८—पिङ्गला ।

एक गणिका (रंडी) थी, उसका नाम पिङ्गला था । एक दिन वह अनेक प्रकार से शृङ्गार करके बैठी थी कि कोई विषयी आवे तो धन हरण करूँ पर घात न लगी और जब कोई न आया, तब खाट पर लेट कर विचारने लगी कि, जितनी देर पुरुष की राह देखी उतनी देर भगवान् का स्मरण करती तो संसार-बन्धन से छूट जाती । यह विचार कर बराबर भगवान् का स्मरण करती रही और भगवत-कृपा से उसने मोक्ष पाई।

९—कुब्जा ।

कुब्जा कंस की दासी भगवान की बड़ी भक्त थी । जब भगवान् कंस को मारने गये तब उसने मार्ग में भगवान् का दर्शन पाकर और उनके मस्तक पर चन्दन लगा कर अपना जन्म सफल किया । भगवान् ने उसकी ऐसी भक्ति देख पाँव पर पाँव धर दो उँगली ठोढ़ी के तले लगा कर उसे उचकाय सीधा कर दिया और वह भगवान् का हाथ लगतेही सुन्दर नारी हो गई । उसकी भक्ति और विनय के वश भगवान् ने जाकर उसका घर पवित्र किया और दर्शन देकर उसे सब भाँति कृतार्थ किया ।

१०—सुदामा ।

सुदामाजी द्राविड़ देश के रहनेवाले थे । यह श्रीकृष्णचन्द्र के गुरुभाई अति दीन, तन-छीन और महादरिद्री थे । इनकी स्त्री ने दरिद्रता से महादुख पाय इन्हें श्रीकृष्ण-चन्द्र के पास भेजा और उनकी भेंट के लिए एक श्वेत वस्त्र में थोड़े से चावल भेंट को दे दिये । सुदामा के मिलने पर भगवान् ने उनका बड़ा आदर-भाव किया और अतुल संपत्ति देकर उनका दरिद्र दूर किया ।

११—जटायु ।

यह गृध्रराज बड़ा पराक्रमी था । जब रावण सीताजी को हर लिये जाता था उस समय इसने रावण से बड़ा घोर युद्ध किया पर अंत में रावण ने इसके पंख काट डाले कि जिससे यह पृथ्वी पर गिर पड़ा । जब रघुनाथजी सीता को ढूँढ़ते हुए वन में गये और इसे अधमरा पड़ा देखा तब अपना हाथ इसके मस्तक पर फेरा कि जिससे इसकी सब पीड़ा जाती रही । इसने भगवान् से सीताजी का हाल कहा और भगवान् के बहुत कहने पर भी इसने शरीर नहीं रक्खा । यह रामकृपा से वैकुंठ को गया ।

१२—शबरी

यह जाति की भीलनी थी और मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी। जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तब इसने भी जाने के लिए हठ किया। ऋषि ने कहा तू अभी यहीं रह। त्रेता में जब तुझे भगवान् का दर्शन होगा तब तू उनकी अविचल भक्ति पाकर परमधाम पावेगी। श्रीरामचन्द्रजी गृध्र की क्रिया कर और उसे परमधाम देकर शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी भगवान् के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरी और फिर आसन पर बैठा कर चरण धोय चरणामृत लेकर उनके सामने बेर (फल) लाकर धरे। भगवान् ने बार बार बेरों की सराहना कर प्रेम के साथ भोजन किया। एक कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है। यथा :-

कवित्त—बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु रसिक बिहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहू तें महान मीठो लेहु तौ लषण योंं बखानत हैं हेर हेर॥
बेर बेर देवे बेर शबरी सुबेर बेर तोऊ रघुवीर बेर बेर तेहिं टेर टेर।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर लावौ कहैं बेर बेर॥

बेर खाकर भगवान् ने उसे नवधाभक्ति का उपदेश किया और वह सुग्रीव की मित्रता का संकेत कर और भगवान् के चरण-कमलों का हृदय में ध्यान धर तथा योगाग्नि में देह जलाय वहाँ गई कि जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते।

१३—विदुर।

विदुरजी का जन्म व्यासजी के वीर्य्य और दासी के गर्भ से हुआ था। यह धृतराष्ट्र और पांडु के भाई बड़े धर्मात्मा, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और भगवान् के भक्त थे। जब श्रीकृष्णजी पांडवों का मेल कराने के लिए हस्तिनापुर गये तब दुर्योधन के न्योते का अनादर कर उन्होंने इनके ही यहाँ भोजन किया। यह कुरुवंश के हितसाधन में सदा उत्साही रहते थे परन्तु पक्षपातरहित थे।

१४—जामवन्त।

जामवन्त ऋच्छसेना का अधिपति था। लंका-युद्ध में इससे भी बड़ी सहायता मिली थी। इसी ने हनुमान्जी को समुद्र लाँघ कर सीताजी की सुध लाने की प्रेरणा की थी।

१५—केवट।

यह श्रीरामचन्द्रजी का बड़ा भक्त था। इसने भगवान् को अपनी नाव में बैठा कर गंगा पार किया था और उतरते समय भगवान् से बड़ी मनहरन बातें की थीं।

१६—गुह निषाद।

गुह भगवान् का बड़ा भक्त था। जब श्रीरामजी शृङ्गवेरपुर में गंगाजी से उतर परले पार गये उस समय यह उनका आगमन सुन अपने कुटुम्बियों को साथ ले उनसे मिलने को गया और दोनों में भर भर कर कन्द मूल फल भगवान् की भेंट कर और उनके लिए कोमल कुश और पत्तों की एक शय्या तैयार कर दी। फिर आगे वन में सर्वदा महाराज की सेवा करता रहा।

१७—यमलार्जुन (विटप)।

यमलार्जुन (नलकूबर) पूर्वजन्म में कुबेर के दो लड़के थे। शिवजी की सेवा करने से धनवान् हुए थे। एक दिन ये स्त्रियों को ले कैलास में गये और वहाँ सब मद पीकर और नंगे होकर गंगा में नहाने लगे, इस बीच में वहाँ नारदजी आ निकले, उनको देख स्त्रियों ने तो वस्त्र पहन लिये पर ये जलक्रीड़ा ही करते रहे। इस पर नारदजी ने इन्हें शाप दिया कि तुम गोकुल में जाकर वृक्ष हो जाओ, श्रीकृष्णजी तुमको मुक्ति देंगे। यों वे गोकुल में उत्पन्न हुए और इनका नाम यमलार्जुन (अर्थात् दो अर्जुन वृक्ष) हुआ।

इधर गोकुल में जसोदा रानी ने ऊधम मचाने के कारण श्रीकृष्णजी को उलूखल से बाँध दिया। उन्होंने उसे घसीट और पेड़ों के बीच आड़ा डाल ऐसा झटका दिया कि वृक्ष टूट पड़े और उनमें से दो सुन्दर पुरुष निकले। वे श्रीकृष्णजी की स्तुति कर बोले कि आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दे हमको यहाँ से मुक्त किया। अब इतना और वर दीजिए कि आपकी भक्ति हमारे हृदय में सदा बनी रहे।

१८—विभीषण।

विभीषण रावण का छोटा भाई भगवान् का बड़ा भक्त और राजनीतिज्ञ था। जब रावण ने इसके अच्छे उपदेश नहीं सुने और इसे लात मार कर निकाल दिया तब यह भगवान् की शरण में गया। भगवान् ने इसे लंका का राजतिलक किया और समय समय पर इसकी नीति के अनुसार काम लिया तथा इसके द्वारा लंका का सब भेद पाया।

१६—पांडव ।

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँचों पाण्डव कहलाते हैं। इनकी उत्पत्ति अपने पिता पांडु से नहीं थी, क्योंकि पांडु की पुत्रोत्पन्न करने की शक्ति एक मृग के शाप के कारण नष्ट हो गई थी। इसलिए कुन्ती के गर्भद्वारा धर्मराज के वीर्य से युधिष्ठिर, पवन के वीर्य से भीम, और इन्द्र के वीर्य से अर्जुन हुए और माद्री के गर्भ और दोनों अश्विनीकुमार के वीर्य से नकुल और सहदेव हुए। ये पाँचों पाण्डव महाबली, महापराक्रमी और श्रीकृष्णजी के परम भक्त थे। बिना उनकी आज्ञा और परामर्श के कुछ नहीं करते थे। भगवान सदा उनकी सहायता करते रहे।

२०—अहिल्या।

एक समय ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक कन्या अहिल्या नाम उत्पन्न की। वह परम मनोहर थी कि जिसकी सुन्दरता देख सब देवता मोहित होते थे। ब्रह्माजी उस कन्या को गौतम ऋषि को धरोहर की भाँति सौंप कर चले गये। कुछ दिन पीछे फिर ब्रह्माजी ने कन्या माँगी और जब ऋषि ने उन्हें ज्यों की त्यों सौंप दी तब ब्रह्माजी उनके जितेन्द्रियपने को देख बड़े प्रसन्न हुए और उस कन्या को उन्हीं को विवाह दी: यह बात इन्द्र को बुरी लगी। एक दिन वह छल करके गौतम ऋषि का भेष बना अहिल्या के पास आय उससे विषय कर रहा था कि गौतम आगये। अहिल्या ने घबरा कर इन्द्र से पूछा कि तू सत्य कह कौन है? उसने नाम बताया। अहिल्या इसे छिपा कर देर से द्वार खोलने आई ऋषि ने देर से आने का कारण पूँछा और जब अहिल्या ने छिपाया तब गौतम ने तपोबल से उसका सब मर्म जान इन्द्र को शाप दिया कि, तेरे शरीर में सहस्र भग होवें, और हे अहिल्या! तू मुझसे झूठ बोली इस पाप से तू शिला हो जा और जब श्रीरामचन्द्रजी तुझे दर्शन देंगे तब तेरा उद्धार होगा। सो जब विश्वामित्र ऋषि श्रीरामजी को दशरथजी से माँग कर ले गये और भगवान सुबाहु आदि राक्षसों को दण्ड देकर धनुष-यज्ञ में जा रहे थे तब मार्ग में इन्होंने ऋषि से अहिल्या का सब समाचार जान और उसे अपने चरण से स्पर्श कर उसका उद्धार किया और वह भगवान् की विनती कर अपने पति-लोक को गई।

गूढ़ार्थ-कोश

१—अग्नि—(१) दक्षिणाग्नि, (२) गार्हपत्य, (३) आहवनीय।

२—अवस्था—(१) जाग्रत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति, (४) तुरीय।

३—अविद्या—ईश्वर की मोहशक्ति।

४—अष्ट-सिद्धि—(१) अणिमा, (२) महिमा (३) गरिमा, (४) लघिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकाम्य, (७) ईशत्व, (८) वशित्व।

५—आकर—(१) जरायुज, (२) अंडज, (३) स्वेदज, (४) उद्भिज।

६—आश्रम—(१) ब्रह्मचर्य, (२) गार्हस्थ, (३) वानप्रस्थ, (४) संन्यास।

७—ईति—छः हैं—(१) अतिवृष्टि, (२) अनावृष्टि, (३) मूषक, (४) टीड्डी (५) शुक, (६) राजा की चढ़ाई होना।

८—४ उपवेद—(१) ऋग्वेद का आयुर्वेद, (२) यजुर्वेद का धनुर्वेद, (३) सामवेद का गान्धर्ववेद, (४) अथर्व का स्थापत्य।

९—ऋतु—(१) शिशिर, (२) वसन्त, (३) ग्रीष्म, (४) वर्षा, (५) शरद्, (६) हेमन्त।

१०—कर्मेन्द्रिय ५—(१) वाणी, (२) हाथ, (३) चरण, (४) गुदा, (५) लिङ्ग।

११—कला—६४ हैं।

१२—कल्प—चार युगों की एक चौकड़ी और हज़ार चौकड़ी का एक कल्प।

१३—चतुर्गुण—(१) साम, (२) दाम, (३) दण्ड, (४) भेद।

१४—चतुर्युग—(१) सतयुग, (२) त्रेता, (३) द्वापर, (४) कलियुग।

१५—गुरु—माता, पिता, गुरु।

१६—चार फल—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

१७—चार रिपु (१) काम, (२) क्रोध, (३) लोभ, (४) मोह।

१८—चार वर्ण—(१)—ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र।

१९—तीन अवस्था—(१) बालक, (२) युवा, (३) वृद्ध।

२०—तीन एषणा—लोक-बड़ाई, धन राज्यादि, स्त्री-पुत्रादि।

२१—तीन कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण।

२२—तीन काल—(१) भूत, (२) भविष्यत्, (३ वर्तमान।

२३—तीन गुण—सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण।

२४—तीन ताप वा शूल—आध्यात्मिक (जो शरीर से हो—रोग), आधिभौतिक (जो भूमि से हो—अर्थात् सिंहादि भय आदि), आधिदैविक (जो दैवकोप से हो)।

२५—तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

२६—तीन भुवन वा लोक—स्वर्ग, मृत्यु, पाताल।

२७—तीन वायु—शीतल, मन्द, सुगन्ध।

२८—तीन श्रोता—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी।

२९—दश इन्द्रियाँ - ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ।

३०—दश दिक्पाल—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव, ब्रह्मा, अनंत।

३१—नौखण्ड—इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, हरि भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष।

३२—नवगुण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य।

३३—नवद्वार नेत्र कान, नाक के दो छेद, मुख गुदा, लिङ्ग।

३४—नव निधि—महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्ब। (कुबेर के ख़ज़ानों के नाम हैं)।

३५—नरक—२८ हैं।

३६—नव रस—(१) शृङ्गार, (२) वीर, (३) करुणा, (४) अद्भुत, (५) हास्य, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) रौद्र, (९) शान्त।

३७—पंचकोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय।

३८—पंचगव्य—गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घृत।

३९—पंचतत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।

४०—पंचमहायज्ञ—वेदपाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव, अतिथि-सत्कार।

४१—पंचवायु—प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान।

४२—पुराण—ब्रह्मपुराण, पद्मपु०, विष्णुपु०, शिवपु०, श्रीमद्भागवत, नारदपु०, मार्कण्डेयपु०, अग्निपु०, भविष्यपु०, ब्रह्मवैवर्तपु०, लिङ्गपु०, वाराहपु०, स्कन्दपु०, वामनपु०, कूर्मपु०, मत्स्यपु०, गरुड़पु०, ब्रह्माण्डपुराण।

४३—भक्त—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी।

४४—भक्ति—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चन, वन्दन, दासत्व, सख्य, आत्म-निवेदन।

४५—मद—जातिमद, कुलमद, युवावस्थामद, रूपमद, विद्यामद, ज्ञानमद, ध्यानमद, धनमद, राज्यमद।

४६—योनि—(८४ लाख) ६ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २७ लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, २३ लाख चौपाये।

४७—राम—परशुराम, रामचन्द्र, बलराम।

४८—लोक—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक।

४९—विद्या—ब्रह्मज्ञान, रसायन, श्रुतिविद्या, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, तैरना, संगीत, नाटक, अश्वारोहण, कोकशास्त्र, चोरी, चतुरता।

५०—वेद—ऋक्, यजु, साम, अथर्व।

५१—वेदांग—छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

५२—शास्त्र—सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक।

५३—षट् कर्म—(१) पढ़ना, (२) पढ़ाना, (३) यज्ञ करना, (४) यज्ञ कराना, (५) दान देना, (६) दान लेना।

५४—षट् रस—कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण।

५५—सप्तद्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली और गोमेद।

५६—सप्तर्षि—वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, यमदग्नि, गौतम।

५७—सप्तावर्ण—जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, प्रकृति।

५८—ज्ञानेन्द्रिय—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक।

True copy of the letter received from Dr. Sir G. A. Grierson, Ph. D., C. I. E., I.C.S., K. C. I. E., Rathfarnham, England, to the address of the Co. ntator of Vinaya Pattrikâ.

Dated · th eptember, 1914

DEAR SIR,

Forgive a stranger for addressing you. I write to say how highly I appreciate your excellent edition of t e तुलसीदासकृत विन पत्रिका, which I obtained from the "Indian Press" a few d . It is a worthy successor of your Edition of the रामचरित ान and really fills a want which I have long felt. The *Vinaya Pattrikâ* is a difficult work, but I think it is one of the best poems written by Tulasi Dâsa, and should be studied by every devout भक्त. I have already found it of great assistance in explaining difficult passages.

May I hope that you will go on with your work, and bring out similar editions of the गीतावली and of the कवितावली (including the हनुमानबाहुक), both of which are very important. The कवितावली is most important, as it throws so much light on the life of the poet.

Yours faithfully,
GEORGE A. GRIERSON.

Pandit Râmeśvar Bhatt.

विनयपत्रिका के विषय में डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन महाशय पी० एच० डी०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० के० सी० आई० ई० के पत्र का भावार्थ हम नी . देते हैं कि जो उन्होंने विलायत से पंडित रामेश्वर भट्ट के नाम भेजा है—

पत्र लिखने के कारण एक अपरिचित व्यक्ति को क्षमा करना। मैं यह प्रकट करने के लिए पत्र लिखता हूँ कि थोड़े दिन हुए मुझे आपकी द्रित की हुई तुलसीदासकृत विनयपत्रिका की जो अत्युत्तम आवृत्ति इंडियन प्रेस से प्राप्त हुई उसे मैं कितना अधिक पसंद करता हूँ। आपने रामचरितमानस की आवृत्ति के पीछे उसी शैली पर यह उत्तम पुस्तक निकाली है। यह वास्तव में एक ऐसी कमी को पूरा करती है जिसका मैं बहुत दिन से अनुभव कर रहा था विनयपत्रिका एक कठिन पुस्तक है। परन्तु मेरी सम्मति में यह तुलसीदास के लिखे सर्वोत्तम ग्रन्थों में से एक है और प्रत्येक सच्चे भक्त को इसे पढ़ना चाहिए। कठिन पदों के समझने में मुझे इससे बड़ी सहायता मिली है।

क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आप अपना का जारी रखेंगे और गीतावली तथा (हनुमानबाहुक सहित) कवित्तावली की भी ऐसी ही आवृत्तियाँ नि लेंगे ? ये दोनों बड़ी महत्त्व-पूर्ण पुस्तकें हैं। कवित्तावली सबसे अधिक महत्त्व- पुस्तक है क्योंकि इससे कवि के जीवन का बहुत कुछ पता लगता है।

आपका वासपात्र
० ए० ग्रियर्सन

पण्डित रामेश्वर भट्ट